



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

MAGO-118

राजनीतिक भूगोल

इकाई-01	राजनीतिक भूगोल : परिभाषा, विषय क्षेत्र	3-17
इकाई-02	राज्य-राष्ट्र संकल्पना	18-31
इकाई-03	सीमान्त एवं सीमाओं का राजनीतिक भूगोल	32-49
इकाई-04	राज्य की संरचना, मूल क्षेत्र	50-70
इकाई-05	आधार क्षेत्र एवं राजधानियाँ	71-85
इकाई-06	भू-राजनीतिक सिद्धान्त	86-102
इकाई-07	संघवाद की संकल्पना तथा भौगोलिक आधार	103-117
इकाई-08	भारत के राजनीतिक-भौगोलिक समस्याएँ	118-131
इकाई-09	अन्तर्राज्य सीमा विवाद	132-145
इकाई-10	निर्वाचन भूगोल का अर्थ, उद्देश्य एवं प्रासंगिकता	146-156
इकाई-11	मतदान व्यवहार का भौगोलिक अध्ययन	157-171
इकाई-12	निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण	172-184
इकाई-13	विश्व राजनीतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएँ	185-197
इकाई-14	विश्व के प्रमुख समस्या ग्रस्त क्षेत्र	198-212
इकाई-15	हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व	213-226

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
MAGO-118 राजनीतिक भूगोल

परामर्श समिति

प्र० सत्यकाम	कुलपति, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार,	कुलसचिव, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्र० संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्र० संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० अभिषेक सिंह	सहा० आचार्य समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्र० एन. के राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी०एच०यू०, वाराणसी
प्र० ए० आर० सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्र० अरूण कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी०एच०यू०, वाराणसी

लेखक

डॉ० शिव प्रकाश अग्निहोत्री पूर्व प्राचार्य, मदन मोहन मालवीय पी जी कॉलेज, कालाकांकर, प्रतापगढ़, उ०प्र०

सम्पादक

प्र० संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
----------------------	---

समन्वयक

प्र० संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
----------------------	---

सह-समन्वयक

डॉ० अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
-----------------	---

2024 (मुद्रित)

© उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज— 211021

ISBN-978-81-976126-1-9

सर्वाधिकार सुरक्षित इस सामग्री के किसी भी अंश को उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट: पाठ्यक्रम सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आंकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन— उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक— कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रक: चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा०लि०, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज— 211002

इकाई-01 राजनीतिक भूगोल : परिभाषा, विषय क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 प्रस्तावना
- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 भूगोल : एक परिचय
- 1.3 राजनीतिक भूगोल
- 1.4 राजनीतिक भूगोल : एक गतिशील विज्ञान
- 1.5 राजनीतिक भूगोल : अर्थ
- 1.6 राजनीतिक भूगोल : परिभाषाएँ
- 1.7 राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र
 - 1.7.1 डारवेण्ट व्हिटलसी की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र
 - 1.7.2 रिचार्ड हार्टशोर्न की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र
 - 1.7.3 नार्मन जे०जी० पाउण्ड्स की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषयक्षेत्र
 - 1.7.4 जी०टी०रेनर की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र
 - 1.7.5 राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र के मुख्य केन्द्र बिन्दु
- 1.8 सारांश
- 1.9 शब्द सूची
- 1.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1.0 प्रस्तावना

‘राजनीतिक भूगोल’ विषय की यह प्रथम इकाई है। इस इकाई में सर्वप्रथम आप ‘भूगोल’ विषय की मूल भावना को समझेंगे और फिर उसकी दो प्रमुख शाखाओं— ‘भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल’ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। मानव भूगोल का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते हुए आप देखेंगे कि किस प्रकार राजनीतिक भूगोल ने एक गतिशील विज्ञान के रूप में भौगोलिक जगत में स्वयं को स्थापित किया है। इस इकाई का सम्बन्ध राजनीतिक भूगोल के अर्थ, परिभाषाओं एवं उसके विषय क्षेत्र से है। राजनीतिक भूगोल का अर्थ जहाँ आपको यह स्पष्ट करेगा कि किस प्रकार यह “विषय राजनीति से जुड़ा होने के बावजूद भी राजनीति विज्ञान से अलग है, वहीं इसकी परिभाषाओं के माध्यम से आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि अपने उद्भव काल (1897 ई.) से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के इस तृतीय दशक तक इस विषय की वैचारिक परिधि में कितना अन्तर आया है। इस इकाई में राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र का अध्ययन व्यापकता के साथ किया गया है ताकि आप यह समझ सकें कि कौन-कौन से विषय बिन्दु ऐसे हैं जो वर्तमान में राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की केन्द्रीय विषय वस्तु बन गए हैं।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

- (अ) भूगोल विषय की मूल भावना से आपको परिचित कराना।
- (ब) भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल से संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना।
- (स) एक गतिशील विज्ञान के रूप में राजनीतिक भूगोल के महत्व से अवगत होना।
- (द) विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र की जानकारी प्राप्त करना।
- (य) राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र के प्रमुख केन्द्रीय विषयों का विस्तार से परिचय प्राप्त करना।

1.2 भूगोल : एक परिचय

मूलतः भूगोल एक विज्ञान है। विज्ञान शब्द का अर्थ है 'विशेष ज्ञान'। अंग्रेजी शब्द 'Science' लैटिन भाषा के 'Scientia' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना'। वस्तुतः मानव द्वारा जानने का संगठित प्रयास तथा उसके द्वारा अर्जित ज्ञान 'विज्ञान' बन जाता है। किसी भी विज्ञान में हमें ज्ञान अर्जित करने के लिए कई चरणों से होकर गुजरना पड़ता है, यथा – क्रमबद्ध प्रेक्षण, अन्योन्यक्रिया, तर्क और सैद्धांतिक भविष्यवाणी। इस विभिन्न चरणों से गुजरने वाली प्रक्रिया को 'वैज्ञानिक विधि' कहा जाता है। किसी भी विज्ञान को वैध होने के लिए यह आवश्यक है कि वह अधिकांश सम्बद्ध मापनों की संतोष जनक व्याख्या कर सके।

'भूगोल' एक 'भौगोलिक विज्ञान के रूप में दो प्रमुख शाखाओं का अध्ययन करता है, प्रथम भौतिक भूगोल और द्वितीय मानव भूगोल।

भौतिक भूगोल –

प्रकृति के नियमों का अध्ययन करने वाली भूगोल की यह शाखा 'प्राकृतिक भूगोल' कही जाती है जो सामान्यतया कई विज्ञानों (खगोलीय एवं अंतरिक्ष विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, भू-आकृतिविज्ञान, मौसम विज्ञान, भूकम्प विज्ञान, पारिस्थितिकी, जल विज्ञान, गणित और सांख्यिकी) का अध्ययन एवं समन्वय है। स्वयं यह विज्ञान की शाखा न होकर इसमें विभिन्न प्राकृतिक विज्ञानों का समावेश है, और इसी के आधार पर भौतिक भूगोल की अनेक शाखाएँ विकसित हुईं जिनमें विश्व रचना विज्ञान, खगोलीय भूगोल, भू-आकृति विज्ञान, समुद्र विज्ञान, जलवायु विज्ञान, हिम भूगोल पर्यावरण भूगोल जैव भूगोल प्रमुख हैं।

मानव भूगोल –

जनसंख्या के उद्भव, वृद्धि, वितरण, उसकी संरचनात्मक विशिष्टताओं, मानव समाज और उसकी अर्थव्यवस्था के नियमों की जाँच करने वाला विषय 'मानव भूगोल' के नाम से विख्यात है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर वितरित – प्रसारित मानव समाज का सर्वांगीण अध्ययन ही आज के मानव भूगोल की प्रमुख विषय वस्तु है। अपनी इसी व्यापकता, प्रभाव और पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर मानव भूगोल में विभिन्न शाखाओं का उद्भव और विकास हुआ है, यथा– मानव विज्ञान, मानव जातिविज्ञान, आर्थिक भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल, परिवहन भूगोल, वाणिज्यिक भूगोल, बाजार भूगोल, अधिवास भूगोल, ग्रामीण भूगोल, नगरीय भूगोल, जनसंख्या भूगोल, सामाजिक भूगोल, प्रजातीय भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल, व्यावहारिक भूगोल, सैन्य भूगोल, प्रादेशिक भूगोल, भाषा भूगोल, चिकित्सा भूगोल, अनुप्रयुक्त भूगोल पर्यटन भूगोल, राजनीतिक भूगोल और निर्वाचन भूगोल स्पष्ट है कि मानव भूगोल एक सम्बद्ध विज्ञान है जिसकी प्रत्येक शाखा में मानव कल्याण एवं विश्वशान्ति भी अभिव्यक्ति है। इसमें किसी कला का समावेश नहीं है। इसमें ऐसा कोई नियम भी नहीं है। जिसके पालन हेतु मानव समुदाय बाध्य हो। लेकिन इस तथ्य की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि प्राकृतिक दशाओं का पालन करना मानव की प्रकृति है और इसका विश्लेषण एवं संश्लेषण मानव भूगोल का कार्य। ऐसी विशिष्ट प्रकृति वाले विषय 'मानव

भूगोल' की एक प्रमुख शाखा है 'राजनीतिक भूगोल' जिसका अनुशीलन हम करने जा रहे हैं।

1.3 राजनीतिक भूगोल

वर्तमान कालखण्ड में भूमंडल का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी राजनीतिक इकाई से सम्बद्ध है। यह सम्बद्धता चाहे विभिन्न राज्यों के रूप में प्रत्यक्ष हो अथवा अण्टार्कटिक या अंतरिक्ष की ओर बढ़ते कदमों के रूप में अप्रत्यक्ष हो। भू-मण्डल पर स्थित प्रत्येक 'राजनीतिक इकाई' का अपना स्वयं का भौतिक वातावरण है, जो न केवल उसे प्रभावित करता है, बल्कि दिशा-निर्देशों के साथ उसे नियंत्रित भी करता है। इस तरह से यदि देखा जाय तो मानव भूगोल की कोख से जन्मा 'राजनीतिक भूगोल' 'राजनीति' और 'भूगोल' दोनों से सम्बद्ध है। 'राजनीति' इसका विश्लेषण है और 'भूगोल' इसकी संज्ञा और मूल पहचान है (दीक्षित, 2000)। राजनीति वास्तव में एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जो मूलतः 'राजसत्ता' की प्राप्ति और 'राज्य-राष्ट्र' के संचालन के लिए नीतियों के निर्धारण और क्रियान्वयन पर केन्द्रित होती है। इसीलिए इसे 'राज+नीति' कहते हैं। आज यह मानव जीवन का अपरिहार्य सत्य है। अपरिहार्य सत्य इसलिए कि वर्तमान युग में राजसत्ता मानव जीवन के सभी पक्षों से जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक अनिवार्य रूप से जुड़ गई है। जैसे ही मानव जीवन के इन (भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि) सभी पक्षों का सम्बन्ध राजनीतिक संगठनों एवं उसकी नीतियों से जुड़ता है, राजनीति स्वयं भूगोल की परिधि में प्रविष्ट हो जाती है और आपसी सम्बन्धों को अनुशासनबद्ध कर उस राजनीतिक इकाई के सम्पूर्ण मानव समुदाय को समग्रता प्रदान कर उसे गतिशील बना देती है। पृथ्वी के सम्पूर्ण भौगोलिक इतिहास में समय के साथ जन्मा मानव प्रकृति के साथ रहकर कभी भी स्वयं को इस अनुशासनात्मक प्रक्रिया से अलग नहीं कर पाया, भले ही वह संगठनात्मक प्रक्रिया प्रारंभिक कालों में बिखरी रही हो। इसीलिए हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि 'राजनीतिक भूगोल' उतना ही पुराना विषय है जितना भूगोल और राजनीति विज्ञान (दीक्षित, 2000)

1.4 राजनीतिक भूगोल : एक गतिशील विज्ञान

राजनीतिक भूगोल एक गतिशील विज्ञान है। भौगोलिक – राजनीतिक विकास के यदि पिछले एक सौ बीस वर्षों का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि भूगोल और राजनीति विज्ञान दोनों ही विषयों में, उनकी वैज्ञानिक मान्यताओं में बहुत परिवर्तन हुए हैं। भूगोल में जहाँ पृथ्वी उसके अध्ययन का केन्द्रीय विषय बनी रही, लेकिन अध्ययन की अवधारणाओं एवं उपागमों में समय के साथ परिवर्तन होता गया। वहीं राजनीति विज्ञान में भी संस्थागत लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तीन मूल आधार (राष्ट्र की जनसंख्या, देश का क्षेत्रीय प्रसार अर्थात् उसका भौगोलिक क्षेत्र और राज्य अर्थात् राजसत्ता) तो वही रहे, लेकिन इन तीन मूल आधारों के अवधारणात्मक पक्षों के बारे में मान्यताएँ बदलती रहीं। राजनीति विज्ञान का यही त्रिपक्षीय सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनवरत राजनीतिक भूगोल का भी विशिष्ट केन्द्रीय विषय बना रहा, लेकिन समय के साथ इन तीन मूल तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों के संतुलन में आए बदलावों के परिणाम स्वरूप राजनीतिक भूगोल की अवधारणाओं में भी लगातार परिवर्तन होते रहे। वस्तुतः परिवर्तन की यह प्रक्रिया एक शाश्वत प्रक्रिया है। शाश्वत इसलिए कि राष्ट्र-राज्य की सीमाओं में अनेक राजनीतिक हलचलें समय-समय पर होती रहती हैं। उन राजनीतिक हलचलों के कारण भी पृथक-पृथक होते हैं, यथा-सामाजिक मूल्य बोध में परिवर्तन, राष्ट्रीय चेतना एवं नागरिक अधिकार बोध में परिवर्तन या फिर आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु माँगों में आने वाला परिवर्तन आदि। उस राष्ट्र-राज्य की सत्ता जब जनता की अपेक्षा बोध के प्रति क्रियाशील होती है, तो उसके उत्तरदायित्व वहन की प्रक्रिया में भी परिवर्तन आने लगते हैं। परिणाम स्वरूप समाधान हेतु नई नीतियों का निर्धारण होता है। उनके क्रियान्वयन के चलते क्षेत्रीय भूमध्यों में बदलाव होता है, तथा संतोष और असंतोष की नई लहरें उत्पन्न होती हैं। यह घटनाक्रम विभिन्न रूपों और स्वरूपों में सतत चलता रहता है। इसी को हम शाश्वत परिवर्तन की प्रक्रिया कहते हैं।

इस तरह से यदि देखा जाय तो राजनीतिक भूगोल गतिशील एवं परिवर्तनशील राजनीतिक सम्बन्धों का क्षेत्रीय निरूपण एवं विश्लेषण है, क्योंकि यह विभिन्न राष्ट्र-राज्यों के अन्तर्गत राजनीतिक क्रिया-कलापों के परिवर्तनशील सम्बन्धों का तथा एक राष्ट्र या राज्य से दूसरे राष्ट्र या राज्य के मध्य विकसित परिवर्तनशील सम्बन्धों का अध्ययन करता है। अतः स्पष्ट है कि राजनीतिक भूगोल एक गतिशील वैज्ञानिक विषय है, जिसकी मानव 'भूगोल' की एक शाखा होने के बावजूद भी एक स्वतंत्र सत्ता है।

1.5 राजनीतिक भूगोल : अर्थ

मानव भूगोल एक सामाजिक विज्ञान है तथा राजनीतिक भूगोल स्वतंत्र अस्तित्व वाली उसकी एक महत्वपूर्ण शाखा है जिसे एक गतिशील विज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त है। जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्ट द्वारा (1765 ई० से प्रारंभ होकर) प्रतिवर्ष 'भौतिक भूगोल' शीर्षक से दी जाने वाली व्याख्यान माला में भूगोल की प्रमुख शाखा के रूप में चर्चा में आए 'राजनीतिक भूगोल' का अर्थ सर्वप्रथम उनके शिष्य रैट्जेल (1897 ई०) द्वारा स्पष्ट किया गया— 'राजनीतिक भूगोल भौगोलिक अध्ययन की वह शाखा है जो राष्ट्र, राज्य और क्षेत्र के अन्तर्सम्बंधों का अध्ययन जैविक इकाइयों के रूप में उनके प्राकृतिक परिवेश के सन्दर्भ में करता है।

वस्तुतः पिछले एक सौ पचीस वर्षों में राजनीति और राजनीतिक भूगोल के इन तीन मूल आधारों— राष्ट्र, राज्य और क्षेत्र के अवधारणात्मक पक्षों के बारे में मान्यताएं समय के साथ बदलती रही हैं, इसीलिए एक विषय के रूप में राजनीतिक भूगोल की परिभाषाओं में भी समय के साथ बदलाव आता रहा है। राजनीतिक भूगोल के ऐतिहासिक विकास क्रम में समय के साथ बदलती हुई राजनीतिक भूगोल के अर्थ को स्पष्ट करने वाली कुछ क्रमिक परिभाषाएँ निम्नवत् दी जा रही हैं।

1.6 राजनीतिक भूगोल : परिभाषाएँ

इज़ाया बोमेन (1921) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक नियंत्रण के अन्तर्गत स्थित मानव वर्ग व वातावरण के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन है। इसकी सहायता से किसी भी राजनीतिक इकाई के सामाजिक जीवन और उसके भौगोलिक वातावरण के समायोजन को सरलता से समझा जा सकता है तथा राष्ट्रीय विकास की सीमाओं एवं संभावनाओं का पता लगाया जा सकता है।”

वॉन वाल्केनबर्ग (1939) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राष्ट्रों के मध्य अन्तर्क्रिया पर भौगोलिक प्रभाव की व्याख्या प्रस्तुत करता है।”

डारवेन्ट व्हिटलसी (1939) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल का केन्द्र बिन्दु राजनीतिक क्षेत्र है।.... किसी क्षेत्र का राजनीतिक महत्व उसकी जलवायु तथा सामान्य स्थल रूपों से भलीभाँति सम्बन्धित होता है.....। भूगोल की शाखा के रूप में राजनीतिक भूगोल राज्य केन्द्रित अध्ययन न होकर भू-केन्द्रित अध्ययन है।”

ग्रिफिथ टेलर (1944) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल किसी देश की असाधारण स्थिति और संसाधनों का अध्ययन विश्व राजनीति में उसकी प्रतिष्ठा सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से करता है।”

जी०ई० पियर्स (1948) के अनुसार – “पृथ्वी के पृष्ठाधार में मानव समाज का अध्ययन ही राजनीतिक भूगोल है।”

वाई० एम० गोबलेट (1955) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल मानव भूगोल का वह हिस्सा है जो उन राजनीतिक जटिलताओं का अध्ययन करता है जिनका एक क्षेत्रीय संघटक होता है। उन जटिलताओं से उसका सम्बन्ध वैसे ही होता है जैसे जीव विज्ञान का जीवों से।”

एच० डब्ल्यू० विगर्ट एवं सहयोगियों (1957) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल का अध्ययन उन आन्तरिक भौगोलिक तथ्यों भी व्याख्या करता है जो राज्य के व्यक्तित्व निर्माण में अपना योगदान देते हैं और राज्यों के मध्य वाह्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं।”

लुइस एम० एलेक्जेंडर (1957) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल उन विभिन्नताओं का अध्ययन है जो राजनीतिक प्रदेशों के मध्य अस्तित्व में रहती हैं।

एल० कार्लसन (1958) के अनुसार – “पृथ्वी एवं राज्य के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन होने के कारण राजनीतिक भूगोल राज्यों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की भौगोलिक व्याख्या प्रदान करता है।”

रिचार्ड हार्ट शोर्न (1960) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल पृथ्वीतल पर व्याप्त अन्य विशेषताओं में अन्तर के साथ भिन्न-भिन्न स्थानों में विभिन्न राजनीतिक उपक्रमों (तथ्यों) का अध्ययन करता है।”

ए०ई० मूडी (1963) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल में अध्ययन मुख्यतया वर्तमान दशाओं से सम्बन्धित होते हैं, लेकिन भूतकालिक घटनाओं को जो आज मौजूद (अवस्थित) हैं, उनके परिवर्तक के रूप में ध्यान में रखा जाता है।

एन० जे०जी० पाउण्ड्स (1963) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक दृष्टि से संगठित क्षेत्रों, उनके संसाधनों एवं विस्तार तथा उन कारणों से सम्बन्धित होता है जिनके कारण एक विशिष्ट भौगोलिक स्वरूप का विकास होता है।”

डब्ल्यू० ए० डगलस जेकसन (1964) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक उपक्रमों (तथ्यों) का उनके क्षेत्रीय सन्दर्भ में अध्ययन है।”

एस० बी०कोहेन (1964) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल को उस विषय के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो राजनीतिक तथ्यों (घटनाओं) को भौगोलिक रूप में प्रस्तुत करता है।... स्थान-स्थान पर राजनीतिक तथ्यों (घटनाओं) की भिन्नता राजनीतिक भूगोल की मूल भावना है।”

आर०कैस्पर्सन एवं जे० सिंघी (1969) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक तथ्यों (घटनाओं) का स्थानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।”

एस०बी० कोहेन एवं एल०डी० रोजेन्थाल (1971) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक प्रक्रियाओं के स्थानिक लक्षणों से सम्बन्धित है।”

जे० आर० वी० प्रेस्कॉट (1972) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोलविदों की रुचि राजनीतिक निर्णयों एवं क्रियाओं के भौगोलिक परिणामों, कोई निर्णय लेते समय विचार किए गए भौगोलिक कारकों तथा इन राजनीतिक क्रियाओं के नतीजों को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारकों में होती है।”

रिचार्ड मूर (1975) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राजनीतिक एवं भौगोलिक घटनाओं (तथ्यों) के मध्य स्थानिक अन्तर्क्रियाओं से सम्बन्धित है।

नौरिस एवं हेरिंग (1980) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल राज्य- व्यवस्था एवं पार्थिव ब्रह्माण्ड (Terrestrial space) के बीच के सम्बन्ध का वैज्ञानिक अध्ययन है।

पीटर टेलर (1985) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल विचारों की एक मनोरंजक व्यवस्था प्रस्तुत करता है तथा विश्व व्यवस्था के लिए एक अन्तर्दृष्टि सुझाता है, जो अन्यत्र इतने स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर नहीं होती।”

वी० कोलो सोव (1987) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल एक भौगोलिक विज्ञान है जो राजनीतिक शक्तियों के प्रादेशिक संतुलन और समाज के राजनीतिक जीवन के स्थानिक संगठन (सीमाओं, राजनीतिक-प्रादेशिक विभाजन आदि) का अध्ययन करता है। यह संतुलन तथा संगठन विविध सामाजिक आर्थिक कारकों, सर्वप्रथम उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों की भौगोलिक विशेषताओं से प्रतिबंधित होते हैं।”

जे० पेण्टर (1995) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल ज्ञान का एक समूह है जो विश्व के विषय में विशिष्ट जानकारीयों उपलब्ध कराता है।”

रमेश दत्त दीक्षित (2000) के अनुसार – “संस्थागत लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया के तीन आधार हैं- राष्ट्र की जनसंख्या, देश का क्षेत्रीय प्रसार अर्थात् उसका भौगोलिक क्षेत्र और राज्य (अर्थात् राज्य सत्ता)। वास्तव में (संस्थागत राजनीति की सम्पूर्ण प्रक्रिया इन तीन तत्वों के सतत् क्रियाशील अन्तर्सम्बन्धों पर निर्भर है। राजनीतिक भूगोल इन्हीं अन्तर्सम्बन्धों का निरूपण करता है।”

जॉन अग्न्यू (2002) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल “भूगोल द्वारा अवगत कराई गई राजनीति का अध्ययन है”।

एम० जोन्स, आर० जोन्स एवं एम० वुड्स (2004) के अनुसार – “राजनीतिक भूगोल इन अलग और स्वतंत्र अस्तित्व वाले तत्वों (शक्ति, राजनीति, नीति) एवं समयावधि, स्थान और राज्य क्षेत्र के द्वितीय त्रिभुज के बीच के अन्तर्सम्बन्धों “का अध्ययन है।”

फ्रेडरिक रैट्जेल (1897) से लेकर एम० जोन्स एवं उनके सहयोगियों (2004) द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक भूगोल की परिभाषाओं का यदि हम विश्लेषण करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि विश्व के बदलते राजनीतिक परिवेश, घटती भू-राजनीतिक घटनाओं एवं राष्ट्र-राज्य के परिवर्तित भू-आर्थिक परिदृश्य में जैसे-जैसे परिवर्तन होता गया है, वैसे ही वैसे राजनीतिक भूगोल की परिभाषाओं और उसके विषय क्षेत्र (कार्य क्षेत्र) में भी विस्तार हुआ है। आज राजनीतिक भूगोल में अध्ययन के लिए नई विधि जननिक क्रियात्मक पद्धतियाँ हैं, नये विधितंत्र हैं,

स्थानिक एवं परिवेश जन्य प्रक्रियाएँ हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि आज का राजनीतिक भूगोल राजनीति की क्षेत्र मूलकता का समग्र अध्ययन है।

1.7 राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र

‘राजनीतिक भूगोल’ भूगोल की बृहद् शाखा ‘मानव भूगोल’ का एक अंग है। अंग होने के कारण दोनों में कुछ समानताएँ हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों में आधारभूत भिन्नता है। यह भिन्नता दोनों की अध्ययन इकाइयों से सम्बद्ध है। मानव भूगोल की अध्ययन की इकाई ‘मानव समाज और उसका वातावरण’ है, जबकि राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की इकाई राज्य और प्राकृतिक वातावरण से उसका सम्बन्ध है। राज्य राजनीतिक भूगोल का उद्देश्य है। राज्य जिसमें मानव के राजनीतिक व्यवहार एवं तंत्र की स्थानिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, राजनीतिक भूगोल की केन्द्रीय विषयवस्तु है। अपने अस्तित्व के लिए राज्य निश्चय ही पृथ्वीतल का एक भाग अधिगृहीत करता है। इस अधिगृहीत भाग का एक प्राकृतिक वातावरण होता है। अधिगृहीत भाग के इस प्राकृतिक वातावरण से राज्य का सम्बन्ध दो प्रकार का होता है प्रथम आन्तरिक अर्थात् राज्य का आन्तरिक प्रशासन, प्राकृतिक साधन एवं जनसंख्या द्वितीय बाह्य अर्थात् एक राज्य का दूसरे राज्य से सम्बन्ध।

प्रत्येक राज्य के तीन प्रमुख तत्व होते हैं – (1.) क्षेत्र, (2.) मानव, एवं (3.) राजनीतिक व्यवस्था। यदि इन तत्वों में से एक भी तत्व निर्बल है, तो राज्य कमजोर हो जाता है। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि किसी भी राज्य के ये तीनों तत्व दूसरे राज्य से समानता नहीं रखते। प्रत्येक राज्य का भौगोलिक वातावरण भी मिला होता है। अतः राज्य तत्वों की पारस्परिक असमानता और उनके भौगोलिक वातावरण की भिन्नता राज्य के अस्तित्व का निधारण करती है। अस्तित्व निर्धारण भी यह प्रक्रिया बेहद गुम्फित है। इस तरह से यदि देखा जाय तो राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत है। विभिन्न विद्वानों ने उसके विषय क्षेत्र की व्यापकता को अपने-अपने ढंग से देखने का प्रयास किया है। इन विद्वानों में डी० व्हिटलरसी, रिचार्ड हर्टशोन, जी०टी०रेनर एवं नार्मन जे०जी० पाउण्ड्स के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

1.7.1 डारवेण्ट व्हिटलरसी की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र –

डी० व्हिटलरसी ने सन् 1939 ई० में प्रकाशित अपनी कालजयी रचना “**The Earths and the State: A Study of Political Geography**” में राजनीतिक भूगोल को राज्य केन्द्रित अध्ययन न मानकर बल्कि उसे भू-केन्द्रित अध्ययन का विषय माना है और उसी आधार पर उन्होंने एक राजनीतिक क्षेत्र के अध्ययन हेतु उसके मूल तत्वों का एक स्वरूप प्रस्तावित किया है –

1. एक संघटक, उसका बाह्य क्षेत्र, बाह्य क्षेत्र का प्राकृतिक वातावरण एवं उसकी सांस्कृतिक संरचना ;
2. प्रत्येक संघटक के बाह्य क्षेत्र का स्वयं के प्राकृतिक वातावरण से सम्बन्ध, परिधीय एवं सांस्कृतिक संरचना का अधीनकरण, ऐकिक या संघीय संरचना का संकलित संघटन ;
3. प्रत्येक संघटक के समस्याग्रस्त एवं संघर्षरत क्षेत्र ;
4. केन्द्रीय राजधानी (यदि संघटक क्षेत्र ऐकिक है), परिधीय एवं उपराजधानियाँ (यदि संघटक क्षेत्र संघीय रचना वाला है) ;
5. संघटक क्षेत्र की सीमाएं— प्राकृतिक सीमाएं, पूर्ववर्ती सीमाएं या परवर्ती सीमाएं ;
6. संघटक क्षेत्र से सम्बद्ध क्षेत्र एवं अधीनस्थ क्षेत्र—सीमा से लगे हुए या अलग, विच्छेद की प्रकृति, सांस्कृतिक संरचना, सम्बद्ध क्षेत्र की सम्बद्धता की अवस्था एवं अधीनस्थ क्षेत्र की अधीनता की अवस्था।

1.7.2 रिचार्ड हार्टशोन की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र –

अमेरिकी भूगोलवेत्ता परिषद के तत्वावधान में आयोजित सम्मेलन (1950) के अध्यक्ष के रूप में अपना शोध प्रपत्र “**The functional Approach in Political Geography**” प्रस्तुत करते हुए रिचार्ड हार्टशोने ने राजनीतिक भूगोल की विषय वस्तु को रेखांकित किया और स्पष्ट रूप से कहा कि ‘राज्य के विभिन्न आन्तरिक और बाह्य कार्य राजनीतिक भूगोल की विषय वस्तु हैं। राज्य के आन्तरिक और बाह्य कार्यों को उन्होंने निम्न रूप में प्रस्तुत किया

राज्य के आन्तरिक कार्यों का विश्लेषण –

राज्य के आन्तरिक कार्यों में दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं – (1) अपकेन्द्री शक्तियाँ, (2) अभिकेन्द्री शक्तियाँ

(1) अपकेन्द्री शक्तियाँ (**Centrifug Forces**) - ये शक्तियाँ तीन रूपों में कार्य करती हैं—

- (अ) दूरी (**Distance**) — अधिक दूरी होने पर प्रशासनिक नियंत्रण में कमी आती है, परिणाम स्वरूप राज्य का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है।
- (ब) जन शून्यता (**Manlackness**) — यह दूसरी अपकेन्द्रीशक्ति है जो किसी राज्य को निर्बल करती है। सामान्यतः जनशून्य प्रदेश या अत्यधिक कम जनसंख्या वाले प्रदेश किसी भी राज्य की प्रतिष्ठा के लिए घातक होते हैं।
- (स) जन संख्या विविधता (**Population Diversity**) — यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपकेन्द्री शक्ति है। यदि किसी राज्य की जनसंख्या में राजनीतिक विचारधारा, भाषा, धर्म, संस्कृति या जाति आदि की विविधता अधिक है, तो किसी भी राज्य की शांति व सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

(ii) अभिकेन्द्री शक्तियाँ (**Centripetal Forcess**) - ये वैचारिक शक्तियाँ हैं, जो तीन रूपों में कार्य करती हैं:—

- (अ) राज्य विचार (**State Idea**) — जब किसी राज्य में 'राज्य विचार' की भावना सम्पूर्ण राज्य में प्रभावशाली रहती है, तब वह राज्य भी शक्तिशाली रहता है। इस भावना में क्षीणता आने पर राज्य की शक्ति भी दुर्बल हो जाती है।
- (ब) राष्ट्र की परिकल्पना (**The Concept of Nation**) — किसी भी राज्य को शक्तिशाली बनाए रखने में 'राष्ट्रीयता भी भावना' सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करती है। जब किसी राज्य की जनता में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती है, तो वह राज्य राजनीतिक रूप से शक्तिशाली रहता है, भले ही वह राज्य बहुभाषी या अनेक धर्मों वाला हो।
- (स) क्रोड़ क्षेत्र (**Core Areas**) — क्रोड़ क्षेत्र किसी भी राज्य की एकता के घटक होते हैं। राज्य की राष्ट्रीय पहचान के लिए क्रोड़ क्षेत्र उत्तरदायी कारक के रूप में कार्य करता है।

राज्य के वाह्य कार्यों का विश्लेषण – राज्य के वाह्य कार्यों में मुख्यतः राज्य का अन्य राज्यों से सम्बन्ध को सम्मिलित किया गया है। इन सम्बन्धों के चार वर्ग हैं—

- (i) क्षेत्रीय सम्बन्ध (**Areal Relations**) — क्षेत्रीय सम्बन्ध से तात्पर्य है 'सीमावर्ती राज्यों के साथ किसी राज्य का सम्बन्ध।' हार्टशोन के शब्दों में — क्षेत्रीय सम्बन्धों के अन्तर्गत हम सर्वप्रथम राज्यों के क्षेत्रीय विस्तार से सम्बन्धित सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। क्षेत्र चाहे छोटा हो या बड़ा, राज्य की सीमा का निर्धारण आवश्यक है।' कारण कि सीमाएँ दो राज्यों के क्षेत्रों, जनसंख्या तथा व्यापारिक क्रियाकलापों को नियंत्रित करने वाली महत्वपूर्ण कारक है। अतः राजनीतिक भूगोल में सीमाओं का अध्ययन आवश्यक है।
- (ii) आर्थिक सम्बन्ध (**Economic Relations**) — आर्थिक सम्बन्ध से तात्पर्य है। राज्य का अन्य राज्यों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध। कोई भी राज्य सभी संसाधनों की दृष्टि से आत्म निर्भर नहीं होता, परिणामतः उसे दूसरे राज्यों से आर्थिक (व्यापारिक) सम्बन्ध बनाना आवश्यक होता है। राज्यों के मध्य आर्थिक सम्बन्धों की प्रगढ़ता उनके राजनीतिक सम्बन्धों की मधुरता पर निर्भर करती है।
- (iii) राजनीतिक सम्बन्ध (**Political Relations**) — हार्टशोन के अनुसार राजनीतिक सम्बन्धों से तात्पर्य है— 'किसी एक राज्य का अन्य राज्यों पर नियंत्रण' जैसे उपनिवेश या नियंत्रित प्रदेश। लेकिन वर्तमान में राजनीतिक सम्बन्धों में राज्यों द्वारा पारस्परिक हितों की रक्षा के लिए किए गए समझौतों व संगठनों को अधिक महत्व दिया जाता है, कारण कि वर्तमान में विश्व के अनेक क्षेत्र उपनिवेशवादी नियंत्रण से मुक्त होकर नए राज्यों के रूप में स्थापित हो गए हैं।
- (iv) सामरिक सम्बन्ध (**Strategic Relations**) — राज्य के वाह्य कार्यों में सामरिक सम्बन्धों का विशेष महत्व है,

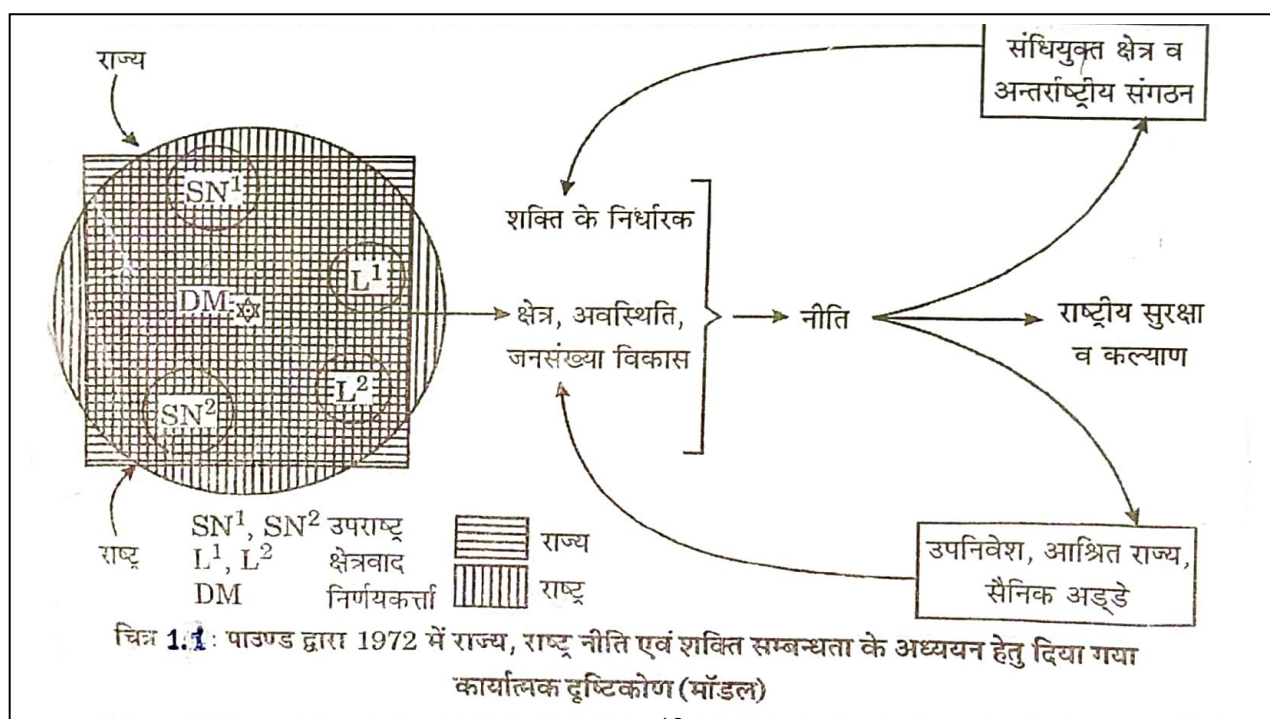
कारण कि इसी सम्बन्ध के आधार पर कोई राज्य अपनी सामरिक शक्ति का संतुलन बनाने में सक्षम होता है। राज्य के सामरिक महत्व के क्षेत्रों का अध्ययन भी राजनीतिक भूगोल की प्रमुख विषय वस्तु है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रिचार्ड हार्ट शोन की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल प्रधान रूप से राज्य केन्द्रित अध्ययन है तथा क्रियाशील राजनीतिक – क्षेत्रीय संगठनात्मक इकाई के रूप में राज्य के आन्तरिक एवं बाह्य कार्यों का विश्लेषणात्मक विवेचन इसके अध्ययन व अनुशीलन का मुख्य विषय है।

1.7.3 नार्मन जे० जी० पाउण्ड्स की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र – अमेरिकी विद्वान पाउण्ड्स ने 1963 में अपनी पुस्तक। **Political Geography** में राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित छः प्रमुख पक्षों को सम्मिलित किया है –

1. राज्य और राष्ट्र के बीच भौगोलिक समरूपता – भौगोलिक समरूपता से तात्पर्य तीन श्रेणियों के लोगों से है:–
(अ) देश की सीमाओं के अन्दर रहने वाले सभी लोग जो राज्य की मूल भावना में आस्था रखते हैं।
(ब) देश की सीमाओं के बाहर छूट गए कुछ वे लोग जो राष्ट्रीय समुदाय के हैं, और
(स) उन लोगों के निवास क्षेत्रों की जानकारी जो देश की मूल राष्ट्रीय भावना का विरोध करते हैं।
2. देश के संसाधनों का आंकलन – इसके अन्तर्गत भौतिक संसाधन (स्थिति आमाप एवं आकृति), मानव संसाधन (जनसंख्या भी संरचना और उसकी गुणवत्ता), आर्थिक संसाधन, उनके विकास का स्तर और संभावनाएं तथा औद्योगिक एवं तकनीकी विकास सम्मिलित हैं।
3. राष्ट्र भी जनसंख्या के भिन्न-भिन्न समूहों की पारस्परिक सम्बद्धता – दूसरे अन्तर्गत राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति देश के नागरिकों के आस्था भाव का राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से विश्लेषण समाहित है।
4. अन्य देश (राज्यों) के साथ देश विशेष का व्यापारिक सम्बन्ध
5. देश (राज्य) के नागरिकों का राजनीतिक दर्शन
6. देश (राज्य) के उपनिवेशीय सम्बन्ध – यहाँ उल्लेखनीय है कि विश्व के अधिकांश भू-भागों से उपनिवेशों की समाप्ति के साथ पाउण्ड्स के इस (छठवें) पक्ष की प्रासंगिकता समाप्त सी हो गई है।

पाउण्ड्स के राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र की यह योजना (जो चित्र संख्या 1.1 में वर्णित है) वास्तव में हार्टशोन के विचारों के अनुरूप है।



1.7.4 जी०टी० रेनर की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का विषय क्षेत्र —

जी०टी० रेनर ने राजनीतिक भूगोल की विषय सामग्री के सम्बन्ध में तीन विचार धाराओं या सम्प्रदायों (Schools) का उल्लेख किया है—

1. राजनीतिक भूदृश्य सम्प्रदाय
2. राजनीतिक पारिस्थितिक सम्प्रदाय
3. जैविक सम्प्रदाय

राजनीतिक भू-दृश्य सम्प्रदाय (Political Landscape School)

फ्रांस में विकसित इस वैचारिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र में क्रमशः क्षेत्र, उसके आन्तरिक स्वरूप, उसके अंतस्थ तथ्यों एवं उसकी वाह्य संरचना को सम्मिलित किया गया है। इसका विस्तृत विवरण निम्नवत् है —

(i) क्षेत्र (The Area)–

- (अ) स्थिति, विस्तार, आकार एवं आकृति
- (ब) केन्द्र स्थल एवं नाभि क्षेत्र
- (स) राजनीतिक उप विभाग — स्थानीय, उपप्रान्तीय एवं प्रान्तीय क्षेत्र

(ii) आन्तरिक स्वरूप (The Internal Pattern) —

- (अ) विविधता — जाति, भाषा, धर्म, राजनीतिक दल एवं उनके विचार तथा अन्य
- (ब) वितरण — मत का अधिकार, संसद में प्रतिनिधित्व तथा अन्य

(iii) अन्तस्थ तथ्य (Terminal Elements)–

- (अ) सीमाएँ एवं उनका स्वरूप — (1.) विविधताएं (2.) विवादास्पद क्षेत्र
- (ब) सीमान्त प्रदेश (1.) सुरक्षात्मक स्थिति (2.) सैन्यीकृत क्षेत्र (3.) असैन्यीकृत क्षेत्र (4.) अन्य अवरोधक

(iv) वाह्य संरचना (External Structure) —

- (अ) अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय
- (ब) औपनिवेशिक स्वरूप
- (स) अन्य समझौते

इस वैचारिक सम्प्रदाय में मूलतः 'सांस्कृतिक भूदृश्य में राजनीतिक क्रियाओं के अध्ययन को प्रमुखता दी गई है न कि मानव के राजनीतिक संगठन तथा राजनीतिक क्रिया कलापों को। इस दृष्टि से इसका विषय क्षेत्र पर्याप्त रूप से सीमित तथा संकुचित है।

राजनीतिक पारिस्थितिक सम्प्रदाय (Political Ecological School) —

अमेरिका में विकसित इस वैचारिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र में क्रमशः मानव समूह, मानव समूह की आर्थिक व्यवस्था, क्षेत्र नियंत्रण हेतु मानव समूह की शासकीय व्यवस्था, सीमा प्रबंधन तथा वाह्य सामंजस्य या समायोजन को सम्मिलित किया गया है। इसका विस्तृत विवरण अधोलिखित है:—

(i) मानव समूह की —

- (अ) उद्भव एवं विकास,
- (ब) नृजातीय समूह

(स) निवास क्षेत्र –

(1.) अवस्थिति (2.) विस्तार (3.) संसाधन, (4.) क्षेत्रीय विकास, विकास की दिशा, विकास की ऐतिहासिक दशाएं

(ii) मानव समूह की आर्थिक व्यवस्था–

(अ) संसाधन उपयोग

(1.) उद्योग धंधे व सम्बन्धित संसाधन (2.) आधिक्य कन्यूनता (3.) संरक्षण (4.) संसाधनों का व्यापार

(ब) सामाजिक दृष्टिकोण

(स) राष्ट्रीयता का स्वरूप –

(1.) अल्पसंख्यक (2.) अन्य विविधताएँ

(iii) क्षेत्र नियंत्रण हेतु मानव समूह की शासकीय व्यवस्था –

(अ) राष्ट्रीय शासकीय व्यवस्था (1) राजतंत्र (2) संघीय गणतंत्र

(ब) प्रान्तीय शासकीय व्यवस्था (1) जनजातीय राज्य (2) राजशाही राज्य (3) प्रांत, काउंटी, नगर

(स) स्थानीय शासकीय व्यवस्था (1) जनजातीय ग्राम (2) राजशाही (3) नगर राज्य (4) नगर पालिका

(iv) सीमा प्रबंधन –

(अ) वातावरणीय तत्वों से सम्बन्ध (ब) विवादास्पद बिन्दु

(V) बाह्य सामंजस्य या समायोजन –

(अ) अन्तराष्ट्रीय प्रशासनिक व्यवस्था (1) कामनवेल्थ राष्ट्र (2) संधियाँ एवं समझौते (3) लीग ऑफ नेशन्स

(ब) गैर राष्ट्रीय क्षेत्र – (1) उपनिवेश (2) बफर क्षेत्र (3) तटस्थ क्षेत्र (4) संरक्षित क्षेत्र

(स) प्रक्षेपित क्रियायें (1) शांति योजनाएँ (2) व्यापारिक योजनाएँ (3) युद्ध (सामरिक) योजनाएँ (4) अन्य योजनाएँ

इस वैचारिक सम्प्रदाय में मूलतः 'प्राकृतिक पर्यावरण के साथ मानव समुदायों, संसाधनों, राष्ट्र तथा उसके क्षेत्र एवं संगठन के मध्य क्रियात्मक सम्बन्धों के अध्ययन' पर विशेष बल दिया गया है।

जैविक सम्प्रदाय (**Organismic School**) –

सन् 1896 में जर्मन भूगोल विद् फ्रेडरिक रैटजेल द्वारा प्रतिपादित एवं अनुवर्ती भूगोल विद् जेलेन एवं हाउशोफर द्वारा परिपोषित इस वैचारिक सम्प्रदाय में 'राज्य को एक भू-राजनीतिक प्राणी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो आवश्यकता के अनुरूप अपने वास क्षेत्र में वृद्धि करता रहता है। इस सम्प्रदाय में रेनर ने राज्य की भौतिक विशेषताओं, राज्य की जनता, राज्य के विविध अंगों एवं राज्य एवं जनसंख्या के संयुक्त अंगों को सम्मिलित किया है जिनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है –

(i) राज्य (क्षेत्र) की भौतिक विशेषताएँ –

(अ) अवस्थिति

(ब) आकार

(स) आकृति

(द) धरातलीय विशेषताएँ (1) स्थानीय आकृतियों (2) जल का स्वरूप (3) सागरीय स्वरूप

(4) भूमिजल व्यवस्था

(य) प्राकृतिक संसाधन – (1.) स्वरूप (2.) मृदा, खनिज, जल (3) आधिक्य व कमी

(ii) मानव (राज्य की जनता) –

(अ) प्रजातीय एवं नृजातीय विशेषताएँ

(ब) जनसंख्या

(स) संस्कृति – (1.) मूल सांस्कृतिक तत्व (2.) क्षमता, शिक्षा, तकनीक

- (द) अर्थव्यवस्था – (1) व्यापार (2) परिवहन (3) उत्पादन (4) जीवनस्तर (5) आवश्यकता एवं माँग
 (य) शासकीय प्रणाली – (1.) राजनीतिक स्वरूप (2.) सामाजिक दृष्टिकोण (3) राजनीतिक व्यवहार

(iii) राज्य के अंग –

- (अ) राजधानी (ब) क्रोड़ क्षेत्र
 (स) अधिकार क्षेत्र – (1) धार्मिक स्थल (2) अन्य मिलन स्थल
 (द) सीमाएं (य) तटस्थ क्षेत्र (1) उत्पादन (2) जीवन स्तर
 (र) उपनिवेश एवं आश्रित क्षेत्र
 (ल) राज्य के विस्तारित अधिकार क्षेत्र (1) स्थलीय क्षेत्र (2) सागरीय क्षेत्र (3.) वायुमंडलीय क्षेत्र

(iv) राज्य एवं जनसंख्या के संयुक्त अंग –

- (अ) विकास एवं विस्तार का विवरण– (1.) ऐतिहासिक अवस्था (2) विस्तार एवं विस्तारीय संभावनाएं
 (ब) जनसंख्या की विशेषताएं – (2.) संख्या (२.) गुण एवं स्वास्थ्य
 (स) राष्ट्रीय योजनाएं एवं शान्ति योजनाएं
 (द) राष्ट्रीय सामरिक नीति (1) व्यापार कार्यक्रम (2) सैन्य योजनाएं (3.) कूट नीतिक कौशल

सारांशतः, रेनर की दृष्टि में राजनीतिक भूगोल का यह वैचारिक जैविक सम्प्रदाय किसी क्षेत्र के मानव समाज के आर्थिक जीवन, उसकी नृजातीय एवं सामाजिक संरचना, उसके सरकारी संवैधानिक नियमों और उस क्षेत्र के भौगोलिक इतिहास का जिससे वह दृढ़ता से सम्बद्ध है, भली भाँति परीक्षण करता है।

1.7.5 राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र के मुख्य केन्द्र बिन्दु –

संक्षेप में राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र के मुख्य केन्द्र बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. 'राज्य' राजनीतिक भूगोल' की केन्द्रीय विषय वस्तु है।
2. कोई भी राज्य' सिर्फ संस्था नहीं है। सभी 'राज्य तंत्र' एक क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक संघटक भी धारण करते हैं। अपने अस्तित्व के लिए राज्य निश्चय ही पृथ्वीतल का एक भाग अधिगृहीत करता है। अतः वे उपाय जिनसे राज्य पृथ्वी तल पर संगठित होते हैं, राजनीतिक भूगोल के अध्ययन से सम्बन्धित हैं।
3. स्थानिक वितरण (**Spatial Distribution**) तथा राजनीतिक घटनाक्रम (**Political Phenomena**) राजनीतिक भूगोल के दो अभिन्न अंग हैं।
4. स्थानिक वितरण वस्तुओं का एक समुच्चय होता है जिसमें प्रत्येक भी एक विशिष्ट अवस्थिति होती है। यह विशिष्ट अवस्थिति समुद्रतल से उच्चतम पर्वत शिखर तक होती है। अतः राजनीतिक सीमाओं के अन्तर्गत राज्य का भौगोलिक विस्तार एवं भौगोलिक वातावरण का अध्ययन राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की परिधि के अन्तर्गत आता है।
5. सभी प्रकार के राजनीतिक घटनाक्रम राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की परिधि में आते हैं। राजनीतिक घटनाक्रम में मनुष्य की वे सारी गतिविधियाँ व क्रियायें शामिल की जाती हैं जिनकी प्रकृति राजनीतिक होती है तथा राज्य की होती हैं। राजनीतिक सीमा के अन्तर्गत होती हैं।
6. राजनीतिक भूगोल विभिन्न प्रकार की राजनीतिक समस्याओं (समस्या चाहे छोटे पैमाने सामान्यतया की हो या बड़े पैमाने की हो), जिनका राज्य सामना करता है, का अध्ययन करता है।
7. स्थानिक आयाम (**Spatial Dimension**) जैसे निर्वाचन भूगोल, नगरीय राज्यतंत्र (**Polity**) का भूगोल, संसाधन प्रबंधन एवं विकास का राजनीतिक भूगोल, राजनीतिक निर्णय—निर्माण तथा स्थानिक अवबोध (**Perception**) आदि राजनीतिक भूगोलविदों के अध्ययन की विषय वस्तु के महत्वपूर्ण संघटक हैं।

8. राज्य का 'कार्यात्मक पहलू और उसकी व्यवहार्यता' राजनीतिक भूगोल के अध्ययन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है, कारण कि अपनी कार्यात्मक व्यवहारिता के आधार पर ही कोई राज्य अपनी केन्द्राभिसारी प्रवृत्तियों को सशक्त करता है और उन्हीं के बलबूते पर केन्द्रोपाहारी प्रवृत्तियों का प्रतिकार कर राज्य के लिए स्थिरता एवं स्थायित्व उत्पन्न करता है।
9. राजनीतिक भूगोल राज्य के राजनीतिक जीवन में अनिश्चितता के लिए उत्तरदायी स्थानिक कारकों की पहचान कर उनके समाधान का भी अध्ययन करता है।
10. राजनीतिक भूगोल ने राज्य की शरीर रचना विज्ञान पर भी ध्यान केन्द्रित किया है।
11. राजनीतिक भूगोल में सीमाओं की उत्पत्ति, उसकी भौतिक तथा उत्पत्तिमूलक विशेषताओं, सीमा की उत्पत्ति से सम्बद्ध क्षेत्रीय विवाद तथा प्रदेश के सांस्कृतिक भू-दृश्यों पर सीमा निर्धारण के स्थानिक- राजनीतिक प्रभावों के अध्ययन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।
12. सीमा एवं सीमान्त, विदेशी अंतःक्षेत्र (Enclave) एवं बहिः क्षेत्र (Exclave) गलियारे (Corridors) एवं पारगमन मार्ग (Transit Routes) भी राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की विषय वस्तु हैं।
13. राजनीतिक भूगोलविदों ने राज्यों के प्रादेशिक समुद्र एवं समुद्री सीमाओं के अध्ययन को भी राज्यों के राजनीतिक-भौगोलिक अध्ययन में आभ्यांतरिक भाग के रूप में शामिल किया है।
14. राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए एवं राज्य के कल्याण को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों की आकृति, अवस्थिति एवं आकार के अनुसार अपनी युद्धनीति व कूटनीति को निर्धारित करता है, इसलिए संसाधन प्रबंधन एवं योजना का अध्ययन भी राजनीतिक भूगोल की विषयवस्तु का प्रमुख अंग है।
15. यातायात एवं संचार के साधन राज्य के स्थानिक-राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी कारण राजनीतिक भूगोलविदों ने यातायात एवं संचार के साधनों के अध्ययन पर भी अपना ध्यान केन्द्रित किया है।
16. प्राकृतिक संसाधन भी राज्य की राजनीतिक शक्ति के आवश्यक अंग है। वे राज्य के आर्थिक विकास के सूचक हैं। इसलिए वे भी राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की आवश्यक विषय वस्तु हैं।
17. जनसंख्या और उसकी सामाजिक संसक्ति (Cohesion) राज्य के अस्तित्व के आधार का महत्वपूर्ण कारक है, कारण कि बगैर सामाजिक संसक्ति के कोई भी राज्य विद्यमान नहीं रह सकता। इसलिए सामाजिक संसक्ति राजनीतिक भूगोल के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।
18. साम्प्रदायिक क्षेत्रवाद, नृजातीय क्षेत्रीय क्षेत्रवाद, भाषायी क्षेत्रवाद, जाति आधारित क्षेत्रवाद तथा सामाजिक-आर्थिक विदरण (Cleavage) पर आधारित गुटवाद की उत्पत्ति भी राजनीतिक भूगोल की अध्ययन की परिधि में आते हैं, कारण कि इन्हीं की वजह से सुरक्षा व शक्ति के अभाव में राज्य के विघटन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।
19. कोई भी राज्य पूर्णरूपेण अपने आंतरिक संसाधनों पर ही निर्भर नहीं रहता। ये निश्चित ही कुछ संघों पर, कुछ संधियों के माध्यम से अन्य राज्यों पर भी आश्रित रहते हैं। अतः ये संघ, संधियाँ, समझौते, सैन्य अड्डे तथा संसाधनों का साझा उपयोग अथवा बंटवारा— ये सभी राज्य की राजनीतिक शक्ति के कारण हैं तथा राज्य के राजनीतिक भूगोल में महत्वपूर्ण तत्व बनने की प्रवृत्ति रखते हैं।
20. क्रोड-उपान्त-अर्थ उपात प्रक्रम राजनीतिक-भौगोलिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नया प्रवेशक है। क्रोड राज्य (विश्व के विकसित देश) शोषक हैं। उपान्त राज्य (विश्व के विकासशील देश) शोषित हैं। अर्थ उपात श्रेणी के राज्य न तो क्रोड हैं और न उपान्त हैं, बल्कि ये दोनों के सम्मिश्रण हैं। ये विकसित देशों द्वारा शोषित होते हैं और विकासशील देशों का शोषण करते हैं। इस प्रकार वैश्विक अर्थव्यवस्था के त्रिस्तरीय श्रेणीकरण की यह स्थानिक अभिव्यक्ति आधुनिक राजनीतिक – भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण तत्व है।
21. राज्य की शक्ति-संभाव्यता में व्यापार के महत्व का मूल्यांकन परक अध्ययन भी राजनीतिक भूगोल के

विषय क्षेत्र का एक प्रमुख अंग है। इस तरह विश्व के सारे व्यापार संघ, व्यापारिक गुट, साझा बाजार, आर्थिक संगठन राजनीतिक भूगोल की अध्ययन परिधि में आते हैं।

सारांशतः, 'सीमित परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक भूगोल प्रधान रूप से राज्य केन्द्रित अध्ययन है तथा क्रियाशील राजनीतिक क्षेत्रीय संगठनात्मक इकाई के रूप में राज्य का विश्लेषणात्मक विवेचन इसके अध्ययन व अनुशीलन का मुख्य विषय है। लेकिन बृहद् परिप्रेक्ष्य में परिवर्तनशील विश्व में बढ़ते राजनीतिक घटनाक्रमों के परिणाम स्वरूप तथा क्रोड, उपान्त एवं अर्थ उपान्त राज्यों एवं वहाँ की जनता तथा शासन के सैद्धान्तिक पक्षों की अपेक्षा व्यावहारिक पक्षों पर अधिक बल देने के कारण राजनीतिक भूगोल के अध्ययन व अनुशीलन का विषय अत्यंत व्यापक हो गया है। आज के राजनीतिक भूगोल में विश्व व्यवस्थाजन्य प्रभावों का सम्यक विश्लेषण आवश्यक है, कारण कि आज का राज्य मात्र एक स्थानिक – राजनीतिक तंत्र नहीं है, बल्कि वह ब्रह्माण्डीय राज्य व्यवस्था (Space & polity) का एक अंग बन गया है।

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने यह जाना कि भूगोल मूलतः एक वैज्ञानिक विषय है जिसकी दो मूलभूत शाखाएं हैं— भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल। राजनीतिक भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है जो आज इक्कीसवीं शताब्दी में इतनी विकसित हो चुकी है कि एक स्वतंत्र गतिशील विज्ञान के रूप में इसने भौगोलिक जगत में अपना स्थान बना लिया है। इस इकाई के माध्यम से आपने यह भी जाना कि मानव के बढ़ते ज्ञान के साथ समय-समय पर राजनीतिक भूगोल की परिभाषाओं में परिमार्जन भी होता रहा है तथा क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में घटने वाली हर राजनीतिक घटना इस विषय की विषय वस्तु बन जाती है। संक्षेप में यह कहना बेहद समीचीन होगा कि 'राज्य' राजनीतिक भूगोल का उद्देश्य है तथा राज्य जिसमें मानव के राजनीतिक व्यवहार एवं तंत्र की स्थानिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, राजनीतिक भूगोल की केन्द्रीय विषय वस्तु है।

1.9 शब्द सूची

संसाधन	Resource	अभिकेन्द्रीय	Centripetal
विधितंत्र	Methodology	जनशून्यता	Manlackness
पार्थिव ब्रह्माण्ड	Terrestrial Space	क्रोड क्षेत्र	Core Areas
कार्यात्मक	Functional	सामरिक	Strategie
उपागम	Approach	भूदृश्य	Landscape
अपकेन्द्रीय	Centrifugal	अन्तस्थ	Internal
अंतः क्षेत्र	Enclave	बहिः क्षेत्र	Exclave
गलियारा	Corridor	पारगमन मार्ग	Transit Route
विदरण	Cleavage	राज्य व्यवस्था	Polity

1.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. भूगोल की शाखा के रूप में 'राजनीतिक भूगोल' का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया द्वारा –

(अ) ग्रिफिथ टेलर (ब) इज़ाया बोमेन (स) इमैनुअल कान्ट (द) फ्रेडरिक रैट्जेल

2. राजनीतिक भूदृश्य सम्प्रदाय का विकास हुआ—

(अ) जर्मनी में (ब) फ्रांस में (स) स्वीडन में (द) सं० अमेरिका में.

3. **Geography Behind Politics** पुस्तक के लेखक हैं—

(अ) ग्रिफिथ टेलर (ब) कार्ल हाउशोफर (स) डारवेण्ट हिवटलसी (द) ए०ई०मूडी

4. राजनीतिक भूगोल का केन्द्र बिन्दु है —

(अ) सामाजिक क्षेत्र (ब) आर्थिक क्षेत्र (स) पारिस्थितिकीय क्षेत्र (द) राजनीतिक क्षेत्र

5. भू-राजनीतिक विचार धारा का आधार है—

(अ) सैनिक राज्य (ब) प्रजातांत्रिक राज्य (स) जैविकराज्य (द) ऐकिक राज्य

आदर्श उत्तर—

1. (स) ; (ब) ; 3. (द) ; (4) (द) ; 5.(स)

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Agnew, John, (2002). : 'Making Political Geography; Rawat Publications, Jaipur, 283pp.

Alexander, L.M., (1957) 'The World Political Pattern, Rand Menally, Chicago.

Bowman, I., (1921): 'The New World-Problems in Political Geography, New York.

Carlson, L., (1958): 'Geography and World Politics, Prentice Hall, Inc. Englewood Cliffs, N.J., 534 pp.

Cohen, S.B., (1964): 'Geography and Politics in a Divided World, Oxford University Press, New York,

Cohen, S.B., and Rosenthal, L.D. (1971): 'A Geographical Model for Political Systems Analysis; Geographical Review, Vol. 61.

दीक्षित, रमेशदत्त, (2000), राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि, प्रेंसि हाल ऑफ इंडिया प्रा० लि० नई दिल्ली, 276 पृष्ठ

Goblet, Y.M., (1955). Political Geography and the World Map George Philip and Sons Ltd., London.

Hartshorne, R., (1960) Political Geography in the Modern World 'Journal of Conflict Resolution' Vol- 4, pp- 52-67.

Jackson, W.A.D., (1964) Politics and Geographic Relationship- (Ed-) Englewood Cliffs, N. J. Prentice Hall

Jones. M. et al. (2004): An Introduction to Political Geography: Space, Place and Politics, Routledge, London, 202 pp. Kasperson, R.E. and Minghi, Jive. (1969): The Structure of Political Geography, Aldine Pub.Co., Chicago.

कोलोसोव व० य (1987): राजनीतिक भूगोल, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा० लि० नई दिल्ली, 208 पृ।

Moodie, A- E., (1963). "Geography Behind Politics, Hutchinson University Library, London.

Mair, R., (1975): Modern Political Geography, Macmillan, London, 262 pp.

Norish, R.E. and Haring, L- L., (1980): Political Geography, Charles E Merrill Publishing Co., London.

Painter, J., (1995): Politics, Geography and Political Geography: A Critical Perspective, London, Arnold.

Pearey, G.F. et.al. (1948): World Political Geography, Thomas V.C. Company, New York-

Pounds, N.J.G., (1963): Political Geigraphy, Mc Graw-Hill Book Co., New York.

Prescott, J.R.V., (1972): "Political Geography, Methuen, London.

Ratzel, F., (1897): "Politische Geographie, R. oldenbourgh, Munich Taylor, G.,(1944): 'Canada's Role in Geopolitics?

Taylor, P.J., (1985): Political Geography, World Economy, Nation- State and Locality, Longman, London.

Valkenburg, S.V. et al. (1939): Elements of Political Geography' Weigert, H.W. etal. (1957): Principles of Political Geography, Appleton Century Crafts Inc-, New York.

Whittlesey, D., (1939): The Earth and the state-A study of Political Geography, Henry Holt – Co., New York.

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. राजनीतिक भूगोल एवं मानव भूगोल समानता रखते हुए भी भिन्न हैं; स्पष्ट कीजिए।
2. राजनीतिक भूगोल की परिभाषा एवं अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. राजनीतिक भूगोल के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
4. राजनीतिक भूगोल के विकास में किन-किन विद्वानों का योगदान है?
5. राजनीतिक भूगोल की केन्द्रीय विषय वस्तु स्पष्ट कीजिए।

इकाई—02 राज्य—राष्ट्र संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 प्रस्तावना
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 विषय प्रवेश
- 2.3 राज्य : 'राज्य' शब्द का आशय
- 2.4 राज्य : परिभाषाएं
- 2.5 राज्य की संकल्पना का ऐतिहासिक विकास
- 2.6 वर्तमान राज्यों के विकास के मुख्य कारक
- 2.7 राज्य के प्रमुख घटक (तत्व)
- 2.8 रैंट्जेल के अनुसार राज्यों की प्रकृति और उनका विकास
 - 2.8.1 राज्यों के क्षेत्रीय विकास के लिए रैंट्जेल द्वारा प्रतिपादित नियम
- 2.9 राज्य की आधुनिक संकल्पना की मूलभूत विशेषताएं
- 2.10 राज्य शक्ति
 - 2.10.1 राज्य शक्ति को प्रभावित करने वाले कारक
- 2.11 राष्ट्र : 'राष्ट्र' शब्द का आशय
 - 2.11.1 राष्ट्र: परिभाषाएं
 - 2.11.2 राष्ट्र के वस्तुनिष्ठ तत्व
- 2.12 राष्ट्र का उद्भव एवं विकास
 - 2.12.1 ड्यूश के अनुसार राष्ट्रों के विकास में एकरूपता के तथ्य
 - 2.12.2 राष्ट्र के विकास की संकल्पना
- 2.13 राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की प्रकारिकी
 - 2.13.1 राष्ट्रवाद
 - 2.13.2 राष्ट्रीयता
 - 2.13.3 राष्ट्रवाद की प्रकारिकी
- 2.14 राज्य और राष्ट्र में अन्तर
- 2.15 राष्ट्र – राज्य
- 2.16 सारांश
- 2.17 शब्दसूची
- 2.18 स्व मूल्यांकन प्रश्न और आदर्श उत्तर
- 2.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 2.20 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

2.0 प्रस्तावना

‘राजनीतिक भूगोल’ विषय की यह द्वितीय इकाई है। इस इकाई में आप ‘राज्य’ शब्द का आशय, उसकी परिभाषाएँ, राज्य संकल्पना का ऐतिहासिक विकास, वर्तमान राज्यों के विकास के मुख्य कारक, राज्य के प्रमुख घटक, रैट्जेल के अनुसार राज्यों की प्रकृति, और उनका विकास तथा विकास के लिए प्रतिपादित नियमों का यहाँ क्रमवार अध्ययन करेंगे। राज्यशक्ति क्या है? उसकी आधुनिक संकल्पना की मूलभूत विशेषताएँ क्या हैं? साथ ही राज्य शक्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं? इन सबका अध्ययन भी आपके लिए आवश्यक है, कारण कि राज्य की मूल आत्मा को समझने के लिए उन सबका ज्ञान होना भी राजनीतिक भूगोल के अध्ययता के लिए जरूरी माना जाता है। इसीलिए इन सभी का अध्ययन भी इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है। राज्य से उत्तर राष्ट्र की भी जानकारी आपके लिए आवश्यक है। इसी कारण इस इकाई में राष्ट्र, शब्द का आशय, उसकी परिभाषाएँ, वस्तुनिष्ठ तत्व, उद्भव एवं विज्ञान राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, की प्राकारिकी एवं राष्ट्र-राज्य अन्तर का भी अध्ययन एवं विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

- (अ) ‘राज्य’ शब्द की मूल भावना से आपको परिचित कराना।
- (ब) राज्य संकल्पना के विकास की क्रमिक अवस्थाओं से अवगत कराना।
- (स) राज्य के प्रमुख घटकों (तत्वों) एवं राज्यशक्ति तथा उसे प्रभावित करने वाले कारकों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करना।
- (द) ‘राष्ट्र’ शब्द की मूल भावना को समझना तथा राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीयता का विस्तार से परिचय प्राप्त करना।
- (य) राष्ट्र-राज्य में अन्तर को स्पष्ट करना।

2.2 विषय प्रवेश

विश्व का प्रत्येक क्षेत्र आज किसी न किसी राजनीतिक इकाई से सम्बद्ध है। यह राजनीतिक इकाई ही ‘राज्य’ नाम से अभिहित की जाती है। क्षेत्रीयता (Territorially) स्थानिकता और सार्वभौमिकता (Sovereignty) इस राजनीतिक इकाई के महत्वपूर्ण घटक हैं। क्षेत्रीयता का स्थानिक सम्बन्ध क्षेत्र की मूल संकल्पना पर आधारित है। क्षेत्रीय एकीकरण को सुदृढ़ करने के लिए आस्थातंत्र (Iconography) का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। यह आस्था तंत्र राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्र की मिट्टी से समीप से जुड़ा होता है। राज्य की स्थानिकता मात्र भौतिक (अर्थात् केवल उसकी स्थिति, विस्तार, जलवायु, धरातल, मिट्टी, वनस्पति आदि से सम्बद्ध) नहीं है, वह सामाजिक तौर पर प्रतीकात्मक भी है और सांस्कृतिक तौर पर विशिष्ट भी है। सार्वभौमिकता उस राजनीतिक इकाई के आधिपत्य और संप्रभुता की सूचक है, अर्थात् वह राजनीतिक इकाई कितनी उत्तम एवं प्रभावी है, कितनी स्वतंत्र है, कितनी प्रभुसत्ता सम्पन्न है। ये तीनों ही घटक मिलकर किसी भी राज्य की वर्तमान स्थिति को परिभाषित करते हैं। ‘राज्य’ जिसे दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम कहा जाता है, मात्र एक संस्था नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए वह निश्चय ही पृथ्वी-तल का एक भाग अधिगृहीत करता है। उसमें मानव के राजनीतिक व्यवहार एवं तंत्र की स्थानिक अभिव्यक्ति भी देखने को मिलती है। अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण ‘राज्य’ आज राजनीतिक विमर्श का प्रमुख अंग बन गया है। राजनीतिक भूगोल में इसे केन्द्रीय विषय वस्तु के रूप में मान्यता प्राप्त है।

2.3 राज्य: राज्य’ शब्द का आशय

‘राज्य’ आधुनिक जीवन का सर्वव्यापी सत्य है; अपेक्षाकृत एक नई सामाजिक कृति है; या यूँ कहिए कि यह आधुनिक युग के इतिहास की उपज है। हिन्दी भाषा का ‘राज्य’ शब्द अंग्रेजी भाषा के ‘State’ शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। क्वेंटिन स्किकनर (Foundations of Modern Political Thought. Vol. 2, Cambridge, 1978) के अनुसार अंग्रेजी के ‘State’ शब्द का मूल लैटिन भाषा का शब्द ‘Status’ है, जिसका अर्थ प्रास्थिति अथवा ‘दशा’ है। स्किकनर के अनुसार 16वीं सदी के अन्त तक इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग होता था, जब व्यवस्था और

सत्ता दोनों ही स्वयं राजा या सम्राट में निहित थीं। 'राज्य' (State) की आधुनिक अवधारणा का अंकुरण मूलतः इसी पुराने शाब्दिक अर्थ से हुआ जिसका मूल स्थान सर्वप्रथम फ्रांस और उसके बाद इंग्लैण्ड बना।

2.4 राज्य : परिभाषाएं

'राज्य' की कोई सर्वमान्य और सर्वस्वीकार्य परिभाषा नहीं है। चूंकि राज्यों का स्वरूप और इनके कार्य समय और स्थान के सन्दर्भ में सतत परिवर्तनशील रहे हैं, इसलिए इनकी परिभाषाएं भी काल और स्थान सापेक्ष हैं; उनमें पर्याप्त भिन्नता है। 'राज्य' की काल एवं स्थान सापेक्ष कुछ परिभाषाएं अग्र लिखित हैं।

एच० जे० लास्की (1935) के अनुसार – 'राज्य प्रभुसत्ता सम्पन्न और सर्वथा स्वायत्त इकाई है और शासन राज्य के मूल उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए उसी द्वारा निर्मित संस्था मात्र है।... राज्य और उसके शासन तंत्र एक-दूसरे से इतने समीप से जुड़े हैं कि दोनों के बीच का यह अन्तर व्यवहार के स्तर पर मात्र सैद्धान्तिक प्रतीत होता है।'

एल० कार्नसन (1958) के अनुसार – 'राज्य का क्षेत्र ग्लोब (भू-मण्डल) का वह भाग है, जिसकी सीमा में उसकी सर्वोच्च सत्ता होती है तथा जहाँ के निवासियों एवं संसाधनों पर उसका प्रशासन होता है।'

एन०जे०जी० पाउण्ड्स (1963) के अनुसार – 'राज्य एक ऐसा क्षेत्र है, जिसका राजनीतिक संगठन स्थानीय निवासियों द्वारा प्रभावशाली ढंग से किया गया हो, जिसकी अपनी सरकार होती है और उस क्षेत्र पर उसका प्रभावशाली नियंत्रण रहता है।

ए०ई० मूडी (1963) के अनुसार – राज्य मात्र क्षेत्र अथवा क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा निर्मित नहीं है, बल्कि यह एक जटिल संगठन है जिसमें क्षेत्र, मनुष्य एवं उनका आपसी सम्बन्ध सम्मिलित रूप से एक इकाई बनाते हैं; जिसका एक व्यक्तित्व एवं चरित्र होता है जो अन्य सभी राज्यों से भिन्नता का द्योतक होता है।

ए०गैम्बल (1981) के अनुसार – 'राज्य नैतिक मूल्यों पर आधारित समुदाय है।... वह एक संप्रभु इकाई है, परन्तु इसकी सत्ता भी वैधता देश के नागरिकों की संस्तुति पर निर्भर है।

पी० जे० टेलर (1985) के अनुसार – विश्व अर्थव्यवस्था में 'राज्य' एक सम्पूर्ण अन्तर-राज्य प्रणाली (whole inter-state system) है। इसलिए हमें राज्यों के सिद्धान्त की आवश्यकता है, जिसमें राज्यों की विविधता सिद्धान्त का मौलिक गुण हो।

समय तथा स्थान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि राज्य मात्र भूमि का एक क्षेत्र नहीं है, बल्कि वह प्रभुसत्ता सम्पन्न सर्वथा स्वायत्त एक राजनीतिक इकाई है; जिसकी सीमा में उसकी सर्वोच्च सत्ता होती है; जिसकी अपनी सरकार अपना एक व्यक्तित्व एवं चरित्र होता है; तथा उस क्षेत्र पर, वहाँ के निवासियों पर एवं वहाँ के संसाधनों पर उसका प्रभावशाली नियंत्रण रहता है। परन्तु इसकी सत्ता की वैधता वहाँ के नागरिकों की संस्तुति पर निर्भर होती है, और उन नागरिकों की अपनी स्वतंत्र राजनीतिक पहचान तथा निष्ठा रहती है। जो उस राज्य की गौरव-गरिमा से जुड़ी होती है।

2.5 राज्य की संकल्पना का ऐतिहासिक विकास

यह सर्वमान्य तथ्य है कि 'राज्य' ऐतिहासिक विकास का परिणाम है, लेकिन 'इसका ऐतिहासिक विकास कब और कहाँ से हुआ? इस विषय पर राजनीतिक विश्लेषकों, इतिहासकारों एवं राजनीतिक भूगोलविदों में पर्याप्त मत वैभिन्न्य है। सभी ने इस विषय को अपने-अपने तरीके से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से 'राज्य की संकल्पना के ऐतिहासिक विकास' को कुछ कालखण्डों में बाँटा जा सकता है –

(1.) आदिकाल (2) यूरोपीय अन्धयुग (3) पूर्व आधुनिक काल (4) आधुनिक काल

1. आदिकाल –

राज्य की अवधारणा के विकास के इस काल में समाज का स्वरूप आज से बहुत भिन्न था। आदिकाल के समाज की नीव सामाजिक संगठन, आत्म नियंत्रण और आत्मानुशासन पर टिकी थी दीक्षित (2019, 9098) की दृष्टि में सर्वप्रथम यह आत्मानुशासन परिवार स्तरीय अनुशासन में प्रकट हुआ। बाद में अनेक पड़ोसी परिवारों के समूहों (ग्रामों) का विकास हुआ। इन्हें बाहरी संकट से उबारने और उनके आपसी झगड़ों के समाधान के लिए सामूहिक अनुशासन की – आवश्यकता हुई। इस प्रकार पंचायती व्यवस्था का विकास हुआ। अनेक ग्रामों में क्षेत्रीय

एकता और पस्पर निर्भरता की भावना के विकास के साथ राज्य का प्रारंभिक स्वरूप उभरा होगा।' राज्य के इस प्रारंभिक स्वरूप की विशेषता यह थी कि उसका सम्बन्ध अनुशासन व्यवस्था से तो था लेकिन शासन (Government) से नहीं।

विकास के इस काल में राज्य के स्वरूप का उद्भव सर्वप्रथम मिस्र (Egypt) में हुआ। इसमें मिस्र की तीन महाद्वीपों (अफ्रीका, यूरोप एवं एशिया) की विशिष्ट स्थिति ने उसे बल प्रदान किया। मिस्र का शासन जो प्रारंभ में धर्मतन्त्रात्मक (Theocratic) था, अपनी विशिष्ट स्थिति, प्राकृतिक सुरक्षा एवं आर्थिक तथा मानव संसाधन भी प्रचुरता के कारण अपने प्रभाव को साइप्रस, तुर्की एवं सीरिया से दक्षिण नुबिया एवं कुश तक फैलाने में सफल रहा। विकास के इसी काल में ग्रीस (यूनान) और इटली के नगर राज्यों (City states) का उद्भव हुआ। ये नगर राज्य आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से छोटे थे, लेकिन प्रशासनिक दृष्टि से संगठित होने के कारण शक्तिशाली थे। इन नगर राज्यों में एथेंस, स्पार्टा, थीब्स, फ्लोरेंस, ट्राय, पीसा आदि उल्लेखनीय हैं। इन नगर राज्यों के विकास में वहाँ की सागरीय जलवायु, समुद्री परिवहन की सुविधा एवं समतल मैदानी क्षेत्रों की उपलब्धता का विशेष योगदान था। समय के साथ इन नगर राज्यों का पतन भी हुआ। इनके पतन के मुख्य कारण दो थे— (i) विस्तारित नगर राज्य क्षेत्र पर नियंत्रण का अभाव, एवं (ii) क्षेत्रीयता का उदय प्रारंभ में नगर राज्य के रूप में विकसित रोम का रोमन साम्राज्य के रूप में अभ्युदय इस काल की विशेष घटना थी। इस साम्राज्य का अभ्युदय ईसा से 350 वर्ष पूर्व हुआ जब रोम के नगर राज्यों ने इटली के नगर राज्यों को जीतना प्रारंभ किया। प्रारंभ में इसका विस्तार भूमध्य सागर के तटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित था, लेकिन दूसरी शताब्दी तक यह साम्राज्य विस्तृत होकर ब्रिटेन से लेकर यूनान तक, तुर्की से लेकर मेसोपोटामिया तक तथा उत्तरी अफ्रीका में मिस्र से लेकर मोरक्को तक फैल गया।

मूडी (1963, Geography Behind Politics, P.23) की दृष्टि में रोमन साम्राज्य प्रथम विशाल राजनीतिक राज्य था जिसमें राज्य के तीनों तत्व – मनुष्य, क्षेत्र और संगठन, समाहित थे। रोमन साम्राज्य की सफलता के मुख्यतः चार कारण थे— (i) साम्राज्य की सुगठित संरचना, (ii) उत्तम कानून व्यवस्था (iii) नियोजित – संचार व्यवस्था, एवं (iv) विकसित सड़क परिवहन व्यवस्था जो साम्राज्य के केन्द्र रोम को सम्पूर्ण साम्राज्य से जोड़ती थी। साम्राज्य के अधिक विस्तार से उत्पन्न प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण और विपरीत सैन्य परिस्थितियों की वजह से रोमन साम्राज्य चतुर्थ शताब्दी का अन्त आते-आते बिखरने लगा और अन्त में पूर्व और पश्चिमी दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। पूर्वी भाग का केन्द्र बिजान्टाइन (या कुस्तुन तुनिया या इस्तांबुल) बना जबकि पश्चिमी भाग का केन्द्र रोम बना। पाँचवीं सदी में पश्चिमी भाग का पूर्णतः अन्त हो गया जबकि पूर्वी भाग का प्रभाव तब-तक बना रहा जब तक इसे ओटोमन साम्राज्य में समाहित नहीं कर लिया गया।

प्राचीन भारतीय काल में भी मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा आदि नगर आधारित राज्यों के विकास का इतिहास मिलता है। रामायण काल, महाभारत काल के भी नगर राज्य इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। वैदिक काल भी विदर्भ, कलिंग, आंध्र आदि नगर राज्यों के नाम आते हैं। पुराण काल में भी गान्धार, कंकय, उत्कल, द्रविण जैसे राज्यों की स्थापना हो चुकी थी। आर्यावर्त के सोलह महाजनपद भी राज्यों के ही स्वरूप थे जिनका उल्लेख बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में मिलता है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में बृहद मौर्य साम्राज्य विकसित हुआ जिसका यूनान से भी सम्बन्ध-सम्पर्क रहा था।

2. यूरोपीय अंधयुग –

राज्य की अवधारणा के विकास के इस कालखण्ड को यूरोपीय अंध युग के नाम से जाना जाता है। चौथी शताब्दी में रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात यूरोप में धीरे-धीरे सामन्तवाद का अभ्युदय हुआ। राजनीतिक क्रिया-कलापों में चर्च का हस्तक्षेप बढ़ गया। चर्च का संगठन साम्राज्य प्रणाली पर आधारित था जिसके तहत पोप रोम में रहते थे तथा प्रमुख नगरों के विषय को क्षेत्रीय उत्तरदायित्व का विशिष्ट अधिकार दिया गया। इस समय एकमात्र समुदाय 'ईसा मसीह का समुदाय' चर्च था। सम्राट चर्च के समर्थन से सांसारिक विषयों पर दैवीय अधिकार के रूप में शासन करने लगे। इस सन्दर्भ में लुई चौदहवें की यह उक्ति महत्वपूर्ण है कि—'मैं ही राज्य हूँ। इस प्रकार यदि देखा जाय तो राज्य का प्रारंभिक विचार धर्म एवं दैवीय सत्ता के साथ जुड़ा था। इस कालखण्ड में दैवीय अधिकारों की आड़ में जनता पर अत्याचार बढ़े और उनमें विद्रोही भावनाओं का जन्म हुआ जिसकी वजह से धीरे-धीरे सामन्ती राजाओं का पतन प्रारंभ हुआ। उनके पतन की यह कहानी 13वीं सदी के अन्त तक चलती रही। पूर्व कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज करने के पूर्व अमेरिका में भी 300 से 900 ई. के

बीच राज्यों की उपस्थिति थी, एवं माया सभ्यता का प्रसार था। ऐसे संकेत मिलते हैं। इनमें मध्य अमेरिका का अजटेक राज्य (यूरोपीय आक्रमणकारियों द्वारा ध्वंसित जिसके भग्नावशेषों पर स्थापित आज का मेक्सिको) एवं केन्द्रीय एण्डीज का इंका साम्राज्य (जिसने भग्नावशेषों पर स्थापित आज के कोलंबिया, चिली, इक्वेडोर, बोलिविया एवं अर्जेन्टीना राज्य) उल्लेखनीय हैं।

3. पूर्व आधुनिक काल –

राज्य की संकल्पना के ऐतिहासिक विकास के इस कालखण्ड की अवधि 14वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक मानी जा सकती है। यह वह काल खण्ड था जब यूरोप विश्व की घटनाओं का केन्द्रीय रंग मंच रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी के अर्थ-उत्तरार्द्ध में सामंतवादी काल के प्रभुत्वशाली वर्गों में भी विखण्डन होने से क्षेत्रीय एकता को बढ़ावा मिलने लगा तथा भाषा, धर्म, प्रजाति पर आधारित मानव समुदायों में वैचारिक एकता स्थापित होती गई जो बाद में क्षेत्रीय अस्तित्व ग्रहण करके एवं 'राष्ट्र-राज्य' के रूप में सामने आई। परिणामतः 1500 ई. तक यूरोप में इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड जैसे कुछ राज्यों का अभ्युदय हुआ। डी० ब्लिज एच०जे (1972; **Systematic Political Geography**, New York, Wiley) के अनुसार 'यह वास्तव में आधुनिक यूरोप का समुदाय था। यूरोप में बदलाव आया और यह बदलाव कई रूपों में सामने आया। उदीयमान राज्य सधन व्यावसायिक प्रतियोगिता में व्यक्त होकर। वाणिज्यवाद को बढ़ावा मिला। आधुनिक यूरोप में जन्मे उन राज्यों द्वारा लैटिन, अमेरिका, एशिया और अफ्रीका महादीप के देशों में व्यापार के बहाने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया गया। पूर्व आधुनिक काल के इन उपनिवेशों में सामान्य जन के दैनिक जीवन की कठिनाइयों से सम्राट का कुछ लेना-देना नहीं था। सम्राट की चिंता यहीं तक सीमित थी कि सामाजिक असंतोष राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति का रूप वस्तुतः धाराण न कर ले। वस्तुतः इस कालखण्ड में जन्मे राज्यों की शक्ति एवं कानून का केन्द्रीयकरण व्यक्ति में रहा। वास्तव में यह शीर्ष (High) राजनीति प्रधान युग था।

आधुनिक काल –

फ्रांसीसी क्रान्ति के उपरान्त उन्नीसवीं शताब्दी में राज्य के विचार में पुनः परिवर्तन आया तथा स्वतंत्रता, आजादी, प्रजातंत्र तथा मातृत्व राज्य के आधारभूत संघटक बन गया। राज्य के विचार में आये इन परिवर्तनों के कारण नृजातीय मानदण्डों के आधार पर क्षेत्रों का पुनः संरेखण एवं सीमांकन, होने से यूरोप में नये राज्यों के अभ्युदय की प्रक्रिया-तेज होने लगी और राज्य सत्ता में व्यापक जन समुदाय का मार्ग प्रशस्त होने लगा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशों के स्वतंत्र होने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई परिणामतः एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका महादीप में नए राज्यों का समुदाय हुआ। उदित हुए इन राज्यों की नई व्यवस्था में सत्ता सम्राट और सामन्तों से हस्तांतरित होकर जन प्रतिनिधियों के हाथ में आ गई तथा बीसवीं सदी में जन की पहचान 'सामान्य जनता से जुड़ गई। आधुनिक राज्य की विशेषता व्यक्त करते हुए ए०ई० मूडी (1963, 'Geography Behind Politics, p.24) ने लिखा है कि 'आधुनिक युग का राजनीतिक इतिहास सामान्य रूप में स्वराज्य प्रदान कराने के सफल संघर्ष की कहानी है... जो असीम शक्ति सम्पन्न किसी व्यक्ति विशेष से या कुछ विशेषाधिकारी लोगों से अथवा मताधिकार के विस्तार के साथ संसदीय सरकार के विकास से प्राप्त होती है। नये राज्यों के विकास की यह प्रक्रिया आज इक्कीसवीं सदी में भी निरंतर जारी है तथा इसके तब तक चलते रहने की संभावना है जब-तक कि अन्तिम उपनिवेश प्रभुता सम्पन्न राज्य में परिणत नहीं हो जाता या नृजातीय आधार पर राज्यों का विघटन नहीं हो जाता।

यहाँ पर, उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग के राज्यों की राजनीति प्रधान तथा पाद (Low) स्तरीय है पाद स्तरीय राजनीति का सम्बन्ध उन आर्थिक और सामाजिक नीतियों से होता है जो ऋणमूल स्तरीय जनसंख्या (सामान्य नागरिक) के दिन प्रतिदिन के जीवन से सीधे रूप में जुड़ी होती है। इनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सामान्य प्रशासन, आन्तरिक शक्ति आदि सम्मिलित हैं।

2.6 वर्तमान राज्यों के विकास के मुख्य कारक

वर्तमान राज्यों के विकास की प्रक्रिया में अनेक कारकों का योगदान रहा है, इनमें कुछ प्रमुख कारक निम्न लिखित हैं—

(1) औद्योगिक क्रान्ति (2) प्रतिनिधि सरकार (3) विश्व युद्ध (4) राज्य क्रान्तियाँ (5) जनसंख्या का परिवर्तन (6) राज्य की निर्भरता (7) सामुदायिक एवं क्षेत्रीयता की भावना (8) अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का विकास (9) राष्ट्रीय भावना (10) सापेक्षिक स्वायत्तता (11) अर्थव्यवस्था का वैश्विक प्रसार (12) तकनीकी विकास आदि'

2.7 राज्य के प्रमुख घटक (तत्व)

राज्य के प्रमुख घटकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) राजनीतिक घटक

(2) भौगोलिक घटक

1. राजनीतिक घटक – इस वर्ग के अन्तर्गत पाँच प्रभुत्व घटक आते हैं :-

(अ) सीमाओं अथवा सीमान्त क्षेत्रों द्वारा निर्धारित क्षेत्र

(ब) सम्प्रभुता (**Sovereignty**) अर्थात् सीमाओं के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र एवं निवासियों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण

(स) राष्ट्रीय भावना अर्थात् नागरिकों में उत्पन्न एक मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक गुण जो राज्य को एकता के सूत्र में बाँधता है।

(द) राज्यशक्ति जिसके द्वारा राज्य को कार्य करने की सामर्थ्य प्रदान की जाती है

(य) राजधानी जो राज्य के प्रशासनिक स्वरूप का केन्द्रीय क्षेत्र होता है और राज्य प्रशासन में जिसका स्थान सर्वोपरि होता है।

2. भौगोलिक घटक – इस वर्ग के अन्तर्गत चार प्रमुख घटक आते हैं—

(अ) जनसंख्या जो राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत निवास करती है तथा जिसके बिना राज्यों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

(ब) राज्य का आर्थिक स्वरूप अर्थात् कृषि का स्वरूप एवं प्रसार तथा उत्पादन, औद्योगिक उत्पादन, वाणिज्य—व्यापार, सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधन एवं राज्य के सभी प्रकार के आय—स्रोत आदि।

(स) परिवहन एवं संचार व्यवस्था जो राजधानी को राज्य के सभी भागों से जोड़कर राज्यों को प्रभावशाली बनाती है और राज्य की सुरक्षा को सुदृढ़ करती है।

(द) भाषा, संस्कृति एवं रीति—रिवाज तथा धर्म।

2.8 रैट्जेल के अनुसार राज्यों की प्रकृति और उनका विकास

रैट्जेल के अनुसार राज्यों की प्रकृति और उनका विकास तीन आधारभूत तत्वों पर निर्भर करता है।

(i) राज्य की क्षेत्रीय प्रकृति – राज्य स्वभाव से ही क्षेत्रीय इकाइयाँ हैं। वे स्थानिक हैं, इसलिए क्षेत्रीयता उनका अनिवार्य गुण है। इनकी क्षेत्रीयता के दो पहलू हैं— प्रथम भौतिक स्थिति, तथा द्वितीय अन्य राज्यों के सन्दर्भ में इनकी सापेक्षिक स्थिति अथवा परिस्थिति।

(ii) जनसंख्या और उसका भौगोलिक क्षेत्रफल – इनके पारस्परिक अनिवार्य संयोग तथा सतत् घनिष्ठ होते हुए आत्मिक सम्बन्ध से ही राज्य की पहचान बनती है।

(iii) प्रभाव—प्रसार के लिए राज्य की सतत् प्रगतिशील विकास यात्रा – राज्य सदैव प्रकृति निर्दिष्ट भूखण्ड में प्रादुर्भूत होते हैं। इस भूखण्ड में स्थित किसी प्रारंभिक क्रोड से विकास यात्रा प्रारंभ कर अपने प्रभाव क्षेत्र का प्रसार करते हुए प्रत्येक राज्य अपने भूखण्ड विशेष की प्राकृतिक सीमाओं को प्राप्त करने की दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहता है।

2.8.1 राज्यों के क्षेत्रीय विकास के लिए रैट्जेल द्वारा प्रतिपादित नियम –

रैट्जेल ने 1896 ई० में अपने प्रसिद्ध लेख **“The Laws of spatial Growth of states: A Contribution to Scientific Political Geography (Petermanns Mitteilungen, Vol- 42 PP- 97-107)** में राज्यों के क्षेत्रीय विकास

के लिए सात आधारभूत नियम प्रतिपादित किए हैं—

1. राज्य का आकार उसकी संस्कृति के साथ बढ़ता है। अर्थात् सांस्कृतिक विस्तार या प्रसार राज्य के आकार की वृद्धि के लिए अग्रदूत का कार्य करती है।
2. राज्य का विकास वहाँ के निवासियों (जनसंख्या) की अन्य विकासात्मक अभिव्यक्तियों का अनुसरण करता है जो निश्चित रूप से राज्य के विकास के पहले ही हो चुका होता है।
3. राज्य का विकास छोटे-छोटे राज्यों का मुख्य भू-भाग में अधिग्रहण के द्वारा आगे बढ़ता है। इस प्रक्रिया में भूमि एवं जनसंख्या का सम्बन्ध घनिष्ठ होता जाता है। अपने उस नियम में रैट्जेल ने राज्य के जैविक विकास को छोटी राजनीतिक इकाइयों के आत्मसाती करण द्वारा संभव बतलाया है।
4. सीमा राज्य का 'परिधीय अंग' होती है। यह विकास के साथ-साथ सुरक्षा की वाहक होती है तथा राज्य रूपी जीव के सभी प्रकार के परिवर्तनों/रूपान्तरणों से सम्बद्ध रहती है। रैट्जेल ने सीमा के लिए जैविक शब्दावली 'परिधीय अंग' (त्वचा) का प्रयोग किया है। त्वचा जीव की रक्षा करती है तथा उसके विकास के साथ बढ़ती जाती है।
5. अपने विकास क्रम में राज्य राजनीतिक रूप से व्यवहार्य स्थितियों से आवृत होने का प्रयास करता है। अर्थात् राज्य अपना लाभ उन प्राकृतिक क्षेत्रों को शामिल करने में देखता है। जिनकी अवस्थिति उत्तम हो और जो उसकी गतिविधियों के पक्ष में हों, यथा— वह सागरीय तट को प्राप्त करने का प्रयास करता है, नदी के सहारे गतिशील होता है उपजाऊ मैदानों एवं नदी घाटियों में फैल जाता है.. आदि।
6. राज्य के स्थानिक विकास की पहली उत्प्रेरणा (प्रोत्साहन) कहीं बाहर से आती है। अर्थात् राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के लिए पहली उत्प्रेरणा किसी आदिम या पिछड़े राज्य में उसकी सीमा से कहीं बाहर एक उच्चतर सभ्यता से आती है।
7. क्षेत्रीय अधिग्रहण एवं विलयन की सामान्य प्रवृत्ति एक राज्य से दूसरे राज्य में संचारित होती (फैलती) जाती है एवं उसकी तीव्रता में निरंतर वृद्धि होती है। रैट्जेल के अनुसार इसका मुख्य कारण राजनीतिक प्रतिस्पर्धा है जिसके वशीभूत होकर कमजोर राज्य अधिक शक्तिशाली राज्यों के बराबर शक्तिशाली होने का प्रयास करते हैं।

2.9 राज्य की आधुनिक संकल्पना की मूलभूत विशेषताएँ

राज्य की आधुनिक संकल्पना की मूलभूत विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

1. राज्य एक केन्द्रीय नियंत्रण वाली राजसत्ता है। राज्य के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र पर इस राजसत्ता का अधिकार एवं नियंत्रण समान रूप से होता है।
2. केन्द्रीय नियंत्रण वाली इस सत्ता की राजनीति प्रधानतया वाद स्तरीय है।
3. राज्य का शासन उसके द्वारा स्थापित संस्थाओं के माध्यम से एवं उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा निरपेक्ष रूप से संचालित होता है।
4. आधुनिक राज्य भी विशिष्ट पहचान उसकी प्रशासनिक क्रियाशीलता है।
5. राज्य की विधि व्यवस्था राज्य के प्रत्येक नागरिक पर समान रूप से लागू होती है, वह चाहे अमीर हो या गरीब, उच्च पदस्थ हो न्यून पदधारी, श्रमिक हो या व्यापारी, कृषक हो या शिक्षक, विधिवेत्ता हो या सामान्य जन।
6. सत्ता का अधिकार और राज्य का प्रबंधन शासक और शासित की आपसी सहमति से बनाए गए नियमों एवं उपनियमों के अनुसार कार्यान्वित होता है।
7. राज्य नैतिक मूल्यों पर आधारित समुदाय है इसलिए राज्य द्वारा पारित नियमों एवं विधियों का पालन करना प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है।
8. राज्य एक संप्रभु इकाई है, परन्तु इसकी सत्ता की वैधता देश के नागरिकों की संस्तुति पर निर्भर है।

9. प्रभुसत्ता (Sovereignty) या सम्प्रभुता राज्य की आधुनिक संकल्पना की सर्वप्रभुत्व विशेषता भी है और राज्य का प्रमुख घटक (तत्व) भी है। सम्प्रभुता होने से एक राज्य अन्य राज्यों, समूहों व समुदायों से पृथक् राज्य बना रहता है और नहीं होने पर राज्य अस्तित्वहीन हो जाता है। ए०ई० मूडी (1963) की दृष्टि के "आधुनिक राज्य प्रभुत्व सम्पन्न राज्य होता है। अपने सीमा क्षेत्र में एवं जनता पर उसका परम प्रभुत्व होता है और अन्य सत्ता के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। इस तरह राजनीतिक दृष्टि से वह पूर्ण स्वतंत्र होता है।"
10. ए. गैम्बल (1981) की दृष्टि में "एक नागरिक संगठन के रूप में आधुनिक राज्य संयत नागरिक समाज (**Civil Society**) का मात्र निष्क्रिय संरक्षक न होकर उसका सक्रिय निर्माता और सुधारक भी है। राज्य को नई दिशा देने तथा उसे रुढ़ गत संस्कारों से मुक्त कर उसे आधुनिक (विवेक सम्मत मूल्यों की ओर उन्मुख करने की दिशा में वह सतत् प्रयत्नशील रहता है।"

2.10 राज्य शक्ति

राज्य चाहे छोटा हो या बड़ा, वर्तमान युग में शक्ति (Power) उसकी सर्वोच्चता का प्रमुख मानदण्ड है, कारण कि शक्ति के माध्यम से ही राज्य का अस्तित्व संभव होता है। शक्ति का तात्पर्य राज्य की मात्र सामरिक शक्ति से नहीं है, बल्कि राज्य प्रशासन को सम्पन्न करने हेतु भी शक्ति की आवश्यकता होती है। शक्ति से तात्पर्य राष्ट्र के मूर्त-अमूर्त संसाधनों को काम में लेने की क्षमता से भी है। आंतरिक सुरक्षा हेतु एवं अराजकता को रोकने के लिए तथा विदेशी आक्रमणों से रक्षा करने हेतु भी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में 'राज्य शक्ति' (**State Power**) को तीन भागों में विभाजित किया गया है:-

1. सैनिक शक्ति (**Military Power**) –

राज्य की सीमाओं की सुरक्षा एवं राज्य के विस्तार हेतु किसी भी राज्य के पास मजबूत सैनिक शक्ति का होना अति आवश्यक है। आधुनिक युग में देशों के राजनीतिक सम्बन्ध इतने जटिल हैं कि यदा-कदा संघर्षों का होना स्वाभाविक सा हो गया है। वर्ष 2023-24 में होने वाले दो संघर्ष रूस-यूक्रेन संघर्ष; इजरायल – हमास (फिलिस्तीन) संघर्ष ऐसे ही जटिल राजनीतिक सम्बन्धों के प्रतिफल हैं। आन्तरिक सुरक्षा के लिए एवं राज्य की अराजक शक्तियों से निपटने के लिए भी मजबूत सैन्य शक्ति आवश्यक है।

2. आर्थिक शक्ति (**Economic Power**) –

आर्थिक शक्ति एक ऐसी शक्ति होती है जिसके माध्यम से कोई भी राज्य अन्य राज्यों को सहायता प्राप्त अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर सकता है। वर्तमान राजनीतिक परिवेश में आर्थिक शक्ति की भूमिका किसी भी राज्य के लिए महत्वपूर्ण है।

3. क्षेत्रीय शक्ति (**Territorial Power**) –

क्षेत्रीय शक्ति किसी भी राज्य की महत्वपूर्ण शक्ति है, कारण कि इसी शक्ति के माध्यम से राज्य किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र पर प्रभाव डालकर उस पर अपना नियंत्रण स्थापित करता है। रेट्जेल – जेलेन – हॉशोफर स्कूल के भूराजनीतिज्ञों ने राज्य को जैविकीय प्रक्रिया के अन्तर्गत पारिभाषित करने के क्रम में क्षेत्रीय शक्ति के महत्व को रेखांकित किया है। एन० जे० स्पाइक मैन (**1942; American's Stra & Tegy in World Politics; Newyork, P-17**) का कहना है कि क्षेत्र राज्य का अभिन्न भाग है; स्वयं संरक्षण (**Self-preservation**) से तात्पर्य क्षेत्र को नियंत्रण में रखना एवं सुरक्षा करना है, विदेश नीति का प्रमुख आधार राज्यों की क्षेत्रीय अखंडता बनाये रखना तथा राजनीतिक स्वतंत्रता है।"

2.10.1 राज्य-शक्ति को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:-

- (1) प्रकृति प्रदत्त सुविधाएं, (2) समान भाषा एवं संस्कृति, (3) समान धर्म एवं तत्सम्बन्धी आस्था, (4) जनमत एवं उसकी कार्यक्षमता, (5) आर्थिक सम्पन्नता, (6) मानव संसाधन, (7) आन्तरिक स्थिरता, (8) कुशल कूटनीति (9) रणनीतिक कौशल, (10) तकनीकी विकास, आदि।

2.11 राष्ट्र : 'राष्ट्र' शब्द का आशय

राष्ट्र" शब्द अंग्रेजी भाषा के "नेशन" (**Nation**) शब्द का हिन्दी भाषा में रुपान्तरण है। अंग्रेजी भाषा का

‘**Nation**’ शब्द लैटिन भाषा के “नासी” (“**nasci**”) मूल से बना है। इस मूल शब्द का अर्थ है ‘जन्म लेना’। इसमें ‘समान कुल परम्परा’ तथा ‘उत्पत्ति का स्थान अन्तर्निहित है। अतः शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर ‘राष्ट्र’ एक ऐतिहासिक इकाई है और इसका (राष्ट्र का) वर्णन ऐतिहासिक हस्ती (**entily**) के रूप में अभीष्ट है। ए० डी० स्मिथ (1991) के अनुसार सामान्य व्यवहार की भाषा में ‘नेशन’ (**Nation**) शब्द का प्रयोग 19वीं शताब्दी में ही प्रचलन में आया था।

2.11.1. राष्ट्र : परिभाषाएं –

‘राष्ट्र’ मूल रूप से एक सामाजिक इकाई है जिसका उदय ऐतिहासिक – सांस्कृतिक भागीदारी और जातीय (स्थानिक) तथा भाषाई समरसता की आधारभूत मान्यता पर निर्भर है। राष्ट्र के निर्धारक तत्व के रूप में कुछ विद्वान भाषा को अधिक महत्व देते हैं, तो कुछ विद्वान जातियों (**racess**) एवं संस्कृतियों को। यही कारण है कि राष्ट्र की व्याख्या के लिए प्रस्तुत परिभाषाओं में भिन्नता दिखाई देती है। कुछ प्रभुत्व परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:–

जे० एस० मिल (1861) के अनुसार – राष्ट्र व्यक्तियों की समष्टि है जो आपस में परस्पर सहानुभूति से जुड़े रहते हैं। उनमें सहकारिता का भाव होता है तथा उनमें एक ही राज्य व्यवस्था का अंग बने रहने की प्रबल इच्छा जाग्रत रहती है।

ए० ई० मूडी (1963) के अनुसार – एक राष्ट्र के लोग मिल-जुलकर साथ रहने की भावना से एकता में बंधे रहते हैं, चाहे भले ही वे राजनीतिक सीमाओं द्वारा विलग किए जाते हों।

जी०ए० लान्ची एवं डब्ल्यू० सी० मेक विलियम्स (1966) के अनुसार – एक राष्ट्र एक समान संस्कृति, समान चिन्ह, विश्व के सम्बन्ध में एवं विशेष दृष्टिकोण से भिन्नता रखता है। एक राष्ट्र को दूसरे सांस्कृतिक समूह से पृथक करने वाला तत्व एक क्षेत्र के प्रति भावना या लगाव होता है।

ग्राहम स्मिथ (1986) के अनुसार – ‘राष्ट्र’ लोगों का एक समुदाय है, जिसके सदस्यगण क्षेत्र के ऐतिहासिक लगाव के मूल में निहित एकात्मकता के संवेग, एक सामान्य संस्कृति तथा दूसरे राष्ट्रों से भिन्न होने की चेतना द्वारा एक दूसरे से बंधे रहते हैं।

बी० एण्डर्सन ने अपनी पुस्तक “**Imagined Communities** (1983) में राष्ट्र को एक प्रकृति से ही विविधता मूलक काल्पनिक समुदाय माना है जिसके प्रत्येक सदस्य का जीवन भौगोलिक दृष्टि से परिसीमित है। क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से वह राष्ट्र सीमा बद्ध इकाई है; वह सर्वथा स्वायत्त और स्वतंत्र है; और जिसका समुदाय बोध क्षेत्र परक सम्बन्धों पर आधारित है।

राष्ट्र की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्र एक ऐसा जन समुदाय है जो सामाजिक एकता वाली संस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित करके सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बनता है। राष्ट्र के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए भारत का उदाहरण सर्वोत्तम है। भारत में अनेक भाषा भाषी, धर्म, जाति एवं आचार-विचार के लोग हैं। राजनीतिक – भौगोलिक दृष्टि से धर्म एवं भाषा की विविधता राष्ट्रीय एकता में बांध रहे हैं, लेकिन इस विविधता के बावजूद भारतीय संस्कृति में एकत्व एवं भावना की प्रधानता है, जो सदियों से विविध भाषा भाषी जातीय समूहों को एकता के सूत्र में संगठित किए हुए है। यही सांस्कृतिक एकता भारत के प्रवासी भारतीयों को भी मूल भारतीय बनाए हुए है।

2.11.2 राष्ट्र के वस्तुनिष्ठ तत्व –

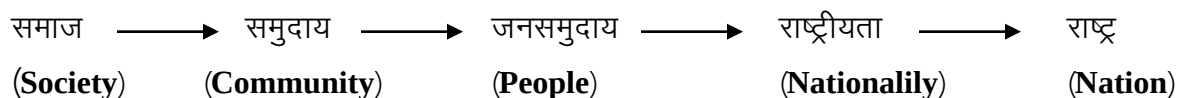
प्रमुख रूप से राष्ट्र के सात (निम्नलिखित) वस्तुनिष्ठ तत्व हैं:–

- (1) रक्त सम्बन्ध अर्थात् सजातता (**Kinship**) एवं नस्लीय एकता।
- (2) धार्मिक एकता जो मानव व उसके समुदाय के कर्म को प्रभावित करती है।
- (3) भाषायी एकता जो समुदाय में लगाव एवं एकत्व की भावना पैदा करती है।
- (4) भौगोलिक (क्षेत्र, जलवायु एवं मिट्टी आदि) एक रूपता एवं संलग्नता;
- (5) सामान्य एवं आर्थिक सम्बन्ध।

- (6) सामान्य इतिहास, समान परम्पराएं एवं रीति-रिवाज ; एवं
- (7) सांस्कृतिक एकत्व एवं भावना (लगाव) की प्रधानता आदि।

2.12 राष्ट्र का उद्भव एवं विकास

कार्ल ड्यूश (C. Deutsch, 1953) ने राष्ट्र के उद्भव के ऐतिहासिक घटनाक्रम को रेखांकित रूप से निम्नवत् प्रदर्शित किया है –



अर्थात् ड्यूश के अनुसार राष्ट्र के उद्भव एवं निर्माण की प्रक्रिया पाँच चरणों में सम्पन्न होती है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव सर्वप्रथम एक समूह का निर्माण करता है। 'समाज' व्यक्तियों का एक समूह है जो मिल-जुलकर कार्य करना सीखता है। उसके रहने, सोचने एवं कार्य करने का ढंग समान होता है। राष्ट्र के विकास का द्वितीय चरण समुदाय है। समुदाय व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्रभावी रूप से एक दूसरे के पास पहुँचाने में समर्थ रहता है। जन समुदाय संचार प्रणाली को पूर्ण करने वाले व्यक्तियों का समूह है। जन समुदाय में जब समर्पण का भाव पैदा होता है तो राष्ट्रीयता का जन्म होता है। समर्पण का भाव ही राष्ट्रीय एकता का आधार तथा राष्ट्रीयता का सार है। ड्यूश के अनुसार 'राष्ट्र एक वृद्ध आर्थिक अन्तर्निर्भरता का भौगोलिक क्षेत्र है, जहाँ वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए विविध (Multiple) बाजार है। इस प्रकार से राष्ट्र जनसमुदाय के रुपान्तरण अथवा परिवर्तन का परिणाम है अथवा सामाजिक लाभबन्दी की प्रक्रियाओं में अनेक नृजातीय तत्वों का परिणाम है।

2.12.1 ड्यूश (C. Deutsch) के अनुसार राष्ट्रों के विकास में एकरूपता के तथ्य –

ड्यूश (1953) ने राष्ट्रों के विकास में एकरूपता के आठ तथ्य बताए हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

1. जीवन-निर्वाह नृषि से विनियम अर्थव्यवस्था में स्थानान्तरण;
2. ग्रामीण जनसंख्या का क्रोड़ क्षेत्रों के सघन अधिवासों तथा अधिक सघन विनियम में सामाजिक लाभबन्दी;
3. नगरों का विकास तथा उसके अन्तर्गत नगर एवं देश के मध्य सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि;
4. परिवहन, भ्रमण तथा प्रवास के प्रवाह के लिए महत्वपूर्ण नदियों, नगरों एवं व्यापार मार्गों को जोड़ने वाले आधारभूत संचार जालों (grids) का विकास;
5. पूँजी तथा निपुणता अथवा प्रशिक्षण का संकेन्द्रण तथा संचयन में विभेद।
6. व्यक्तिक एवं समूह दोनों में "हित (Interest) (संकल्पना का असमान एवं अनिश्चित उदय;
7. नृजातीय बोध (awareness) का उद्बोधन (awakening) तथा जाने-अनजाने में राष्ट्रीय प्रतीकों का स्वीकरण अथवा स्वीकृति;
8. नृजातीय बोध का राजनीतिक बाध्यता के साथ विलय तथा कुछ मामलों में एक बार अपने लोगों को विशेषाधिकृत वर्ग में रुपान्तरण का प्रयास।

2.2.2 राष्ट्र के विकास की संकल्पना

राजनीतिक भूगोल में राष्ट्र के विकास की संकल्पना के मूलतः दो पहलू हैं:-

प्रथम – आदि कालिक संकल्पना –

व्युत्पत्ति के आधार पर राष्ट्र का विकास एक प्रकार की निरंतर कालिय प्रक्रिया है और आदिकालिक प्रवृत्ति का परिणाम है। इसीलिए राष्ट्र के विकास की इस संकल्पना को आदिकालिक (Premordial) संकल्पना कहते हैं, क्योंकि इसके अनुसार राष्ट्र का उदय आदिकालिक सांस्कृतिक भागीदारी और जातीय (एथनिक) तथा भाषाई समरसता की आधारभूत मान्यता पर निर्भर है। इस संकल्पना के अनुसार राष्ट्र मूलतया एक सांस्कृतिक इकाई है।

जिसके अनुसार राष्ट्र सर्वथा वर्तमान युग की देन है। ई०जे०हक्सवाम (1987, *The Age of Compire: 1857–1914*, Loudou, Guildp–142–143) के मतानुसार– राष्ट्र भी संकल्पना का सूत्रपात अठारहवीं सदी के 'राष्ट्रीयता के सिद्धान्त' का परिणाम था। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को अपना स्वतंत्र राज्य प्राप्त करने का अधिकार है। इस संकल्पना का राजनीतिक व्यवहार उन्नीसवीं सदी में ही प्रारंभ हुआ और बीसवीं सदी में राजनीति का आधारभूत सिद्धान्त बन गया।

राष्ट्र के विकास की संकल्पना के दोनों पहलुओं में मूलभूत अंतर यह है कि आदिकालिक संकल्पना के अनुसार– 'राष्ट्रभावना पूर्णतया सांस्कृतिक भागीदारी पर निर्भर है, जबकि 'आधुनिक संकल्पना के अनुसार– राष्ट्रभावना राष्ट्र के सदस्यों की राजनीतिक चेतना और अपनों का, अपनों के द्वारा और अपनों के लिए राज्य प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा से अभिप्रेरित है। अठारहवीं सदी का 'यूरोपीय तर्कबुद्धिवाद' इस संकल्पना का मूल प्रेरक तत्व था।

2.13 राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की प्रकारिकी (Nationalism, Nationality and typology of Nationalisms)

2.13.1 राष्ट्रवाद – सामान्यतः 'राष्ट्रवाद' राष्ट्र के साथ एकजुटता अथवा एकता की भावना है। यह दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

1. राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव के घटक के रूप में, जिसमें राष्ट्रीय एकता आधारभूत तत्व के रूप में कार्य करती है;
2. राजनीतिक आदर्श के रूप में: जिसमें राष्ट्र को विशिष्ट सांस्कृतिक इकाई वाला क्षेत्र होने के साथ-साथ पूर्व स्वतंत्र एवं प्रभुता सम्पन्न भी होना चाहिए। नागरिकों द्वारा अपनी सरकार चुनने का अधिकार इसका मूल मंत्र है।

संक्षेप में, 'राष्ट्रवाद' एक सजीव तथा प्रेरणादायी शक्ति है, और जब यह शक्ति यथार्थ स्वरूप धारण करती है, तब यह न के केवल राष्ट्र की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करती है, बल्कि राष्ट्र के स्वार्थी तत्वों की स्वार्थी प्रवृत्ति को नियंत्रित भी करती है। राष्ट्रवाद के भौगोलिक सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय कार्ल ड्यूष (1953) को जाता है।

2.13.2 राष्ट्रीयता

राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पण के भाव का ही नाम राष्ट्रीयता है।

एच० कोहन (1945) के अनुसार – 'राष्ट्रीयता का आविर्भाव तभी लेता है जब एक सामाजिक वर्ग को कुछ उद्देश्य निष्ठ सीमाओं में परिसीमित कर दिया जाता है। एक वंश क्रम, भाषा, क्षेत्र, राजनीतिक अस्तित्व, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, धर्म तथा सांस्कृतिक विरासत राष्ट्रीयता के गुण होते हैं। एक राष्ट्रीयता में इनमें से कई गुण मिलते हैं, परन्तु सभी गुणों की विद्यमानता अत्यंत कम होती है।

2.13.3 राष्ट्रवाद की प्रकारिकी

राष्ट्रवाद की प्रकारिकी से तात्पर्य राष्ट्रवाद के प्रकार से है। अब तक जितने प्रकार के राष्ट्रवाद की पहचान की गई हैं, उनमें पाँच प्रमुख हैं :—

1. राज्य जनित राष्ट्रवाद (**State Nationalism**) – यह क्रोड़ राज्यों एवं ५० यूरोप के मध्यम आकारों के राज्यों का राष्ट्रवाद है।
2. एकीकरण राष्ट्रवाद (**Unification Nationalism**) – छोटे एवं मध्यम आकार के राज्यों का एकीकरण इस राष्ट्रवाद की विशेषता है। पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी तथा उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम का एकीकरण उसके सुन्दर उदाहरण हैं।
3. पार्थक्य राष्ट्रवाद (**Separation Nationalism**) – यह राष्ट्रवाद सार्वभौमिक राज्यों के विघटन पर आधारित है। उदाहरण के लिए पाकिस्तान से पृथक होकर बांग्लादेश का अभ्युदय।

4. मुक्ति राष्ट्रवाद (**Liberation Nationalism**) – यूरोपीय साम्राज्य के विघटन का श्रेय उसी राष्ट्रवाद को है।
5. नवीकरण राष्ट्रवाद (**Renewal Nationalism**) – राष्ट्रवाद का यह स्वरूप एक नवीन राज्य के पहचान करने की प्रक्रिया के अंग के रूप में मिलता है।

2.14 राज्य और राष्ट्र में अन्तर

सामान्य व्यवहार में 'राज्य' और 'राष्ट्र' शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप में किया जाता है, परन्तु राजनीतिक भूगोल के शास्त्रीय अध्ययन में दोनों शब्द दो अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। राज्य एवं राष्ट्र के सन्दर्भ में किए गए उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट भी हो चुका है। राज्य एवं राष्ट्र में निहित मूल अन्तर को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

राज्य (State)	राष्ट्र (Nation)
1. राज्य एक राजनीतिक समुदाय है। 2. राज्य का क्षेत्र राजनीतिक सीमाओं से पारिसीमित होना है। 3. राज्य एक कानूनी (वैधिक-Legal) तथ्य है। 4. राज्य की एकता का सूत्र वहां की राजनीतिक व्यवस्था में निहित है। 5. राज्य में एक ही प्रकार की शासन व्यवस्था होती है। 6. राज्य की सार्वभौम सत्ता होती है। 7. राज्य एक केन्द्रीय प्रशासनिक संगठन है। 8. राज्य का मानव राज्य के प्रति निष्ठावान होता है।	1. राष्ट्र की विशेषता सांस्कृतिक सम्मिश्रण है। 2. राष्ट्र का विस्तार राज्य की ही सीमा से परे भी हो सकता है। 3. राष्ट्र का अस्तित्व भावनात्मक है। 4. राष्ट्र की एक एकता का आधार, भाषा, धर्म, जाति आदि है 5. राष्ट्र के लिए एक ही प्रकार की शासन व्यवस्था आवश्यक नहीं है। 6. राष्ट्र की कोई सार्वभौम सत्ता नहीं होती। 7. राष्ट्र भावनात्मक रूप से सम्बद्ध मानव समुदायो का संगठन है। 8. राष्ट्र का प्रत्येक मानव समूह अपने समूह के प्रति निष्ठावान होता है।

2.15

राष्ट्र राज्य (Nation&state)

राजनीतिक भूगोल में 'राजनीतिक क्षेत्र संगठन के आदर्श स्वरूप को राष्ट्र- राज्य कहते हैं (A Nation - State) is a politically organised area in which Nation and state occupy the same space") वास्तव में यह एक राजनीतिक क्षेत्रीय अभिव्यक्ति है, जिसमें यह माना जाता है कि जहाँ राज्य एवं राष्ट्र में एकरूपता हो, वहाँ राष्ट्र-राज्य विद्यमान होता है। एक आदर्श राष्ट्र-राज्य वह है, जिसमें राजनीतिक इकाई सुपरिभाषित हो, अच्छी संख्या में आवासित हो, शक्ति प्राप्ति हेतु संगठित हो, तथा लोग (People) स्वयं को भावनात्मक रूप से राष्ट्र समझते हो।

राष्ट्र-राज्य के आवश्यक तत्व – राष्ट्र-राज्य के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं :-

1. भौगोलिक अनुरूपता

2. राजनीतिक संगठन
3. सम्प्रभुता सम्पन्नता
4. आर्थिक साम्यता
5. भावनात्मक एकात्मकता
6. सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता

उपरोक्त विशेषताएं जिस राज्य में पाई जाती हैं, उसे राष्ट्र-राज्य का दर्जा दिया जा सकता है।

राष्ट्रीय-राज्य के निर्माण में दो केन्द्रीय प्रवृत्तियाँ सतत सक्रिय रहती हैं— (अ) राज्य-निर्माण की क्रिया, एवं (ब) राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया

राज्य-निर्माण की प्रक्रिया का सम्बन्ध राज्य सत्ता के क्षेत्रीयकरण से सम्बद्ध है। वास्तव में यह राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्र को केन्द्रीय सत्ता में पूर्णरूपेण समाहित करने की प्रक्रिया है। राष्ट्र निर्माण उन विविध प्रक्रियाओं और उपायों का सम्मिलित प्रभाव है जिनके माध्यम से देश नागरिक स्थानीय एवं जातीय विविधाताओं के बावजूद भी एक सामाजिक इकाई के रूप में पारस्परिक सहयोग की भावना से ओत-प्रोत होते हैं। विश्व में अनेक राष्ट्र-राज्य हैं, जिनमें सं०रा० अमेरिका, जापान, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, स्वीडन आदि प्रमुख हैं। भारत भी राष्ट्र-राज्य का एक अनुपम उदाहरण है।

सारांशतः राष्ट्र-राज्य अवधारणा आधुनिक युग का आदर्श है। राजनीतिक – क्षेत्रीय संगठन का यह चरम स्वरूप है। सम्प्रभुता की उचित अभिव्यक्ति है और स्थिरता का सर्वोत्तम मार्ग है।

2.16 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने जाना कि 'राज्य' आधुनिक जीवन का एक सर्वव्यापी सत्य है। आधुनिक युग के इतिहास की उपज कई कालखण्डों में राज्य संकल्पना का विकास हुआ है और औद्योगिक क्रांति, विश्व युद्ध, जनसंख्या परिवर्तन, राष्ट्रीय भावना, सापेक्षिक स्वायत्तता जैसे कई कारकों ने वर्तमान राज्यों के विकास में सहयोग किया है। आपने इस इकाई में यह भी ज्ञान प्राप्त किया कि राज्य की आधुनिक संकल्पना की मूलभूत विशेषताएं क्या हैं तथा भाषा, संस्कृति, धर्म, जनमत कूटनीति, राजनीतिक कौशल और तकनीकी विकास जैसे कारक किसी भी राज्यशक्ति को प्रभावित कर उसके विकास या पतन के कारण बन सकते हैं। राष्ट्र, उसके वस्तुनिष्ठ तत्व, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्र-राज्य के अन्तर को समझने में भी आपको इस इकाई से मदद मिली होगी और राज्य तथा राष्ट्र की मूल आत्मा को आपने गहराई से समझ लिया होगा।

2.17 शब्द सूची

क्षेत्रीयता	Teritoriality	सजातता	Kinship
सार्वभौमिकता	Sovereignty	समुदाय	Community
नगरराज्य	City State	आस्थातंत्र	Iconography
धर्म तंत्रात्मक	Theocratic	पार्थक्य	Sepration
राज्यशक्ति	State Power	मुक्ति	Liberation
एकीकरण	Qlification	नवीकरण	Renewal

2.18 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न :-

1. सार्वभौमिक राज्यों के विघटन पर आधारित है :-

- (अ) राज्य जनित राष्ट्रवाद (ब) नवीकरण राष्ट्रवाद (स) मुक्ति राष्ट्रवाद (द) पार्थक्य राष्ट्रवाद
2. क्या राज्य' और 'राष्ट्र' एक ही हैं?
- (अ) हाँ (ब) नहीं (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
3. प्राचीन राज्यों का संगठनात्मक स्वरूप देखने को मिलता है –
- (अ) पंचायतों में (ब) नगर राज्यों में (स) धार्मिक संगठनों में (द) सैनिक प्रशासन में
4. राज्य की एकता के लिए आवश्यक है:—
- (अ) जातीयता (ब) धार्मिक संगठन (स) सैनिक प्रशासन (द) राष्ट्रीयता की भावना
5. राज्य शक्ति से तात्पर्य है—
- (अ) सैनिक शक्ति (ब) आर्थिक शक्ति (स) जनमत की शक्ति (द) उक्त सभी
- आदर्श उत्तर—
1. (द) 2. (ब) 3. (ब) 4. (द) 5. (द)

2.19. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

- Anderson, B., (1983); Imagined Communities: London] Versa.
- Carlson, L., (1958): Geographpy and world Politics', Prentice Hall Inc. Englewood Cliffs, N.J., 534 pp.
- Seutsch, K.W., (1953): 'Growth of Nations: Some Recurrent Patterns of Political Integration', World Politics, Integration', world Politics, vot 5, 168-195.
- दीक्षित, रमेशदत्त, (2000): 'राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि', प्रेन्टिस हल ऑफ इंडिया, प्रा०लिमि०, नई दिल्ली, 276 पृ०
- Gamble; A.,:1981): "An Introduction to Modern social and Political Thought; London; Macmillan.
- Lanchi; G.A. et al (1966): Crisis and Continuity in World Politics; New York, p. 40
- Laski, H.J.; (1935): The state in Theory; London, Allen and Unwin- Mill; J.S.; (1861): Considerations on Representative Government; New York; Liberal Arts Press; reissued in 1958.
- Moodie; A.E., (1963); 'Geography Behind Politics; London; Hutchinson. Pounds; N.J. G.; (1963): 'Political Geography, New York, Mc Graw-Hill.
- Smith, A-D-, (1991): National Identity; Hammondsworth, Penguin Sanith, G-, (1986): 'Geopolitics; In R.J. Johnston and et. al. (eds-)
- "The Dictionary of Human Geography (2nd Ed.) Oxford, 26-127. Taylor, P. J., (1985): Political Geography, World Economy, Nation- State and Localily, London, Longman.

2.20 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. राज्य की प्रभुसत्ता का क्या अर्थ होता है? समझाइये।
2. राज्य और राष्ट्र को परिभाषित कीजिए।
3. राज्य शक्ति से क्या तात्पर्य है?
4. वर्तमान राज्यों के विकास के मुख्य कारक बताइए।
5. राज्य और राष्ट्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-03 सीमान्त एवं सीमाओं का राजनीतिक भूगोल

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 विषय प्रवेश
- 3.3 सीमान्त
- 3.4 सीमान्त: परिभाषाएं
- 3.5 सीमान्तों का सीमा में परिवर्तन: अवस्थाएं एवं कारक
- 3.6 सीमान्तों का वर्गीकरण
 - 3.6.1 जे0 आर0 वी0 प्रेस्कॉट का सीमान्त वर्गीकरण
- 3.7 सीमाएं
- 3.8 सीमा : परिभाषाएं
- 3.9 सीमाओं की अवधारणा
- 3.10 सीमाओं का विकास
- 3.11. सीमाओं का वर्गीकरण
 - 3.11.1. सीमाओं की आकृति मूलक वर्गीकरण
 - 3.11.2 सीमाओं का आनुवंशिक या कार्यात्मक वर्गीकरण
 - 3.11.3 जे0डी0 नीस्टेन का सीमा वर्गीकरण
 - 3.11.4 एच0डब्ल्यू0 वीगर्ट का सीमा वर्गीकरण
- 3.12. सीमाओं के कार्य
- 3.13 सीमा विवाद
- 3.14 सीमान्त तथा सीमा में अन्तर
- 3.15 सारांश
- 3.16 शब्द सूची
- 3.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं उपयोगी पुस्तकें
- 3.19 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

3.0 प्रस्तावना

‘राजनीतिक भूगोल’ पाठ्यक्रम की यह तृतीय इकाई है। इस इकाई में सीमान्त, सीमान्त की प्रकृति एवं परिभाषाएँ, तथा सीमान्तों के वर्गीकरण का आप अध्ययन करेंगे। सीमा-अवधारणा, सीमाओं का विकास, सीमाओं का वर्गीकरण एवं सीमाओं के कार्यों का अध्ययन भी इस इकाई में आपको करना है। राजनीतिक भूगोल के अध्येता के लिए सीमा विवाद की प्रकृति तथा सीमा एवं सीमान्त के अन्तर को भी समझना आवश्यक होता है, इसीलिए इस इकाई के अन्त में इनका प्रमुखता से विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक भूगोल सम्बन्धी आप के ज्ञान को सम्पन्न बनाने के लिए इस इकाई की विषयवस्तु का अध्ययन वास्तव में आपके लिए अति

आवश्यक है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. विद्यार्थियों को सीमान्त और सीमाओं की प्रकृति से अवगत कराना।
2. सीमान्तों का सीमा में परिवर्तन किस प्रकार होता है?— इस तथ्य की विस्तार से जानकारी प्राप्त करना।
3. सीमान्त और सीमाओं के वर्गीकरण के माध्यम से उनके विभिन्न स्वरूपों का मूल्यांकन करना।
4. सीमा विवादों की प्रकृति के आधार पर राज्यों के मध्य उत्पन्न सीमा विवादों के कारणों से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
5. सीमान्त एवं सीमा के मध्य अन्तर को स्पष्ट कर विद्यार्थियों के तत्सम्बन्धी भ्रम को दूर करना।

3.2 विषय प्रवेश

राज्य की संरचना (**Anatomy of the State**) के महत्वपूर्ण तत्वों में सीमान्त (**frontiers**) और सीमाओं (**Boundaries**) का स्थान महत्वपूर्ण है। सीमान्त एवं सीमाएं किसी भी राज्य के राजनीतिक — भौगोलिक तत्व हैं और किसी भी संगठित राजनीतिक इकाई की विशेषताएँ हैं। राज्य की कार्य प्रणाली (चाहे वे राज्यों के द्विपक्षीय सम्बन्ध हों या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राज्य की भूमिका हो, आन्तरिक प्रशासन हो या विदेश नीति का निर्धारण, पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध हों या राज्य में अमन— चैन का निर्धारण आदि) अनेक रूपों में सीमान्त और सीमाओं द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर से प्रभावित होती है। यही कारण है राजनीतिक भूगोल में सीमान्त और सीमाओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है।

गैर भौगोलिक साहित्य में प्रायः 'सीमान्त' एवं 'सीमा' दोनों का समानार्थक के रूप में प्रयोग किया गया है। परन्तु वास्तविक अर्थों में दोनों समानार्थक नहीं हैं। दोनों के बीच आधारभूत अन्तर है। सीमान्त की प्रकृति 'क्षेत्रीय' है जबकि सीमाओं की प्रकृति 'रेखीय' है। सीमान्त प्रायः राज्य के विकास की परिपक्व अवस्था से पूर्व का तत्व है, जबकि सीमाएं राज्य के विकास की परिपक्व अवस्था का परिणाम हैं। दोनों के बीच का यह मौलिक अन्तर राजनीतिक भूगोल में इनके अध्ययन की महत्ता को सिद्ध करता है। चूंकि राज्य एक क्रियाशील क्षेत्रीय इकाई है, अतः उसका सुस्पष्ट सीमांकन इसकी प्राथमिक आवश्यकता है, वह सीमांकन चाहे सीमान्तों के रूप में हो या सीमाओं के रूप में।

3.3 सीमान्त (Frontier)

हिन्दी भाषा का 'सीमान्त' शब्द अंग्रेजी भाषा के '**frontier**' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। '**Frontier**' (फ्रॉण्टीअर) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के **Frons** (फ्रॉंस) अथवा फ्रेंच भाषा के शब्द '**front**' (फ्रॉन्ट) से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'अग्र प्रदेश' है। यह एक क्षेत्र बोधक शब्द है जिसका प्रयोग दो पड़ोसी राज्यों की राजनीतिक प्रभुसत्ता के परस्पर क्षेत्रीय विस्तार की विभाजक 'क्षेत्र पट्टी' के रूप में किया जाता है। 'सीमान्त' (**Frontier**) के कई (समानार्थक शब्द भी प्रचलित हैं, जैसे— मानव रहित क्षेत्र (**No Man's Land**), तटस्थ क्षेत्र (**Neutral Zone**), संक्रमण प्रदेश (**Transitional Zone**), अग्र प्रदेश (**Foreland**), सीमा प्रदेश (**Borderland**), एवं सीमा प्रान्त (**March Land**) आदि। सीमान्त न तो वैधानिक संकल्पना है, न राजनीतिक संकल्पना है और न ही बौद्धिक संकल्पना है। यह एक नितांत प्राकृतिक/सामाजिक संकल्पना है जिसकी भौगोलिक स्थिति दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों के विस्तार को निष्क्रिय एवं संतुलित करती है। सीमान्त वास्तव में दो सामाजिक व्यवस्थाओं अथवा दो राजनीतिक इकाइयों के मध्य स्थित एक क्षेत्र होता है, जहाँ तक पहुँचते-पहुँचते राज्य की प्रभुसत्ता सीमित और शिथिल हो जाती है।

3.4 सीमान्त : परिभाषाएं (Frontiers : Definitions)

अनेक राजनीतिक भूगोलविदों ने सीमान्त को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहाँ कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :—

वाई० एम० गाब्लेट (1956) के अनुसार – 'सीमान्त वह भौगोलिक क्षेत्र है जहाँ उसके विस्तार के विरुद्ध प्रतिरोध सम्बन्धी शक्तियाँ निष्क्रिय होकर स्थिर हो जाती हैं।

ए०ई० मूडी (1957) के अनुसार – 'एक सीमान्त चाहे वह प्राकृतिक, भाषाई, धार्मिक या प्रजातीय रूप में हो, परिवर्तित नहीं हो सकता। इसका चरित्र (विशेषता/प्रकृति) बदल सकता है, इसके सीमान्त सम्बन्धी अधिकांश कार्य समाप्त हो सकते हैं, लेकिन यह यथावत बना रहता है।

एल० के०डी० क्रिस्टोफ (1959) के अनुसार – 'सीमान्त राज्य का समापन बिन्दु (पूँछ) नहीं है बल्कि यह राज्य का प्रारम्भ (अग्रभाग) है; यह अल्पज्ञात तथा अज्ञात परिमंडल में प्रकाश और ज्ञान की रोशनी फैलाने में अग्रणी है। यह दोनों ओर के सामाजिक समूहों का मिलन स्थल है।

एचा जे०डी ब्लिज (1967) के अनुसार – सीमान्त राजनीतिक इकाई के एकीकृत क्षेत्र के बाहर का राजनीतिक-भौगोलिक क्षेत्र है, जिसमें राजनीतिक इकाई का विस्तार हो सकता है।

रैट्जेल महोदय ने भी 'सीमान्त' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि यह (सीमान्त) मानव सभ्यता को जीवित रखने वाले तत्वों को विकसित करने वाला क्षेत्र है। लार्डकर्जन (1908) ने सीमान्त को (एक तीक्ष्णधार' भी- संज्ञा दी थी। जिसपर आधुनिक युद्ध या शान्ति सम्बन्धी परिणाम अथवा राष्ट्रों का जीवन-मरण अवलम्बित होता है। रैट्जेल और लार्ड कर्जन के ये सीमान्त सम्बन्धी विचार वर्तमान समय में मान्य नहीं हैं। वर्तमान परिवेश में सीमान्त वास्तव में एक संतुलन क्षेत्र है, जो विस्तार की शक्तियों के मध्य मानवीय तत्व द्वारा निर्धारित हुआ है। इस क्षेत्र में पड़ोसी राज्यों की गतिशीलता विपरीत दिशाओं से आकर एक-दूसरे से मिलती है, एक दूसरे को अवरुद्ध करती है और अन्ततः तटस्थ और निरपेक्ष हो जाती हैं।

3.5 सीमान्तों का सीमा में परिवर्तन : अवस्थाएं एवं कारक

अवस्थाएं :- सीमान्त का सीमा में परिवर्तन कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह परिवर्तन मूलतः क्रमिक विकास का प्रतिफल है। क्रमिक विकास जनित यह परिवर्तन कई अवस्थाओं में सम्पन्न होता है –

- (i) प्रारम्भिक अवस्था :- अपनी प्रारम्भिक अवस्था में सीमान्त किसी राज्य की सिर्फ एक परिसीमा (**Limit**) होता है जिसके आगे उस राज्य की भौगोलिक शून्यता होती है, जैसे तट के आगे का कोई अपरिचित सागर। विस्तीर्ण महासागरीय जल राशि तथा महाद्वीपीय क्षेत्र सीमान्त के प्रथम सोपान बनते हैं। इन विस्तीर्ण जलीय/स्थलीय क्षेत्रों में दो शक्तियाँ विपरीत दिशाओं से एक-दूसरे से मिलती हैं और अपनी गतिशीलता खो देती हैं।
- (ii) द्वितीय अवस्था :- इस अवस्था का प्रारंभ सीमान्त प्रान्तों (**frontier Marches**) के गठन से होता है। ये सीमांत प्रान्त प्रायः निर्जन एवं अविकसित प्रदेश होते हैं जो मध्य संक्रान्ति के रूप में दोनों पड़ोसी राज्यों के मध्य एक पट्टी के रूप में विस्तृत होते हैं। ये राज्य के गहनतम पृष्ठभूमि के अग्रक्षेत्र होते हैं। मरुस्थलीय, जंगली, दलदली या पर्वतीय जैसी प्राकृतिक बाधाओं से भरे-इन सीमान्त प्रान्तों की निर्वाहक क्षमता बेहद सीमित होती है।
- (iii) अंतिम अवस्था :- अंतिम अवस्था में सीमान्त एक सीमान्त रेखा के रूप में स्थानांतरित हो जाता है। ऐसा सामान्यतया तब घटित होता है जब बढ़ते आर्थिक और राजनीतिक कारणों से सम्बन्धित राज्यों को सीमान्त प्रान्तों के संसाधनों के दोहन की आवश्यकता महसूस होती है और दोनों ओर ही होने वाले क्षेत्रीय प्रसार के फलस्वरूप सीमान्त प्रान्त उत्तरोत्तर संकरा होता जाता है और अन्ततः रेखीय सीमाओं के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

कारक –सीमान्त प्रदेशों की सीमा रेखाओं में परिवर्तन भी इस प्रक्रिया के कई कारक थे, जैसे कि सीमान्त क्षेत्र में :-

- (1) प्रारंभ में सीमित जनसंख्या, लेकिन धीरे-धीरे जनसंख्या में क्रमिक वृद्धि;
- (2) आर्थिक दृष्टि से उपजाऊ सभी क्षेत्रों का किसी राज्य का अधिग्रहण;
- (3) आर्थिक दृष्टि से कम उपजाऊ सभी क्षेत्रों पर औद्योगिक क्रांति के पश्चात औद्योगिक प्रसार;

- (4) खनिज संसाधनों एवं शक्ति स्रोतों की संभावनाओं का उदय;
- (5) भौगोलिक क्षेत्रों की बढ़ती जानकारी
- (6) सुरक्षा की दृष्टि से आधारभूत सैन्य विकास की आवश्यकता आदि।

उपरोक्त अनेक कारकों के परिणाम स्वरूप सीमान्त प्रदेश धीरे-धीरे कालान्तर में सीमाओं में परिवर्तित होते चले गए। यद्यपि कि कुछ राज्यों के अति दुर्लभ एवं विवादास्पद क्षेत्र आज भी इस श्रेणी में विद्यमान हैं।

3.6 सीमान्तों का वर्गीकरण

विशेषताओं के आधार पर सीमान्त को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया जाता है :-

- (1) प्राकृतिक सीमान्त (2) सांस्कृतिक सीमान्त (3) ज्यामितीय सीमान्त (4) राजनीतिक सीमान्त

(i) प्राकृतिक सीमान्त (**Natural frontiers**) – इसे भौतिक सीमान्त भी कहा जाता है। सीमान्त के इस वर्ग के अन्तर्गत दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य फैले हुए उन जनशून्य भू-भागों को सम्मिलित किया जाता है जो प्राकृतिक रूप से दुर्गम एवं बाधाओं से युक्त रहते हैं, जैसे उच्च एवं विस्तृत पर्वतीय क्षेत्र, विस्तृत मरुस्थलीय क्षेत्र, सघन वन प्रदेश, दलदलीय क्षेत्र एवं हिमाच्छादित प्रदेश आदि। ऐसे भू- भागों पर संबन्धित राज्यों का साधारण नियंत्रण रहता है। गमनागमन की सुविधाओं के अभाव एवं कम आर्थिक महत्व के कारण प्राकृतिक सीमान्तों में समीपी राज्यों की प्रभुसत्ता प्रायः निष्क्रिय सी रहती है, परिणामतः यही भौतिक सीमान्त राज्यों के मध्य विभाजक का कार्य करने लगते हैं। ब्रिटिश कालीन भारत तथा चीन के मध्य विस्तृत हिमालय पर्वतीय क्षेत्र एक प्राकृतिक सीमान्त ही था। जिसमें चीन एवं ब्रिटिश कालीन भारत दोनों ही अपनी प्राधिकृत सीमा को नहीं जानते थे। दक्षिण अमेरिका में विस्तृत परन्तु लगभग अगम्य अमेजन बेसिन अभी भी एक प्राकृतिक सीमान्त की तरह विद्यमान है। तकनीकी विकास एवं राज्यों की बढ़ती आवश्यकताओं ने यद्यपि कि इन प्राकृतिक सीमान्तों के क्षेत्रीय प्रसार को संकुचित कर दिया है, कहीं-कहीं तो ये लुप्त प्राय हो गए हैं; लेकिन अतिदुर्गम क्षेत्र आज भी प्राकृतिक सीमान्तों के रूप में विश्व के विभिन्न राज्यों के मध्य विद्यमान हैं।

(ii) सांस्कृतिक सीमान्त (**Cultural Frontiers**) – इसे नृजातीय सीमान्त भी कहा जाता है। दो या दो से अधिक राजनीतिक इकाइयों के मध्य यह सीमान्त तब विकसित होता है, जब उनके सीमावर्ती क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से भिन्न कोई प्रजातीय मानव समुदाय निवास करता है। अल्प अधिवासित इस समुदाय का प्रसार दोनो ही पड़ोसी राज्यों की सीमा में होता है और अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत रहता है। ईराक एवं तुर्की के मध्य कुर्दिस्तान ऐसा ही सांस्कृतिक सीमान्त है, जहाँ अपनी स्वतंत्र पहचान बनाए रखने के लिए कुर्द प्रजाति आज भी संघर्षरत है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि ऐसे सीमान्तों के गठन में प्राकृतिक कारकों के साथ- साथ मानवीय तत्व भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

(iii) ज्यामितीय सीमान्त (**Geometrical Frontiers**)– इसे खगोलीय (**Astronomical**) सीमान्त भी कहा जाता है। भौगोलिक वास्तविकताओं को पूरी तरह नजरअंदाज कर अक्षांशों एवं देशान्तरों की संघयता से निर्धारित किए गए ऐसे सीमान्त वास्वत में 19वीं शताब्दी में यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों की आपसी प्रति- द्वन्द्विता के परिणाम थे। इन औपनिवेशिक शक्तियों ने अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं नई दुनिया के क्षेत्रों में अपने राजनीतिक परिमंडल को बढ़ाने के लिए ऐसे निर्जन प्रदेशों में इन सीमान्तों का सीमांकन किया था जो अनन्वेषित (un-explored) थे।

(iv) राजनीतिक सीमान्त (**Political Frontiers**)–दो भिन्न शक्तिशाली राजनीतिक इकाइयों के मध्य स्थित क्षेत्र राजनीतिक सीमान्तों के रूप में जाने जाते हैं। वर्तमान समय में इनका परिवर्तित स्वरूप अंतस्थ राज्यों (**Buffer States**) के रूप में है जो दोनों राज्यों के मध्य संतुलन बनाए हुए अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखते हैं। उनकी स्थिति से प्रतिस्पर्धी राज्यों की सीमाएं सुरक्षित बनी रहती है। भारत व चीन के मध्य नेपाल व भूटान अंतस्थ राज्य है। जो राजनीतिक सीमान्त के रूप में कार्य करते हैं।

3.6.1 जे० आर० वी० प्रेस्कॉट (1978) का सीमान्त वर्गीकरण –

प्रेस्काट ने 1978 में अपनी पुस्तक 'Boundaries and frontiers' में सीमान्त के दो प्रकार बताये हैं—

(अ) अधिवास सीमान्त —

अधिवास सीमान्त से तात्पर्य राज्य के उन सीमावर्ती क्षेत्रों से है, जो पहले आर्थिक विकास से वंचित रहते हैं। कालांतर में क्रोड़ क्षेत्र में अधिक दबाव के कारण उन्हीं क्षेत्रों में जनसंख्या बसाव के द्वारा आर्थिक गतिविधियों का विस्तार किया जाता है। अधिवास सीमान्त एक देश में ही स्थित होता है। इसे भौगोलिक सीमान्त भी कहते हैं। अधिवास सीमान्त के भी दो उपभेद हैं —

(i) प्राथमिक अधिवास सीमान्त —

यह सीमान्त वहाँ देखा जाता है जहाँ राज्य अपने क्षेत्र को प्रथम बार अपने अधिकार में लेता है।

(ii) द्वितीयक अधिवास सीमान्त —

इसके अन्तर्गत राज्य के निर्जन एवं अधिवास विहीन क्षेत्र आते हैं।

(ब) राजनीतिक सीमान्त —

राजनीतिक सीमान्त का उपयोग दो पड़ोसी राज्यों को पृथक करने हेतु किया जाता है।

लार्ड कर्जन (Lord Curzon, 1907) ने भी सीमान्त के प्रकार बताए हैं —

(i) संयुक्तक सीमान्त (Frontiers of Contact),

(ii) विभक्तक सीमान्त (Frontiers of Separation)

3.7 सीमाएँ (Boundaries)

हिन्दी भाषा का 'सीमा' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Boundary' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। 'Boundary' शब्द अंग्रेजी के 'Bound' शब्द से बना है जिसका अर्थ है बाँधना, सीमित करना। इस तरह से 'Boundary' अर्थात् सीमा एक आबद्धक रेखा है जो एक राजनीतिक इकाई को सीमा बद्ध करती है। 'सीमा' एक विभाजक रेखा भी है जो एक राज्य के अधिकार क्षेत्र को दूसरे राज्य के अधिकार क्षेत्र से अलग करती है। आधुनिक राज्य व्यवस्था के लिए रेखीय सीमा एक अनिवार्य आवश्यकता है, कारण कि यह राज्य की सार्वभौमिकता की सीमा को चिन्हित करती है, राज्य के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट करती है और उसकी प्रभुसत्ता को उसके पड़ोसी राज्य से पृथक करती है। मानचित्र पर सीमा स्वरूप देखने में भले ही रेखात्मक हो, परन्तु वास्तव में यह एक शीर्षवृत्तीय तब होती है जो धरातल के संगतीय आकाश और भौमिकीय तल को भी दोनों राज्यों के मध्य अलग कर देती है तथा समान रेखा के रूप में प्रभावित होती है।

3.8 सीमा परिभाषाएँ (Boundaries : Definitions)

सीमा के सन्दर्भ में प्रस्तुत: कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

फ्रेडरिक टैटजेल (1957) के अनुसार — “सीमाएँ राज्य रूपी जीव की त्वचा है जो उसे सुरक्षा प्रदान करती है और बाध्य आक्रमणों से रक्षा करती है।”

एस० डब्ल्यू० बाग्स (1940) के अनुसार — “सीमा के दोनों ओर प्रत्येक राज्य अपने प्राधिकार एवं संगठन जैसे— प्रशासन, व्यापार, कर निर्धारण, सुरक्षा, अतिरिक्त विकास और अन्य विविध अर्थों का सम्पादन करता है।”

एन. जे. स्पाइक मैन (1944) के अनुसार — “सीमा वह रेखा नहीं है, जो वैधानिक प्रणालियों को अलग करती है, बल्कि वह क्षेत्रीय शक्ति संरचनाओं की सम्पर्क रेखा भी है।”

एल० कार्लसन (1958) के अनुसार — “एक अन्तर्राष्ट्रीय सीमा राज्य की वह बाह्य रेखा है जिसके अन्तर्गत राज्य अपनी प्रभुसत्ता का इस्तेमाल करता है। कार्लसन का यह भी मानना है कि — ‘राज्य अपने वैधानिक प्राधिकार अर्थात्

अपनी सम्प्रभुता को न केवल स्थल क्षेत्र पर, बल्कि विस्तीर्ण अर्थों में समीपवर्ती सागरीय भागों एवं वायु क्षेत्रों (कम-से-कम जिसपर वायु परिवहन निर्भर करता है) तथा धरातल के नीचे शैलों एवं खनिजों पर स्थापित करता है।”

एल० के०डी० क्रिस्टोफ (1959) के अनुसार – “सीमाएं ऐसे क्षेत्र और जन समुदाय को एक साथ आबाद करती हैं जो एक सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार एवं विधि के अधीन होता है और जो प्रशासनिक व आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि एक राज्य-संकल्पना एवं धर्म का एकीकृत भी होता है।”

जी एन० जे० जी० पाउण्ड्स (1963) के अनुसार “सीमाएं एक राज्य की प्रभुसत्ता को उसने पड़ोसियों से विलग कराती है।”

ए०ई० मूडी (1963) के अनुसार – “एक सीमारेखा उस क्षेत्र का निर्धारण करती है जिसके अन्तर्गत राज्य का आन्तरिक संगठन विकसित होता है और इसी के सहारे विभिन्न राज्य प्रणालियाँ अथवा संगठन एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इसीलिए यह भौगोलिक तथ्य न होकर राजनीतिक तथ्य है, एवं इसका पृथक्कारी कार्य सामान्यतः पड़ोसी राज्यों के मध्य सम्बन्धों के अन्तर व समानता की मात्रा पर निर्भर करता है।”

एच० जे० डी ब्लिज (1966) के अनुसार – “सीमाएं मानचित्र पर एक एक पतली रेखा के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं जो राज्य की प्रभुसत्ता की सीमा को निर्धारित करती है।”

जे० एन्सेल (1968) के अनुसार – “एक सीमा एक राजनीतिक समदाब रेखा है जो दो दबावों के मध्य क्षणिक संतुलन को इंगित करती है।”

आर० ई० नोटिस एवं ए०एल० हेरिंग (1980) के अनुसार – “राष्ट्रीय सीमाएं अदृश्य रेखाएं हैं जो राज्यों को चारों ओर से आवृत करती हैं, फिर भी ये राजनीतिक मानचित्र पर सर्वाधिक दृश्य तत्व के रूप में होती हैं। वे एक राज्य को सीमांकित कर इसे आकृति प्रदान करती हैं और पहचान योग्य बनाती हैं।”

सारांशतः सीमाएं स्वरूप से अदृश्य मानव द्वारा पारस्परिक समझौतों पर आधारित ऐसी रेखाएं हैं जो एक राज्य क्षेत्र की बाहरी सीमा को निर्धारित करती हैं। इन सीमाओं के अन्तर्गत आने वालो राज्य क्षेत्र व जनसमुदाय एक सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार के अधीन होता है। इस पर सीमाएं संवैधानिक तत्व हैं।

3.9 सीमाओं की अवधारणा (Boundary Concept)

राजनीतिक भूगोल में प्रचलित सीमा सम्बन्धी अवधारणाएँ वास्तव में भौगोलिक तथा ऐतिहासिक वातावरण से सम्बन्धित हैं। इनकी प्रकृति, चरित्र तथा कार्य में निरंतर परिवर्तन होते रहे हैं। इनका अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि सीमाओं की अवधारणा राज्यों की विकास प्रक्रिया से सम्बन्धित है, इसलिए राज्यों के समान ही विकास की प्रारम्भिक अवधारणा से लेकर वर्तमान अवस्था तक सीमाएं भी कई रूपों में परिवर्तित होती हुई विकसित हुई हैं। संक्षिप्त रूप में प्रमुख सीमा अवधारणाओं का विवरण निम्नवत् है –

1. आदिम अवधारणा (**Tribal Concept**) – सीमा सम्बन्धी यह प्राचीन अवधारणा मानव-रहित भूमि पर केन्द्रित थी। मानवरहित भूमि सामान्यतया एक जनजातीय क्षेत्र को दूसरे जनजातीय क्षेत्र से अलग करती थी। तब रेंखाये उतनी महत्वपूर्ण नहीं थीं, जितनी कि भौगोलिक स्थितियाँ। एस०वी० जोन्स (1959) के अनुसार – ‘मानव रहित भूमि सीमान्त अथवा सीमा प्रान्त था, जो दावा विहीन, अधिवासित तथा अप्रयुक्त क्षेत्र होता था जिसमें दोनों तरफ के लोग प्रवेश कर सकते थे, परन्तु अपना क्षेत्रीय दावा नहीं कर सकते थे।
2. चीनी सीमा अवधारणा (**Chinese Boundary Concept**) एशिया में चीन की सीमा सम्बन्धी अवधारणा एक स्थिर तथा निश्चित सीमान्त को प्रकट करती है। चीनी मान्यता थी कि उनके क्षेत्र के चारों तरफ असभ्य जातियों का क्षेत्र है। उन असभ्य जातियों के क्षेत्र से अपने को अलग करने के लिए वे अपने सीमान्तों की किले बन्दी करते थे। किलेबन्दी करने के लिए वे प्राचीरों का निर्माण करते थे। चीन की विशाल दीवार इसका बेहतरीन उदाहरण है।
3. रोमन सीमा अवधारणा (**Roman Boundary Concept**):– चीन की तरह रोमन भी अपने और आदिम असभ्य जातियों के बीच निश्चित सीमाएं चाहते थे। प्रारम्भिक आँवल – सैक्सोन प्राचीर का निर्माण अपने शासित प्रदेशों में अभिकरण भी सुरक्षा के लिए ही उन्होंने किया था वे केवल प्राचीर निर्माता ही नहीं थे, बल्कि

अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु सीमान्त क्षेत्र में उन्होंने अनेक सुरक्षात्मक उपाय (खाइयाँ खोदना, अवरोधकों का निर्माण) कर रखे थे। ऐसी किले बन्दी को वे लाइम्स (Limes) कहते थे।

4. मध्य युगीन यूरोपीय सीमा अवधारणा (**Medieval European Boundary Concept**) – मध्य युगीन यूरोप सामन्ती प्रथा का युग था जिसमें सामन्ती राजाओं को यह पता नहीं रहता था कि उनका राज्य कैसे बना? कितना बड़ा है? और उसकी सीमाएं कहाँ तक हैं? वास्तव में सामन्ती प्रथा के राजनीतिक भूगोल का मुख्यतत्त्व पैचवर्क (Patch work) राजनीतिक मानचित्र था। इस सामन्ती संरचना में सीमा निर्धारण में नदी सीमाओं का अधिक प्रयोग किया गया था।
5. फ्रांसीसी सीमा अवधारणा (**French Boundary Concept**) – फ्रांसीसी सीमा अवधारणा प्राकृतिक स्वरूपों पर आधारित थी। पाउण्ड्स (1951) के अनुसार— 'प्राकृतिक सीमा सम्बन्धी अवधारणा का विकास सबसे पहले फ्रांसीसी दार्शनिकों ने उस समय किया जब फ्रांस में तर्क-वितर्क का युग था।' जब फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण सामन्तवाद का अंत हुआ, उसके बाद प्राकृतिक सीमा सम्बन्धी अवधारणा अधिक प्रबल हुई। वास्तव में प्राकृतिक सीमा अवधारणा फ्रांसीसी क्रान्ति की एक प्रबल अभिव्यक्ति थी।
6. जर्मन राष्ट्रीय सीमा अवधारणा (**German Nationality Boundary Concept**) – जर्मनी की राष्ट्रीय सीमा अवधारणा समसामयिक विश्व अर्थव्यवस्था के मूल क्षेत्र तथा परिधीय क्षेत्र की राष्ट्रीय राजनीति की विशिष्ट स्थिति को प्रगट करती है। इसी के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी में सीमा के साम्राज्यवादी सिद्धान्त का जन्म हुआ। सीमा के साम्राज्यवादी सिद्धान्त की परम्परा को स्थापित करने का श्रेय फ्रेडरिक रैटजेल और उनके अनुवर्ती राजनीतिक भूगोलविदों को है।
7. सीमा की संविदात्मक अवधारणा
सीमा की संविदात्मक अवधारणा उस सीमा सिद्धान्त को कहते हैं जिसमें राज्य आपस में सीमा के लिए किसी रेखा पर समझौता कर लें तथा उस रेखा की अखण्डता स्वीकार करें। यह अवधारणा वृहत् रूप में अमेरिकी राज्यों की उपज थी।
8. सीमा की ज्यामितीय अवधारणा (**Geometrical Boundary Concept**)
सीमा सम्बन्धी इस अवधारणा को विकसित करने का श्रेय यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों को जाता है। इस अवधारणा का मुख्य उद्देश्य शक्ति संतुलन कायम रखना तथा समकालीन क्षेत्रीय विभाजन था। इसमें प्राकृतिक धरातलीय स्वरूपों एवं सांस्कृतिक भूदृष्टियों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है, केवल अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं पर आधारित ज्यामितीय रेखाएं होती हैं। ऐसी सीमाएं अफ्रीका महाद्वीप में काफी देखने को मिलती हैं।
9. शक्ति-राजनीतिक सीमा अवधारणा (**Power-Political Boundary Concept**) – सीमा निर्धारण की यह अवधारणा कमजोर के ऊपर शक्तिशाली के प्रसार को प्रतिबिम्बित करती है। इसका विकास अमेरिका और जर्मनी में अलग-अलग सन्दर्भों में हुआ। अमेरिकी राज्यों का पश्चिमवर्ती विस्तार कमजोर मूल निवासियों की कीमत पर हुआ, जब जर्मनी में यह अन्तर-युद्ध कालीन भू-राजनीति की देन थी। वस्तुतः यह अवधारणा कमजोर सीमान्त पर शक्ति के राजनीतिक प्रभुत्व को दर्शाती है।

एस0बी0जोन्स (1959) ने भी सीमा अवधारणा के छः विभिन्न प्रकारों की पहचान की है— 1. प्राकृतिक 2. राष्ट्रीय 3. साम्राज्यवादी 4. संविदात्मक 5. ज्यामितीय तथा 6. शक्ति राजनीतिक।

इन सभी सीमा अवधारणाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि अपने प्रारम्भिक स्वरूप में सीमाओं का निर्धारण क्षेत्रीय था, जो वर्तमान में आने-आते सूक्ष्मता एवं रेखात्मक हो गया है। सीमा निर्धारण में थोड़ा सभी व्यक्तिक्रम अनेक विवादों को जन्म दे देता है। इसीलिए वर्तमान में राज्यों के मध्य जितनी भी सीमाएं गठित या पुनर्गठित हो रही हैं उनमें राष्ट्रीयता और उससे सम्बन्धित सांस्कृतिक भू-दृश्य ही प्रमुख आधार बनाए जा रहे हैं।

3.10 सीमाओं का विकास (Development of Boundaries)

सीमाओं के वैश्विक प्रारूप को देखने से स्पष्ट होता है कि सीमाओं का विकास तीन प्रक्रियाओं से होता है :-

- (1) स्वेच्छाचारी प्रक्रिया – इसके अन्तर्गत सीमाओं का निर्धारण समझौतों की अपेक्षा प्रशासनिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर किया जाता था। यह औपनिवेशिक स्वार्थपरायणता को अभिव्यक्त करता है।
- (2) विकासवादी प्रक्रिया – सीमा निर्धारण की विकासवादी प्रक्रिया तीन अवस्थाओं से होकर गुजरती है –
- (अ) समझौता वार्ता, (ब) भौगोलिक निर्देशांकों की पहचान एवं उनका वास्तविक मानचित्रण (स) शुद्धतापूर्वक धरातल पर संरेखण
- (3) पंचाट प्रक्रिया – सीमाओं के विकास की इस प्रक्रिया में सीमाओं का निर्धारण पंच निर्णयों द्वारा होता है, तथा वह सम्बद्ध पक्षों द्वारा मान्य होता है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कच्छ के रण में भारत-पाक सीमा के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी भारत-पाकिस्तान सीमाओं का विकास कहीं स्वेच्छाचारी प्रक्रिया, कहीं विकासवादी प्रक्रिया तथा कहीं पंचाट निर्णयों का परिणाम है।

3.11 सीमाओं का वर्गीकरण (Classification of Boundaries)

वर्तमान राजनीतिक भूगोल के अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में सीमाओं का वर्गीकरण दो भिन्न मापदण्डों पर आधारित है।

1. आकारकीय मापदण्ड– जिनका आधार राजनीतिक भूगोल के आकृति – मूलक आगम है। इस आधार पर किए गए सीमा वर्गीकरण को 'आकृति मूलक वर्गीकरण' कहते हैं।
2. कार्यात्मक मापदण्ड– जिनका आधार सीमा और सांस्कृतिक भूदृश्यों का पारस्परिक संबंध है। इस आधार पर किए गए सीमावर्गीकरण को 'आनुवांशिक' या वर्गीकरण कहते हैं।

3.11.1 सीमाओं का आकृति मूलक वर्गीकरण (Morphological Classification) –

सीमाओं के इस वर्गीकरण में निम्नलिखित चार प्रकार की सीमाएं सम्मिलित हैं:-

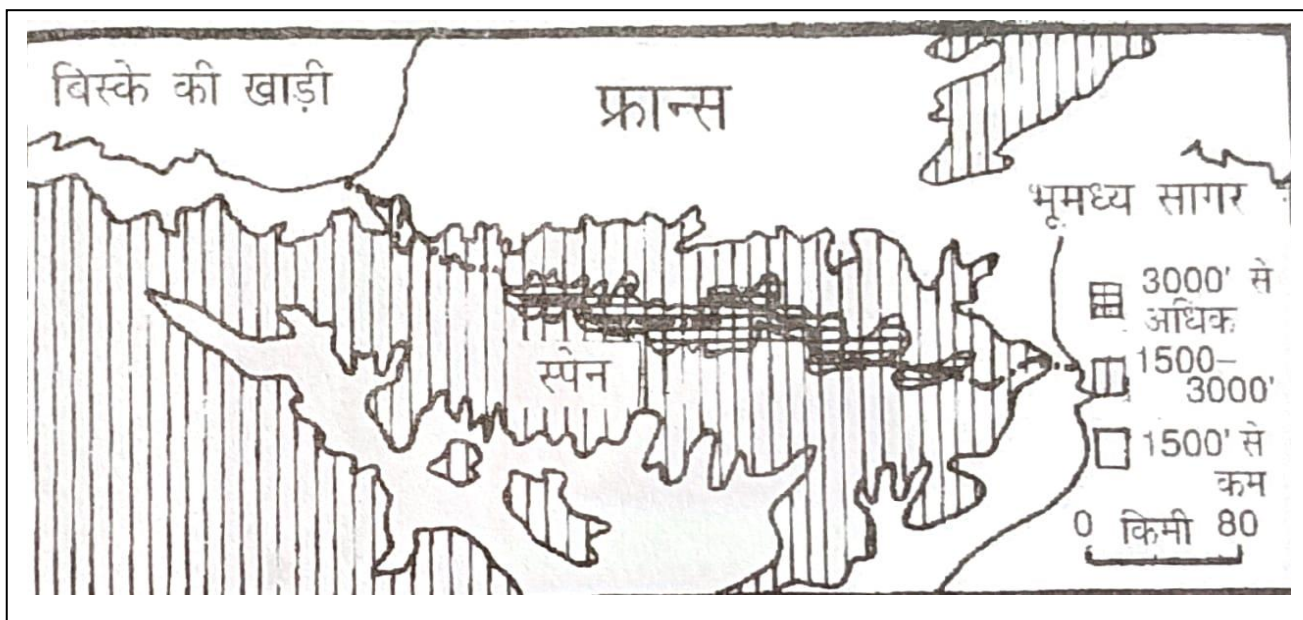
- (i) प्राकृतिक भूदृश्यों के आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् 'भू-आकृतिक सीमाएं;
- (ii) जातीय तत्वों के आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् 'मानव-भौगोलिक सीमाएं;
- (iii) ज्यामितीय आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् ज्यामितीय सीमाएं; एवं
- (iv) अनेक कारकों के सम्मिलित योगदान से खींची गई सीमाएं अर्थात् 'संश्लिष्ट सीमाएं।

- (1) भू-आकृतिक सीमाएं (**Physiographic Boundaries**) – धरातल पर प्रसारित प्राकृतिक भू-आकृतियाँ मूलरूप से सुस्पष्ट आकृति वाली स्थाई आकृतियाँ होती हैं, जिन्हें धरातल के साथ-साथ मानचित्र भी आसानी से पहचाना जा सकता है, उनका मापन किया जा सकता है और मान्यता प्रदान की जा सकती है। प्राकृतिक भू-आकृतियों की भौगोलिक अवस्थिति भी सामरिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण होती है। अपने प्रतिरक्षात्मक गुण के कारण ये प्राकृतिक अवरोध प्रदान कर मानव गतिशीलता को रोकने में सहायक हो सकती हैं। इसी दृष्टिकोण से प्राकृतिक स्थलरूपों, जैसे पहाड़ियों एवं पर्वत-श्रेणियों, नदी-नालों एवं झीलों, मरुस्थलों, दलदलों एवं घने जंगलों आदि को सीमाओं के गठन हेतु स्वीकार किया गया। ये वास्तव में प्रकृति प्रदत्त सीमाएं हैं जिन्हें विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग नाम दिए हैं, जैसे रिचर्ड हार्टशोर्न ने इन्हें **Naturally Marked Boundaries** (प्राकृतिक आधार पर अंकित सीमाएं) माना है। ब्रिटिश विद्वान फासेट (**faweelt**) ने इन्हें '**Natural Barrier Boundaries**' (प्राकृतिर रोधक सीमाएँ) कहा है, लेप्राडेल्ला (**Lepradell**) ने इन्हें '**Derived Artificial Boundaries**' (व्युत्पन्न कृत्रिम सीमाएं) की संज्ञा दी है, तथा जर्मन विद्वान सीजर (**Seizer**) ने उन्हें '**Boundaries borrowed from Nature**' (प्रकृति से ग्रहीत सीमाएँ) के रूप में स्वीकार किया है। भू-आकृतिक सीमाओं के चार उपभेद हैं—

(अ) पर्वतीय सीमा (ब) नदी सीमा, (स) झील सीमा, (द) जंगल, दलदल तथा मरुस्थलीय सीमाएं

- (अ) पर्वतीय सीमा (**Mountain Boundary**) – कोई भी पर्वतीय प्रदेश एक विस्तृत क्षेत्र की समष्टि का परिचायक

होता है जिसमें लम्बाई के साथ-साथ पर्याप्त चौड़ाईवाला विस्तृत क्षेत्र भी शामिल होता है। उपान्तीय आर्थिक महत्व वाले ये पर्वतीय प्रदेश प्रायः जन शून्य नहीं होते और पड़ोसी राजनीतिक इकाइयों के मध्य सुरक्षात्मक अवरोध के रूप में विद्यमान रहते हैं। इन पर्वतीय प्रदेशों में प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण सर्वोच्च पर्वतशिखरों को मिलाने वाली सीधी रेखा के आधार पर, जल विभाजक रेखाओं के आधार पर एवं पर्वतश्रेणियों की तलहटी रेखा के आधार पर किया जाना है। अपनी अगम्यता एवं जटिल संरचना के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में सीमांकन का कार्य काफी कठिन एवं कष्टसाध्य होता है। अनवरत अपरदन के कारण जल विभाजकों की स्थिति परिवर्तनशील होती है, इसलिए कभी-कभी जल विभाजकों के आधार पर निर्धारित सीमाएँ दोनों राजनीतिक इकाइयों के मध्य सीमा-विवाद का कारण बन जाती है। प्रायः यह देखा गया है कि अगम्य पर्वतीय क्षेत्रों में पर्वतीय सीमा धरातल क्षेत्र के पूर्ण अध्ययन के बिना सीमांकित कर दी जाती है जो आगे जाकर भविष्य में विवाद का कारण बनती है। थॉमस होल्डिच (1916) ने ऐसी पर्वतीय सीमाओं को **'Enveloped a cloud of conjecture'** अर्थात् अनुमान के बादल में लपेटी हुई सीमा की संज्ञा दी है। फिर भी होल्डिच ने पर्वतीय सीमाओं को **"the most lasting the most unmistakable and the most efficient as a barrier"** अर्थात् सर्वाधिक स्थाई सीमा की संज्ञा दी है। फ्रांस-स्पेन के मध्य 'पिरेनीज पर्वत श्रेणी के सहारे स्थित पर्वतीय सीमा रेखा ऐसी सर्वाधिक स्थाई सीमा का बेहतरीन उदाहरण है, (चित्र संख्या- 3.1) जबकि पूर्वी हिमालय क्षेत्र में ब्रिटिश भारत तथा तिब्बत (जिसे बाद में चीन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत अधिग्रहीत कर लिया) के बीच 'मैक मोहन रेखा' (**Mac Mahon Line**) जो 1914 में ग्रेट ब्रिटेन, तिब्बत एवं चीन द्वारा हस्ताक्षरित एक समझौते के द्वारा मान्यता प्राप्त है, आज भारत और चीन के बीच एक लम्बे अर्से से विवाद का विषय बनी हुई है।



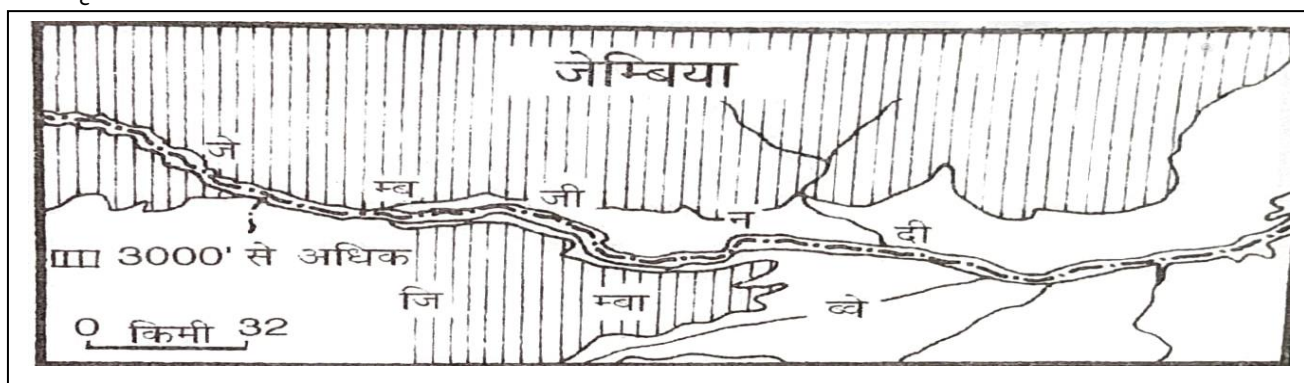
चित्र संख्या—

- (ब) नदी सीमा (**River Boundary**) – नदियाँ भूदृश्य का स्थाई अंग हैं। पर्वतों एवं पहाड़ियों की अपेक्षा काफी संकीर्ण तथा लम्बवत् प्राकृतिक इकाइयों के रूप में धरातल पर प्रवाहित होती हैं। अपनी सैनिक तथा सामरिक सुविधाओं के साथ-साथ भूदृश्य के निरंतर तथा स्थाई आकृति के रूप में नदियाँ संरक्षित अवरोधक एवं पृथक्करण का कार्य करती हैं। मानचित्रों पर भी इनका सुस्पष्ट अंकन किया जा सकता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण नदियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राज्यों के मध्य सीमांकन का आधार रही हैं। नदियों के सहारे सीमाओं का निर्धारण मुख्यतः तीन प्रकार से होता है :— (i) नदी के दोनों किनारों से समान दूरी पर अवस्थित रेखा अर्थात् माधिका रेखा के सहारे, (ii) नौकागम्य चैनल का मध्य मार्ग अथवा घाटी रेखा (**Thalweg**) के सहारे (iii) नदी के किसी एक किनारे के सहारे। नदी सीमा निर्धारण भी इन तीनों अवस्थाओं में व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती हैं। उदाहरण के लिए माधिका रेखा

नदी तल को दो बराबर भागों में बाँटती है, न कि नदी जल के आयतन को। परिवहन योग्य नदी का मध्य भाग सर्पिल होने के कारण परिवर्तित होता रहता है और माध्यिका रेखा को कई बार काटता है। एक तट के सहारे भी सीमा रेखा व्यवहारिक नहीं, कारण कि इसके जल का उपयोग एक ओर सीमित हो जाता है। अगर नदी में एक विस्तृत बाढ़ का मैदान हो जल का आयतन परिवर्तनशील हो, नदी आकार सर्पिल हो, हर आने वाली बाढ़ के बाद उसके प्रवाह मार्ग में परिवर्तन की संभावना हो, तो उनके आधार पर खींची गई सीमाएं अत्यधिक परिवर्तनशील एवं अस्थिर होती हैं और विवादों को जन्म देती हैं।

उपरोक्त तमाम अवगुणों के बावजूद भी नदियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सीमाओं के रूप में विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए पराना नदी पराग्वे व अर्जेन्टाइना के मध्य सीमा रेखा बनाती है। जाम्बिया एवं जिम्बाब्वे के मध्य जेम्बेजी नदी सीमा बनाती है। (चित्र संख्या- 3.2)। सतलुज नदी भारत व पाकिस्तान के मध्य सीमा बनाती है। मेक्सिको व सं०रा० अमेरिका के बीच रियोग्रेन्डे नदी सीमा बनाती है। इसी तरह यूरोप में राइन नदी फ्रांस और जर्मनी के बीच सीमा रेखा का निर्धारण करती है। इस तरह से देखा जाय तो विश्व के लगभग सभी महाद्वीपों पर नदियों का अस्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के रूप में विद्यमान है। लेकिन इनकी स्वीकार्यता ज्यादा संतोषप्रद नहीं है। वर्तमान में बढ़ते आर्थिक विकास के कारण नदी बेसिन भी अब कार्यात्मक इकाई के रूप में विकसित हो गये हैं, परिणाम स्वरूप नदी सीमाओं के सहारे दोनो पड़ोसी राज्यों के मध्य विवाद बढ़े हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के नजदीक नदियों पर बनाए गए बड़े-बड़े कृत्रिम जलाशयों ने इन विवादों में और वृद्धि कर दी है। यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नदियों का स्वरूप किसी भी



चित्र संख्या-

राज्य व समाज के लिए 'संयुक्त' का रहा है, न कि विभक्तक का, जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के रूप में स्वीकार किए जाने पर उसका स्वरूप हो जाता है।

- (ब) **झील सीमा (Lake Boundary)** – नदियों के समान ही अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं झीलों से होकर भी गुजरती हैं। झीलों के जल स्तर लगभग समान रहने और किनारों पर भौगोलिक परिवर्तनों के न होने से झील सीमाएँ नदियों की तुलना में अधिक स्थिर होती हैं। झीलों के सीमा निर्धारण में भी मध्य रेखा सिद्धान्त को आधार माना जाता है। लेकिन मध्य रेखा की इस अवधारणा में भी अनेक प्रश्न खड़े होते हैं, जैसे – क्या मध्य रेखा झील को दो बराबर भागों में बाँटती है? या मध्य रेखा हर बिन्दु पर दोनों तटों से समान दूरी पर है? ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान दोनो सम्बन्धित राज्यों के मध्य द्विपक्षीय वार्ताओं द्वारा करके झीलों को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा का स्वरूप दिया जाता है। दोनो राज्यों के मध्य अच्छे राजनीतिक सम्बन्ध होने से झील सीमाएं प्रायः विवाद का कारण नहीं बनती जैसा कि संयुक्त रा०अमेरिका और कनाडा के मध्य देखा जाता है जहाँ दूरी, सुपीरियर, हँयूरन तथा ओन्टोरियो झीलों से इन दोनों देशों की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं गुजरती हैं, लेकिन उनके मध्य कोई विवाद नहीं है (चित्र संख्या- 3.3)। का पूर्वी अफ्रीका में समझौतों द्वारा झीलों की सीमा निश्चित की गई है। विक्टोरिया झील का सीमा रेखा के रूप में विभाजन यूगाण्डा, कीनिया और टांगानिका में असमान है जो मध्य रेखा पर आधारित नहीं है। यहाँ झील में सीमा रेखाओं को अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं के आधार पर सुनिश्चित किया गया है (चित्र संख्या- 3.4)।



चित्र संख्या—

द) जंगल, दलदल तथा मरुस्थलीय सीमाएँ (**forest, Swamp and Desert Boundaries**) – प्रायः जंगल, दलदल और मरुस्थलों का चयन सीमाओं के गठन के लिए तब किया जाता है, जब कोई दूसरा विकल्प नहीं रहता। अपनी जन विहीनता के कारण और मानव गतिशीलता को बाधित करने के कारण, इनका उपयोग पहले पड़ोसी राज्यों के मध्य सुरक्षात्मक एवं अवरोधक सीमान्तों के रूप में किया जाता था, लेकिन बढ़ते आर्थिक महत्व के कारण अब ये सीमाओं के गठन के लिए प्रयुक्त होने लगे हैं। भारत और पाकिस्तान के मध्य कच्छ कारण (दलदल) अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाता है। इसी तरह से पूर्वी यूरोप के अनेक भागों में जंगल सीमा निर्धारण में प्रयुक्त हुए हैं। फिनलैंड एवं रूस के मध्य, रूस और लिथुआनिया के मध्य और लिथुआनिया और पोलैंड के मध्य ये जंगल ही अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के निर्धारक हैं। सहारा का रेगिस्तान भी मानव इतिहास में काफी लम्बे काल से दो विपरीत संस्कृतियों (विशिष्ट अफ्रीकी संस्कृति एवं यूरोपीय प्रभाव युक्त भूमध्य सागरीय संस्कृति) के विभाजन की भूमिका निभाता चला आ रहा है।



चित्र संख्या—

(ii) मानव- भौगोलिक सीमाएँ (**Anthropogeographic Boundaries**) – मानव-भौगोलिक सीमा का तात्पर्य उस सीमा से है जिसका निर्धारण जाति, भाषा धर्म अथवा सांस्कृतिक वैभिन्न्य के आधार पर किया गया हो। इन सीमाओं के गठन का उद्देश्य क्षेत्रीय संगठन में एकरूपता लाना तथा राष्ट्रीय समुदायों के भौगोलिक राजनीतिक अभिव्यक्ति को वैधानिक स्वरूप प्रदान करना होता है। सैद्धांतिक रूप से इन सीमाओं का निर्धारण आसान होता है, लेकिन धरातल पर इनका अंकन बेहद कठिन होता है। कारण कि प्रजातीय या भाषाई समूह एकदम से एक-दूसरे से अलग नहीं होते, बल्कि दो समूहों के मध्य एक संक्रमण क्षेत्र होता है और इसी संक्रमण क्षेत्र में सीमांकन होता है। परिणाम स्वरूप दोनों ओर जनसंख्या का स्थानांतरण होता है, जैसा की 1947 पर धर्म के आधार पर किये गए भारत-पाकिस्तान विभाजन के बाद हुआ था। अधिकांश मामलों में ऐसी सीमाओं के निर्धारण से अल्प संख्यकों की समस्या उठ खड़ी होती है। सन् 1948 में इजराइल और उसने पड़ोसी अरब देशों के साथ सीमा निर्धारण धर्म के आधार पर किया गया था। वहाँ आज भी यहूदियों और फिलिस्तीनी मुस्लिम समुदाय के बीच संघर्ष की स्थिति बनी हुई है।

(iii) ज्यामितीय सीमाएँ (Geometrical Boundaries) – ज्यामितीय सीमा से तात्पर्य उस सीमा रेखा से है जिसका निर्धारण दो बिन्दुओं के मध्य न्यूनतम दूरी को मिलाने वाली सीधी या ऋजु रेखा के रूप में होता है। या अक्षांश रेखाओं के सहारे पूर्व-पश्चिम दिशा में होता है, या देशान्तर रेखाओं के सहारे उत्तर-दक्षिण दिशा में होता है, या फिर जिनका निर्धारण वृत्तों के चापों के सहारे होता है। वृत्तों के ये चाप किसी माने हुए केन्द्र बिन्दु से कम्पास की सहायता से खींचे जाते हैं। इसे चापाकार सीमा रेखा कहते हैं। ऐसी विभिन्न स्वरूप वाली ज्यामितीय सीमाएं विश्व के अनेक राज्यों के मध्य निर्धारित की गई हैं (चित्र संख्या- 3.5 एवं 3.6)। मैक्सिको तथा सं०रा० अमेरिका के मध्य की सीमा ऋजु (सीधी) रेखीय ज्यामितीय सीमा का बेहतर उदाहरण है। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के मध्य लगभग 2100 किमी० की लम्बाई में 49° उत्तरी अक्षांश के सहारे निर्धारित सीमा अक्षांशीय ज्यामितीय सीमा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। देशान्तर रेखा के सहारे निर्धारित सीमा का श्रेष्ठ उदाहरण अलास्का तथा कनाडा के मध्य 141° प० देशान्तर है। प० अफ्रीका में गैम्बिया की सीमा चापाकार ज्यामितीय सीमा के वर्ग में आती है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ज्यामितीय सीमाएँ न तो भौतिक तथ्यों पर आधारित होती हैं और न ही मानवीय तथ्यों पर वास्तव में घरातल पर अंकित ये ज्यामितीय सीमाएँ विभिन्न राज्यों के प्रभाव क्षेत्र को विभाजित करने वाली सीमा रेखाओं के रूप में अस्तित्व में रही है। मूलतः ये साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक युग की देन है। मूडी के अनुसार यूरोप जैसे क्षेत्र में ऐसी सीमाएँ संतोषजनक विकल्प नहीं हो सकती।



चित्र 3.5: अक्षांशीय सीमा

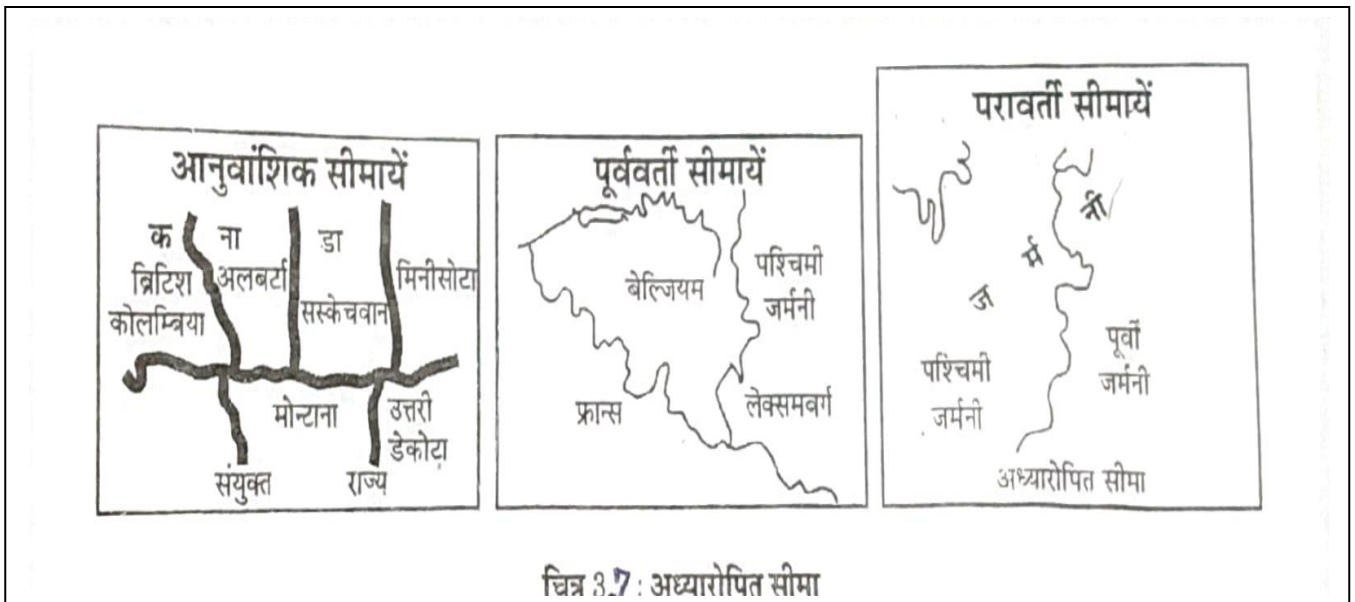


चित्र 3.6: ज्यामितीय सीमा रेखाएँ

- (iv) **संश्लिष्ट सीमाएँ (Complex Boundaries)** :- वे सीमाएँ जिनके निर्धारण में भू-आकृतिक, मानव-भौगोलिक एवं ज्यामितीय जैसे अनेक कारकों का योगदान होता है, उन्हें संश्लिष्ट अथवा मिश्रित सीमा कहा जाता है। एच०डी० ब्लिज (1967) ऐसी सीमाओं को **(Intermediate Boundaries)** की संज्ञा दी है। इस प्रकार की सीमाएँ अमेज़न घाटी में ब्राजील के समीपवर्ती देशों के मध्य तथा ट्यूनीशिया अल्जीरिया के मध्य दृष्टिगोचर होती हैं।

3.11.2 सीमाओं का आनुवंशिक या कार्यात्मक वर्गीकरण **(Genetic or functional Classification of Boundaries)** –

रिचर्ड हार्टशोन ने 1936 में एसोसिएन ऑफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स के तत्वावधान में प्रस्तुत किए गए अपने प्रपत्र **‘Suggestions on the Terminology of Political Boundaries’** (राजनीतिक सीमाओं के शब्दावली संबंधी सुझाव) में सीमांकन के समय सीमा तथा सांस्कृतिक भूदृश्य के मध्य सम्बन्धों के आधार पर यह वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। भौतिक भूगोल के नदी प्रणाली के विकास के आधार पर इन सीमाओं का नामकरण किया गया है। वर्गीकरण की इस योजना के अन्तर्गत सीमाओं को निम्नलिखित 4 वर्गों में विभाजित किया गया है। (चित्र संख्या- 3.7)



- (i) **पूर्ववर्ती सीमाएँ (Antecedent Boundaries)** - धरातल पर सांस्कृतिक प्रारूपों के विकास से पूर्व निर्धारित तथा गठित की गई सीमाएँ पूर्ववर्ती सीमाएँ कहलाती हैं। प्रतिद्वन्द्वी औपनिवेशिक शक्तियों के मध्य पारस्परिक सहमति, वार्तालाप एवं समझौते के आधार पर प्रायः निर्जन क्षेत्रों में गठित की गई ये सीमाएँ प्रारंभ से ही स्थिर, शान्त एवं सफल रही हैं। पूर्ववर्ती सीमा का सर्वोत्तम उदाहरण सं०रा० अमेरिका एवं कनाडा की सीमा है जिसका निर्धारण 1782 एवं 1846 के समझौते के आधार पर किया गया था।
- (ii) **परावर्ती सीमाएँ (Subsequent Boundaries)** - सांस्कृतिक भूमध्यों के सभी मुख्य तथा गौण तत्वों के विकास के पश्चात अस्तित्व में आने वाली सीमाएँ जो अनेक बार भाषा, धर्म, प्रजाति तथा संस्कृति के आधार पर गठित होती हैं। परावर्ती सीमाएँ कहलाती हैं। ये सीमाएँ मुख्य सांस्कृतिक प्रदेश के भौगोलिक विभाजनों से सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार की अनेक सीमाएँ यूरोप में हैं जो भाषाई पृथक्ता को स्पष्ट करती हैं। भारत-पाकिस्तान की सीमा एक परावर्ती सीमा ही है। राष्ट्रीय राज्यों के उदय के बाद परावर्ती सीमाओं प्रचलन बढ़ा है। डी ब्लिज (1972) के अनुसार 'यह आवश्यक नहीं कि सभी परावर्ती सीमाओं तथा सांस्कृ

तिक प्रारूपों में सामंजस्य पाया जाय। स्विट्जरलैंड इसका उदाहरण है।

- (iii) अध्यारोपित सीमाएं (**Superimposed Boundaries**) – परवर्ती सीमा के समान ही अध्यारोपित सीमाओं का विकास भी सांस्कृतिक भूदृश्यों के पूर्ण विकास के बाद ही होता है। ये सीमाएं सांस्कृतिक वातावरण से समता न रखते हुए उन पर आरोपित होती है, तथा एक ही जाति, भाषा, धर्म के लोगों को विभाजित करती है। धाना, तोगोलैंड, नाइजीरिया, सोमाली गणराज्य, के मरून, कांगों, अंगोला आदि की सीमा एक ही समुदाय के लोगों को विभाजित करती है। अध्यारोपित सीमा में युद्ध विराम रेखा (**Truce Line**) भी सम्मिलित की जाती है।
- (iv) अवशिष्ट सीमाएं (**Relict Boundaries**) :- अवशिष्ट सीमाओं से तात्पर्य उन सीमाओं से है, जो वर्तमान में अपना राजनीतिक महत्व खो चुकी है, लेकिन सांस्कृतिक वातावरण में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इन सीमाओं को खण्डहर, प्रासाद, स्थान नाम भवनों के वास्तुशिल्प, सांस्कृतिक अवशेष आदि के आधार पर पहचाना जा सकता है। बालून प्रायद्वीप में टर्की की वास्तुकला का प्रमाण प्राचीन सीमा को दर्शाता है।
- 3.11.3 जे०डी०नीस्टेन (1966) का सीमा वर्गीकरण – जॉन नीस्टेन ने 1966 में अपनी पुस्तक '**Boundary Shapes and Boundary Problems**' में सीमाओं का एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस वर्गीकरण का आधार उन्होंने क्षेत्र के कार्यकलापों पर सीमाओं का प्रभाव माना है। इस आधार पर सीमाओं के तीन उपविभाग उन्होंने निर्धारित किए हैं—

- (i) अवशोषी सीमाएं (**Absorbing Boundaries**) – ये वे सीमाएं हैं जो शक्तियों का शोषण करने की प्रवृत्ति रखती हैं। ये कम कार्य भी सीमाएं होती हैं।
- (ii) परावर्ती सीमाएं (**Reflecting Boundaries**) – ये क्षेत्र में पुनः क्रियाशीलता लाने वाली सीमाएं होती हैं जिनकी शक्ति की मात्रा में दिशा बदलने पर भी कमी नहीं आती।
- (vii) प्रवेश्य सीमाएं (**Permeable Boundaries**) – ये वे सीमाएं होती हैं जिन तक शक्ति का कोई अंश उस तक छनकर अथवा प्रच्छन्न पद्धति से पहुंचता है।

3.11.4 एच० डब्ल्यू० वीगटे का सीमा वर्गीकरण : इनके अनुसार सीमाएं के तीन उपविभाग हैं—

- (i) तथ्येय मान्यता अर्थात् डी फेक्टो (**de facto**) सीमाएँ – ये वे सीमाएं होती हैं जो किसी एक राज्य द्वारा मान्य नहीं होतीं, जैसे भारत-चीन सीमा।
- (ii) कानूनी अधिकार वाली सीमाएं अर्थात् डी ज्योर (**de jure**) सीमाएँ – ये वे सीमाएं होती हैं जो पड़ोसी राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होती है, सं०रा०अ० द्वारा निर्धारित बाल्टिक देशों की सीमाएं।
- (iii) कल्पित अथवा फिक्टीशियस (**Fictitious**) सीमाएँ – ये वे सीमाएं होती हैं जो मानचित्र पर तो प्रदर्शित की जाती हैं, किन्तु धरातल पर उनका अस्तित्व नहीं होता, जैसा 1939 की जर्मन पोलैंड सीमा।

3.12 सीमाओं के कार्य (functions of Boundaries)

सीमाएं मानचित्र पर अंकित रेखाएं मात्र नहीं हैं, वरन् जब ये घरातल पर दो राज्यों के मध्य अस्तित्व ग्रहण करती हैं तो प्रमुखतः तीन प्रकार के कार्य सम्पादित करती हैं—

1. सुरक्षात्मक कार्य (**Defence function**) – सीमा राज्य की परिधि होती है, अतः एक सुरक्षा रेखा के रूप में सीमा का स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किसी राज्य का अस्तित्व सीमा सुरक्षा पर ही निर्भर होता है और यह तब और आवश्यक हो जाता है, जब पड़ोसी राज्य शत्रुता रखता हो।
2. अवरोधक कार्य (**Barrier Function**) – एन० कार्लसन (1958) अनुसार— अंतर्राष्ट्रीय सीमा मनुष्यों, वस्तुओं और मशीनों की गति को रोकने में विशाल महासागरों, ऊँचे पर्वतों तथा सर्वाधिक शुष्क मरुस्थल से भी अधिक प्रभावशाली है। सीमा अवरोधक का चरम स्वरूप लौह आवरण (**iron curtain**) के रूप में मिलता है, जिसमें मानव या वस्तुएं नहीं अपितु मानव विचार भी अप्रवेश्य होते हैं। जैसा कि पूर्व सोवियत संघ ने किया है।

2. कानूनी कार्य (**Legal functions**) – सीमा किसी राजा की वह परिधि भी है जहाँ तक राज्य के कानून लागू रहते हैं। और उन्हीं कानूनों के अनुसार प्रत्येक नागरिक को राज्य की शासन प्रणाली का अनुपालन करना होता है।

3.

उपरोक्त के अलावा भी सीमाएं निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती हैं—

- सीमाएं पृथक्कारी कारक है तथा इनका प्रभाव विघटनकारी होता है।
- सीमाएं दो या दो से अधिक भिन्न आर्थिक व्यवस्था वाली इकाइयों के सम्पर्क स्थल का कार्य भी करती है।
- बोगस (**Boggs**) के अनुसार – सीमाओं का कार्य नकारात्मक होता है, न कि सकारात्मक।
- डी ब्लिज के अनुसार – 'क्षेत्रीय अलंघ्यता के एक चिन्ह के रूप में सीमाएं आज भी महत्वपूर्ण है।
- कैस्पर्सन तथा मिंघी के अनुसार – 'सीमाएं क्षेत्रीय सम्प्रभुता के पृथक्करण का कार्य करती है।
- एस०बी० जोन्स (1945) के अनुसार – 'सीमाओं के कार्यों की सूची मानव कार्यों की सूची की ही पुनरावृत्ति है।

3.13 सीमा विवाद (Boundary Disputes)

जे०आ०वी० प्रेस्कॉट (1978) ने सीमा विवादों को चार वर्गों में विभक्त किया है –

- (1) क्षेत्रीय सीमा विवाद – वास्तविक आधार के बगैर जब एक राज्य दूसरे राज्य के स्थल अथवा जल भाग पर अपना दावा व्यक्त करता है, तो जो विवाद उत्पन्न होता है, उसे क्षेत्रीय सीमा विवाद कहते हैं। जैसे चीन ने भारत के लद्दाख एवं अरुणाचल प्रदेश पर अपना दावा व्यक्त कर रखा है। भारत-पाकिस्तान के मध्य उत्पन्न सियाचिन विवाद एक क्षेत्रीय सीमा विवाद ही है जो सियाचिन क्षेत्र के सामरिक महत्व के बढ़ने पर उत्पन्न हुआ है।
- (2) स्थिति सम्बन्धी विवाद – जब सीमा की परिभाषा और सीमा के गठन में असंगति रहती है, तब दो राज्यों के मध्य स्थिति सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होते हैं। भारत-चीन सीमा विवाद इसी श्रेणी का विवाद है। ऐसी सीमाएं सामान्यतया पूर्ववर्ती होती है जहाँ विवाद का मूलकारण सीमा का सांस्कृतिक भू-दृश्य पर आरोपित होना होता है।
- (3) कार्यात्मक सीमा विवाद – राज्य के राजनीतिक सीमाओं के कार्यों के सम्बन्ध में एक तरफ निर्णय लेने से उत्पन्न विवाद कार्यात्मक सीमा विवाद की श्रेणी में आते हैं। सीमा की दूसरे राज्य के लिए बन्द कर देना भी ऐसे ही विवादों की श्रेणी में आता है, विशेषकर स्थल आवृत राज्यों के लिए।
- (4) संसाधन सम्बन्धी विवाद – पड़ोसी राज्यों के मध्य ऐसे सीमा सम्बन्धी विवाद कई कारणों से उत्पन्न होते हैं, जैसे जलविद्युत उत्पादन एवं सिंचाई हेतु नदी जल बंटवारा (पाकिस्तान- भारत के मध्य सिन्धु नदी जल विवाद), खनिज तेल प्राप्ति (इराक-कुवैत के मध्य खनिज तेल उत्पादन विवाद) मछली पकड़ने के क्षेत्र को लेकर उत्पन्न विवाद आदि।

सीमा सम्बन्धी विवादों की तीक्ष्णता को रेखांकित करते हुए लार्ड कर्जन ने ठीक ही कहा था— सीमाएं वास्तव में रेजर की धार के समान है जिनपर वर्तमान युद्ध या शांति अथवा "राष्ट्रों के जीवन और मृत्यु का प्रश्न लटका रहता है।'

3.14 सीमान्त तथा सीमा में अन्तर (DIFFERENCE BETWEEN FRONTIER AND BOUNDARY)

सामान्यतया राजनीतिक विमर्श में "सीमान्त और सीमा दोनों ही शब्द पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु राजनीतिक भूगोल में दोनों का अलग-अलग अर्थों में प्रयोग करना आवश्यक है। कारण कि इनके अर्थों में पर्याप्त भिन्नता है। एल०के०डी० क्रिस्टोफर (1959: The Nature of frontiers and Boundaries) ए०ई०मूडी (1963: Geography behind Politics) ने सीमान्त एवं सीमा में निम्न अंतर बताए हैं—

सीमान्त (विशेषताएँ)	सीमा (विशेषताएँ)
1. सीमान्त की क्षेत्रीय प्रकृति होती है;	1. सीमा की रेखीय प्रकृति होती है;
2. सीमान्त को प्राकृतिक माना जाता है	2. सीमाओं को कृत्रिम माना जाता है;
3. सीमान्त एक संयुक्तक तत्व होती है;	3. सीमाओं एक विच्छेदक तत्व होती है;
4. सीमान्त की प्रकृति 'Outer Driented' होती है;	4. सीमा की प्रकृति 'Inner Oriented' होती है;
5. सीमान्त उपकेन्द्रीय बल का प्रतिनिधित्व करते हैं;	5. सीमा अभिकेन्द्रीय बल की प्रतिनिधि है;
6. सीमान्त प्रदेश प्राकृतिक क्षेत्रीय इकाइयों के बीच संक्रमण (Trasition) के परिचायक है;	6. सीमाएं राजनीतिक इकाइयों के बीच अवस्थांतरण का प्रतिनिधित्व करती हैं;
7. क्षेत्रीय विस्तार होने के कारण सीमान्त में मानवीय साधन भी होते हैं और जनसंख्या भी निवास करती है;	7. सीमा मात्र रेखा होने के कारण यहाँ न मानवीय साधन हो सकते हैं और न ही जनसंख्या;
8. सीमावर्ती प्रदेश वास्तविकता हैं (रैट्जेल,1897)	8. सीमा रेखा उसका संक्षिप्त स्वरूप है (रैट्जेल,1897)
9. सीमान्त खतरे का स्रोत होता है;	9. सीमाएं रेजर की धार के समान तीक्ष्ण होती हैं;
10. सीमान्त अतीत की याद दिलाते हैं;	10. सीमाएं वर्तमान व्यवस्था की अभिन्न अंग हैं;
11. सीमान्त अपरिवर्तनीय स्थिति के परिचालक थे;	11. सीमाएं स्वभाव से ही परिवर्तनशील हैं;
12. सीमान्त न तो वैधानिक संकल्पना और न ही राजनीतिक संकल्पना को प्रकट करती है;	12. सीमाएं हमेशा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों से निर्धारित होती हैं;
13. सीमान्त प्राकृतिक हों या मानव-भौगोलिक, इनमें गति नहीं पाई जाती है;	13. सीमाएं परिवर्तनशील घटना हैं तथा काफी गतिशील होती हैं;
14. सीमान्तों के कार्य में ढीलापन होता है;	14. सीमाओं के कार्य में सख्ती होती है।
15. सीमान्त मानव जीवन का जैविक युद्ध क्षेत्र है (हाउशोफर)	15. सीमा उस युद्ध क्षेत्र का सिर्फ युद्ध विराम (हाउशोफर)

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सीमान्त तथा सीमा में अर्थ एवं वैशिष्ट्य में भिन्नता होते हुए भी दोनों एक ही विकास प्रक्रिया के दो क्रम बद्ध चरणों के परिचायक हैं।

अतः जो पहले कभी सीमान्त था, वही आज संकुचित होकर सीमा बन गया है। आज सीमान्त प्रायः अन्तस्थ राज्य की भूमिका में आ गए हैं, जबकि समसामयिक विश्व में सीमाएं सामान्य हो गई हैं।

3.15 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि राज्य की संरचना में सीमान्त और सीमाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सीमान्त वास्तव में एक मानव रहित क्षेत्र होता है, जिसकी न तो कोई वैधानिक संकल्पना होती है और न ही कोई राजनीतिक या बौद्धिक संकल्पना होती है। यह मूलतः एक प्राकृतिक संकल्पना होती है जिसकी भौगोलिक स्थिति दो प्रतिद्वन्दी शक्तियों के विस्तार को संतुलित करती है। इस इकाई के अध्ययन से आपने यह भी ज्ञान प्राप्त किया कि सीमान्त का सीमा में परिवर्तन कोई आकस्मिक घटना नहीं होती, बल्कि यह परिवर्तन मूलतः क्रमिक विकास का प्रतिफल होता है। सीमान्त की अपेक्षा सीमा एक विभाजक रेखा होती है जो एक राज्य के अधिकार क्षेत्र को दूसरे राज्य के अधिकार क्षेत्र से अलग करती है। निश्चय ही इस इकाई के अध्ययन से आपको सीमाओं की अवधारणा, विकास, वर्गीकरण और सीमाओं के कार्य आदि जानने में सहायता मिली होगी और यह भी पूर्णतः स्पष्ट हो गया होगा कि सीमान्त और सीमा में मूलभूत अन्तर क्या है निःसंदेह सीमा विवादों की प्रकृति के अध्ययन ने इस इकाई को पूर्णता प्रदान की है।

3.16 शब्दसूची

सीमान्त	Frontier	सीमा	Boundary
मानव रहित क्षेत्र	No Man's Land	पैबंदकारी	Patch work
अध्यारोपित	Superimposed	मानव-भौगोलिक	Anthropogeographic
तथ्येन मान्यता	Defacto	ज्यामितीय	Geometric
अवशोषी	Absorbing	संश्लिष्ट	Complex
प्रवेश्य	Permeable	पूर्ववर्ती	Antecedent
अवरोधक	Barrier	परवर्ती	Subsequent

3.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्व मूल्यांकन प्रश्न –

1. सीमा कार्य करती है—

(अ) कानूनी (ब) अवरोधक (स) सुरक्षात्मक (द) उपरोक्त सभी

2. सीमान्त होता है —

(अ) संक्रान्ति प्रदेश (ब) अग्र प्रदेश (स) मानव रहित क्षेत्र (द) उपरोक्त सभी

3. कनाडा व सं०रा० अमेरिका की सीमा किस अक्षांश के सहारे है?

(अ) 49° उ० अक्षांश (ब) 39° उ० अक्षांश (स) २०° उ० अक्षांश (द) 59° उ० अक्षांश

4. अनेक कारकों से निर्धारित सीमाएं कहलाती हैं—

(अ) ज्यामितीय सीमाएँ (ब) संश्लिष्ट सीमाएँ (स) सांस्कृतिक सीमाएँ (द) प्रजातीय सीमाएँ

5. सीमाओं की प्रकृति होती है—

(अ) रेखीय (ब) विच्छेदक (स) परिवर्तनशील (द) उक्त सभी

आदर्श उत्तर—

1. (द); 2. (द); 3. (अ); 4. (ब); 5. (द);

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Boggs, S.W., (1940): 'International Boundaries: A study of Boundary Functions and Problems', Columbia u. Press, New York.

Colson, L., (1958): 'Geography and World Politics', Prentice Hall, Inc. Englewood Cliffs, N.J. 534 pp.

De Blij, H.J., (1967): 'Systematic Political Geography', Wiley, New York.

Goblet, Y.M., (1956) : 'Political Geography and the World Map', George Philip & Sons Ltd., London.

Haldich, Sir T.H., (1916) : 'Political Frontiers and Boundary Making'. London, Macmillan.

Jones, s.B., (1959) : 'Boundary Concepts in the setting of Place and Time', A. A.A. Geogr. 3, pp.241-255.

Kristof, L.K.D., (1959) : 'The Nature of Frontiers and Boundaries, A. A.A. Geogr., Vol. 49, No. 3.

Moodie, A.F., (1957) : 'Geography Behind Politics', H.U.Library, London.

Nystuen, J.D., (1966) : 'Boundary shape and Boundary Problems', fourth N.A.P.R. Conference-Society Papers7, Chicago, pp, 108-128.

Pounds, N.J.G. (1951) : 'Origin of the Idea of the Natural Frontiers in France', A.A.A. Geogs, Vol. 41, pp. 146-157.

Spykman, N.J., (1944) : 'The Geography of Peace', Hart Court Brass and World], New York.

3.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. सीमान्त की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
2. सीमा के प्रमुख कार्य क्या हैं?
3. अध्यारोपित सीमा किसे कहते हैं?
4. कार्यात्मक सीमा विवाद क्या है?
5. सीमा और सीमान्त में अन्तर बताइए।

इकाई—04 राज्य की संरचना, मूल क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 प्रस्तावना
- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 विषय प्रवेश
- 4.3 राज्य की क्षेत्रीय संरचना
 - 4.3.1 अवस्थिति
 - 4.3.1.1 खगोलीय अवस्थिति
 - 4.3.1.2 सापेक्षिक अवस्थिति
 - 4.3.1.3 परिवेशी अवस्थिति
 - 4.3.1.4 सामरिक अवस्थिति
 - 4.3.1.5 केन्द्रीय तथा पारधीय अवस्थिति
 - 4.3.1.6 अंतस्थ राज्य
 - 4.3.2 आकार
 - 4.3.2.1 आकार (विस्तार) के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण
 - 4.3.2.2 राज्यों का सामान्य वर्गीकरण
 - 4.3.3 आकृति
 - 4.3.3.1 आकृति के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण
 - 4.3.3.2 राज्यों के कुछ अन्य विशिष्ट आकार
- 4.4 राज्य की स्थानिक संरचना
 - 4.4.1 राज्य की स्थानिक संरचना के मुख्य अंग
 - 4.4.2 राज्य की स्थानिक संरचना के गौण अंग
- 4.5 मूल (क्रोड़) क्षेत्र
 - 4.5.1 मूल (क्रोड़) क्षेत्र की संकल्पना
 - 4.5.2 मूल (क्रोड़) क्षेत्र की संकल्पना के पक्ष
 - 4.5.3 मूल (क्रोड़) क्षेत्र के प्रकार
 - 4.5.4 राजनीतिक भूगोल के अध्ययन में मूल (क्रोड़) क्षेत्र का महत्व
- 4.6 सारांश
- 4.7 शब्दसूची

- 4.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 4.9 सन्दर्भ अन्य सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

4.0. प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम की यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में आप राज्य संरचना और मूल क्षेत्र का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः एक क्षेत्रीय राजनीतिक इकाई होने के नाते राज्य की संरचना कुछ तत्वों के संयोग पर निर्भर करती है। इन तत्वों में राज्य की अवस्थिति आकार और आकृति अपना विशेष महत्व रखती है। राज्य की स्थानिक संरचना में ये तत्व भले ही किसी राज्य के राजनीतिक स्थायित्व में निर्णायक भूमिका न निभाते हों लेकिन राज्य विशेष की क्रियाशीलता को समझने और उसके संस्थानात्मक स्वरूप को जानने के लिए इन तत्वों का विस्तार से अध्ययन आपके लिए आवश्यक है। मूल क्षेत्र के अध्ययन को भी इस इकाई में सम्मिलित किया गया है। राज्य के विकास प्रक्रिया को समझने के लिए राजनीतिक भूगोल के अध्येता को मूल क्षेत्र का भी अध्ययन करना चाहिए, कारण कि मूल क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य का वह श्रेष्ठतम तथा सार्वभौम क्षेत्र होता है जहाँ से राज्य की स्वाभाविक व सामान्य विकास प्रक्रिया प्रारंभ होती है। मूल क्षेत्र की संकल्पना का गहराई से अध्ययन निश्चय ही आपके राजनीतिक-भौगोलिक ज्ञान में अभिवृद्धि करेगा।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. राज्य की संरचना को गहराई से समझना;
2. राज्य की संरचना में अवस्थिति, आकार और आकृति के महत्व का मूल्यांकन करना;
3. दो शक्तिशाली राज्यों के मध्य अंतरस्थ राज्य की महत्ता को स्पष्ट करना;
4. राज्य की स्थानिक संरचना के मुख्य और गौण अंगों का मूल्यांकन करना; तथा
5. मूल क्षेत्र के अध्ययन के माध्यम से राज्य के विकास की प्रक्रिया को समझना।

4.2 विषय प्रवेश

राज्य मूलतः एक क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनात्मक इकाई है। एक क्षेत्रीय-राजनीतिक इकाई होने के नाते राज्य की संरचना कुछ तत्वों के संयोग पर निर्भर करती है। इन तत्वों में राज्य का नामीय प्रोङ्ग, उसका भौगोलिक विस्तार तथा सीमाएं, प्रशासनिक खण्ड एवं उनकी व्यवस्था, असुरक्षित भाग, समस्यामूलक क्षेत्र, राजधानी, सामरिक महत्व के क्षेत्र, जनसंख्या, अर्थ एवं संचार व्यवस्था जैसे तत्व राज्य की संरचना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य संरचना के ये तत्व भले ही किसी राज्य के राजनीतिक स्थायित्व में निर्णायक भूमिका न निभाते हों, लेकिन राज्य विशेष की क्रियाशीलता को समझने और उसके संरचनात्मक स्वरूप को जानने के लिए राजनीतिक भूगोल की परिधि में इन तत्वों का अध्ययन आवश्यक है। इसके अलावा रक्त सम्बन्ध, धर्म, सम्पत्ति अर्थात् आर्थिक अवस्थाएं, युद्ध और राजनीतिक चेतना जैसे और तत्व भी हैं जो राज्य के निर्माण एवं संरचना में अपना योगदान देते हैं। राज्य के निर्माण एवं संरचना में सहयोगी इन तमाम तत्वों के संयोग पर आधारित कुछ सिद्धान्त (जैसे—दैवी सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त, सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त, आनुवंशिक सिद्धान्त, विकासवादी सिद्धान्त) भी उभर कर आए हैं, जो राज्यों की उत्पत्ति, निर्माण एवं संरचना का विश्लेषण करते हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय में राज्य की संरचना को गहराई से समझने के लिए इन तत्वों के अध्ययन एवं सिद्धान्तों के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

4.3 राज्य की क्षेत्रीय संरचना

किसी राज्य की क्षेत्रीय संरचना के अध्ययन के लिए जब हम उद्यत होते हैं, तो सर्वप्रथम हमारे मस्तिष्क में तीन प्रश्न उठते हैं — (i) राज्य कहाँ स्थित है? (ii) राज्य कितना बड़ा है? एवं (iii) राज्य की आकृति कैसी

है? इन तीनों प्रश्नों का सम्बन्ध क्रमशः राज्य की अवस्थिति, राज्य के आकार और उसकी 'आकृति' से है। ये तीनों कारक भौगोलिक हैं और स्वभाव से प्राकृतिक हैं। राज्य की क्षेत्रीय संरचना और उसकी राजनीतिक नियति काफी हद तक इन कारकों की समन्वित भूमिका पर निर्भर करती है। कभी अवस्थिति महत्वपूर्ण होती है, कभी आकार महत्वपूर्ण हो जाता है तो कभी आकृति महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः राज्य की संरचना एवं उसके राजनीतिक महत्व की दृष्टि से राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के इन तीन प्राकृतिक पक्षों (अवस्थिति, आकार एवं आकृति) का मूल्यांकन आवश्यक है।

4.3.1 अवस्थिति (Location)

राज्य की भौतिक संरचना में उसकी अवस्थिति एक महत्वपूर्ण कारक होती है, कारण कि अवस्थिति से यह स्पष्ट होता है कि वह राज्य ग्लोब पर कहाँ पर स्थित है। राजनीतिक भूगोल में आधुनिक राजनीतिक समस्याओं को समझने और उनके निराकरण के लिए तथा सामरिक रणनीति निर्धारण के लिए राज्य की सापेक्षिक स्थिति का ज्ञान अति आवश्यक है। यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी राज्य की अवस्थिति में किसी भी प्रकार का बदलाव संभव नहीं है, परन्तु समय के साथ उसका सापेक्षिक महत्व परिवर्तनशील होता है। सापेक्षिक महत्व की इसी परिवर्तनशीलता के कारण कोई राज्य अपनी प्रगति एवं विकास में कभी ऊर्ध्वगामी हो जाता है, तो कभी अधोगामी हो जाता है। इसके महत्व को रेखांकित करते हुए फ्रांसीसी कूटनीतिज्ञ जूल कार्बोन (Jules Carbon) ने कहा था कि किसी राज्य की विदेश नीति, वास्तव में उस राज्य की भौगोलिक अवस्थिति की प्रतिबिम्ब होती है एवं भौगोलिक अवस्थिति राज्य को किसी विशेष प्रकार की विदेश नीति अपनाने का तर्क संगत आधार प्रस्तुत करती है।

राज्य की अवस्थिति का वर्णन मूलतः तीन प्रकार से किया जा सकता है –

1. खगोलीय अवस्थिति; पार्थिव ग्लोब के सन्दर्भ में इसे निरपेक्ष अवस्थिति भी कहते हैं।
2. सापेक्षिक अवस्थिति; इसमें जल एवं स्थल खण्डों के वितरण के सन्दर्भ में राज्य की अवस्थिति का आंकलन किया जाता है।
3. परिवेधी अवस्थिति; इसे पड़ोसी राज्यों के सन्दर्भ में व्यक्त किया जाता है।

राज्यों की संरचना के सन्दर्भ में भौगोलिक अवस्थिति के दो अन्य प्रकार भी महत्वपूर्ण हैं –

(अ) सामरिक अवस्थिति (ब) केन्द्रीय एवं परिधीय अवस्थिति

4.3.1.1 खगोलीय अवस्थिति (Astronomical Location) –

खगोलीय स्थिति किसी राज्य की भूमंडलीय (Global) स्थिति का आभास देती है। इसे अक्षांश और देशान्तर विस्तार के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसे ज्यामितीय अवस्थिति भी कहते हैं जो गणित के माध्यम से परिकलित की जाती है। किसी राज्य या राजनीतिक क्षेत्र की खगोलीय अवस्थिति बहुत हद तक वहाँ की जलवायु की विशेषताओं के निर्धारण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और जलवायु वहाँ के निवासियों की जीवन पद्धति और उनके आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों में प्रमुख है। पुरातन संस्कृतियों के अभ्युदय का इतिहास इस तथ्य का साक्ष्य है कि प्राचीन और मध्यकाल में जब मानव के पास तेज गर्मी और तेज सर्दी से बचाव के तरीके नहीं थे, तब उसका अस्तित्व प्राकृतिक व्यक्तियों (यथा—जलवायु) से परस्पर सामंजस्य पर ही निर्भर था। यही कारण है कि तत्कालीन संस्कृतियों का अभ्युदय उपोष्ण कटिबंधीय और अर्धमरुस्थलीय प्रदेशों में हुआ था। लेकिन आधुनिक युग में तकनीकी विकास के साथ मानव प्रगति में जलवायु के प्रभाव का स्वरूप बदल गया है। उसी का परिणाम है कि मध्य अक्षांशीय समशीतोष्ण जलवायु प्रदेशों में स्थित राज्य आज राजनीतिक प्रगति और आर्थिक सम्पन्नता में सबसे आगे निकल गए हैं और विकसित राज्यों की श्रेणी में आ गए हैं। लेकिन आज भी विश्व में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ दुर्घर्ष जलवायु के कारण मानव प्रगति और उसका आर्थिक—राजनीतिक विकास बेहद पिछड़ा हुआ है। विश्व के ध्रुवीय प्रदेशों और अति गर्म मरुस्थल खगोलीय अवस्थिति की प्रतिकूलता के कारण या तो निर्जन हैं, या यथास्थिति में हैं, भले ही वे विकसित राज्यों के भूभाग हो। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी राज्य की राजनीतिक शक्ति और संरचना उसकी ऊर्जा एवं तेजस्विता, मजबूती और प्रतिभा तथा आर्थिक शक्ति स्पष्टतया वहाँ की खगोलीय अवस्थिति जन्म जलवायु से सीधे सम्बन्धित है।

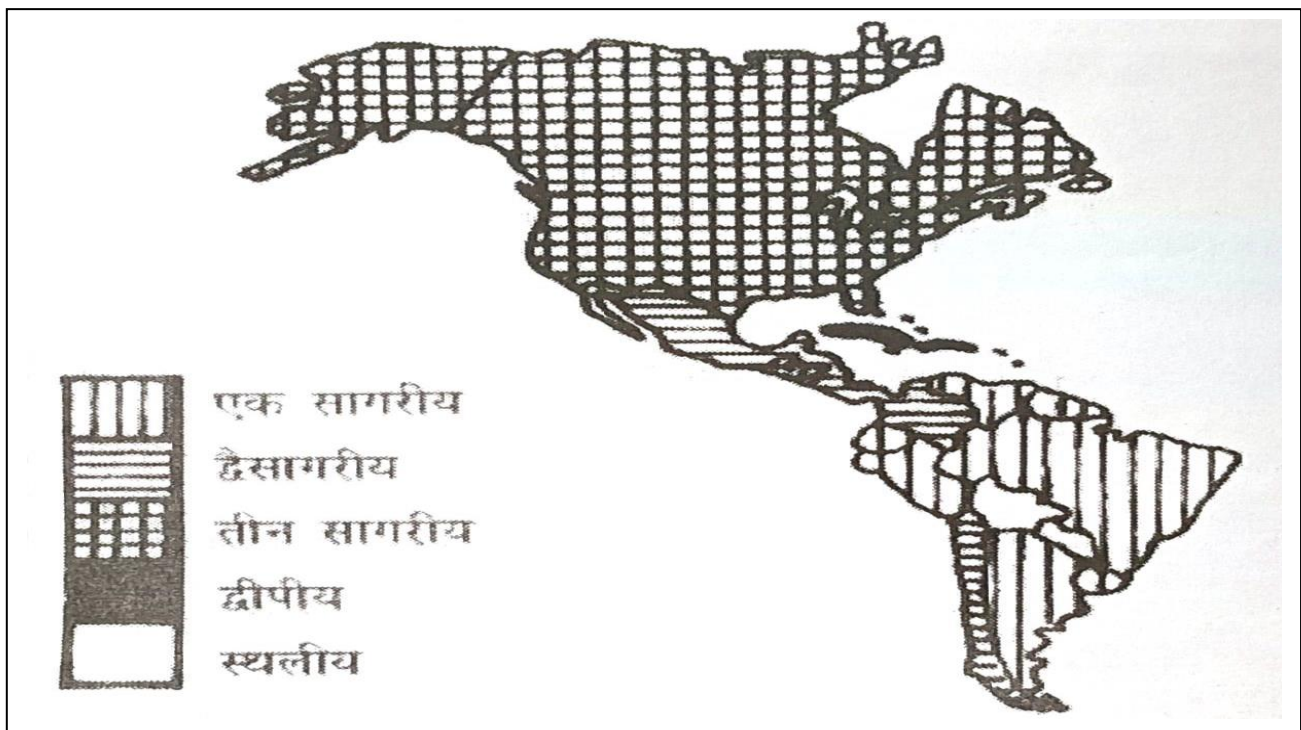
4.3.1.2 सापेक्षिक अवस्थिति (Relative Location)–

किसी भी राज्य की सापेक्षिक स्थिति उस राज्य के बाह्य स्थानिक अथवा क्षेत्रीय सम्बन्धों की निर्णायक होती है। विद्वानों की दृष्टि में किसी भी राज्य की विदेश नीति को निर्धारित करने वाला यह सबसे महत्वपूर्ण कारक है। राज्य की सापेक्षिक स्थिति दो रूपों में अभिव्यक्त होती है –

- (i) क्या वह राज्य समुद्र तक गम्य है?
- (ii) अथवा वह राज्य समुद्र तक पहुँच से वंचित है?

जिन राज्यों के पास सागरीय गम्यता होती है उन्हें सागरीय या सामुद्रिक राज्य कहा जाता है। इन्हें तीन उपवर्गों में बाँटा जा सकता है –

- (अ) तटीय राज्य (**dittoral/Coastal states**) – जैसे वेनेजुएला, चिली आदि।
- (ब) प्रायद्वीपीय राज्य (**Peninsular States**) – जैसे भारत, इटली, नार्वे आदि।
- (स) द्वीपीय राज्य (**Insular States**) – जैसे, ब्रिटेन, जापान, मालदीव आदि सागरीय राज्यों में सामुद्रिक सीमाओं के विविध स्वरूप एवं सागरों की संख्या के आधार पर राज्यों के पाँच वर्ग निर्धारित किए गए हैं। (चित्र सं० 4.1)

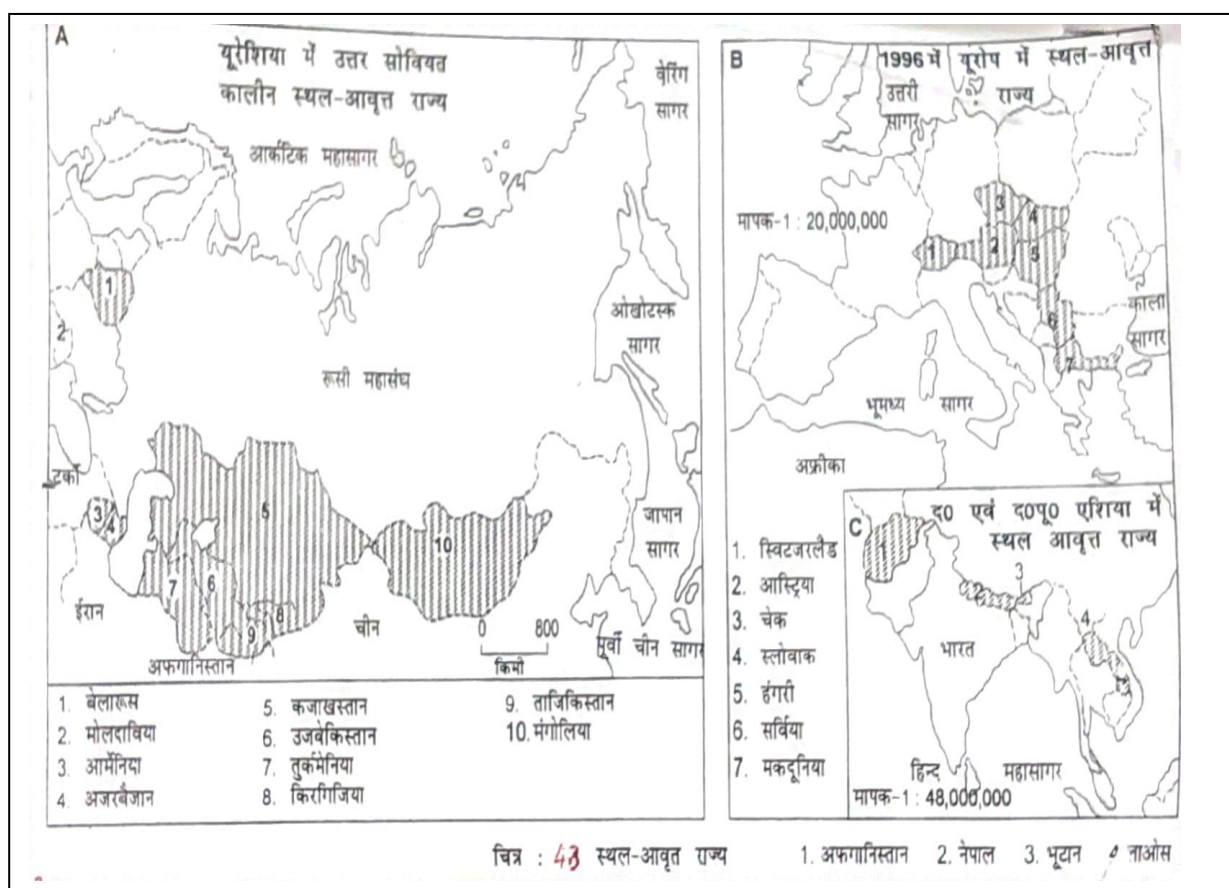


- (अ) एकल सागरीय स्थिति (**One-Sea Location**) – जैसे ब्राजील, बेल्जियम, ईरान, पाकिस्तान आदि।
- (ब) द्विसागरीय स्थिति (**Two-Sea Location**) – जैसे द०अफ्रीका, मोरक्को, भारत, नार्वे आदि।
- (स) त्रिसागरीय स्थिति (**Three Sea Location**) – जैसे फ्रांस, कनाडा, तुर्की आदि।
- (द) बहुसागरीय स्थिति (**Multi-Sea Location**) – जैसे रूस, यद्यपि कि ऐसी स्थिति वाले राज्य अति दुर्लभ हैं।
- (थ) द्वीपीय स्थिति (**Island - Location**) – जैसे जापान, मालदीव, श्रीलंका आइसलैंड आदि।

सागरीय राज्यों की सापेक्षिक अवस्थिति का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि खुले सागर तक पहुँच के कारण ही ग्रेट ब्रिटेन तथा जापान जैसे देश शक्तिशाली राज्य बने। केवल पूर्व सोवियत संघ ही इसका अपवाद रहा है। रूस का आधुनिक राजनीतिक इतिहास बहुत हद तक उसके समुद्र तट तक पहुँचने के प्रयास का इतिहास है। आर्कटिक सागर के साथ रूस की सागरीय सीमाएं काफी लंबी हैं, परन्तु दुर्गमता और दुर्धर्ष जलवायु के कारण

इस उपलब्धि का उसके लिए कोई विशेष महत्व नहीं रहा। गर्म सागर तक पहुँचने के लिए वह हमेशा छटपटता रहा। गहराई से देखें तो रूस का यूक्रेन के साथ वर्तमान संघर्ष (2023 ई. में) संभवतः इसी छटपटाहट का परिणाम है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि राज्यों की समुद्रतटीय स्थिति या सामुद्रिक पहुँच उन्हें अधिक व्यावहारिक गतिशीलता प्रदान करती है तथा समुद्र के माध्यम से अन्य राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना उनके लिए अधिक सहज और सुविधा जनक होता है।

वे राज्य जो समुद्र तक पहुँच से वंचित हैं या जिनके पास समुद्र तक पहुँचने का मार्ग सुभल नहीं है। वे 'स्थल आवृत' (Landlocked) राज्य कहे जाते हैं। (चित्र संख्या- 4.3) वर्तमान समय में अफ्रीका महादीप में 16 (जैसे बोत्सवाना, चाड, इथियोपिया, नाइजर आदि), यूरोप महादीप में 14 जैसे (आष्ट्रिया, बेजान, स्लोवाकिया आदि) और द0अमेरिका में 2 (बोलिविया एवं पराग्वे) इस तरह से पूर विश्व में कुल 44 स्थल आवृत राज्य हैं। विकासशील देशों में इनकी संख्या- 32 है। (चित्र संख्या- 4.4) स्थल आवृत अवस्थिति के कारण ये राज्य अनेक समस्याओं का सामना करते हैं:-



जैसे -

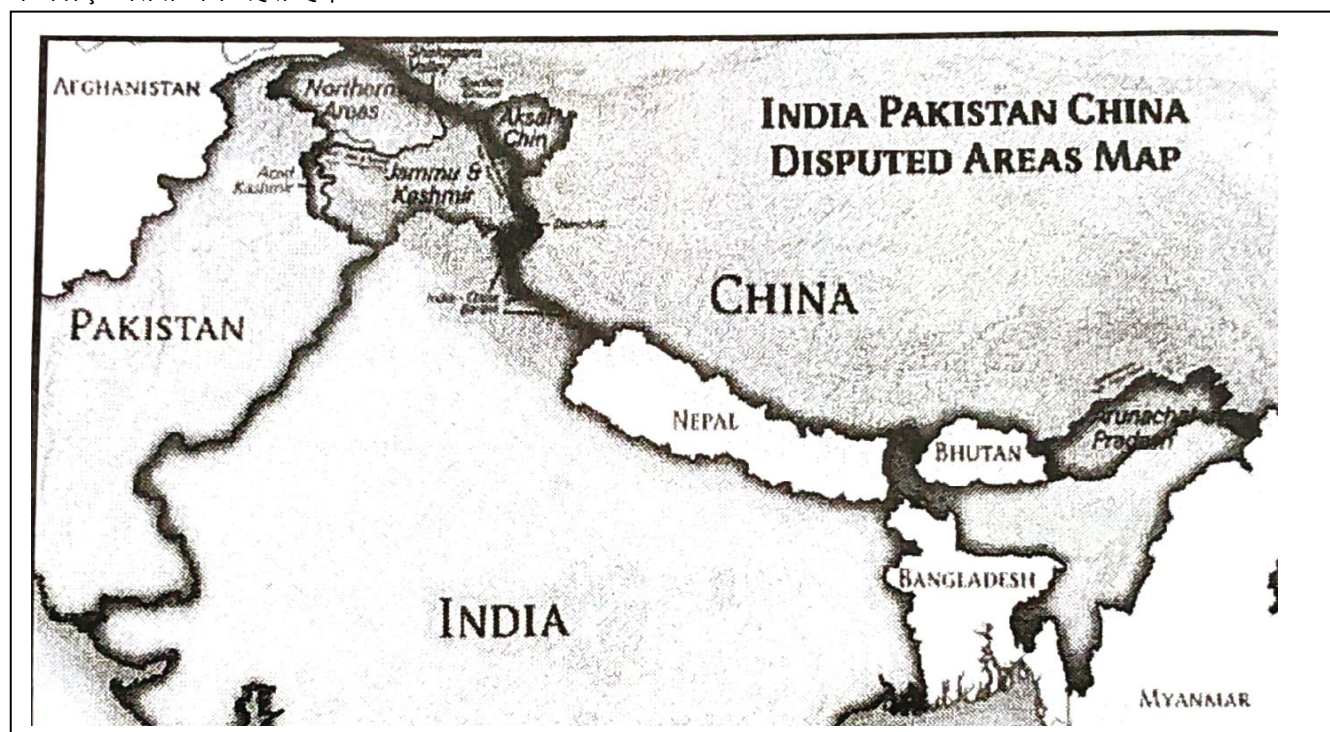
1. सामरिक दृष्टि से इनकी अवस्थिति सदैव प्रतिकूल रहती है;
2. इनकी संभावित क्षमता सीमित हो जाती है;
3. अपने अस्तित्व के लिए ये काफी हद तक पड़ोसी राज्यों पर निर्भर करते हैं;
4. कभी-कभी समस्याओं से इतना घिर जाते हैं कि पड़ोसी राज्य में अपना विलय कर लेते हैं।

जैसे - स्थल आवृत हिमालयन राज्य सिक्किम को मजबूर होकर अपना विलय भारत को करना पड़ा।

ये स्थल आवृत राज्य अपना पार्थक्य समाप्त करने के लिए कई तरह के प्रयास करते हैं, जैसे— (अ) तटीय राज्यों के साथ मिलकर संघ बनाते हैं; (ब) सुरक्षित क्षेत्रीय गलियारा ताकि वे अपना व्यापार सुगमता पूर्वक कर सकें (स) पड़ोसी राज्यों से पारगमन के अधिकार की सुरक्षा, जैसे नेपाल एवं भूटान को यह सुविधा भारत से प्राप्त है।

4.3.1.3 परिवेशी अवस्थिति (Visinal Location) –

परिवेश अवस्थिति से तात्पर्य है कि किसी के कितने पड़ोसी राज्य है। जिनके साथ उसकी उभयनिष्ठ सीमा है। (चि०सं०- 4.2) पड़ोसी राज्यों की संख्या एक प्राकृतिक तत्व है लेकिन उसका चरित्र मानवीय होने के कारण उसके व्यवहार की प्रकृति भिन्न रहती है। यह व्यावहारिकता कई रूपों में दिखाई देती है, जैसे पड़ोसी राज्य शक्तिशाली है अथवा कमजोर, अधिक जनसंख्या वाला है या अल्प जनसंख्या वाला, विकसित है या अवििकसित, आकार में छोटा है या बड़ा; शत्रुवत व्यवहार करता है या मित्रवत; तटस्थ है अथवा उदासीन, विस्तारवादी है या शान्तिवादी। पड़ोसी राज्यों के ये ऐसे व्यावहारिक स्वरूप हैं जो राज्य की राजनीतिक विचारधारा शक्ति संतुलन, आर्थिक विकास एवं विदेशनीति को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए भारत को लें तो इसके सात पड़ोसी राज्य हैं” और सभी के साथ उसके कुछ न कुछ क्षेत्रीय विवाद हैं। पाकिस्तान कश्मीर को लेकर भारत से युद्ध ग्रस्त रहता है चीन के साथ भारत का लम्बा सीमा विवाद है। पाकिस्तान – चीन गठबंधन एवं उनकी आपसी, सांठ-गांठ भारत की विदेशनीति को सदैव प्रभावित करती रही है। चीन की शह पाकर मालदीव जैसा द्वीपीय देश भी भारत को आँख दिखाता रहता है। प्रायः यह भी देखा गया है कि किसी राज्य के पड़ोसियों की संख्या जितनी कम होती है, राज्य की पड़ोसियों से उत्पन्न समस्यायें उतनी ही कम होती हैं; इससे राज्य को समुचित आर्थिक विकास का अवसर मिलता है। उदाहरण के लिए जैसे, सं०रा० अमेरिका, नार्वे, स्वीडन, नेपाल, मंगोलिया, भूटान, बांग्लादेश जिनके मात्र दो-दो पड़ोसी राज्य हैं पुर्तगाल, डेनमार्क, यू०के०, आयरलैंड, कनाडा जिनके मात्र एक-एक पड़ोसी राज्य हैं। विश्व में चीन एकमात्र ऐसा राज्य है जिसके सर्वाधिक 13 पड़ोसी राज्य हैं। इसके बाद क्रमशः रूस के 12, ब्राजील के 10, जायरे और जर्मनी के 9-9 तथा फ्रांस और तंजानिया के आठ-आठ पड़ोसी राज्य हैं। सामान्यतया छोटे पड़ोसी राज्य अच्छे माने जाते हैं; कारण कि उनसे राज्य की सुरक्षा को कम खतरा रहता है और आर्थिक विकास को अधिक अवसर मिलता है। इसके विपरीत बड़े एवं शक्तिशाली पड़ोसी राज्य हमेशा संप्रभुता के लिए खतरा बने रहते हैं।



4.3.1.4 सामरिक अवस्थिति (Strategic Location)–

सामरिक अवस्थिति से तात्पर्य कोई राज्य, या उस राज्य को कोई भाग अथवा उस राज्य के समीप का

कोई क्षेत्र वह आधार बनता है जहाँ से समुद्र, स्थल या वायुमार्ग पर सशक्त नियंत्रण रखा जा सके अथवा उसको सुरक्षित रखने के लिए आसानी से निगरानी की जा सके अथवा इन आधारों से सफलता पूर्वक आक्रमण किया जा सके या फिर दुश्मनों को धमकाया जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में राज्यों की सामरिक अवस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। शांतिकाल में यह व्यापारिक दृष्टि से प्रभावशाली होती है तथा युद्धकाल में यह सैनिक दृष्टि हो महत्वपूर्ण होती है। हर परिस्थिति में सामरिक अवस्थिति राज्य की शक्ति को मजबूत करती है।

एल० कार्लसन (1958) के अनुसार – “ सामरिक अवस्थितियाँ ऐसे संकुचित स्थलीय – या सागरीय मार्ग होते हैं जो व्यापार मार्गों के केन्द्र या मार्ग अवरोधों का निर्माण करते हैं अथवा समुद्रों के मध्य अथवा पर्वतों के आरपार वायुयानों आदि के किए अड्डों एवं नियंत्रण केन्द्रों के रूप में स्थित होते हैं।”

विश्व के प्रमुख सामरिक अवस्थिति वाले क्षेत्र द्वीप एवं राज्य

1. जिब्राल्टर जल डमरूमध्य – यह अटलांटिक महासागर एवं भूमध्य सागर को जोड़ता है।
2. डार्डनेल्स तथा बॉसपोरस का टर्किश जल डमरूमध्य जो बाल्टिक सागर को मारमारा सागर द्वारा भूमध्य सागर से जोड़ता है। इसकी सुरक्षा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।
3. पाकजल डमरूमध्य जो श्रीलंका व भारत के बीच का संकरा समुद्री जलमार्ग है।
4. हिन्द महासागर व प्रशान्त महासागर को जोड़ने वाला मलक्का जलडमरूमध्य मध्य। ऐसी मान्यता है कि जो भी राज्य शक्ति इस पर नियंत्रण रखेगी, उसका हिन्दमहासागर व प्रशान्त महासागर पर प्रभावशाली नियंत्रण होगा।
5. संकरी थल संधियाँ (Isthmus) जिनसे नहरे गुजरती हैं, जैसे स्वेजनहर, पनामानहर
6. पहाड़ी दर्रे, जैसे अफगानिस्तान-पाकिस्तान सीमा के सहारे स्थित बोलन और खैबर दर्रे हैं।
7. पाक-अधिकृत कश्मीर में गिलगिट के आरपार काराकोरम उच्चपथ पर चीन का अघोषित नियंत्रण क्षेत्र जिसके सहारे चीन की पहुँच हिन्द महासागर तक हो गई है।
8. डियोगार्सिया द्वीप – यह स०रा० अमेरिका सामरिक अड्डा है इसे ‘आतंक का संतुलन’ कहा जाता है। पश्चिम एशिया के खनिज तेल सम्पन्न क्षेत्रों के समीप होने से इसका सामरिक महत्व है।
9. अरब सागर में लक्षद्वीप तथा अमीन दीव और बंगाल की खाड़ी में अण्डमान-निकोबार द्वीपों भारत के नियंत्रण से इसे इस प्रदेश में सामरिक प्रभुता प्राप्त है।
10. भारत का जम्मू-कश्मीर केन्द्र शासित प्रदेश, विशेष रूप से सियाचिन क्षेत्र। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि किसी क्षेत्र, द्वीप या राज्य भी सामरिक अवस्थिति काफी हद तक प्रादेशिक एवं विश्व शक्ति संतुलन तथा आवागमन की तकनीकों में आने वाले परिवर्तनों से प्रभावित होती रहती है। परिवर्तनशीलता जनित इन प्रभावों के कारण कुछ सामरिक क्षेत्रों का महत्व घटा है और कुछ का बढ़ गया है।

घटते सामरिक महत्व वाले क्षेत्र – जैसे फाकलैण्ड द्वीप, उत्तम आशा अन्तरीय, भूमध्य सागर जो उपनिवेशवादी युग के पूर्व केन्द्रीय स्थिति वाला था, उपनिवेशवादी युग स्वेज नहर बनने के बाद उपनिवेशवादी प्रशासन के लिए जीवन रेखा था, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के बार इसकी सामरिक अब स्थिति एकदम बदल गयी।

बढ़ते सामरिक महत्व वाले क्षेत्र – जैसे आइसलैण्ड द्वीप वायु यातायात के वर्तमान युग में अधिक महत्वपूर्ण हो गया है कारण कि महावृत्तीय Great Circle वायु मार्ग इस द्वीप के समीप से गुजरता है। वर्तमान में आइसलैण्ड महावृत्तीय वायु मार्ग से गुजरने वाले वायुयानों के लिए सुविधाजनक पड़ा है। आर्कटिक सागर वर्तमान में वायुभागीय वायुमार्गीय आवागमन भी दृष्टि से आधुनिक भूमध्य सागर कहा जाने लगा है।

4.1.5 केन्द्रीय तथा परिधीय अवस्थिति (Central and Peripheral Location) –

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अवस्थिति सापेक्षता केन्द्रीय बनाम परिधीय अवस्थिति के रूप में परिभाषित की जाती है। एल. कार्लसन (1958) के अनुसार – ‘केन्द्रीय अवस्थिति का तात्पर्य अभिगम्यता से है और परिधीय अवस्थिति का तात्पर्य सापेक्षिक अभिगम्यता से है। स्थल क्षेत्र, जनसंख्या एवं आर्थिक क्रियाओं के सन्दर्भ में इनको परिभाषित किया जा

सकता है।”

इस प्रकार की अवस्थिति में हमेशा बदलाव होता रहता है। उदाहरण के लिए – द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व यूरोपीय राज्य केन्द्रीय स्थिति में थे, लेकिन विश्व युद्ध के उपरान्त शीत युद्ध के युग में पश्चिम एशिया एवं दक्षिण एशिया की अवस्थिति केन्द्रीय हो गई। इसी तरह पनामा नहर बनने के पूर्व मध्य अमेरिका की स्थिति परिधीय थी, लेकिन नहर बन जाने के बाद उसकी केन्द्रीय अवस्थिति हो गई। भारत की अवस्थिति केन्द्रीय है, कारण की यह प्रमुख समुद्री मार्गों एवं हवाई मार्गों के संगम स्थल पर अवस्थित है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की स्थिति परिधीय है। परिधीय स्थिति होने के कारण ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इसका महत्व बहुत अधिक नहीं है, परन्तु, युद्ध की दृष्टि से यह स्थिति अत्यंत उत्तम है। वैज्ञानिक शोधों के सन्दर्भ में बढ़ती लोकप्रियता के बीच अंटार्कटिक महाद्वीप की अवस्थिति धीरे-धीरे परिधीय से केन्द्रीय होती जा रही है। हवाई यातायात तकनीक के विकास के उपरान्त आर्कटिक क्षेत्र की अवस्थिति केन्द्रीय हो गई है। प्रायः महाशक्तियों के प्रवेश से राज्यनीतिक गतिविधियाँ बढ़ने के कारण कोई भी क्षेत्र या राज्य केन्द्रीय अवस्थिति वाला बन सकता है।

4.3.1.6 अन्तःस्थ राज्य (Buffer state) –

अन्तःस्थ राज्य प्रायः स्थानिक आयाम में अपेक्षाकृत छोटी, प्रतिबद्धता रहित लघु राजनीतिक इकाई होती है जो एक विशिष्ट राजनीतिक परिमंडल के रूप में दो शक्तिशाली एवं प्रतिद्वन्द्वी पड़ोसियों के मध्य नवीन क्षेत्रीय प्रारूप के रूप में सृजित होती है। इसकी भू-राजनीतिक अवस्थिति काफी महत्वपूर्ण होती है।

एन० जे० स्पाइक मैन के अनुसार – अन्तःस्थ राज्य दो बड़े राज्यों के मध्य स्थित एक छोटी राजनीतिक इकाई है।

एल० के० डी० क्रिस्टॉफ (1959) के अनुसार – अन्तःस्थ राज्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पूर्णतः एक यांत्रिक माध्यम थे, जो दो संभावित युद्धकर्ता राज्यों को अलग करते रहे तथा उनके मध्य संघर्ष को कम करते हैं।

अन्तःस्थ राज्य की विशेषताएं – अन्तःस्थ राज्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. अन्तःस्थ राज्य का स्थानिक आयाम अपेक्षाकृत छोटा होता है;
2. यह अपेक्षाकृत लघु राजनीतिक इकाई होती है, जिसकी कोई प्रतिबद्धता नहीं होती;
3. इसका अस्तित्व इसलिए कायम रहता है, क्योंकि यह दो शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी राज्यों को एक-दूसरे से अलग करता है।
4. इसमें दोनों ओर के राज्यों की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारधाराओं का मिश्रण रहता है।
5. अन्तःस्थ राज्यों का कोई जैविक विकास नहीं होता।
6. अधिकांश अन्तःस्थ राज्य इच्छाहीन (arbitrary) होते हैं।

परम्परागत रूप में ऐसी मान्यता है कि अन्तःस्थ राज्य दो शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी राज्यों के मध्य क्षेत्रीय क्षतिपूर्ति की प्रक्रियाओं के द्वारा राजनीतिक इकाइयों के क्षेत्रीय संविभाजन के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आता है।

अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र के जन्म एवं विकास के कारक –

अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र का जन्म एवं विकास सामान्यतया चार कारकों के परिणाम स्वरूप होता है –

1. सभी पावर्तीसत्ता अथवा क्षेत्रों का आत्मसातीकरण एवं उसका एकीकरण ;
2. सीमा विवादों में वृद्धि ताकि सीमा निर्धारण का स्थानान्तरण हो जाए ; तथा
3. अधिक संख्या में राष्ट्रीय-राज्यों का अभ्युदय जिससे परम्परागत राज्यीय/क्षेत्रीय संरचना ध्वस्त हो जाए।
4. पूर्ववर्ती छोटी राजनीतिक इकाइयाँ पुनः अस्तित्व में आ जाएँ।

अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र के प्रकार – अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र को दो वर्गों में रखा जा सकता है –

(अ) सामान्य अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र (ब) कृत्रिम अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र

(अ) सामान्य अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र –

इस वर्ग के अन्तःस्थ राज्यों/क्षेत्रों का अभ्युदय एवं विकास विकासवादी प्रक्रियाओं द्वारा धीमी गति से काफी लम्बी अवधि के दौरान होता है। वैश्विक स्तर पर से ही अन्तःस्थ राज्यों/क्षेत्रों की संख्या बेहद कम है। थाईलैण्ड ऐसे सामान्य अन्तःस्थ राज्य का सर्वोत्तम उदाहरण है जिसका अभ्युदय विकास की सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत द0पू0 एशिया में हिन्द चीन में फ्रांस के प्रभाव क्षेत्र तथा दक्षिण एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभाव क्षेत्र के मध्य हुआ था।

(ब) कृत्रिम अन्तःस्थ राज्य/क्षेत्र –

इस वर्ग के अन्तःस्थ राज्यों का सृजन प्रायः विवेकाधीन होता है अर्थात् इसका सृजन एक पूर्व कल्पित भौगोलिक ढाँचे में कुछ क्षेत्रीय सुविधाओं को ध्यान में रखकर दो या दो से अधिक शक्तिशाली राज्यों के द्वारा अपनी क्षेत्रीय अखण्डता एवं सुरक्षा के लिए किया जाता है। नेपाल, भूटान और अफगानिस्तान आदि कुछ ऐसे ही अन्तःस्थ राज्य हैं। विश्व के अधिकांश अन्तःस्थ राज्य विवेकाधीन ही हैं।

अन्तःस्थ राज्यों के अपकर्ष के कारण – वर्तमान राजनीतिक युग में अन्तःस्थ राज्यों एवं क्षेत्रों का महत्व धीरे-धीरे घटता जा रहा है। इनके घटते महत्व के कई कारण हैं, यथा—

1. राज्यों के आर्थिक विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में कमी लाने की आवश्यकता का महसूस होना ;
2. संभावित प्रतिद्वन्द्वी पड़ोसी राज्यों के मध्य बढ़ता तनाव शैथिल्य एवं आपसी सम्बन्धों में बढ़ती प्रगाढ़ता;
3. साम्राज्यवाद की समाप्ति और क्षेत्रीय विघटन;
4. वर्तमान वैश्विक भू-राजनीति के साथ-साथ अनुषंगी भू-राजनीति की बढ़ती प्रकृति;
5. वर्तमान उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के युग में सैनिक की अपेक्षा आर्थिक तत्वों का अधिक प्रभावशाली होना।
6. शक्ति संतुलन की संकल्पना का घटना महत्व;
7. क्षेत्रीय राजनीतिक एवं आर्थिक सहयोग संगठनों का अभ्युदय आदि।

4.3.2 आकार (The Size) –

राज्य की संरचना, विकास व शक्ति को नियंत्रित करने वाले प्राकृतिक तत्वों में राज्य के आकार की भूमिका अग्रणी है। राज्य के आकार से तात्पर्य उस राज्य के क्षेत्रीय विस्तार से है। यह राज्य के राजनीतिक भूगोल का एक मौलिक और आधारभूत तत्व है। किसी राज्य की साधन सम्पन्नता और उसने भौगोलिक आकार के बीच सीधा सम्बन्ध है। सामान्य स्थिति में किसी राज्य का क्षेत्रीय आकार जितना बड़ा होगा, उस राज्य की साधन सम्पन्नता उतनी ही अधिक होगी। एल० कार्लसन (1958) ने भी अपनी पुस्तक 'Geography and World Politics' में इस तथ्य को स्वीकार किया है— The greater the extent of a nation, the greater will be the possibility for an economically and politically strong nation, ie- the greater the size, the greater the possibility of an important state.

इसके विपरीत छोटे आकार के राज्य (नीदरलैण्ड एवं इजरायल जैसे राज्यों को छोड़ कर) प्रायः कमजोर होते हैं। उनकी जनसंख्या का आकार छोटा और आर्थिक आधार सुदृढ़ नहीं होता, क्योंकि उनके पास संसाधनों की काफी कमी रहती है। उनकी प्रभुसत्ता पर भी सदैव प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। बड़े राज्य उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते रहते हैं और उनकी सीमाओं का उल्लंघन किया करते हैं। ऐसी तमाम परिस्थितियों में छोटे राज्य असहाय बने रहते हैं और अपने अस्तित्व के लिए दूसरे राज्यों का सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए मोनाको (1.5 वर्ग किमी० क्षेत्र) वर्ष 1961 से फ्रांस की सुरक्षा में है। सान मारिनो (61 वर्ग किमी०) की इटली से शांति मैत्री की संधि है। भूटान भारत के साथ विशिष्ट संधियों से आबद्ध है।

यहाँ पर यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि शांतिकाल में राज्य का बृहद आकार उसके राज्य के लिए

कभी-कभी समस्या मूलक भी होता है। चूंकि बड़े राज्यों में विविधतापूर्ण क्षेत्रीय समूह मिलते हैं जहाँ पर सम्बद्धता कायम रखना कठिन होता है, इसलिए वहाँ राजनीतिक अस्थिरता का संकट देखने की मिलता है। बड़े राज्य के निर्जन प्रदेश कभी-कभी केन्द्रोंपसारी शक्तियों के केन्द्र बन जाते हैं और पृथकता एवं अलगाववाद को बढ़ावा देते हैं। बड़े राज्यों के सीमान्त क्षेत्रों में यदि यातायात के साधन अविकसित हैं, तो वहाँ सैनिक दृष्टिकोण से भी काफी समस्याएँ पाई जाती हैं। यह भी सच है कि युद्ध काल में बृहद आकार रक्षात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण एवं अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। रूस का उदाहरण इस दृष्टिकोण से सबसे बेहतरीन उदाहरण है, जब उसने नेपोलियन के आक्रमण के समय और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अपने आकार के ही कारण 'Trading space for Time' or "'Defence in Depth' (गहराई में सुरक्षा) जैसी युद्ध नीति का सफल कार्यान्वयन किया था।

4.3.2.1 आकार (विस्तार) के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण –

एस०वी० वाल्केन वर्ग एवं सी०स्टोज का वर्गीकरण –

वाल्लेन वर्ग और स्टोज ने 1963 में अपनी पुस्तक 'Elements of Political Geography' में राज्य के क्षेत्रफल एवं जनसंख्या के आधार पर राज्य को सात वर्गों में विभक्त किया है :-

1. विशालकाय राज्य – क्षेत्रफल 20 लाख वर्गमील से अधिक;
2. बृहत्तर राज्य – क्षेत्रफल 05 से 20 लाख वर्गमील;
3. बृहत् राज्य – क्षेत्रफल 01 से 5 लाख वर्गमील;
4. मध्यम आकार के राज्य – क्षेत्रफल 0.25 से 01 लाख वर्ग मील;
5. लघुराज्य – क्षेत्रफल 0.10 से 0.25 लाख वर्गमील;
6. लघुतम राज्य – क्षेत्रफल 1000 से 10000 वर्गमील;
7. सूक्ष्म आकार के राज्य – क्षेत्रफल 1000 वर्ग मील से कम;

एच० जे० डी ब्लिज का वर्गीकरण –

डी ब्लिज ने 1967 में अपनी 'Systematic Political Geography' में आकार के आधार पर राज्यों के पाँच वर्ग बनाये हैं :-

1. अत्यन्त लघुराज्य – क्षेत्रफल 10000 वर्गमील से कम;
2. लघुराज्य – क्षेत्रफल 10000 से 60000 वर्गमील;
3. मध्यम आकार के राज्य – क्षेत्रफल 60000 से 140000 वर्गमील;
4. बृहत् राज्य – क्षेत्रफल 140000 से 1000000 वर्गमील;
5. बृहत्तर राज्य – क्षेत्रफल 10 लाख वर्ग मील से अधिक,

एन० जे०जी० पाउण्ड्स का वर्गीकरण –

पाउण्ड्स ने 1972 में अपनी पुस्तक 'Political Geography' में विश्व के राज्यों को उनके क्षेत्रीय आकार के आधार पर आठ वर्गों में बाँटा है :-

1. भीमकाय राज्य – क्षेत्रफल 60 लाख वर्ग किमी० से अधिक;
2. अधिभाषीय राज्य – क्षेत्रफल 25 लाख से 60 लाख वर्ग किमी०;
3. अतिवृहत् राज्य – क्षेत्र 12 लाख पचास हजार से 25 लाख वर्ग किमी०;
4. बृहत् राज्य – क्षेत्रफल 6 लाख 50 हजार से 12 लाख 50 हजार वर्ग किमी०;
5. मध्यम आकारीय राज्य – क्षेत्रफल 2 लाख 50 हजार से 6 लाख 50 हजार वर्ग किमी०;
6. लघु राज्य – 1 लाख 25 हजार से 2 लाख 50 हजार वर्ग किमी०;

7. अतिलघु राज्य – 25000 से 125000 वर्ग किमी०;

8. सूक्ष्म राज्य – 25000 वर्ग किमी० से कम;

1965 में पीटर हैगेट, चोर्ले एवं स्टोडार्ट ने अपनी पुस्तक '**Located Analysis of Human Geography**' में राज्यों के आकार को मापने के लिए एक मान पैमाना (**Scale of Value**) विकसित किया जिसे उन्होंने **G**—मापक नाम दिया। **G**—मापक किसी राज्य के क्षेत्रफल का पृथ्वी के कुछ क्षेत्रफल के सन्दर्भ में लघुगणकीय अनुपात (**Logarithmic Ratio**) प्रस्तुत करता है।

G—मापक ज्ञात करने का सूत्र – **GX = Log Ga**

Ga = पृथ्वी का क्षेत्रफल; **Rx** = राज्य का क्षेत्रफल

पीटर हैगेट एवं साथियों के अनुसार – **G** मापक का मान जितना ही कम होता है, राज्य का आकार उतना ही बड़ा पाया जाता है एवं वह राज्य उतना ही शक्तिशाली माना जाता है (जैसे विघटन के पूर्व सोवियत संघ, क्षेत्रफल = 22402000 वर्ग किमी० तथा **G** मान = 1.35736) मापक का मान 5 से अधिक होने पर राज्य का आकार छोटा हो जाता है (जैसे वेटिकन सिटी, क्षेत्रफल 0.44 वर्गकिमी० तथा **G** मान = 9.10534)। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि **G** मापक का प्रयोगात्मक मूल्य काफी सीमित है।

4.3.2.2 राज्यों का सामान्य वर्गीकरण –

राजनीतिक भूगोल में व्यावहारिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर राज्य के क्षेत्रीय आकर के आधार पर राज्यों को तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है –

1. बृहत् आकार वाले राज्य – ये राज्य अपरिहार्य रूप से भौतिक और मानव संसाधनों से सम्पन्न होते हैं। ये दोनों संसाधन किसी भी राज्य के राजनीतिक दैनिक संभाव्यता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है।
2. मध्यम आकार वाले राज्य – ये राज्य समाजिक समरसत्ता (संसक्ति) तथा आर्थिक सैनिक गुणवत्ता की सुविधाओं से सम्पन्न होते हैं। वर्तमान में विश्व के आधे से अधिक राज्य इसी श्रेणी के हैं।
3. छोटे आकार के राज्य – मजबूत सामाजिक संसक्ति वाले इन राज्यों की भाषा एक होती है। यहाँ विघटनकारी शक्तियाँ विकसित नहीं हो पाती, लेकिन संप्रभुता पर खतरा सदैव बना रहता है।
4. आकार के अवरोही क्रम में विश्व के आठ अति बृहत् राज्य :- 1. रूसी फेडरेशन (17,075,400 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 2. कनाडा (9,998,670 वर्गकिमी० क्षेत्रफल); 3. सं०रा० अमेरिका (9,826,635 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); चीन (9,562,000 वर्ग किमी०क्षेत्रफल); 5. ब्राजील (8,514,879 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 6. आस्ट्रेलिया (7,692,024 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 7. भारत (3,287,263 वर्ग किमी० क्षेत्रफल) 8. अर्जेन्टिना (2,766,889 वर्ग किमी० क्षेत्रफल)।
5. आकार के अवरोही क्रम में विश्व के आठ सूक्ष्मराज्य :- 1. अंडोरा (465—वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 2. बारबाडोस (430 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 3. मालदीव (298 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 4. लिषतेनस्टिन (160 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 5. सान मारिनो (61 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 6. नौरु (21 वर्ग किमी० क्षेत्रफल); 7. मोनाको (1.5 वर्ग किमी क्षेत्रफल); 8. वेटिकन सिटी (0.44 वर्ग किमी० क्षेत्रफल)। (समस्त देशों का क्रम उलटना है अर्थात् 1 पर वेटिंगटन 2 पर मोनाको.....Etc.)

4.3.3 आकृति (**The Shape**) –

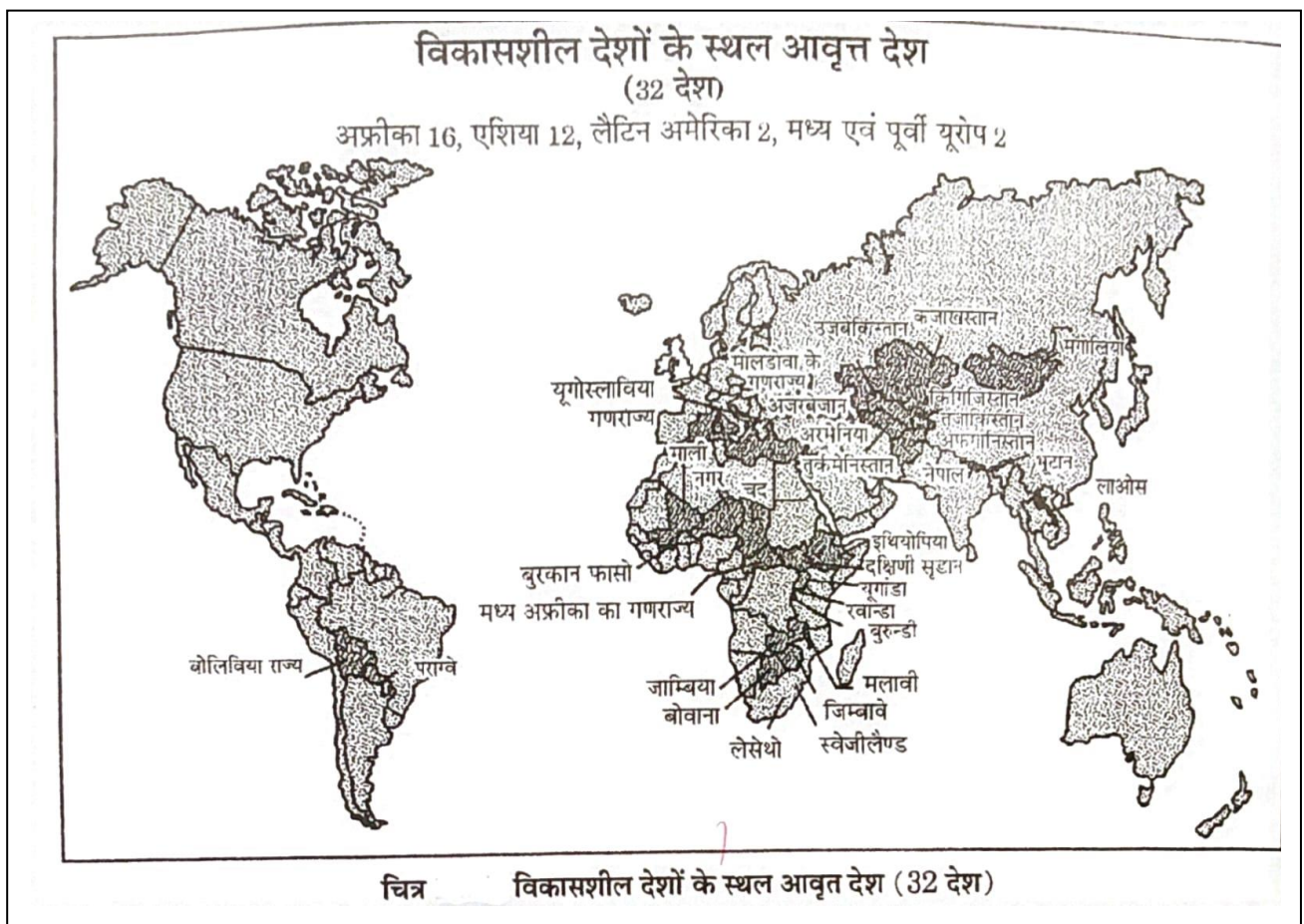
प्रत्येक राजनीतिक इकाई की कोई न कोई आकृति होती है, वह चाहे ज्यामितीय हो या अज्यामितीय। राज्य की संस्थाना का यह प्रमुख तत्व है, जिसका सीधा प्रभाव उस राज्य के परिवहन, जल, सुरक्षा, प्रशासन, सुगम्यता, राजनीतिक शक्तियों के संतुलन, अर्थव्यवस्था के प्रवाह एवं सीमाओं के स्वरूप पर पड़ता है। एन० जे० जी० पाउण्ड (1972) की दृष्टि में :- 'राज्य के आन्तरिक प्रशासन तथा सुरक्षा के दृष्टिकोण से राज्य की ज्यामितीय आकृति उसके भौगोलिक विस्तार से उत्पन्न समस्याओं को थोड़ा कम करती है।

'मोटे तौर पर आकृतियाँ दो प्रकार की वर्णित की जा सकती हैं:- (i) ढोस (वृत्ताकार अथवा वर्गाकार),

(ii) लम्बाकार। राज्यों के आकार की दृष्टि से आदर्श आकार वृत्ताकार अथवा वर्गाकार माना जाता है। ऐसे आदर्श आकार वाले राज्य में केन्द्रीय भाग से सीमान्त प्रदेशों की दूरी अपेक्षाकृत कम रहती है; आवागमन की सुविधाएं केन्द्र से चारों ओर विकीर्ण होती हैं; परिणामतः सीमान्त क्षेत्रों से सम्पर्क और प्रशासन अधिक प्रभावी बना रहता है। फ्रांस इसका आदर्श उदाहरण है। ऐसी मान्यता है कि— 'राज्य की आकृति आदर्श स्थिति हो जितनी विचलित होती जायेगी, उतनी ही आन्तरिक प्रशासन, अर्थव्यवस्था, सीमा एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं में वृद्धि होती जायेगी और सीमान्त प्रदेशों में प्रभावशाली नियंत्रण कम होता जायेगा।' वृत्ताकार तथा वर्गाकार आकृतियों के विपरीत राज्य की लम्बाकार आकृति असुविधाजनक सिद्ध होती है; प्रशासन महंगा और अपेक्षाकृत कम प्रभावी हो जाता है। द० अमेरिकी देश, चिली ऐसी आकृति का अच्छा उदाहरण है।

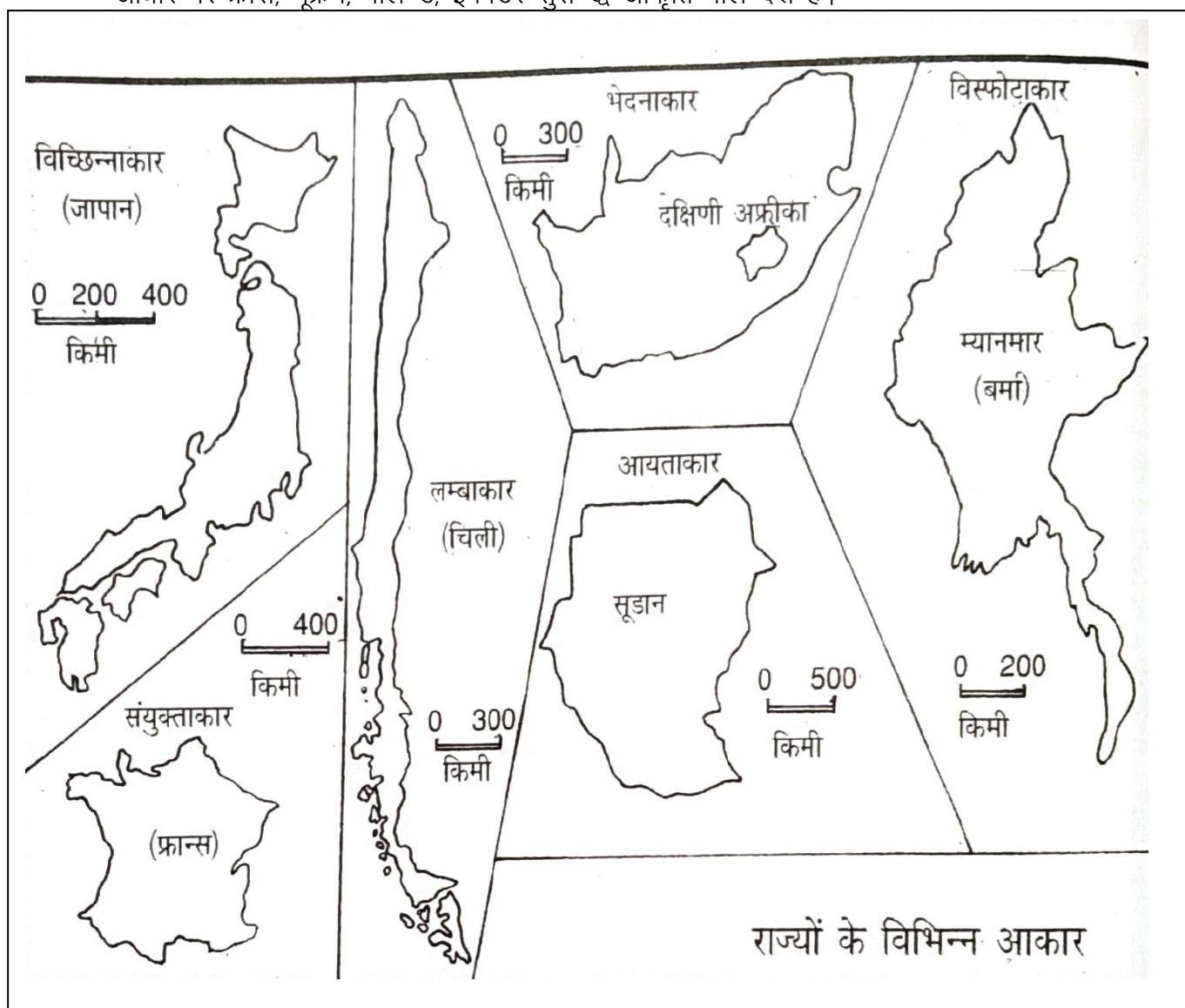
4.3.3.1 आकृति के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण –

विश्व के किसी भी राज्य की आकृति एक जैसी नहीं है। (चित्र संख्या:- 4.4) इसीलिए अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन्हें सात वर्गों में विभाजित किया गया है:-



1. सुसम्बद्ध आकृति (**Compact Shape**) – सैद्धान्तिक रूप से राज्य की यह आदर्श आकृति मानी जाती है। इसे संहत आकृति भी कहते हैं। एस० वी० वाल्केन वर्ग (1963) के अनुसार – 'राज्य को घेरने वाले वृत्त की परिधि तथा राज्य की वास्तविक सीमा की लम्बाई के अनुपात को 'सुसम्बद्धता' कहते हैं।' इस आकृति वाले राज्यों में राजधानी सामान्यता मध्यवर्ती भागों में अवस्थित होती है। भू-राजनीतिक स्थिरता, प्रभावशाली प्रशासनिक नियंत्रण बेहतर सीमा सुरक्षा एवं आंतरिक सामाजिक संशक्ति परिवहन एवं संचालन की सुगमता, सुगठित सैन्य प्रशासन एवं राष्ट्रीय एकता सुसम्बद्ध आकृति वाले राज्यों की प्रमुख विशेषताएं हैं। सुसम्बद्धता सूचकांक की गणना पाउण्ड्स (1972) तथा कोल (1964) जिसमें न्यूनतम सीमा उस वृत्त को माना गया

है जो राज्य के क्षेत्र आवृत करता है; सूत्र = सुसम्बद्धता सूचकांक (%) = $\frac{\text{okLrfod lhek}}{\text{U;wure lhek}} \times 100$ के आधार पर फ्रांस, यूक्रेन, पोलैण्ड, इक्वेडोर सुसम्बद्ध आकृति वाले देश है।



2. गलियारानुमा आकृति (**Prorupted shape**) – कुछ हद तक सुसम्बद्ध आकृति होने के बावजूद भी कुछ राज्यों के किसी क्षेत्र का संकीर्ण विस्तार एक गलियारे के रूप में लम्बाकार होता है तो उसे गलियारे तुला आकृति वाला राज्य कहते हैं। गंभीर प्रशासनिक एवं संचार सम्बन्धी समस्याएँ, पृथक्तावादी शक्तियों की प्रबलता ऐसे राज्यों की प्रमुख विशेषताएं हैं इसीलिए इन्हें विस्फोटाकार आकृति वाला राज्य भी कहते हैं। जर्मन भूगोलविदों ने ऐसे राज्यों के संकीर्ण विस्तार को 'विस्तार का अग्रविन्दु' (**forward Point of Growth**) कहा है और इसकी तुलना पौधे की युवा टहनी से की है। अफ्रीका में जायरे, नामीबिया, एशिया में वर्मा और थाइलैण्ड और अफगानिस्तान ऐसी ही आकृति वाले देश हैं।
3. लम्बाकार आकृति (**Elongated Shape**) – सामान्यता अपनी औसत चौड़ाई से लगभग छः गुना अधिक लम्बाई वाले राज्य इस श्रेणी में आते हैं। भौतिक अवरोधों के परिणाम स्वरूप एक अक्ष के सहारे विकसित ऐसे आकार वाले राज्य प्रायः सीमा सुरक्षा, अंतरिक प्रशासन एवं परिवहन असुविधा जैसी समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं। ऐसे राज्यों में कभी-कभी केन्द्रों पसारी शक्तियों के संभावित क्षेत्रों का भी अभ्युदय हो जाता है। उत्तर-दक्षिण विस्तार वाला पाकिस्तान इसका बेहतर उदाहरण है। द० अमेरिका में चिली, यूरोप में नार्वे एवं स्वीडन तथा चेकोस्लोवाकिया ऐसी ही आकृति वाले देश हैं।

4. अपखण्डित आकृति (**Fragmented shape**) – जब राज्य का आकार संयुक्त रूप में न होकर अनेक खण्डों में विभक्त होता है, तो उसे अपखण्डित विभाजित या विच्छिन्न आकार वाले राज्य की संज्ञा दी जाती है। (एशिया में जापान, इन्डोनेशिया, फिलीपाइन्स, यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया में न्यूजीलैण्ड ऐसी ही आकृति वाले राज्य हैं। प्रशासनिक कठिनाइयाँ, नये राज्यों के अभ्युदय की आशंका, राष्ट्रीय एकता में कमी, सुरक्षा समस्या, सामाजिक एकरूपता का अभाव एवं अलगाववादी शक्तियों की सक्रियता ऐसे राज्यों की मुख्य समस्याएँ होती हैं।
5. भेदनाकार आकृति (**Perforated Shape**) – ऐसा राज्य चारों ओर से अन्य राज्य से घिरा होता है, तथा उस राज्य तक पहुँचने के लिए अन्य राज्य को भेदकर गुजरना पड़ता है। उदाहरण के लिए सानमारिनो एवं वेटिकन सिटी के कारण इटली तथा लेसोथो के कारण द० अफ्रीका भेदनाकार आकृति वाले राज्य हैं। इस आकृति में भेदित और भेदनाकारी दोनों ही राज्यों को परिवहन, संचार जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
6. संश्लिष्ट आकृति (**Complex Shape**) – ऐसे राज्य जिनमें उपरोक्त वर्णित कई आकारों का मिश्रण पाया जाता है, उन्हें संश्लिष्ट अथवा मिश्रित (Mixed) आकार वाला राज्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए इटली की आकृति लम्बाकार भी है, भेदनाकार भी है और अपखण्डित भी। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका एक सुसम्बद्ध दूसाह आकृति वाला राज्य भी है और अपखण्डित भी, कारण कि इसके एवं हवाई क्षेत्र मुख्य भू-भाग से अलग है।
7. प्रकिर्ण आकृति (**Scattered shape**) – ऐसे राज्यों के क्षेत्र विश्व के विभिन्न भागों में फैले हुए होते हैं। ये प्रायः उपनिवेशवादी राज्य होते हैं, जैसे 19वीं– 20वीं शताब्दी का ब्रिटिश साम्राज्य।

4.3.3.2 राज्यों के कुछ अन्य विशिष्ट आकार – जैसे– अन्तः क्षेत्र बहिः क्षेत्र, ग्लेसिस, बहिर्वेशन, पुल पदाधार आदि।

अन्तः क्षेत्र (**Inclave**) एवं बहिः क्षेत्र (**Exclave**) – कभी-कभी किसी राज्य का छोटा भूभाग (क्षेत्र) मुख्य भूमि से दूर दूसरे राज्य की सीमा से घिरा होता है, तो वह जिस राज्य की सीमा से घिरा होता है, उसका अन्तः क्षेत्र कहा जाता है और जिस राज्य का वह वैधानिक तौर पर भाग होता है, उसका बहिः क्षेत्र कहा जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय क्षेत्र का छोटा सा भाग सुतीपुरवा (Seatlikushsa) बॉंगवारे का थिए है। यह भारत का बहिः क्षेत्र है एवं बांग्लादेश का अन्तः क्षेत्र है। भारत का लगभग 130 बहिः क्षेत्र, जिसे स्थानीय रूप से 'छिट्ट महल (Chhittmahal) कहा जाता है, बांग्लादेश में और बांग्लादेश का 95 बहिः क्षेत्र भारतीय क्षेत्र में स्थित है। डी० ब्लिज (1972) ने मुख्य भूमि से पृथक्करण की मात्रा के आधार पर बहिः क्षेत्र को 5 वर्गों में विभक्त किया है– (1) सामान्य बहिः क्षेत्र, (2) प्रवेच्य बहिः क्षेत्र (3) अर्धबहिः क्षेत्र, (4) आभासी बहिः क्षेत्र, एवं (5) अस्थायी बहिः क्षेत्र।

ग्लेशिस (**Glacis**) – जब किसी राज्य के क्षेत्रीय नियंत्रण का विस्तार पर्वतीय विभाजक के पार तक हो जाता है, तो उसे ग्लेसिस या पुश्ता कहते हैं। स्विट्जरलैण्ड के डेरे पास ऐसे दो पुरवा हैं। प्रथम आल्प्स के निकट इटली में और दूसरा जूरा पर्वत के निकट फ्रांस में।

बहिर्वेशन (**Projection**) – जब किसी राज्य का कोई (संकीर्ण विस्तारित क्षेत्र दो अन्य राज्यों को पृथक् करता है, तो उसे बहिर्वेशन कहते हैं। अफगानिस्तान का बाबान क्षेत्र पाक अधिकृत काश्मीर और ताजिकिस्तान के मध्य एक बहिर्वेशन के तौर पर स्थित है।

पुल पदाधार (**Bridge&head**) – जब किसी राज्य का क्षेत्रीय विस्तार यदि किसी अन्तरराष्ट्रीय नदी के पार होते हुए किसी दूसरे राज्य के अन्दर तक हो जाए तो उसे पुल पदाधार कहते हैं। हालैण्ड राज्य का एक पुळ पदाधार क्यूज नदी के पास मास्ट्रिच के निकट है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य की क्षेत्रीय संरचना में अवस्थिति आकार एवं आकृति अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

4.4 राज्य की स्थानिक संरचना

क्षेत्रीय संरचना के समान ही राज्यों की स्थानिक संरचना भी सामाजिक एवं राजनीतिक तथ्यों के सन्दर्भ में एक दूसरे से भिन्न है। आज विश्व में अनेक प्रभुता सम्पन्न राजनीतिक इकाइयाँ (जैसे– जार्डन, इजरायल,

बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि) ऐसी हैं जिनका स्वतंत्र राज्य के रूप में उद्भव तात्कालिक घटना क्रमों का परिणाम था, लेकिन अधिकांश राज्य ऐसे हैं जिनका राजनीतिक अस्तित्व सैकड़ों हजारों वर्ष पुराना है। वे संरचनात्मक विकास की स्थानिक प्रक्रिया से गुजरे हैं। उनकी संरचना का इतिहास किसी सुनिश्चित अनुकरण बिंदु से बाहरी ओर उत्तरोत्तर प्रसार और क्षेत्रीय विस्तार का इतिहास है। राज्यों का अंकुरण, प्रसार और क्षेत्रीय विस्तार इस तथ्य का साक्ष्य है कि राज्य की स्थानिक-आन्तरिक संरचना के सभी अवयव एक ही साथ अस्तित्व में नहीं आते। सर्वप्रथम –

(i) प्राकृतिक दृष्टि से अनुकूल, सुविधायुक्त, आर्थिक संभावनाओं से सम्पन्न लघु क्षेत्रों में मानव बसाव का केन्द्रीकरण हुआ क्रमशः बढ़ते बसाव से राज्य के मूल (क्रोड़) क्षेत्र की स्थापना हुई (ii) कालान्तर में सह अस्तित्व की भावना द्वारा राज्य संकल्पना का विकास और मूल क्षेत्र का चतुर्दिक विस्तार हुआ – (iii) राज्य के क्षेत्रीय स्वरूप का अभ्युदय हुआ (iv) इसी के साथ कार्यात्मक इकाई के रूप में संगठित एक राजनीतिक इकाई के रूप में राज्य का विकास संभव हुआ।

4.4.1 राज्य की स्थानिक संरचना के मुख्य अंग – राज्य की स्थानिक संरचना के निम्नलिखित पाँच मुख्य अंग हैं –

- (1) मूल क्षेत्र या क्रोड़ क्षेत्र (**Core Area**);
- (2) आधार क्षेत्र (**Ecumene**)
- (3) राजधानी नगर (**Capital City**)
- (4) सीमाएं एवं सीमान्त (**Boundaries and frontiers**)
- (5) राज्य का संप्रभुता सम्पन्न क्षेत्र (**Area of Sovereignty**)

4.4.2 राज्य की स्थानिक संरचना के गौण अंग – राज्य की स्थानिक संरचना के कुछ गौण अंग भी हैं, जैसे –

- (1) राज्य का प्रभाव क्षेत्र (**Raum**)
- (2) उपनिवेश (**Mandate**)
- (3) संरक्षित क्षेत्र (**Protectorate**)

ध्यातव्य है कि राज्य की स्थानिक संरचना के सभी अंग हर राज्य में मौजूद हों। यह आवश्यक नहीं है। विशेष राजनीतिक परिस्थितियाँ उनमें भिन्नता पैदा कर सकती हैं।

राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की इस इकाई में हम राज्य की स्थानिक संरचना के मुख्य अंग मूल या क्रोड़ क्षेत्र का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.5 मूल (क्रोड़) क्षेत्र (Core Area)

राजनीतिक भूगोल में 'मूल क्षेत्र' का अध्ययन राज्य की संरचना और उसके विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए सबसे आवश्यक तत्व है, कारण कि इस क्षेत्र की मात्र राजनीतिक महत्ता ही नहीं होती, बल्कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह राज्य का प्रमुख क्षेत्र होता है। राजनीतिक भूगोल में मूल क्षेत्र के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया गया है, यथा— क्रोड़ क्षेत्र, 'हृदय स्थल', 'नामिक क्षेत्र', 'लघु केन्द्रक' आदि। वस्तुतः 'मूल क्षेत्र' सम्पूर्ण राज्य का वह श्रेष्ठतम तथा सार्वभौम क्षेत्र होता है जहाँ से राज्य की स्वाभाविक व समान्य विकास प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। फ्रांसीसी विद्वान एल० फेब्रर ने 1932 में अपनी पुस्तक '**A Geographical Introduction to History**' में इसे 'आर्मचर' की संज्ञा दी थी। जिससे चारों ओर के क्षेत्र उससे क्रमशः जुड़ते हुए कालान्तर में एकीकृत हो जाते हैं। जुड़ाव और एकीकरण की यह प्रक्रिया बहुत कुछ शरीर की हड्डियों के चारों ओर मांसपेशियों के विकास की प्रक्रिया के समान होती है।

4.5.1 मूल (क्रोड़) क्षेत्र की संकल्पना (**The Concept of Core Area**) –

'मूल क्षेत्र' भी संकल्पना राजनीतिक भूगोल की मूलभूत संकल्पनाओं में से एक है। राजनीतिक भूगोल के साहित्य में मूलक्षेत्र 'का प्रवेश फ्रेडरिक रैट्जेल (1897) की पुस्तक '**Politische Geographie**' के प्रकाशन के

साथ ही हुआ जिसमें उन्होंने समसामयिक राजनीतिक-भौगोलिक विचारों 'क्षेत्रीय कोशिका' (**Territorial Cells**) शब्द का प्रयोग कर एक नया प्रतिमान विकसित किया।

फ्रेडरिक रैट्जेल (1897) के अनुसार- 'राज्य क्षेत्रीय कोशिका के रूप में प्रारंभ होने की प्रवृत्ति रखता है, जो विकास की क्रमिक अवस्था से गुजरते हुए बृहत्तर आकार ग्रहण करता है.... अन्ततोगत्वा एक राज्य के रूप में तथा कभी-कभी साम्राज्य के रूप में विकसित हो जाता है।

डर्वेन्ट व्हिटलसी (1939) के अनुसार- अंग्रेजी भाषा के राजनीतिक भूगोल के साहित्य में सर्वप्रथम व्हिटलसी ने 1939 में प्रकाशित अपनी पुस्तक '**The Earm and the Stale: A Study in Political Geography**' में मूल क्षेत्र की सविस्तार चर्चा की। इन्होंने रैट्जेल की 'क्षेत्रीय कोशिका' की परम्परा को कुछ डार्वीनियन प्रकरण के साथ ही आगे बढ़ाया और क्षेत्रीय 'कोशिश' शब्द के स्थान पर 'क्रोड क्षेत्र' का प्रयोग किया। क्रोड क्षेत्र की परिभाषा करते हुए। व्हिटलसी ने लिखा या - 'क्रोड राज्य का वह भाग है जिसके चारों ओर राज्य क्षेत्रीय के रूप में घनीभूत होता है। अर्थात् क्रोड वह प्रारंभिक क्षेत्र है जिसके माध्यम से राज्य ऐतिहासिक विकास की क्रमिक प्रक्रिया द्वारा एक वृहत् संगठनात्मक इकाई का रूप धारण करता है।

डब्ल्यू जी ईस्ट (1950) के अनुसार - अंग्रेज विद्वान गोर्डन ईस्ट ने क्रोड को राज्य के सर्वाधिक संसाधन सम्पन्न नैष्टिक क्षेत्र के रूप में वर्णित किया है।

ईस्ट के अनुसार - नामिक प्रदेश वह क्षेत्र है जो राजधानी के चारों ओर फैला हुआ हो तथा जो जनसंख्या, संसाधन तथा राजनीतिक ऊर्जा के मामले में राज्य की स्थाई विधि का अधिकांश भाग प्रदान करता हों। (**How strong is The Heartland? Foreign Affairs, 29, pp. 78-93**)।

कॉल डब्ल्यू ड्यूश (1953) के अनुसार- 'क्रोड' राज्य का वह क्षेत्र है। जिसके चारों ओर कालक्रम में बड़े राज्य सफलता पूर्वक संगठित होते हैं। इस 'क्रोड' क्षेत्र में मिट्टी की उर्वरता असामान्य होने के कारण कृषि-जनसंख्या सघन रहती है तथा यह गैरकृषिगत कार्यों में लगी अतिरिक्त जनसंख्या को पालने हेतु अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न करता है... तथा यह आवागमन के मुख्य भागों के संगम (केन्द्रीयता) की स्थिति ग्रहण किए होता है।'

एन जे जी पाउण्ड्स एवं एस एस बुल (1964) के अनुसार - 'क्रोड के आधार पर विकसित राज्यों में अन्य की अपेक्षा काफी अधिक मात्रा में संसक्ति तथा गतिशीलता देखने को मिलती है' (**'Core Areas and the Development of the European state System; A.A. Amer. Geog., 54 PP- 24-40**)।

आर् हार्टशोर्न (1968) के अनुसार - 'क्रोड क्षेत्र राज्य के उद्भव के लिए न तो पर्याप्त है और न ही आवश्यक। आवश्यक तत्व एक सर्व सामान्य विचार है जो राज्य के सभी लोगों को एक साथ रहने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार हार्टशोर्न का मानना है कि राज्य की उत्पत्ति में मूल क्षेत्र की अपेक्षा राज्य विचार धारा का प्रमुख स्थान है।

एच जे डी ब्लिज (1972) के अनुसार- 'क्रोड क्षेत्र प्रत्येक सही ढंग से कार्यरत राज्य व्यवस्था का एक आवश्यक केन्द्रक अथवा सक्षम हृदय होता है।

आर् डी दीक्षित (1976) के अनुसार- 'क्रोड क्षेत्र के उदय की प्रारंभिक दशाओं में निर्वहन कृषि अवस्था का विनिमय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन तथा क्रमशः एकीकरण की प्रक्रिया के द्वारा विशेषीकृत औद्योगिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र के रूप में नगरों के उज्ज और इन नगरों को इसके पृष्ठभूमि से जोड़ने के लिए परिवहन साधनों का विकास महत्वपूर्ण है।

4.5.2 मूल (क्रोड) क्षेत्र की संकल्पना के पक्ष - रैट्जेल - व्हिटलसी-ईस्ट-ड्यूश-पाउण्ड्स-बुल - हार्टशोर्न-डी ब्लिज दीक्षित की 'मूल क्षेत्र की संकल्पनात्मक मान्यताओं के अध्ययन - विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मूल क्षेत्र की संकल्पना को सरल स्वरूप में प्रस्तुत करना व समझना सामान्यतः कठिन है, फिर भी इनके द्वारा प्रस्तुत विचारों एवं मान्यताओं के आधार पर मूल क्षेत्र की संकल्पना के दो पक्ष उभर कर सामने आते हैं:-

- (1) मूल क्षेत्र का समकालीन परिप्रेक्ष्य - इसके अनुसार मूल क्षेत्र किसी भी राज्य का वह क्षेत्र है जहाँ वर्तमान समय में आबादी सबसे सघन है, क्षेत्र सर्वाधिक विकसित और संसाधन सम्पन्न है, संचार व्यवस्था और सांस्कृतिक हलचलों का केन्द्र है और राज्य के सभी क्षेत्रों से सर्वाधिक प्रभावी ढंग से जुड़ा है। इस दृष्टि

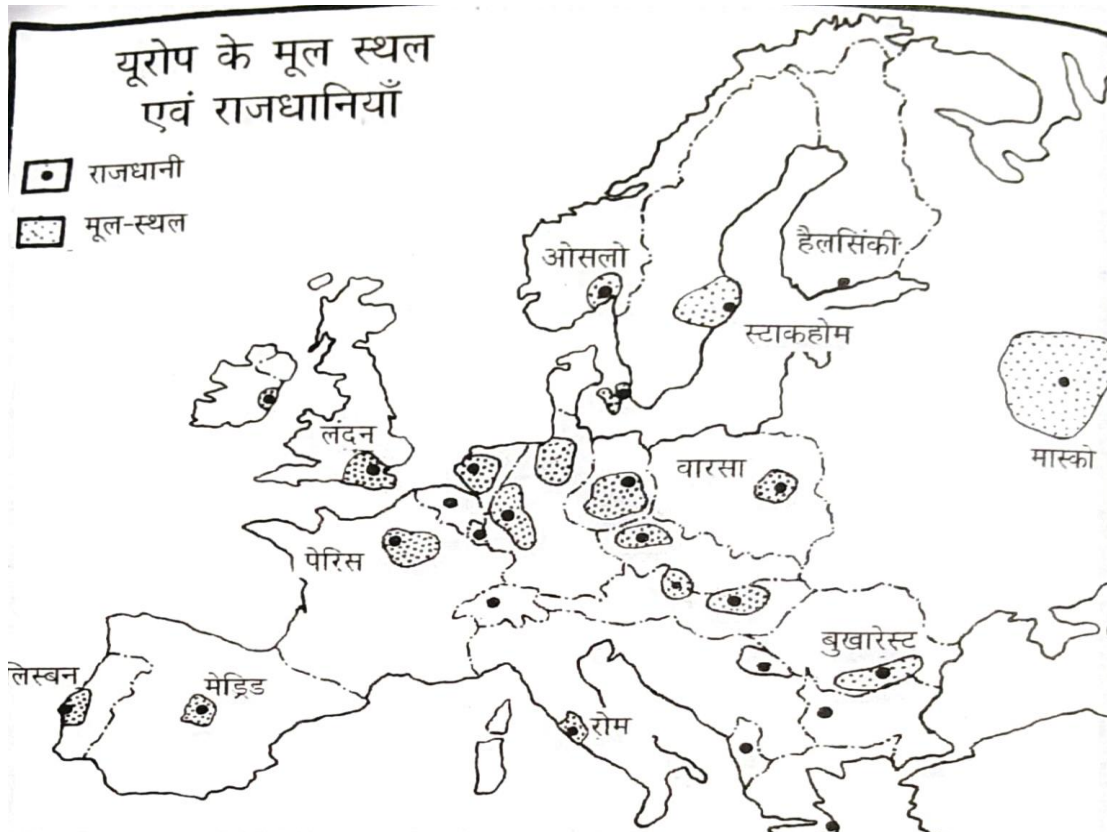
से 'मूल क्षेत्र' को राज्य का 'हृदय स्थल' (Heartland) कहा जा सकता है।

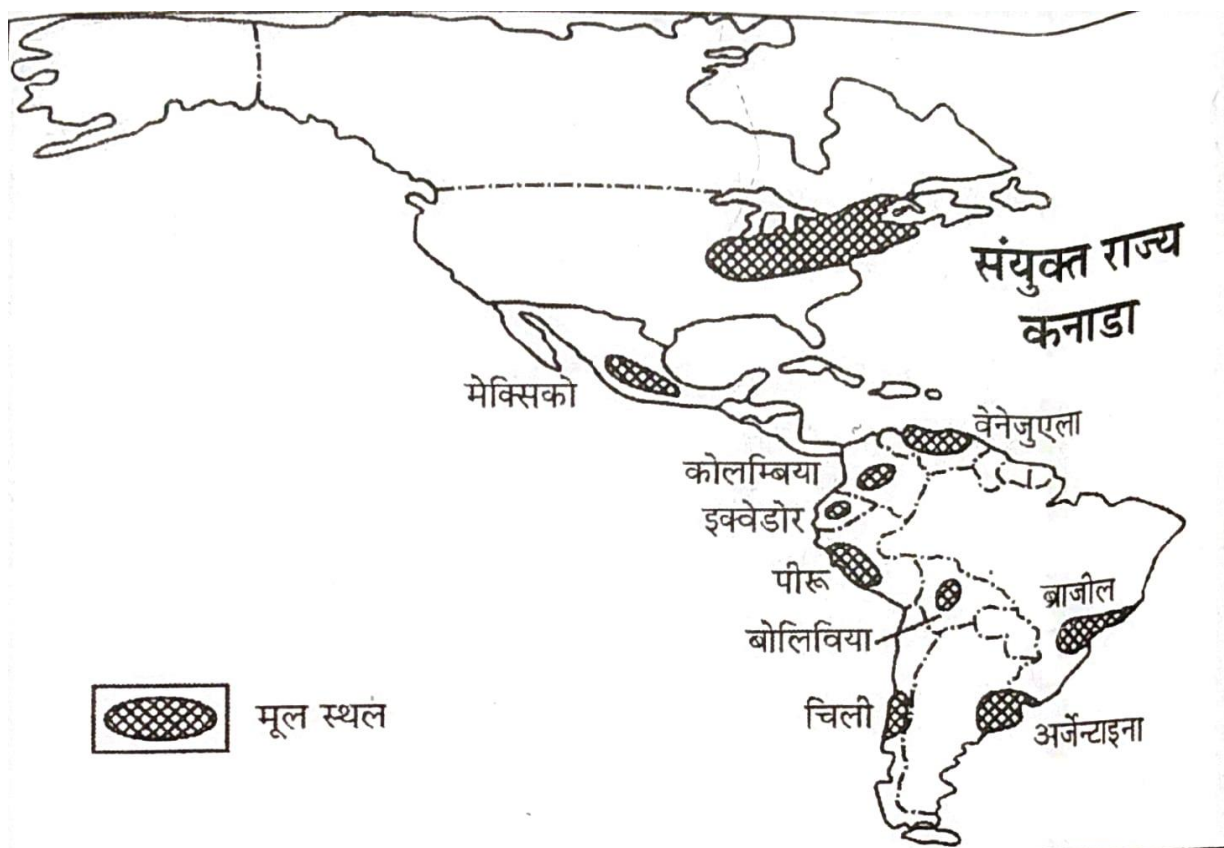
- (2) मूल क्षेत्र का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य- इसके अनुसार मूल क्षेत्र किसी राज्य के उद्भव का नैष्ठिक प्रारम्भ बिन्दु है, जहाँ से क्रमिक क्षेत्रीय प्रसार के माध्यम से राज्य अपने वर्तमान भौगोलिक आकार को प्राप्त करता है। इस दृष्टि से मूल क्षेत्र किसी राज्य की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा है। राज्य की सारी स्मृतियाँ, सारे प्रतीक मूल क्षेत्र से अनिवार्यतः जुड़े होते हैं। यही कारण है कि मूल क्षेत्र राज्य की राष्ट्रीय भावना से निकट से जुड़ा होता है।

4.5.3 मूल क्षेत्र (क्रोड) के प्रकार -

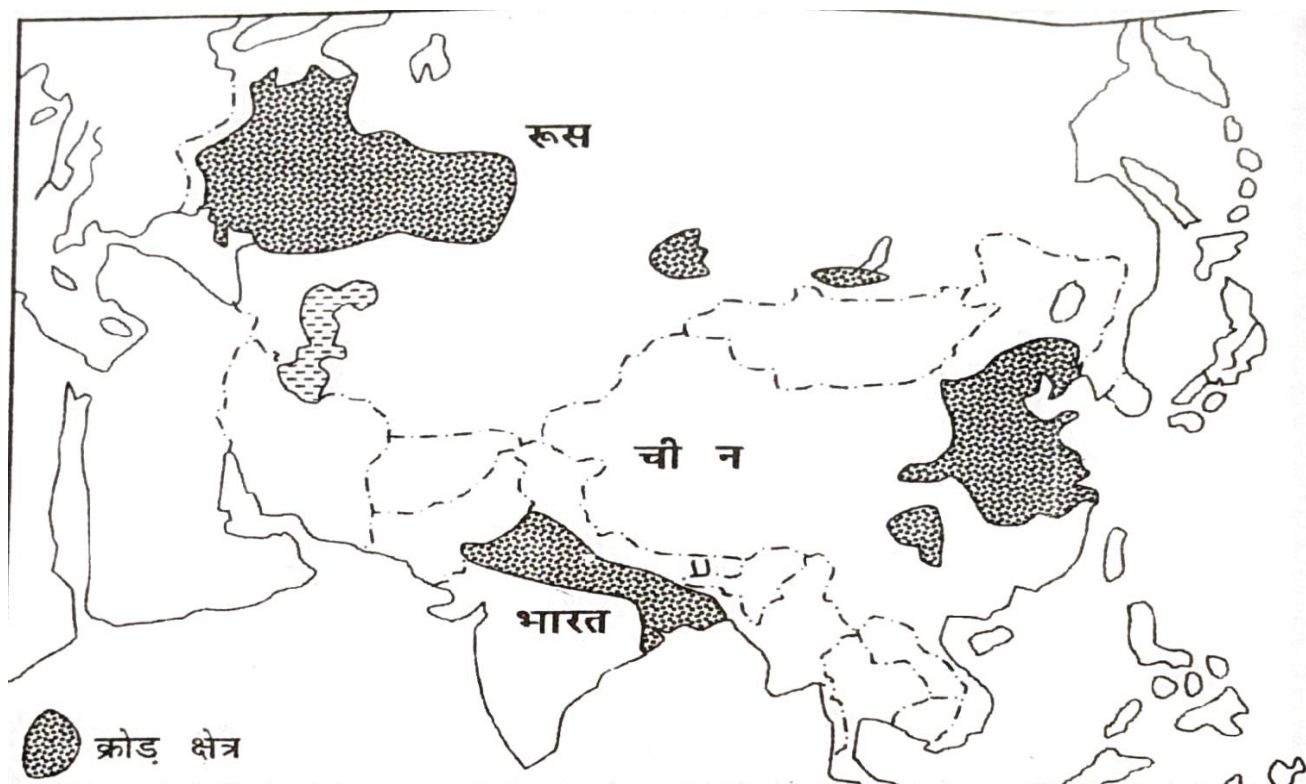
कार्यक्रम की दृष्टि से मूल क्षेत्र के प्रकार :- राजनीतिक भूगोलविद अपने अध्ययनों में मूलक्षेत्र की संकल्पना में प्रायः उपरोक्त दोनों पक्ष एक साथ ही प्रयोग में लगे रहे हैं, इसलिए मूल क्षेत्र की परिभाषा के बारे में स्थिति हमेशा भ्रमपूर्ण बनी रही। इसी भ्रमात्मक समस्या के निराकरण के लिए ऐण्ड्रय एफ0 बघर्टि ने 1969 में प्रकाशित अपने लेख 'The core concep in political Geography: A Definition of Term' (Conadian Geographer, vol.4, pp. 349-353) में मूल क्षेत्र को कालक्रम की दृष्टि से दो वर्गों में विभक्त किया है :-

- (1) ऐतिहासिक क्रोड क्षेत्र - ऐतिहासिक क्रोड क्षेत्र को पुनः दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है :-
- (अ) नैष्ठिक क्रोड :- जिसमें एक छोटा क्षेत्र क्रमशः अपने क्षेत्र एवं निवासियों में वृद्धि करते हुए अन्ततः एक बड़ा राज्य बन जाता है।
- (ब) प्रारंभिक क्रोड :- ये क्रोड क्षेत्र नैष्ठिक क्रोड की तरह प्राचीन और ऐतिहासिक होने के बावजूद भी अनेक ऐतिहासिक कारणों से क्षेत्रीय विकास की दौड़ में पीछे छूट जाते हैं।
- (2) समसामयिक क्रोड क्षेत्र - समसामयिक अर्थ में यह क्रोड क्षेत्र किसी राज्य की वर्तमान व्यवस्था में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्व- पूर्ण होता है। राज्य के विकास के लिए प्रमुख निर्देश यहीं से प्राप्त होते हैं तथा राज्य की जनतांत्रिक व्यवस्था में अपनी सधन जनसंख्या के कारण दूसरी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।





चित्र 4.2: उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के मूल स्थल



अवस्थिति की दृष्टि से मूलक्षेत्र के प्रकार :- अवस्थिति की दृष्टि से मूल क्षेत्र के तीन प्रकार निर्धारित किए गए हैं—

- (1) मध्यवर्ती अवस्थिति :- कुछ राज्यों में मूल क्षेत्र की अवस्थिति मध्यवर्ती होती है। फ्रांस मध्यवर्ती अवस्थिति का एक अच्छा उदाहरण है, (चित्रसं० 4.6)।
- (2) उपान्तीय अवस्थिति: - कुछ राज्यों में मूल क्षेत्र की अवस्थिति उपान्तीय (परिधीय) होती है, जैसा कि ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया में है (चित्र० 4.7)।
- (3) बहु-क्रोड़ीय अवस्थिति:- कुछ राज्यों में एक से अधिक मूल क्षेत्र होते हैं तथा उनके चारों तरफ क्षेत्रीय विकास भी देखा गया है। नाइजीरिया इसका एक अच्छा उदाहरण है, जहाँ तीन क्रोड़ क्षेत्र पहचाने गए हैं - (अ) राज्य के द०प० भाग में, (ब) द० पूर्व में, एवं (स) उत्तर में। भारत में भी दो परम्परागत मूल क्षेत्र हैं— (अ) विन्ध्य के उत्तर गंगा घाटी में, एवं (ब) विन्ध्य के दक्षिण कृष्णा-गोदावरी डेल्टाई क्षेत्रों में। (चित्र० 4.8)।

4.5.4 राजनीतिक भूगोल के अध्ययन में मूल (क्रोड़) क्षेत्र का महत्व

राजनीतिक भूगोल के अध्ययन में मूल क्षेत्र की महत्ता के मुख्यविन्दु निम्नवत् हैं—

1. किसी राज्य की राष्ट्रीय एकता के विकास में मूल क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
2. राज्य की राष्ट्रीय पहचान से मूल क्षेत्र का निकटवर्ती सम्बन्ध होता है।
3. मूल क्षेत्र से सम्बद्ध क्षेत्र की स्थिति सामरिक दृष्टि से महत्व पूर्ण होती है।
4. अर्थव्यवस्था में जीवन यापन कृषि के स्थान पर विनिमय प्रधान अर्थव्यवस्था का विकास होता है। विनिमय प्रधान अर्थव्यवस्था से ही नगरों का विकास संभव होता है।
5. मूल क्षेत्र के माध्यम से सम्पूर्ण राज्य एक अविभाज्य आर्थिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक और भावनात्मक सूत्र में बँधता है जो अन्ततः राष्ट्रीयता को जन्म देता है। और यही राष्ट्रीयता राज्य के नागरिकों में अपने राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के पितृमि का भाव उत्पन्न करती है।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि राज्य की क्षेत्रीय संरचना में। राज्य की अवस्थिति, आकार एवं आकृति का कितना महत्व होता है। वस्तुतः ये तीनों ही कारक भौगोलिक एवं स्वभाव से प्राकृतिक होते हैं और राज्य की क्षेत्रीय संरचना इन कारकों की समन्वित भूमिका पर निर्भर करती है।

इस इकाई में राज्य की स्थानिक संरचना के प्रमुख एवं गौणअंगों के अध्ययन से आप यह भी भलीभाँति जान गए होंगे कि मूल क्षेत्र का अध्ययन एक राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी के लिए कितना आवश्यक है, कारण कि इस क्षेत्र की मात्र राजनीतिक महत्ता ही नहीं होती बल्कि आर्थिक व साँस्कृतिक दृष्टि से भी यह राज्य का वह महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है जहाँ से किसी राज्य की स्वाभाविक व सामान्य विकास प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। यही वह क्षेत्र होता है जहाँ से राज्य के नागरिकों में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न होता है और पूरे राज्य को साँस्कृतिक हव भावनात्मक सूत्र में बाँधता है।

4.7 शब्द सूची

खगोलीय	Astronomical	प्रकीर्णाकार	Scattered
तटीय	Littoral	अन्तः क्षेत्र	Inclave
द्वीपीय राज्य	Insular State	बहिः क्षेत्र	Exclave
परिवेष्टी	Visinal	बहिर्वेष्टन	Projection
अंतस्थ राज्य	Buffer State	उपनिवेश	Mandate

सुसम्बद्ध	Compact	लम्बाकार	Elongated
गलियारनुमा	Prorapted	पुल पदाधार	Bridge-head
अपखण्डित	Fragmented	आधार क्षेत्र	Prorupted
भेदनाकार	Perforted	राज्य का प्रभाव क्षेत्र	Raum

4.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्व मूल्यांकन प्रश्न –

- एशिया में एक सागरीय स्थिति का राज्य है –
(अ) बांग्लादेश (ब) जापान (स) भारत (द) श्रीलंका
- अन्तस्थ राज्य का उदाहरण है –
(अ) पाकिस्तान (ब) नेपाल (स) म्यांमार (द) थाईलैंड
- किस महाद्वीप में सर्वाधिक स्थल आकृत राज्य हैं ?
(अ) उत्तरी अमेरिका (ब) आस्ट्रेलिया (स) अफ्रीका (द) यूरोप
- तीन सागरीय स्थिति वाले राज्य हैं –
(अ) कनाडा (ब) टर्की (स) फ्रांस (द) उपरोक्त सभी
- निम्न में से फ्रांस का मूल स्थल कौन सा है?
(अ) पेरिस बेसिन (ब) रूर बेसिन (स) लौरेल बेसिन (द) टेम्स बेसिन

आदर्श उत्तर –

1. (अ);
2. (ब);
3. (स);
4. (द);
5. (अ)

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Carlson, L., (1958): 'Geography and World Politics; Prentice' Hall, Inc. Englewood Cliffs, Nat. 534 pp.

Blig, H.J., .1972): Systematic De Deutsch, K.W., (1953): Political Geography, Wiley, Newyork. Nations: Some Recurrent Patterns

Dixit, R.D., (1976): Geographical World Politics, Vol. 5, pp.168-Ms Perspectives on state formation and Nation Building, G.I. Volume, T. G. Society, Madras, pp.235.245. East, W. G. and Spate O.H.K. (1950)- 'The Changuig Map of Asia', (Ed) London, Methuen.

Febvre] L., (1932): A Geographical Introduction tuttistory, London. Hagget, P. and et. al. (1965): Locational Analysis in Human Geography, London, John Wiley.

Hartshorne, R., (1968): Morphology of the State Aver: Significance for the state, In C.A Bicher (ed) Essays in Political Geasaphy, London, Methuen, pp. 27.32.

Kaistof, L.K.D., (1959): 'The Nature of Frontiers and Boundaries, A. A. A. Geogr., Vat. 49, No.3 Pounds, N.J.G., (1972). Political Geography'' 2nd Ed. McGraw-Hill, New/ok

Valkenburg, S.V. and Stutz, C., (1963): "Elements of Political Geography, 2nd ed. Prentice Hall of India Pvt. Ltd. New Delhi.. Whittlesey, D., (1939): " The Earth and the state; Henry Holt and Co., New York

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. विश्व के अधिकांश राज्यों की स्थापना किस रूप में हुई थी?
2. मूल स्थल क्या है? राज्य में इसका क्या महत्व है?
3. अंतस्थ राज्य किसे कहते हैं।
4. भेदनाकर राज्य किसे कहते हैं?
5. मूल क्षेत्र के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

इकाई—05 आधार क्षेत्र एवं राजधानियाँ

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 प्रस्तावना
- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 विषय प्रवेश
- 5.3 आधार क्षेत्र
 - 5.3.1 आधार क्षेत्र : शाब्दिक एवं भौगोलिक अर्थ
 - 5.3.2 आधार क्षेत्र : परिभाषाएँ
 - 5.3.3 आधार क्षेत्र की संकल्पना
 - 5.3.4 आधार क्षेत्र की विशेषताएँ
- 5.4 राजधानियाँ
 - 5.4.1 राजधानी: परिभाषाएं
 - 5.4.2 राजधानियों का वर्गीकरण
 - 5.4.2.1 वाधन कोर्निश (1923) का वर्गीकरण
 - 5.4.2.2 ओ०एच० के स्टेट (1942) का वर्गीकरण
 - 5.4.2.3 जी० हमदान (1964) का वर्गीकरण
 - 5.4.2.4 एच० जे० डी ब्लिज (1972) द्वारा प्रस्तुत आकृतिमूलक वर्गीकरण
 - 5.4.2.5 पी० जी० टेलर (1985) का वर्गीकरण
 - 5.4.2.6 उद्भव के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण
 - 5.4.2.7 स्थिति के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण
 - 5.4.2.8 प्रशासनिक प्रणाली के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण
 - 5.4.3 राजधानी के कार्य
 - 5.4.4 राजधानी की स्थिति व विकास को प्रभावित करने वाले कारक
- 5.5 संघीय राजधानियाँ
- 5.6 राजधानियों की स्थिति में परिवर्तन के प्रमुख कारक
- 5.7 सारांश
- 5.8 शब्द सूची
- 5.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्शउत्तर
- 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

5.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम भी पाँचवीं इकाई है। इस इकाई में आप आधार क्षेत्र एवं राजधानियों के विषय में अध्ययन करेंगे “आधार क्षेत्र ‘वस्तुतः राज्य का आर्थिक हृदय होता है जहाँ राज्य के आर्थिक विकास की अधिकाधिक संभावनाएं मौजूद रहती है। यहाँ जनसंख्या, यातायात प्रवाह, संसाधन तथा राजनीतिक ऊर्जा का व्यापक संतुलन होता है, इसीलिए इसे राज्य का आधार क्षेत्र कहा जाता है। राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी के लिए इसका अध्ययन आवश्यक माना जाता है कारण कि इसी आधार पर अध्येता उस राज्य की शक्ति का आंकलन करता है।

‘राजधानियाँ’ राज्य क्षेत्र के नियंत्रक केन्द्र के रूप में कार्य करती है जहाँ राज्य संचालन के लिए नीतियाँ निर्धारित की जाती है। पूर्ण राज्य की आन्तरिक एवं बाह्य कार्यप्रणाली के कार्यात्मक एवं प्रशासनिक केन्द्र के रूप में पहचान रखने वाली राजधानी राज्य सत्ता का केन्द्र होती है। राज्य सत्ता के विभिन्न अवयवों में राजधानी को ‘मस्तिष्क’ माना जाता है। अतः राज्य सत्ता का गहन अध्ययन करते समय आधार क्षेत्र एवं राजधानियों का राजनीतिक – भौगोलिक अध्ययन राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. विद्यार्थियों को आधार क्षेत्र की मूल भावना से परिचित कराना।
 2. आधार क्षेत्र की संकल्पनात्मक रूपरेखा को भलीभांति समझाना।
 3. राज्य की संरचना के महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में राजधानी की महत्ता एवं उसके मानवीकृत रूप से विद्यार्थियों से अवगत कराना।
 4. राजधानी की स्थिति व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की महत्ता को स्पष्ट करना।
 5. संघीय राजधानियों के अध्ययन के माध्यम से संघीय शासन प्रणाली से विद्यार्थियों को भलीभांति परिचित कराना।
-

5.2 विषय प्रवेश

किसी राज्य की अवस्थिति, आकार और आकृति राज्य की क्षेत्रीय संरचना के तथा सीमान्त एवं सीमाएँ, मूल क्षेत्र (क्रोड क्षेत्र : Core Area), आधार क्षेत्र (वास्यक्षेत्र: Ecumene) तथा राजधानी नगर राज्य की स्थानिक संरचना के मूलतत्त्व माने जाते हैं। मूल क्षेत्र सामान्यतया राज्य का उद्भव क्षेत्र होता है। प्राकृतिक दृष्टि से अनुकूल एवं सुविधा सम्पन्न होने के कारण यह राज्य के क्षेत्रीय विकास में प्रेरणा स्रोत का कार्य करता है; जबकि आधार क्षेत्र राज्य का आर्थिक हृदय होता है जहाँ राज्य के आर्थिक विकास की अधिकाधिक संभावनाएं मौजूद रहती है। राजधानियाँ राज्य क्षेत्र के नियंत्रक केन्द्र के रूप में कार्य करती है जहाँ पर राज्य संचालन के लिए नीतियाँ निर्धारित की जाती है। राज्य के विभिन्न अवयवों में राजधानी को मस्तिष्क माना जाता है। अतः राज्य संरचना का गहन अध्ययन करते समय आधार क्षेत्र एवं राजधानियों का राजनीतिक भौगोलिक अध्ययन भी अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

5.3 आधार क्षेत्र (Ecumene)

5.3.1 आधार क्षेत्र : शाब्दिक एवं भौगोलिक अर्थ –

आधार क्षेत्र ‘‘Ecumene’’ (एकुमेन) शब्द ग्रीक भाषा के ‘Oikoumene’ शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है inhabited earth अर्थात् ‘बसा हुआ भूभाग’ या वास्य क्षेत्र। इसे ‘निवास्य क्षेत्र’ भी कहते हैं जिसका भौगोलिक अर्थ पृथ्वी तल का ऐसा क्षेत्र है जो भौतिक पर्यावरण और मानव समुदाय के पारस्परिक एवं अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप सर्वाधिक विकसित है तथा जिसमें जनसंख्या, यातायात प्रवाह, संसाधन तथा राजनीतिक ऊर्जा का व्यापक संकेन्द्रण है। अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण इसे राज्य का ‘आधार क्षेत्र’ भी कहा जाता है। एक सामान्य अवधारणा के अनुसार जिस राज्य का आधार क्षेत्र जितना बड़ा होगा, वह राज्य उतना ही अधिक शक्तिशाली

होगा।

5.3.2 आधारक्षेत्र : परिभाषाएँ (Ecumene: Definitions) –

मार्क जेफरसन (M- Jefferson 1939) के अनुसार – भूगोल में सर्वप्रथम मार्क जेफरसन ने 'Ecumene (आधार क्षेत्र) शब्द का प्रयोग किया था। उनके अनुसार 'टेल या सड़क के सहारे 10 मील तक की पट्टी आधार क्षेत्र है।'।

डी. हिटलसी (1939) के अनुसार— 'आधार क्षेत्र (वास्य क्षेत्र) राज्य का वह भाग है, जहाँ सर्वाधिक सघन जनसंख्या और परिवहन मार्गों का जटिल संजाल मिलता है।

5.3.3 आधार क्षेत्र की संकल्पना (The Concept of Ecumene) –

राजनीतिक भूगोल में आधार क्षेत्र की संकल्पना के प्रतिपादन का श्रेय डी० हिटलसी महोदय को जाना है। इन्होंने मार्क जेफरसन के विपरीत आधार क्षेत्र के अन्तर्गत केवल रेल या सड़क के किनारे के क्षेत्र को ही नहीं बल्कि सभी प्रकार की यातायात रेखाओं (transportation lines) से प्रभावित क्षेत्र को सम्मिलित किया है। इन्होंने अपनी आधार क्षेत्र की संकल्पनात्मक रूपरेखा में कई तत्वों को सम्मिलित किया है, यथा – सघनतम जनसंख्या, परिवहन का सघनतम जाल, अधिकतम आर्थिक विकास, भविष्य में आर्थिक विकास की पर्याप्त संभावनाएँ, विभिन्न तकनीकी, पूँजीगत और परियोजनात्मक निवेश और समृद्ध कृषि क्षेत्र आदि। हिटलसी के अनुसार इन तत्वों की सक्रियता राज्य के जिसकी क्षेत्र में अधिकतम होती है, वही क्षेत्र राज्य का आधार क्षेत्र (Ecumene) बन जाता है। आधार क्षेत्र वास्तव में राज्य का आर्थिक हृदय होता है जो कृषि, कृष्येतर कार्यों एवं वाणिज्यिक, आर्थिक, औद्योगिक क्रियाकलापों की संकेन्द्रित स्थिति के कारण निर्मित होता है।

कैल्परसन एवं सिंघी (1969) ने हिटलसी की आधार क्षेत्र की संकल्पना को अस्वीकार किया है और मूल क्षेत्र को ही आधार क्षेत्र माना है। परन्तु हिटलसी के कथनानुसार—

मूल क्षेत्र और आधार क्षेत्र में सूक्ष्म अन्तर है। मूलक्षेत्र राज्य का उद्भवक्षेत्र है जबकि आधार क्षेत्र राज्य का आर्थिक हृदय है। यह आवश्यक नहीं है कि मूल क्षेत्र में ही सर्वाधिक आर्थिक विकास हो। राज्य के जिस भी क्षेत्र में आर्थिक विकास की पर्याप्त संभावनाएं होगी, वही क्षेत्र कालान्तर में आधार क्षेत्र बन जाएगा।

यहाँ पर उन्लेखनीय है कि किसी राज्य में आधार क्षेत्र का सीमांकन कठिन है, कारण कि हिटलसी ने आधार क्षेत्र की जो संकल्पना विकसित की है, उसमें उन्होंने उसकी गुणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संकल्पनात्मक रूपरेखा में सम्मिलित तत्वों की कितनी मात्रा के आधार पर आधार क्षेत्र की सीमा निर्धारित की जा सकती है। फिर भी आधार क्षेत्र का विस्तार कई सूचकों द्वारा मापा जा सकता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण आवासित एवं मानव क्रिया कलाप द्वारा प्रभावित क्षेत्र, यातायात एवं संचार के साधन हैं। लोगों की नित्य गतिशीलता, कारखानों तथा बाजारों के मध्य वस्तुओं का प्रवाह एवं समाचार— पत्रों के परिसंचरण आदि के द्वारा भी आधार क्षेत्र के विस्तार को मापा जा सकता है।

'आधार क्षेत्र की संकल्पना वास्तव में मूल क्षेत्र की संकल्पना से ही सम्बन्धित है। सर्वप्रथम मूल क्षेत्र ही आधार क्षेत्र के रूप में थे। धीरे-धीरे मूल क्षेत्रों के पृष्ठ प्रदेशों के विकास एवं वहाँ पर प्रभावी अधिवास एवं परिवहन मार्गों के निर्माण द्वारा समीपवर्ती क्षेत्र व राज्य का अधिकांश भाग आधार क्षेत्र के रूप में परिणत हुआ है।

5.3.4 आधारक्षेत्र की विशेषताएँ – आधार क्षेत्र की प्रमुख विशेषलाएँ निम्नलिखित हैं।

1. आधार क्षेत्र एक आवासित एवं जन संकुल क्षेत्र होता है जिसमें मानव समुदाय के सभी क्रियाकलापों का संकेन्द्रण होता है।
2. आधार क्षेत्र का निर्माण शनैः शनैः कृषि, कृष्येतर कार्यों एवं औद्योगिक वाणिज्यिक क्रियाकलापों भी संकेन्द्रित स्थिति के कारण सम्पन्न होता है।
3. 'आधार क्षेत्र में परिवहन मार्गों का जटिल संजाल विकसित होता है।
4. कभी-कभी राज्य का उद्भव क्षेत्र ही उसका आधार क्षेत्र भी हो सकता है, जैसे फ्रांस का उद्भव क्षेत्र

पेरिस है और यही क्षेत्र उसको आधार क्षेत्र की है।

5. आधार क्षेत्र की स्थिति परिधीय भी हो सकती है जो रणनीतिक दृष्टि से असुरक्षित होती है। उदाहरण रे लिए भारत के आधार क्षेत्र का ७५० भाग सुरक्षित नहीं है, क्योंकि वह पाकिस्तान के निकट है। रूस का आधार क्षेत्र नाटो शक्तियों के निकट होने से असुरक्षित है।
6. आधार क्षेत्र प्राकृतिक दृष्टि से भी अनुकूल एवं सुविधा सम्पन्न क्षेत्र होता है।
7. विश्व के अधिकांश आधार क्षेत्र नदी बेसिनों में ही विकसित हुए हैं।
8. आधार क्षेत्र सतत न होकर टुकड़ों में भी विकसित हो सकता है।
9. आधार क्षेत्र की राज्य की आदर्श स्थिति राज्य के मध्य में होती है, लेकिन इनका विकास तटीय एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में भी हो सकता है, जैसे ब्राजील का आधार क्षेत्र द०पूर्वी भाग में आंध्र महासागरीय तट के सहारे विकसित हुए हैं।
10. आधार क्षेत्र राज्य का आर्थिक हृदय है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि मूल क्षेत्र में ही सर्वाधिक आर्थिक विकास हो। यह मूल से अलग भी विकसित हो सकता है।
- 11- किसी भी राज्य का सम्पूर्ण बसा हुआ भाग आधार क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित होता है। विश्व में जन संख्या के उत्तरोत्तर विकास से राज्यों के आधार क्षेत्रों का भी शनैः शनैः विस्तार हुआ है

5.4 राजधानियाँ (Capitals)

किसी भी राज्य भी स्थानिक संरचना का तीसरा एवं महत्वपूर्ण पक्ष राज्य की राष्ट्रीय राजधानी है। यह राज्य संरचना का सबसे जीवन्त एवं मूर्ततत्व है। सम्पूर्ण राज्य की आन्तरिक एवं बाह्य कार्य प्रणाली के कार्यात्मक एवं प्रशासनिक केन्द्र के रूप में पहचान रखने वाली राजधानी राज्य सत्ता का केन्द्र होती है। विधि और कानून का मुख्यालय होती है। राज्य विशेष के सांस्कृतिक स्वरूप को प्रतिनिधि होती है। नीतियों के निर्धारण का केन्द्र होती है जहाँ से राज्य के (सम्पूर्ण क्षेत्र को एक कार्यात्मक इकाई के रूप में स्थापित कर संचालित किया जाता है। जैविक विचारधारा के अन्तर्गत राजधानी को राज्य का मस्तिष्क माना गया है। एक राजधानी किसी राज्य क्षेत्र का एक 'मानवीकृत रूप' तब बन जाती है, जब यह कहा जाता है कि 'दिल्ली' ने मध्य-पूर्व एशिया में इजरायल-हमास संघर्ष 'पर चिंता व्यक्त की है या' वाशिंगटन' ने सुरक्षा परिषद में रूस-यूक्रेन संघर्ष के शान्तिपूर्ण समाधान' पर बल दिया है। राजनीतिक भूगोल विदों ने राजधानी को केन्द्राभिमुखी शक्तियों का प्रतिफल बताया है जो राज्य भी सांस्कृतिक पहचान से बहुत समीप से जुड़ी होती है और सम्बद्ध राज्य की राष्ट्रीयता का प्रतीक होती है। वास्तव में राजधानी राज्य का सबसे दृश्यमान (Visible) तथ्य है।

5.4.1 राजधानी: परिभाषाएं (Capital: Definitions)

डी० हिवटलसी (1939) के अनुसार – “राष्ट्रीय जीवन का आदर्श उदाहरण है जिसमें राज्य का इतिहास एवं परम्पराएं निहित होती हैं। इसकी सत्ता आकार और आर्थिक वृद्धि से विकास का आधार प्राप्त करती है, तथा इसके साथ ही यहाँ प्रशासनिक व्यापारिक एवं औद्योगिक कार्यों का केन्द्रीकरण होता है।”

एम० जेफरसन (1939) के अनुसार – “‘राजधानी’ राज्य का अग्रणी नगर होता है जो राष्ट्रीय क्षमता एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है।... यह गहन राष्ट्रीयता का प्रतीक होता है। यहाँ राज्य का मस्तिष्क एवं आत्मा निवास करती है।”

ओ० एच० के० स्पेट (1942) के अनुसार – ‘राजधानी एक ऐसे स्थान के रूप में परिभाषित की जा सकती है जहाँ एक क्षेत्रीय इकाई की राजनीतिक सत्ता केन्द्रित होती है यहाँ विधायिका और कार्यपालिका का मुख्यालय होता है, जहाँ से राज्य के स्वरूप संघीय अथवा केन्द्रीय प्रकृति के अनुसार स्थानीय प्रशासन पर उच्चतम स्तर का नियंत्रण रखा जाता है।

जी० ई० पियर्सो एवं सहयोगियों (1957) के अनुसार – “राज्य का प्रशासनिक केन्द्र राजधानी के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह राज्य की बहुत सी राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु होता है।”

एच० डब्ल्यू. वीगर्ट एवं सहयोगियों (1957) के अनुसार – “राजधानी नगर एक राजनीतिक इकाई के केन्द्रीय कार्यपालक अंगों को धारण करता है और इसके साथ ही यहाँ प्रायः दूसरे केन्द्रीय संस्थानों, न्यायपालिका, विधायिका, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थानों का भी केन्द्रीकरण हो जाता है।”

आर० म्यूर (1975) के अनुसार – “एक राज्य के अन्तर्गत राजधानी वह स्थान है जहाँ राजनीतिक प्रशासन केन्द्रित होता है।”

5.4.2 राजधानियों का वर्गीकरण (**Classification of Capitals**)

विभिन्न विद्वानों द्वारा राजधानियों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया गया है। प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कुछ वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

5.4.2.1 वॉधन कोर्निश (1923) का वर्गीकरण –

ब्रिटिश विद्वान वॉधन कोर्निश ने 1923 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ‘Great Capitals: A Historical Survey’ में स्थिति के आधार पर राजधानी को तीन वर्गों में विभाजित किया है—

(अ) प्राकृतिक मंग गृह, (ब) चौराहा, (स) दुर्ग केन्द्र

कोर्निश के अनुसार प्रथम की राजधानी प्राकृतिक भंडार गृह वास्तविक प्राथमिक तथा मौलिक होती है, तथा द्वितीय (चौराहा) एवं तृतीय (दुर्ग) श्रेणी इसी पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में कोर्निश का अनुमान था कि विश्व की प्राकृतिक सम्पदा के जो प्रमुख भण्डार गृह हैं, वे किसी न किसी दिन चौराहा तथा दुर्ग केन्द्र विकास को निर्धारित करेंगे। वास्तव में कोर्निश ने अपने उस वर्गीकरण के माध्यम से अग्रवर्ती (Forward) राजधानी की नई संकल्पना प्रस्तुत की और उस विमर्श में समयपरक गत्यात्मकता का प्रवेश किया।

5.4.2.2 ओ० एच० के० स्पेट (1942) का वर्गीकरण –

ओ०एच०के० स्पेट ने 1942 में प्रकाशित अपने आलेख *factors in the Development of capital Cities* में ‘ऐतिहासिक जड़त्व तथा ऐतिहासिक अनुकरण की शक्ति अथवा परम्परा की राजनीतिक शक्ति के आधार पर राजधानी को तीन वर्गों में विभाजित किया है :—

(अ) वह राजधानी जो संघीय अथवा संश्लिष्ट राज्य का आधार केन्द्र है:

(ब) वह राजधानी जो संघ तथा विजय के सीमान्त आयोजन के रूप में अग्रवर्ती है:

(स) वह राजधानी जो सम्पर्क सूत्र के रूप में है जिसके द्वारा राज्य अपने विकास काल में पोषण प्राप्त करता है तथा बाद के समय में भी उससे अनुप्राणित होता रहता है।

5.4.2.3. जी० हमदान (1964) का वर्गीकरण : जी० हमदान 1964 में प्रकाशित अपने आलेख ‘Capitals of the New Africa’ में उत्पत्ति तथा ऐतिहासिक विकास के आधार पर राजधानी को (अफ्रीका के विशेष सन्दर्भ में) चार वर्गों में विभाजित किया है —

(अ) ऐतिहासिक राजधानियाँ, (ब) जन्मजात राजधानियाँ, (स) औपनिवेशिक राजधानियाँ, तथा (द) उत्तर औपनिवेशिक राजधानियाँ

5.4.2.4 एच० जे० डी ब्लिज (1972) द्वारा प्रस्तुत आकृति मूलक वर्गीकरण –

डी० ब्लिज ने 1972 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Systematic Political Geography* में राजधानी का आकृतिमूलक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस वर्गीकरण का आधार सन्दर्भ राजधानी की स्थिति, क्षेत्र तथा मूल क्षेत्र है। डी ब्लिज ने अपने इस वर्गीकरण में “राजधानी के तीन वर्ग बताए हैं— स्थाई, प्रस्तावित तथा विभाजित राजधानी।

(अ) स्थाई राजधानी (**Permanent Capital**) –

स्थायी राजधानी वह राजधानी होती है जो अपने मूल क्षेत्र में अवस्थित रहकर अपने राज्य के लिए शताब्दियों से प्रमुख राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक केन्द्र के रूप में कार्य करती रहती हैं। राज्य के विकास की चार अवस्थाओं (जन्म, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और अन्त) में अपनी स्थिति सुदृढ़ करते हुए जब कोई राजधानी दो अवस्थाओं की पार कर जाती है, तो उसे स्थाई या ऐतिहासिक राजधानी की श्रेणी में रखा

जाता है। लन्दन, पेरिस, रोम, एथेन्स अपने राज्यों की ऐसी ही राजधानियाँ हैं जिन पर राजनीतिक अस्थिरता का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा है।

(ब) प्रस्तावित राजधानी (**Introduced Capital**) –

जब कोई पुरानी (राजधानी राज्य सागर के कार्य स्थल के रूप में किसी कारण वश सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाती तो उसे राज्य के नए स्थल पर स्थानान्तरण की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थानान्तरित राजधानी को प्रस्तावित या आरोपित राजधानी कहा जाता है। जापान की टोकियो, पाकिस्तान की इस्लामाबाद ऐसी ही प्रस्तावित राजधानियाँ हैं।

(स) विभाजित राजधानी (**Divided Capital**) –

सुविधा की दृष्टि से नहीं बल्कि समझौते की दृष्टि से जब किसी राज्य की राजधानी नगर विशेष में केन्द्रित न होकर दो या दो से अधिक नगरों में बंट जाती है तो उसे विभाजित राजधानी की श्रेणी में रखा जाता है। नीदरलैण्ड की वैधानिक राजधानी हेग है जब कि एमस्टरडम सरकारी राजधानी है, क्योंकि यहाँ राजप्रासाद स्थित है। द० अफ्रीकी गणराज्य में तीन राजधानियाँ हैं— केपटाउन, प्रिटोरिया तथा ब्लोएमफोन्टीन। केपटाउन विधायिका का मुख्यालय (अंग्रेजी परम्परा), प्रिटोरिया में प्रशासनिक मुख्यालय (डच परम्परा) तथा ब्लोएमफोन्टीन न्यायपालिका का मुख्यालय (मिश्रित परम्परा) है। भूटान का सरकारी मुख्यालय थिम्फू है तथा प्रशासकीय कार्यों का केन्द्र पारो नगर है।

5.4.2.5 पी० जी० टेलर (1985) का वर्गीकरण – पी.जी. टेलर ने सन् 1985 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ‘Political Geography, World Economy, Nation State and Locality’ में विश्व अर्थव्यवस्था प्रक्रिया अथवा विश्व तंत्र उपागम के आधार पर राजधानी के तीन प्रकार बतलाए हैं—

- (अ) क्रोड प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप :— क्रोड प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप विकसित राजधानी नगर को हेनरीक्सन ने यूरोपीय संकल्पना कहा है जिसके अनुसार— ‘राजधानी राज्य का केन्द्र होता है जो राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों पर प्रभावी रहता है।
- (ब) परिधीय प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप :— सामान्यतया ये बन्दरगाह नगर होते थे जो प्रत्यक्ष रूप से क्रोड क्षेत्र से जुड़े होते थे।
- (स) अर्ध-परिधीय राजनीतिक रणनीति को प्रदर्शित करने वाली राजधानियाँ :— ऐसे राजधानी नगरों को हेनरीक्सन ने अमेरिकी संकल्पना कहा है जिसके अनुसार— ‘राजधानी प्रभावी केन्द्र होता है जहाँ राजनीति का विशिष्टीकरण मिलता है।

5.4.2.6 उद्भव के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण – उद्भव के आधार पर राजधानियाँ दो प्रकार की होती हैं (अ) नैसर्गिकप्राकृतिक (ब) कृत्रिम

- (अ) नैसर्गिक या प्राकृतिक राजधानी – राज्य के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया से दीर्घकाल से जुड़ी एवं राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के हर दौर में सक्रिय रूप में भागीदार रही राजधानी नैसर्गिक या प्राकृतिक राजधानी कही जाती है। परम्पराओं बधी यह राजधानी राज्य के हर हिस्से से प्रभावी संचार व्यवस्था से जुड़ी होती है। लन्दन व पेरिस ऐसी ही राजधानियाँ हैं।
- (ब) कृत्रिम राजधानी – राजनीतिक निर्णय के अनुरूप बनाई गई राजधानी को कृत्रिम राजधानी कहते हैं। यह राजधानी राज्य के ऐतिहासिक विकास की क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं होती बल्कि इसे एकही जगह सबकुछ के भाजार पर बनाया जाता सभी संथीय राजधानियों कृत्रिम राजधानियाँ हैं।

5.4.2.7 स्थिति के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण –

स्थिति के आधार पर राजधानियों के दो प्रकार हैं – (अ) केन्द्रीय राजधानी (ब) परिधीय या सीमावर्ती राजधानी

- (अ) केन्द्रीय राजधानी – राज्य के मध्यवर्ती भाग में स्थित राजधानी केन्द्रीय राजधानी होती है। राज्य के विकास, विस्तार, युद्धकाल में आक्रमणों से सुरक्षा एवं प्रशासन की दृष्टि से राजधानी की केन्द्रीय स्थिति सदैव उत्तम मानी जाती है। मास्को (रूस), पेरिस (फ्रांस), मैड्रिड (स्पेन) बुडापेस्ट (हंगरी) एवं प्राग

(चेकोस्लोवाकिया) ऐसी ही राजधानियाँ है।

- (ब) परिधीय या सीमावर्ती राजधानी – राज्य के पार्श्ववर्ती भाग में सीमा के समीप स्थित राजधानी परिधीय राजधानी होती है। सुरक्षा एवं प्रशासन की दृष्टि से अनेक कठिनाइयों के कारण परिधीय राजधानी की स्थिति उत्तम नहीं मानी जाती। ओटावा (कनाडा) एथेंस (यूनान), काहिरा (मिस्र), बैकाक (थाईलैण्ड) ऐसी ही राजधानियाँ है।

5.4.2.8 प्रशासनिक प्रणाली के आधार पर राजधानियों का वर्गीकरण – प्रशासनिक प्रणाली के आधार पर राजधानी के दो प्रकार निर्धारित किए गए हैं :-

- (अ) ऐकिक राजधानी – इस प्रकार की राजधानी में सभी राजनीतिक एवं प्रशासनिक शक्तियों केन्द्र सरकार में सन्निहित होती है। प्रायः मूलक्षेत्र में स्थित इस राजधानी का महत्व अधिक होता है। पेरिस (फ्रांस) ऐसी राजधानी का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।
- (ब) संघीय राजधानी – जब किसी राज्य में संघीय व्यवस्था होती है तो राजनीतिक शक्ति का विभाजन केन्द्र व प्रान्तों के मध्य होता है। राज्य के प्रान्त केन्द्र के अधिकार में रहकर अपने-अपने प्रान्तों की अलग-अलग राजधानियाँ चुनते हैं। ऐसी राजधानियाँ प्रायः कृत्रिम होती है। विश्व में अधिकांश संघीय राज्यों की राजधानियाँ इसी प्रकार की है।

5.4.3 राजधानी के कार्य (Functions of Capital)–

राज्यों के ऐतिहासिक विकास अर्थात् उनके क्षेत्रीय विस्तार की प्रक्रिया में राजधानियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अपनी इस भूमिका के निर्वहन में राजधानियाँ विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पादित करती है। उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों का विवरण निम्नलिखित है :-

1. राजधानी सार्वभौम सरकार का केन्द्र स्थल होती है जहाँ से वह पूरे राज्य के प्रशासन का संचालन करती है और राज्य को संगठनात्मक दिशा निर्देश देती है।
2. राजधानी में ही सरकार का मुख्यालय स्थित होता है और यहीं पर राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री, सांसदों, मंत्रियों तथा मंत्रालयों से जुड़े प्रशासकों का निवास स्थान होता है।
3. राजधानी में न्यायाधीशों के आवास तथा विधि एवं कानून के मुख्यालय स्थित होते हैं।
4. राजधानी में ही विदेशी राज्यों के दूतावास तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक व व्यापारिक संगठनों के कार्यालय भी स्थित होते हैं जिससे कि राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्पर्क कायम रहे है।
5. श्रमिक एवं व्यावसायिक संगठनों के मुख्यालय, शैक्षणिक संस्थान, खेलकूद और अन्य प्रकार के प्रतिष्ठान भी राजधानी में ही स्थित होते हैं।
6. राजधानी उस राज्य विशेष की संस्कृति व स्वरूप की प्रतिनिधि होती है, इसलिए विभिन्न प्रकार के साँस्कृतिक प्रतिष्ठान भी अपना कार्यालय यहीं पर खोलते हैं।
7. विश्व के अधिकांश राज्यों में राजधानी नगर सबसे बड़ा सर्वदेशीय नगर होना है कारण कि प्रायः यहीं पर विदेशी राज्यों के शिष्टमंडल, प्रतिनिधि मंडल, आगन्तुक एवं पर्यटक आदि आते हैं। इस तरह से राजधानी राज्य के बाहर से प्राप्त होने वाले महत्वपूर्ण प्रभावों, विचारों एवं संदेशों को आत्मसात करते हुए राष्ट्रीय संस्कृति को नया मोड़ प्रदान करने में सहायक होती है।
8. नीतियों के निर्धारण का केन्द्र होने के साथ-साथ राजधानियाँ सम्पर्क माध्यम का भी कार्य करती है। एक ऐसा सम्पर्क माध्यम जिसके द्वारा दूसरे राज्यों की ज्ञान – विज्ञान सम्बन्धी प्रगति सूचनाओं को आत्मसात कर राज्य अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।
9. राजधानियाँ शक्ति व अधिकार स्रोत होती हैं और राज्य के सामर्थ्य की प्रतीक होती।
10. राजधानियाँ राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं प्रगति की भी द्योतक होती हैं और पूरे राज्य को उस हद तक संतुलित रखती है जिससे कि सम्पूर्ण राज्य एकीकृत एवं समाकलित रह सके। इस तरह से राजधानियाँ सम्बद्ध राज्य के अस्तित्व का आधार होती है।

11. संघीय संरचना में राजधानी की द्विस्तरीय व्यवस्था रहती है, अर्थात् संघीय राजधानी और प्रान्तीय राजधानी। प्रान्तीय राजधानी मुख्य रूप से प्रादेशिक प्रशासन को देखती है और संविधान के अनुरूप संघीय राजधानी के दिशानिर्देशों का पालन करती है आन्तरिक एवं बाह्य स्थानिक सम्बन्धों की गतिशील प्रकृति के कारण राजधानी के कार्य समय के साथ सदैव परिवर्तनशील रहे हैं। प्राचीन काल में राजधानियों छोटी होती थी, इसलिए उनका कार्य क्षेत्र भी सीमित हुआ करता था लेकिन वर्तमान वैश्विक परिवेश में बढ़ती राजनीतिक एवं कूटनीतिक जटिलताओं के बीच अब राजधानियों का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है और उनके द्वारा सम्पादित होने वाले कार्यों में जटिलता भी आ गई है।

5.4.4 राजधानी की स्थिति व विकास को प्रभावित करने वाले कारक (**Rutes Influencing the Location and Development of Capitals**) –

किसी राज्य की राजधानी की स्थिति व विकास की ऐतिहासिक राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में बहुत से कारकों का योगदान होता है। आर यूर (1975) ने ऐसे सात प्रमुख कारक बताए हैं जो राजधानी की स्थिति व विकास को प्रभावित करने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं—

1. परम्परागत कारक (The Traditional factor)
 2. ऐतिहासिक अनुकरण कारक (The Factor of Historical Imitation)
 3. प्रभुत्व राष्ट्र कारक (The Dominant Nation Factor)
 4. शीर्ष बन्ध कारक (The Head&Link factor)
 5. अग्र राजधानी कारक (The forward Capital Factor)
 8. राजनीतिक सहमति (The Political Compromise factor)
 7. केन्द्रीय स्थिति कारक (The Central Location factor)
1. परम्परागत कारक:— बहुत सी राजधानियों अपने राज्य के ऐतिहासिक राजनीतिक विकास की क्रमिक अवस्थाएं सफलता पूर्वक पारकर जाती हैं और अतीत की परम्पराओं के अस्तित्व के आधार पर शासकों के मस्तिष्क में एक स्थाई राजधानी बने रहने की छाप बना लेती है। परम्परा की राजनीतिक शक्ति ऐसी राजधानियों के सतत् अस्तित्व को बल प्रदान करती है। लन्दन, पेरिस, रोम इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।
 2. ऐतिहासिक अनुकरण कारक— परम्परागत कारकों के समान ही ऐतिहासिक अनुकरण कारक भी राजधानियों के चयन एवं पुनर्स्थापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रूस की राजधानी का सेंट पीटर्स बर्ग से पुनः मास्को स्थानान्तरण, टर्की की राजधानी इस्ताम्बूल का अंकारा स्थानान्तरण, भारत की ब्रिटिश राजधानी कलकत्ता का दिल्ली स्थानान्तरण उन राजधानी नगरों (मास्को, अंकारा, दिल्ली) की ऐतिहासिकता के महत्व को रेखांकित करता है। उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक अनुकरण की प्रक्रिया मूलतः भौगोलिक नहीं है, फिर भी इसकी उत्पत्ति एवं प्रभाव प्रायः वैसी ही है।
 3. प्रभुत्व राष्ट्र कारक – बहुराष्ट्रीयता वाले राज्यों में राजधानी का चयन प्रायः बहुसंख्यक राष्ट्रीयता वाले समुदाय से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ रूस में ग्रेट साल्व राष्ट्रीय समुदाय का केन्द्र था जो अन्य समुदायों की तुलना में महत्वपूर्ण एवं बहु संख्यक कथा और राजधानी चयन का प्रमुख कारण बना इसी प्रकार की स्थिति यूगोस्लाविया की बेलग्रेडकी थी, यह सरबीनिक राष्ट्रीयता का केन्द्र था।
 4. शीर्षबन्ध कारक राजधानी के चयन में शीर्ष बन्ध कारक एक सांस्कृतिक अग्रसम्पर्क कारक के रूप में कार्य करता है। इसमें राजधानी नगर प्रायः वह सम्पर्क सूत्र होता है, जिसके द्वारा राज्य अपने निर्माण प्रक्रिया के दौरान बाह्य प्रभावों को ग्रहण कर अपनी आन्तरिक संभावनाओं को पूरा करता है। इंग्लैण्ड की राजधानी लंदन इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। पूर्वकाल की भाँति आधुनिक काल में भी लन्दन इंग्लैण्ड के अन्य महानगरों की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ महाद्वीपीय सम्पर्क सूत्र है, जो राज्य के बाहर से प्राप्त होने वाले महत्वपूर्ण प्रभावों, विचारों और संदेशों को आत्मसात करते हुए अपने राज्य ग्रेट ब्रिटेन की संस्कृति को नया मोड़ देने में हमेशा से सहायक रहा है।

6. अग्रराजधानी कारक – कुछ विशिष्ट भौगोलिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव में राज्य की राजधानी का चयन राज्य के सर्वाधिक सक्रिय सीमावर्ती क्षेत्र में किया जाता है जिसे अग्रस्थिति कारक के आधार पर निर्धारित की गई राजधानी की संज्ञा दी जाती है। अग्रवर्ती राजधानी की अवधारणा में गतिशील एवं ऐतिहासिक तत्वों को शामिल किया जाता है। इसमें यह मान्यता समाहित रहती है कि विकास के सभी वाहक (राजनीतिक– आर्थिक– सांस्कृतिक) निश्चित रूप से सीमान्त से होकर गुजरते हों और यह उस राजधानी के द्वारा ही संभव हो सकता है जो सीमान्त के निकट स्थित हो, जिससे कि नए विस्तार को संगठित किया जा सके। पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद इसका बेहतरीन उदाहरण है। (चित्र0सं05.1)
7. राजनीतिक सहमति कारक – प्रायः वह राजधानी राजनीतिक सहमति कारक का परिणाम होती है जब उसका चयन दो शक्तिशाली क्षेत्रों के मध्य समझौते अथवा पारस्परिक समन्वय के आधार पर किया जाता है। कई बार विरोधी समुदायों को सन्तुष्ट करने के लिए भी सरकार ऐसे नगर का चुनाव राजधानी के रूप में करती है जो सभी को मान्य हो। आस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबरा, कनाडा की राजधानी ओटावा ऐसी राजधानियों के उदाहरण हैं।



8. केन्द्रीय स्थिति कारक – प्रशासनिक कार्यों की सुगमता और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा की दृष्टि से राजधानी की केन्द्रीय अवस्थिति सबसे उत्तम मानी जाती है, क्योंकि इसके राजधानी तथा परिधीय क्षेत्रों के बीच की दूरी कम हो जाती है तथा सरकार और परिधीय क्षेत्रों की जनसंख्या के मध्य भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक अवरोध न्यूनतम हो जाता है। केन्द्रीयता की दृष्टि से स्थापित राजधानियों में अंकाए (टर्की) तथा मेड्रिड (स्पेन) प्रमुख हैं।

उपरोक्त कारकों के अलावा भी कुछ और ऐसे कारक भी हैं जो राजधानियों की स्थिति व विकास को प्रभावित करते हैं, जैसे भौतिक कारक, सामरिक कारक एवं राज्य की प्रकृति आदि। भौतिक कारकों के अन्तर्गत सम धरातलीय बनावट, नदी/जलाशय द्वारा जल की उपलब्धता एवं जलवायु की अनुकूलता राजधानी स्थल के चयन या स्थानान्तरण में अपनी अहं भूमिका निभाती है। कभी-कभी किसी स्थान की सामरिक महत्ता एवं उसके (सुरक्षात्मक पहलुओं को राजधानी के चयन के समय ध्यान में रखा जाता है। जिन राज्यों के हित सागरीय तटों से जुड़े रहते हैं, वे राज्य अपनी तटीय प्रकृति के कारण अपनी राजधानी सागर तट के समीप बनाते हैं। जब कि द्वीपीय राज्य अपनी राजधानी किसी बड़े एवं सुरक्षित द्वीप पर बनाते हैं।

उपरोक्त सभी कारकों के समग्र एवं सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मात्र एक ही तथ्य अथवा कारक के आधार पर किसी राजधानी की स्थापना करना या उसका ध्यान परिवर्तन करना कठिन है। किसी विशेष स्थल का राजधानी के रूप में स्वीकार या अस्वीकार बहुत सारे कारकों द्वारा प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए लिए मास्को को एक राजधानी के रूप में स्वीकार करने में परम्परागत, ऐतिहासिक अनुकरण एवं प्रभुत्व राष्ट्र जैसे कई कारकों की सम्मिलित भूमिका रही है।

म्यूर (1975) के शब्दों में :- 'यह ज्यादा यथार्थ पर होगा कि प्रत्येक राजधानी की स्थिति का मूल्यांकन राज्य के अन्दर उसके कार्यों के आधार पर हो, न कि किसी कारक विशेष के आधार पर'।

5.5 संघीय राजधानियाँ (Federal Capitals)

'संघीय राज्य व्यवस्था मूलतः आधुनिक युग की उपज है जो किसी राज्य के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य के प्रतिरूपों को संगठित रूप में व्यक्त करती है। उस राज्य व्यवस्था का अभ्युदय तब होता है। जब कई संघटक क्षेत्रीय इकाइयाँ एक सर्वमान्य संविधान के अनुसार एक एकीकृत राजनीतिक सत्ता का गठन करती हैं। स्थानीय मामलों में संघटक क्षेत्रीय इकाइयों को राजनीतिक निर्णय की पूर्णस्वायत्तता होती है लेकिन ऐसे मामलों को जिनमें क्षेत्रीय संघटक इकाइयों की समस्याएं एवं अभिरुचियाँ समान रूप से प्रभावित हों, उन्हें केन्द्रीय सरकार के निर्णय क्षेत्र में रखा जाता है। इस प्रकार संघीय शासन प्रणाली में प्रशासन के तीन स्तर होते हैं – स्थानीय, प्रादेशिक और केन्द्रीय एवं राजनीतिक निर्णय का विकास द्वि-स्तरीय होता है केन्द्रीय और प्रादेशिक इस अनूठी संघीय शासन प्रणाली में चूँकि सभी संघटक इकाइयाँ (समान रूप से हिस्सेदारी होती है, इसलिए ऐसे में राजधानी के स्थान का चयन अत्यधिक जटिल कार्य होता है।

संघीय राजधानी के अस्तित्व में (स्थानीय प्रतिस्पर्धा का अस्तित्व अन्तर्निहित होता है, "इसलिये ऐसी राजधानी के अवस्थित चयन में प्रायः स्थिति निरपेक्षता के सिद्धांत' का अनुपालन किया जाता है और एक नये स्थल का चयन 'संघीय राजधानी' के रूप में किया जाता है। उस प्रकार – संघीय राजधानियाँ बहुधा कृत्रिम (मानव चयन का परिणाम) होती हैं; वे क्रमिक ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया की अंतिम परिणति नहीं होती। वे प्रायः अपने राज्य की 'प्रधान नगरीय इकाई भी नहीं होती है (रमेश दत्त दीक्षित, 2000)।

वस्तुतः ऐसी राजधानियाँ क्षेत्रीय समझौतों को अभिव्यक्त करती हैं। एक तरह से ये पुरानी प्रणाली आरोपण होती हैं। स्तर पर ऐसी संघीय राजधानियों के कई उदाहरण मौजूद हैं।

वाशिंगटन डी०सी० (Washington D.C.) –

संघीय राजधानियों के चुनाव का प्रारंभ वास्तव में स० रा० अमेरिका के उदय से ही 1791 ई. में हुआ। यहाँ तरह संघटक इकाइयों की प्रतिस्पर्धा ने संयुक्त राज्य अमेरिका को विवश किया कि वह मेरी लैंड एवं वर्जीनिया के 160 वर्ग किमी० क्षेत्र को समझौता के आधार पर काटकर नए कोलंबिया जिले (District of Columbia) और उसके नगर वाशिंगटन को निरपेक्ष क्षेत्र बनाए और उसे दोनों पक्षों (दास प्रथा के पक्षधरों और उसके विरोधियों) को समान रूप से स्वीकार्य संघीय राजधानी के रूप में विकसित करे। वाशिंगटन डी०सी० (संघीय राजधानी) की

स्थित उत्तरी और दक्षिणी मौलिक राज्यों के बीच दोनों को विभाजित करने वाली मेंसन और डिकसन रेखा से मात्र 50 किमी० की दूरी पर है। अनेक दृष्टिकोण से संघीय राजधानी के रूप में यह स्थान निरपेक्ष और उत्केन्द्रीय है।

ओटावा (Ottawa) –

कनाडा की राजधानी ओटावा के चयन में भी स्थिति निरपेक्षता के सिद्धान्त का अनुपालन किया गया। संघीय राजधानी के निर्माण के लिए कनाडा को भी ऐसे स्थान की खोज थी जो अंग्रेजी भाषा तथा फ्रांसीसी भाषी प्रान्तों को समान रूप से स्वीकार्य हो। काफी लम्बे विचार-विमर्श के बाद ओटावा नदी के तट पर स्थित एक छोटा सा गाँव ओटावा नई राजधानी स्थल के रूप में प्रस्तावित किया गया। ओटावा यद्यपि कि अंग्रेजी भाषी ओण्टोरियो प्रदेश में स्थित है, किन्तु फ्रांसीसी भाषी प्रान्त क्युबेक की सीमा के पास होने के कारण उसकी स्थिति निरपेक्षता के सिद्धान्त के अनुरूप है। इस तरह 1867 ई० में जब संघीय संविधान लागू हुआ तब यही स्थान 'सिटी ऑफ ओटावा' के नाम से कनाडा परिसंघ की राजधानी बना।

ब्रासीलिया (Brasilia) –

ब्राजील की संघीय राजधानी 'ब्रासीलिया' के चयन का इतिहास भी काफी प्रतिस्पर्धी घटनाओं से भरा हुआ है। 1822 ई० में जब ब्राजील आजाद हुआ तब रियो-डि-जेनेरियो को ब्राजील की संघीय राजधानी बनाया गया।

1889 के संघीय संविधान में संघीय राजधानी के लिए एक नए स्थल की अनुशंसा की गई जो देश के भौगोलिक केन्द्र में स्थित हो और विशुद्ध ब्राजीलीयन संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रतिनिधि हो। अंततः 1956 में नई राजधानी का निर्माण प्रारम्भ हुआ और ब्रासीलिया को नई संघीय राजधानी के रूप में स्वीकार किया गया।

कैनबरा (Canberra) –

आस्ट्रेलियाई संघ की नई राजधानी कैनबरा के चयन में भी स्थिति निरपेक्षता के सिद्धान्त का अनुपालन किया गया। जब प्रभुता सम्पन्न संघ के रूप में आस्ट्रेलिया का अभ्युदय हुआ, उस समय संघीय राजधानी को अपने-अपने राज्य में स्थापित कराने के लिए विक्टोरिया और न्यू साउथवेल्स दो प्रमुख दावेदार थे, परन्तु उनकी प्रान्तीय राजधानियों (मेलबोर्न और सिडनी) को संघीय राजधानी के रूप में स्थापित करने से स्वाभाविक कठिनाई यां थी और वे दोनों इसके लिए तैयार भी नहीं थे। अंततः स्थिति निरपेक्षता के सिद्धान्त के अनुरूप सिडनी और मेलबोर्न के प्रायः समान दूरी पर स्थित एक निर्णय क्षेत्र को एक संघीय राजधानी के रूप में चुनकर वहाँ 1911 में देश की नई राजधानी 'सिटी ऑफ कैनबरा' का निर्माण हुआ।

संघीय राजधानियों के रूप में वाशिंगटन डी.सी. (स०रा० अमेरिका), ओटावा (कनाडा), ब्रासीलिया (ब्राजील) एवं कैनबरा (आस्ट्रेलिया) जैसे राष्ट्रीय राजधानी नगरों के अभ्युदय से यह सामान्य मान्यता बन गई कि संघीय राज्यों की राष्ट्रीय राजधानियों के लिए 'स्थिति निरपेक्षता' एक अनिवार्य शर्त है, परन्तु यह मान्यता तर्क संगत नहीं है, कारण कि प्रायः 1945 ई० के बाद बने उत्तर-उपनिवेशीय संघीय राज्यों में स्वतंत्रता पूर्व का राष्ट्रीय मुख्यालय (राजधानी) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी राज्य की राष्ट्रीय राजधानी बना रहा। नई दिल्ली (भारत) इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

नई दिल्ली (New Delhi) –

संघीय राज्य भारत की राजधानी नई दिल्ली एक प्राकृतिक राजधानी है। इसकी स्थापना किसी समझौते के आधार पर नहीं हुई, बल्कि ब्रिटिश कालीन भारत सरकार द्वारा 1911 ई० में उस समय की गई। जब ब्रिटिश सरकार भारतीय उप महाद्वीप में अपना शासन संचालन सुचारु रूप से तत्कालीन राजधानी कलकत्ता से नहीं कर पा रही थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1947 में भी संघीय भारत की संघटक इकाइयों के बीच राजधानी के रूप में इसने चयन को लेकर किसी भी प्रकार की कोई प्रतिस्पर्धा उत्पन्न नहीं हुई और न ही कोई मतभेद उत्पन्न हुआ कारण कि दिल्ली भी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भावनात्मक विरासत प्रारंभ से ही बेहद मजबूत रही है। दिल्ली नगर कम से कम 10वीं शताब्दी से भारत का सर्व प्रमुख नियंत्रण केन्द्र रहा है। यह भारतीय मूल क्षेत्र के पश्चिमी प्रवेश द्वार पर स्थित एवं ऐसा नगर है जिसके उत्तर में पर्वतीय क्षेत्र, द० में पहाड़ियों एवं पश्चिम में थार की मरुभूमि अवस्थित है। अपनी इस विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण दिल्ली को कुछ विशेष भू-राजनीतिक सुविधाएँ भी उपलब्ध है। भारतीय राष्ट्रीय विचार धारा से काफी हद तक इसका तादम्य आज भी बना हुआ है

तथा केन्द्राभिमुखी शक्तियों का यह प्रबल स्रोत है। इस अर्थ में दिल्ली भारतीय संघ की एक विजातीय संघीय राजधानी है जिसका कुल क्षेत्रफल 1483 वर्ग किमी० है। ब्रिटिश कालीन भारत (भारतीय उपमहाद्वीप) में एक राजधानी के रूप में दिल्ली की स्थिति केन्द्रीय थी, लेकिन वर्तमान में उसकी स्थिति परिधीय हो गई है।

सारांशतः संघीय राजधानियों की सफलता मूलतः दो बातों पर निर्भर करती है:-

1. संघ के विभिन्न संघटकों के बीच संघीय राजधानी की भावनात्मक संतुलन बनाये रखने की क्षमता, तथा
2. राज्य/राष्ट्र के रूप में साथ रहने के लिए सभी संघटक इकाइयों का एक सामान्य विचार जो किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्धा या मतभेद से मुक्त हो।

5.6. राजधानियों की स्थिति में परिवर्तन के प्रमुख कारक (**Major Factors for change in the Location of Capitals**)—

राजधानियों की स्थिति में परिवर्तन उनके अभ्युदय काल से ही इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना रही है। विगत एवं वर्तमान समय में इनकी स्थिति में परिवर्तन के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जो राष्ट्र/राज्य की बदलती हुई आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करते हैं। प्रायः इस परिवर्तन के लिए अनेक भौगोलिक एवं राजनीतिक कारक (यथा— भौतिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सामरिक) उत्तरदायी होते हैं। राजधानियों की स्थिति में परिवर्तन के कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:-

1. जलवायुविक कारक (**Climatic factors**) – राजधानी की स्थिति परिवर्तन के अनेक कारकों में जलवायु एक प्रमुख कारक है। यदि जलवायु अतिगर्भ, अतिशीत, अति आर्द्र या अतिशुष्क है, तो राजधानी नगर के निवासियों की कार्यक्षमता प्रभावित होगी। उनके स्वास्थ्य के खराब होने की संभावनाएँ अधिक रहेगी। पाकिस्तान की राजधानी का कराची से इस्लामाबाद स्थानान्तरण का प्रमुख कारण वहाँ की आर्द्र जलवायु थी जो वर्षा काल में बहुत कष्टकारी थी। मोजम्बिक की राजधानी मोजम्बिक का मापूटो के पास स्थानान्तरण का प्रमुख कारण वहाँ की गर्म जलवायु थी, जो प्रायः शीतोष्णकटिबंधीय राज्यों के राजनायिकों के लिए बेहद कष्टकारी थी।
2. सैद्धान्तिक कारक (**Ideological factors**) – कभी-कभी राज्य अपनी राष्ट्रीय नीतियों में परिवर्तन के चलते अपनी राजधानी की स्थिति का स्थानान्तरण करते हैं। रूस ऐसे परिवर्तन का बेहतरीन उदाहरण है। रूस के शासक जार पीटर 1703 ई० में रूस की राजधानी मास्को से सेन्टपीटर्सबर्ग ले गए। उस समय रूस के लिए यूरोपीय देशों से सम्पर्क महत्वपूर्ण था। लेकिन सोवियत क्रान्ति के बाद राजधानी को पुनः स्थानान्तरित करके मास्को लाया गया क्योंकि तब यूरोपीय देशों से कम्युनिस्ट सोवियत का सम्पर्क महत्वहीन हो गया था। वास्तव में सोवियत रूस का एशिया एवं यूरोप के मध्यवर्ती ही सीमाप्रान्त में यह नीतिगत पुनर्आगमन था क्योंकि मास्को खास भौगोलिक एवं ऐतिहासिक रूप से रूस का वास्तविक हृदयस्थल है जहाँ रूस के बहुमुखी विकास की आत्मा निवास करती है।
3. वाणिज्यिक एवं सामरिक कारक (**Commercial and Strategic factors**) –
वाणिज्यिक एवं सामरिक कारक भी राजधानी के स्थान परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। द०पू० एशिया में म्यांमार तथा थाईलैण्ड की पुरानी राजधानियों मांडले तथा आयुष्टहाया, जो आन्तरीक स्थिति वाली थी, का तटवर्ती स्थिति वाले रंगून तथा बैंकाक में स्थानान्तरण किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य बदलती हुई वाणिज्यिक एवं सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था।
4. युद्ध सम्बन्धी कारक (**factors related to War**) –
कभी-कभी युद्ध एवं सैनिक सम्बन्धी कारक भी राजधानियों की स्थिति – परिवर्तन में महती भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए पेकिंग (बीजिंग) चीन की प्रारंभिक राजधानी थी। लेकिन चीन में जब मंगोलिया एवं मंचूरिया के क्षेत्रों पर दुश्मन का अधिकार हो गया तो देश की राजधानी 1927 में नानकिंग में स्थानान्तरित कर दी गई। परन्तु यहाँ भी परिस्थितियाँ जटिल थी क्योंकि पश्चिमी सामुद्रिक शक्तियों एवं जापान के आक्रमण का भय यहाँ भी विद्यमान था। नानकिंग सम्पर्क (**Link**) एवं अग्रवर्ती (**Forward**) दोनों श्रेणी की राजधानी थी जो जोखिमपूर्ण समुद्री सीमान्त पर स्थित थी। मंचूरिया पर जापानी आक्रमण के साथ

ही पेकिंग का महत्व पुनः बढ़ गया, परिणामतः 1949 में चीन की राजधानी को पुनः स्थानान्तरित कर पेकिंग (बीजिंग) लाया गया।

5. स्थान-शक्ति-सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में बदलते हुए राजनीतिक कारक **(Changing Political Factors with reference to Place-Power-Relations) -**

कभी-कभी राज्य के स्थान-शक्ति-सम्बन्ध के परिदृश्य में बदलते हुए राजनीतिक प्रतिमानों के कारण भी राजधानियों का मूल क्षेत्र से नए स्थल पर भौगोलिक स्थानान्तरण होता है। ई०पूर्व छठीं शताब्दी में बिम्बिसार के शासन काल में मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह थी जो पर्वतों से घिरी सुरक्षित स्थिति वाली राजधानी थी। परन्तु यहाँ दो प्रमुख समस्याएँ थी— (i) जलापूर्ति की समस्या, और (ii) महत्वपूर्ण मार्गों पर स्थिति का अभाव। परिणामतः ई० पूर्व 494 के आसपास बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने राजधानी को राजगृह से पाटलि पुत्र स्थानान्तरित कर दिया।

6. स्वेच्छाचारी कारक **(Arbitrary factors) -**

वे राज्य जो स्वेच्छाचारी आचरण वाले होते हैं, वहाँ राजधानियों की स्थिति में परिवर्तन अधिक होता है। ऐसे राज्यों के पास कोई सुपरिभाषित मूल क्षेत्र नहीं होता, फलतः समय-समय पर राज्य के बदलते भू-राजनीतिक प्रतिमानों के साथ अपनी राजधानियों का नये स्थल पर स्थानान्तरण करते रहते हैं। पाकिस्तान इसका बेहतरीन उदाहरण है जहाँ एक बार फिर राजधानी के लिए नए स्थान की खोज हो रही है।

उपरोक्त मुख्य कारकों के अलावा परिवहन एवं संचार की प्रौद्योगिकी में परिवर्तन, नवीन संघीय राजधानी बनाने की आवश्यकता, मूल क्षेत्र की समारिक आवश्यकताएँ एवं भू-राजनीतिक व्यवहार्यता, व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थानों की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति तथा परिवर्तनशील मनोवैज्ञानिक एवं सांग्रामिक अवधारणा से भी राजधानियों की पुनर्स्थापना हो सकती है।

5.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप भलीभाँति समझ गए होंगे कि आधार क्षेत्र किसी भी राज्य का वह क्षेत्र होता है जो भौतिक पर्यावरण एवं मानव समुदाय के पारस्परिक एवं अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप सर्वाधिक विकसित होता है। आधार क्षेत्र के गहन अध्ययन से आपको यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि जिस राज्य का आधार क्षेत्र जितना बड़ा होगा, वह राज्य उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा।

राजधानियाँ राज्य क्षेत्र की सबसे जीवन्त और मूर्त तत्व होती हैं। तथा विधि एवं कानून का मुख्यालय होती हैं तथा राज्य विशेष के सांस्कृतिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप एक राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी को यह समझने में मदद करते हैं कि कैसे कोई राज्य अपनी शक्तिशाली राजधानी के माध्यम से अपना वैश्विक प्रभाव स्थापित करने में सफल होता है। सारांशतः इस इकाई का गहन अध्ययन राजनीतिक भूगोल के किसी भी अध्येता के लिए बेहद आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

5.8 शब्द सूची

आधार क्षेत्र	Ecumene	कार्य	Functions
प्रस्तावित	Introduced	परम्परागत	Traditional
विभाजित	Divided	प्रभुत्व	Dominant
शीर्षबन्ध	Head- Link	सहमति	Compromise
संघीय	Federal	सैद्धान्तिक	Ideological
स्वेच्छाचारी	Arbitrary	सामरिक	Strategic

5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न :-

1. कनाडा की राजधानी ओटावा निम्न में से किस स्थिति का प्रतीक है?
(अ) अग्रस्थिति (ब) मध्य स्थिति (स) अग्र संयुक्त (द) राजनीतिक समन्वय
2. ऐतिहासिक राजधानी का उदाहरण है—
(अ) नई दिल्ली (ब) इस्लामाबाद (स) कैनबरा (द) वाशिंगटन डी.सी.
3. आधार क्षेत्र राज्य का हृदय होता है—
(अ) सामरिक (ब) राजनीतिक (स) आर्थिक (द) सांस्कृतिक
4. पेरिस फ्रांस की राजधानी है—
(अ) संधीय (ब) परिधीय (स) ऐकिक (द) नैसर्गिक
5. निम्नलिखित में से राजधानी स्थल की कौन सी विशेषता होती है?
(अ) दूतावासों का केन्द्र (ब) देश के प्रधान का निवास स्थान
(स) कानून का मुख्यालय (द) उपरोक्त सभी

आदर्श उत्तर –

1. (द); 2. (अ); 3. (स); 4. (स); 5. (द)

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Cornish, V., (1923) The Great Capitals: A Historical Geography; London, De Blij, H. J., (1972) : Systematic Political Geography' Wiley, New York,

दीक्षित, रमेश दत्त, (2000): 'राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि', प्रेन्टिस हल ऑफ इंडिया, प्रा0लि0, नई दिल्ली, 276 पृ०।

Hamdan, G., (1964) : 'Capitals of New Africa; Economic Geography, Vol. 40, No.3, pp. 239-253.

Jefferson, M., (1939) : 'The Law of the Prime City; Geographical Review, Vol. 20, pp. 226-232.

Kasperson, R.E and Minghi, J.V., (1969) : 'The structure of Political Geography' (Ed), Aldine Pub. Co., Chicago.

Muir, R., (1975) : 'Modern Political Geography; Macmillan, London, 262 pp.

Pearcy, G.E. et. al. (1957) : 'World Political Geography; 2nd Ed., Thomas V. Crowell Co., New York.

Spate, O.H.K., (1942) : 'Factors in the Development of Capital Cities; Geographical Review, vol. 32, pp.622-631.

Taylor, P.J. (1985) : 'Political Geography, World Economy, Nation-state and locality, Longman, London.

Weigert, H.W. et. al. (1957) : 'Principles of Political geography', Appleton Century crafts Inc., New York.

Whittlesey, D., (1939): 'The Earth and the state: A Study of Political geography', Henry Holt & Co., New York.

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु :-

1. आधार क्षेत्र क्या है? राज्य में इसका क्या महत्व है?
2. आधार क्षेत्र एवं राजधानी में क्या सम्बन्ध होता है?
3. राजधानी के कार्यों का विवरण दीजिए।
4. राजधानियों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
5. संघीय राजधानी के रूप में नई दिल्ली का वर्णन कीजिए।

इकाई-06 भू-राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 प्रस्तावना
- 6.1 उद्देश्य
- 6.2 भू-राजनीति
 - 6.2.1 भू-राजनीति: परिभाषा, विचार, व्याख्या एवं विश्लेषण
- 6.3 जर्मन भू-राजनीति का संकल्पनात्मक विकास
 - 6.3.1 जैविक राज्य विचार के आधार पर
 - 6.3.2 भू-सामरिकता के विचार के आधार पर
- 6.4 अल्फ्रेड थेयर महान की सामुद्रिक शक्ति अवधारणा
- 6.5 सर हेल्फोडे जॉन मैकिन्डर की हृदय स्थल संकल्पना
 - 6.5.1 इतिहास की भौगोलिक धुरी (1904)
 - 6.5.2 हृदय स्थल की संकल्पना (1919)
 - 6.5.3 मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना (1943 में संशोधित)
 - 6.5.4 मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा
- 6.6 निकोलस जान स्पाइक मैन की रिमलैण्ड संकल्पना (1944)
 - 6.6.1 रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन
- 6.7 अलेक्जेंडर पी०डी० सेवेरस्की की वायुशक्ति संकल्पना
 - 6.7.1 वायु शक्ति संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन
- 6.8 सॉल बी० कोहेन का भू-सामरिक एवं भू-राजनीतिक प्रदेश मॉडल
 - 6.8.1 मॉडल में प्रथम संशोधन (1982)
 - 6.8.2 मॉडल में द्वितीय संशोधन (1991)
 - 6.8.3 भू-राजनीतिक एवं भू-सामरिक प्रदेश मॉडल का (समालोचनात्मक मूल्यांकन
- 6.9 सारांश
- 6.10 शब्द सूची
- 6.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

6.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम की यह छठवीं इकाई है। इसमें आप विभिन्न भू-राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे। भू-राजनीति वास्तव में एक व्यावहारिक कूटनीतिक विज्ञान है जो राज्य के असीमित प्रसार की इच्छा को व्यक्त करता है। वस्तुतः यह राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के अधिकार को दर्शाने वाली एक संकल्पना है जिसके जनक फ्रेडरिक रैट्जेल थे। राजनीतिक भूगोल के अध्येता होने के नाते विद्यार्थियों को विभिन्न भू-राजनीतिक

सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, कारण कि इन सिद्धान्तों के माध्यम से उन्हें यह जानने में सहूलियत होती है कि किसी भी राज्य की राजनीतिक दशाएं लम्बी अवधि तक स्थाई नहीं रह सकती। भू-राजनीतिक के पास ऐसी शक्ति होती है जो बड़ी शक्तियों को कमजोर राज्यों के ऊपर विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है। विद्यार्थियों के भू-राजनीतिक ज्ञान और उसके व्यावहारिक स्वरूप को पुष्ट करने के उद्देश्य से इस इकाई में रैट् जेल, जेलेन, हाउशोफर, मैकिन्डर, स्पाइक मैन, सेवेटस्की, कोहेन जैसे विद्वानों के विचारों एवं सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई की पाठ्यक्रम सामग्री के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. विद्यार्थियों को भू-राजनीतिक संकल्पना का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।
2. जर्मन भू-राजनीतिक विचारधारा के इतिहास की जानकारी देना।
3. जैविक राज्य विचार धारा एवं भू-सामरिक विचार धारा की मूल भावना से उन्हें अवगत कराना।
4. सामुद्रिक शक्ति अवधारणा और सामरिक चिन्तन के आधार भूत तथ्यों से परिचित कराना।
5. मैकिन्डर की हृदयस्थल अवधारणा एवं स्पाइक मैन की रिमलैण्ड संकल्पना के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
6. विभिन्न भू-राजनीतिक प्रतिमानों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कर उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

6.2 भू-राजनीति

‘भू-राजनीति’ एक व्यावहारिक कूटनीतिक विज्ञान है जो घरातलीय अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन राजनीतिक उद्देश्य से करता है। यह एक गतिशील विज्ञान भी है, जो राज्य के असीमित प्रसार की इच्छा को व्यक्त करता है। यह राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के अधिकार को दर्शाने वाली एक संकल्पना है, जिसका (संकल्पनात्मक) विकास रैट्जेल (1896) की राज्य विकास की जैवीय अवधारणा, रुडोल्फ जेलेन (1916) भू-राजनीतिक (Geopolitick) और वास-स्थान (Lebensraum या Living space) की विचारधारा और मैकिन्डर (1904) की ‘हृदयस्थल परिकल्पना’ को आधार मानकर हुआ। रैट्जेल की धारणा थी कि ‘राज्य मूलतया परस्पर प्रतिस्पर्धी शक्ति पुंज हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय वर्चस्व के निरंतर संघर्ष में क्षेत्र प्रसार उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।’ जेलेन का विचार था कि— ‘राज्य मात्र जीवन्त इकाइयों ही नहीं हैं, वे विवेकशील इकाइयाँ भी हैं जो अपने अच्छे-बुरे और हित-अहित के बीच चयन करने में सक्षम हैं। प्रत्येक राज्य का अंतिम उद्देश्य अपने राज्य के भौगोलिक क्षेत्र को एक पूर्णतया सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित करना तथा उसके चारों ओर स्थाई प्राकृतिक सीमाओं की प्राप्ति करना है।’ मैकिन्डर (1904) की विश्व सामरिक परिदृष्टि थी कि—‘जो पूर्वी यूरोप पर नियंत्रण करेगा, वही हृदय स्थल पर राज्य करेगा जो हृदय स्थल पर नियंत्रण प्राप्त करेगा, उसे विश्वद्वीप पर नियंत्रण प्राप्त होगा जो विश्वद्वीप पर शासन करेगा, वही विश्व के राजनीतिक भाग्य का निर्णायक होगा इस तरह रैट्जेल, जेलेन और मैकिन्डर की संकल्पनाओं के सम्मिलित आधार पर प्रथम महायुद्धोत्तरकाल में ‘जर्मन रुचि के विषय’ के रूप में ‘भू-राजनीति’ का अभ्युदय हुआ जिसका उद्देश्य था जर्मन राज्य के गौरव की पुनर्स्थापना करना तथा नागरिकों में राज्य के क्षेत्रीय विकास की आवश्यकताओं के प्रति सचेत भौगोलिक अन्तर्बोध जाग्रत करना। दूसरे शब्दों में ‘भू-राजनीतिक अवधारणा का प्रमुख आधार रैट्जेल की जैविक राज्य संकल्पना, जेलेन द्वारा उसका परिमार्जित स्वरूप तथा मैकिन्डर का ‘भौगोलिक धुरी-हृदय क्षेत्र मॉडल था जिसे आगे चलकर हाउ शोफर (1924) ने ‘भू-राजनीतिक सिद्धान्त के रूप में विकसित किया। हाउशोफर के अनुसार भू-राजनीतिक एक गतिशील विज्ञान है क्योंकि राजनीतिक दशाएं लम्बी अवधि तक स्थाई नहीं रह सकती। भू-राजनीतिक के पास ऐसी शक्ति है जो बड़ी शक्तियों को कमजोर राज्यों के ऊपर विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है।’

6.2.1 भू-राजनीति : परिभाषा, विचार, व्याख्या एवं विश्लेषण –

स्वीडिश राजनीतिशास्त्री रुडोल्फ जेलेन (Rudolf Kjellen) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राज्य के अध्ययन के क्रम में Geopolitik (जियोपालिटिक) का शब्दावली का प्रयोग अपनी पुस्तक *Der Staat als Lebensform*,

1916) में पहली बार किया जिसका अर्थ 'भूराजनीति' अर्थात् 'राज्य का औद्योगिक वर्णन' अथवा 'क्षेत्र के राजनीतिक जीवों के अध्ययन की रणनीति'। उस प्रकार जेलेन ने राज्य को एक 'विधिकम्प्लीन मानकर एक प्रतिस्पर्धी शक्ति' माना।

फ्रेडरिक रैट्जेल (1896) ने अपने जैविक राज्य मॉडल में जिस बीज को बोया, जिसे रुडोल्फ जेलेन (1916) ने 'भू-राजनीतिक' के रूप में प्राप्त किया, उसे कार्ल हाउशोफर ने जियोपॉलिटिक स्कूल भू-राजनीतिक सम्प्रदाय के रूप में जर्मनी में विकसित किया। हाउशोफर ने 'भूराजनीतिक' शब्द को जेलेन की कृति "Der Staat als Lebensform" से लिया था।

कार्ल हाउशोफर (1924) के अनुसार – भू-राजनीति वह विज्ञान है जिसमें प्राकृतिक वातावरण एवं राजनीतिक जीवन का अध्ययन किया जाता है तथा राजनीतिक जीवन को उसके पृथ्वी से सम्बन्धों और ऐतिहासिक गतियों की दशाओं के सन्दर्भ में समझा जाता है (Zeitschrift für Geo-Politik, 1924) इसी पत्रिका में हाउशोफर ने पुनः स्पष्ट किया—(भूराजनीतिक) एक ऐसा विज्ञान है जो मिट्टी भौतिक स्वरूप के ऊपर राजनीतिक घटनाक्रम के निर्भरता का विश्लेषण करता है। यह भूगोल के विस्तृत आधारों, विशेषकर राजनीतिक भूगोल पर आधारित है। भूराजनीतिक का उद्देश्य राजनीतिक क्रियाओं के लिए शास्त्रों को जुटाना है तथा राजनीतिक जीवन के निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करना है.... यह निश्चित रूप से राज्य का भौगोलिक अन्तःकरण है।

ऑटो माउल (1936) के अनुसार – 'भू-राजनीतिक राज्य से अपने आपको एक स्थिर अवधारणा के रूप में नहीं बल्कि जीवित हस्ती के रूप में करता है। भूराजनीतिक राज्य को मुख्य रूप से उसके वातावरण को उसके क्षेत्र से एकीकृत करता है और स्थानिक सम्बन्धों से व्युत्पन्ना समी प्रकार की समस्याओं का हल खोजने का प्रयास करता है। यह राज्य की स्थानिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध है।....भूराजनीतिक एक विधा है जो दी गई परिस्थितियों में माप तथा आकलन करता है और अपने निष्कर्षों के आधार पर व्यावहारिक राजनीति को निर्देशित करता है। Bas Wesender Geo-politik

बीगर्ट एवं सहयोगियों (1957) के अनुसार – भू-राजनीतिक सम्बन्धी उपरोक्त परिभाषाओं के विचारों कि व्याख्या एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भू-राजनीति की विचारधारा एक क्षेत्र विशेष (जर्मनी) तक सीमित थी। इसी कारण कुछ राजनीतिक भूगोलविदों ने इस विचारधारा की आलोचना की। आलोचना सम्बन्धी कतिपय विद्वानों के कथन निम्नवत् है –

ग्रिफिथ टेलर के अनुसार – "यह (भूराजनीति) नियतिवाद की अति अवस्था है। युद्ध में हार के कारण वास्तविकता से दूर हटकर जर्मन विचारक हार के कारणों को जानने के लिए अपने पक्ष में प्रत्येक संभव कारण जुटाना चाहते थे, अतः राजनीतिक भूगोल में (भूराजनीति के रूप में) विस्तारवादी क्षेत्रीय विचार भर दिए।"

वाल्केन वर्ग (1939) के अनुसार – "जर्मन भूराजनीति राष्ट्रीय प्रसार के जर्मनदर्शन की व्याख्या करता है।"

पियर्स (1939) के अनुसार – "भूराजनीति जर्मन 'राज्यक्रैकट' का एक सीमित उपकरण थी जिसे नाजी मिथ्या प्रचार का साधन बनाया गया।"

डिमान्जिया के अनुसार – "भूराजनीति प्रचार एवं उपदेश का राष्ट्रीय संथान है (Geopolitics is a national enterprise of propaganda & teaching)"

जीव्ही रेनर (1951) के अनुसार – "भू-राजनीति एक कुलीन माता की अकुलीन पुत्री है।... इसमें कुटिलता व आत्महित पर अधिक बल दिया जाता है।"

सारांशतः, आलोचनाओं के परिप्रेक्ष्य में यहाँ कहा जा सकता है कि भू-राजनीति का क्षेत्र संकुचित है। यह सिर्फ राजनीतिक कार्यों के लिए कवच का काम करती है। राजनीतिक विस्तारवाद को बढ़ावा देती है तथा विस्तारवाद को प्रोत्साहित कर विश्व संघर्ष एवं युद्ध को प्रोत्साहित करती है। भू-राजनीति और कुछ नहीं है बल्कि भौगोलिक सिद्धान्तों का शक्ति की लालसा के खेल में प्रयोग है।

6.3 जर्मन भूराजनीति का संकल्पनात्मक विकास

वैश्विक स्तर पर प्रथम विश्वयुद्ध एक ऐसी घटना थी जिसने यूरोप के राजनीतिक मानचित्र में भारी फेर बदल कर दिया था। जर्मनी, जो अनेक जर्मन भाषी इकाइयों के परस्पर विलय से जर्मन साम्राज्य की स्थापना के

साथ ही द्रुतगति से यूरोपीय महाद्वीप का सबसे प्रभावशाली, सबसे बड़ी सामरिक और आर्थिक शक्ति बन गया था, प्रथम विश्व युद्ध में बुरी तरह पराजित हो गया था। युद्ध के पश्चात किए गए शान्ति समझौते की शर्तों के अनुसार जर्मन साम्राज्य का अधिकार क्षेत्र संकुचित कर उसे भाषाई आधार पर कई स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों में बाँट दिया गया। इससे जर्मन अस्मिता और उसके राष्ट्रवादी गौरव को बहुत ठेस लगी। अपनी खोई हुई अस्मिता को प्राप्त करने और राज्य के गौरव की पुनर्स्थापना करने के लिए 1924 में म्यूनिख नगर में रैट्जेल, जेलेन और मैकिन्डर की सम्मिलित संकल्पनाओं के आधार पर भू-राजनीतिक अध्ययन के लिए एक 'भू-राजनीतिक संस्थान' की स्थापना की गई। वस्तुतः यही वह समय था जब राजनीतिक भूगोल का विकास भिन्न दिशा में होने लगा, और इस तरह राजनीतिक भूगोल में भू-राजनीति का सूत्रपात हुआ।

भू-राजनीति की संकल्पना के उद्भव और विकास में स्वीडिश मूल के राजनीति शास्त्री रुडोल्फ जेलेन (1864–1922 ई०), ब्रिटेन के राजनीति शास्त्री हेलफोर्ड मैकिन्डर (1861–1947 ई०) और जर्मनी के विद्वान कार्ल हाउशोफर (1869–1946) का विशेष योगदान रहा है। म्यूनिख में स्थापित 'भू-राजनीतिक संस्थान' के निर्देशक के रूप में हाउशोफर ने 1924 में एक पत्रिका 'Zeitschrift fur Geopolitik' का सम्पादन प्रारंभ किया जिसमें उन्होंने 'भू-राजनीतिक' को परिभाषित किया, उसने उद्देश्य बनाए और यह भी बताया कि किस तरह से राजनीति भू-राजनीति के माध्यम से अपने राज्य के हितों के लिए कैसे योगदान दे सकते हैं। हाउशोफर की इस भू-राजनीतिक अवधारणा के तीन प्रमुख आधार थे—

(अ) रैट्जेल की जैविक राज्य संकल्पना, (ब) जेलेन द्वारा उसका परिमाणित स्वरूप, और (स) मैकिन्डर का भौगोलिक धुरी-हृदय क्षेत्र मॉडल।

डार्विन के संघर्ष तथा प्राकृतिक चयन' दर्शन के आधार पर रैट्जेल का मानना था कि—'सीमान्त एक रेखा नहीं है, बल्कि एक स्थानांतरण शील आत्मसाती परिक्षेत्र है। सीमा रेखा राजनीतिक भू दृश्य में स्थाई नहीं होती बल्कि राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनशील होती है।' रैट्जेल के अनुवर्ती विद्वान जेलेन रैट्जेल की 'जैविक राज्य संकल्पना' संबंधी उक्त मत से पूर्णतया सहमत थे। उन्होंने रैट्जेल के जैविक राज्य मॉडल में नैतिकता का आयाम जोड़ा और बौद्धिक क्षमता की गुणात्मकता को शामिल किया जेलेन पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने 'Geopolitik' (भू-राजनीतिक) शब्दावली का प्रयोग किया। सर हेलफोर्ड मैकिन्डर राजनीतिक भूगोल के क्षेत्र में एक मूर्धन्य विचारक थे। उन्होंने 1904 ई० में रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी लंदन के अधिवेशन में — 'The Geographic Pivot of history' विषय पर अपना लेख प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने अपने 'हृदय-स्थल मॉडल' की व्याख्या प्रस्तुत की। कार्ल हाउशोफर जेलेन की मृत्यु के बाद 'भूराजनीतिक' के प्रमुख पैरोकार के रूप में उभरे। हाउशोफर मैकिन्डर भी विश्व सामरिक परिदृष्टि से अत्यधिक प्रभावित थे। मैकिन्डर भी इस अवधारणा में हाउशोफर को पराजित जर्मनी के राष्ट्रोद्धार, खोई अस्मिता की प्राप्ति व जर्मनी के समस्याओं के समाधान की कुंजी दिखाई पड़ी और उन्होंने अपने 'भूराजनीतिक संस्थान' (Institut fur Geopolitik) और अपनी भू-राजनीतिक पत्रिका 'Zeitschrift fur Geopolitik' के माध्यम से जर्मनी को केन्द्र में रखकर भू-राजनीतिक संकल्पना को विकसित और परिवर्धित किया। उनके इस कार्य और राजनीतिक संकल्पना को इतनी प्रसिद्धि मिली कि 'भूगोल, विशेष कर युद्ध भूगोल जर्मन राष्ट्रीय पूर्वाधिकार बन गया (वाल्थ, 1944)। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि तत्कालीन जर्मन नीति हाउशोफर के अधीन म्यूनिख के भू-राजनीतिक संस्थान द्वारा तैयार बृहदार साहित्य से काफी अधिक प्रभावित थी। और यह प्रभाव 1924 से 1945 ई तक जर्मनी के भूगोल पर बना रहा। वास्तव में हाउशोफर की यह विचारधारा जर्मनी में 'भू-राजनीतिक सम्प्रदाय' के रूप में विकसित हुई जिसमें रैट्जेल के जीव संबंधी विचार, जेलेन द्वारा उसका परिमार्जित स्वरूप, मैकिन्डर के विश्व सामरिकता सम्बन्धी विचार क्षेत्रीयवाद तथा युद्ध के पश्चात् जर्मनी की राष्ट्रीय भावना का मिश्रण था जिसके परिणामस्वरूप भूराजनीति (Geopolitics) का स्वरूप सामरिकता (Geo-Strategy) ने ग्रहण कर लिया। यद्यपि जर्मन भू-राजनीतिक संकल्पना का विकास हाउशोफर द्वारा 'राज्य की आत्मा' के रूप में किया गया, किन्तु इसकी शारीरिक संरचना भ्रमात्मक आँकड़ों पर आधारित थी। परिणामतः यह मात्र प्रचार व विस्तारवाद का साधन बन कर रह गई।

सारांशतः भू-राजनीति का संकल्पनात्मक विकास 'दो रूपों में देखा जा सकता है —

1. जैविक राज्य (Organic State) के विचार के आधार पर
2. भू-सामरिकता (Geo&Strategy) के विचार के आधार पर

- 6.3.1 जैविक राज्य विचार के आधार पर — जैविक राज्य विचार के आधार पर भू-राजनीतिक संकल्पना के विकास में जिन विद्वानों का योगदान प्रभुत्व है, उनमें फ्रेडरिक वरेट्जेल (The Laws of spatial Growth, 1898 — Political Geography, 1896), रुडोल्फ जेलेन ('The State as an Organism, 1916), काल हॉउश्तेकर (Zeitschrift fur Geopolitik mua 'Journal of Geopolitics, 1924—1968) एवं ऑटो (Das Wesender Geo&politik) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
- 5.3.2 भू-सामरिकता के विचार के आधार पर :- भू-सामरिकता के विचार के आधार पर भू-राजनीतिक संकल्पना के विकास में जिन विद्वानों का योगदान प्रमुख है, उनमें एडमिरल थेयर महान (The Influence of sea Power upon history, 1890), सर हेलफोर्ड जे० मैकिन्डर ('The Geographical Pivot of History, 1904, Democratic Ideals and reality एवं The Round world and the winning of the peace, 1943 निकोलस जॉन स्पाइकमैन, (America's Strategy in world power; एवं The Geography of peace; 1944); एलेक्जेंडर पी०डी० सेवेरस्की (Victory through Air power; 1945, 'Air power Key to survival एवं America too young to die' 1961 तथा साडल बी० कोहेन (Geography and politics in a Divided world; 1963) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

6.4 अल्फ्रेड थेयर महान की सामुद्रिक शक्ति अवधारणा

सामुद्रिक शक्ति प्रसार और नौसामरिक चिंतक अल्फ्रेड थेयर महान (1840—1914) एक अमेरिकी विद्वान थे। अमेरिकी नौ सैनिक अकादमी से स्नातक की शिक्षा (1859) प्राप्त करने के पश्चात लगभग 40 वर्षों तक उन्होंने अमेरिकी नौ सेना को अपनी सेवाएँ दीं और 1906 में अमेरिकी नौ सेना के रीअर एडमिरल के पद से अवकाशग्रहण किया। अपने सेवाकाल के दौरान ही उन्होंने अनेक पुस्तकें और लिखी। नौ दैनिक चिंतन पर आधारित उनकी पुस्तकें और लेख यद्यपि कि कई विविध दृष्टिकोणों से किये गए थे, लेकिन प्रायः सभी में इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि आधुनिक युग में विश्वशक्ति के रूप में स्थापित होने के लिए सामुद्रिक मार्गों का नियंत्रण अनिवार्य शर्त है। उनके द्वारा रचित तीन पुस्तकें विशेष महत्व की हैं—

1. The Influence of Sea Power upon History: (1890)
2. The Influence of Sea Power upon French Revolution and Umpires (1892)
3. The life of Nelson (1897)

अपनी उक्त तीन चर्चित पुस्तकों में वैश्विक सामुद्रिक शक्ति पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किए उसका सीधा प्रभाव अमेरिका पर ही नहीं बल्कि सभी देशों की नौ सैनिक विचार धारा पर पड़ा उन्होंने अपनी एक कम चर्चित पुस्तक "The problems of Asia and their effect on International politics (1900) में वैश्विक सामरिक माडल प्रस्तुत किया जो उनके सामुद्रिक शक्ति के दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।

महान की उक्त सभी पुस्तकों के अध्ययन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने कोई मूल रणनीतिक अवधारणा प्रस्तुत की थी, बल्कि उनकी सभी रचनाओं (वे चाहे किसी भी दृष्टिकोण से लिखी गई हों) का सार। तत्व यह है कि सामुद्रिक शक्ति ही विश्व प्रभुत्व का आधार है। महान की सामुद्रिक शक्ति अवधारणा और सामरिक चिंतन की कुछ आधारभूत बातें निम्नवत् हैं—

- (1.) भूमंडलीय सतह पर सागरों एवं महासागरों का एक अबाध और अविराम तंत्र मौजूद है, अतः सामुद्रिक यातायात एक समन्वित व्यवस्था है;
- (2.) भूमंडल पर उत्तर में आर्कटिक से लेकर द० में आन्तरिक एशिया की पर्वतीय पेट्टी तक तथा प० में पूर्वी यूरोप से लेकर पूर्व में एशियाई मुख्य भूमि के पूर्वी छोर तक एक विशाल स्थल खण्ड रूसी साम्राज्य के रूप में मौजूद है, और समुद्री मार्गों से पूरी तरह कटा हुआ है;
- (3.) यह अन्तर— महादेशीय रूसी साम्राज्य पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व में समुद्र तटीय शक्तियों से घिरा हुआ है;
- (4.) स०रा० अमेरिका, ग्रेट ब्रिटन तथा जापान सामुद्रिक स्थिति वाले देश हैं जो यूरेशियन मुख्य भूमि के कारण एक दूसरे से अलग होने के बावजूद भी अनेक दृष्टियों से उससे सम्बद्ध रूप में स्थित हैं।

उपरोक्त सामरिक तथ्यों को ध्यान में रखकर महान ने अपनी पुस्तक *The Influence of Sea Power upon History* (1890) में ब्रिटिश साम्राज्य और उसकी कूटनीति का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला लघु आकार का देश होते हुए भी— विश्वशक्ति के रूप में ग्रेट ब्रिटेन का विकास उसकी द्वीपीय स्थिति के कारण संभव हुआ। उनके इस निष्कर्ष के प्रमुख आधार निम्नलिखित थे :—

- (i) ग्रेट ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति सामुद्रिक यातायात की दृष्टि से आदर्श स्थिति है।
- (ii) यूरोपीय देशों में ग्रेट ब्रिटेन एकमात्र ऐसा देश है जोकि पूरी तरह से घिरा है।
- (iii) सीमाओं की सुरक्षा के लिए सेना थी यौद्धिक सामान पर अधिक खर्चकरने की जरूरत नहीं है।
- (iv) उत्तरी यूरोपीय देशों तथा अटलांटिक महासागर के बीच में उसकी भौगोलिक स्थिति है।
- (v) गहरे सागर वाला सारा व्यापार ब्रिटिश चैनल से गुजरने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उसकी अग्रणी भूमिका है और महत्वपूर्ण सागरीय व्यापारिक मार्ग उसके नियंत्रण में हैं
- (vi) जिब्राल्टर जलडमरूमध्य, स्वेजनहर, उत्तमआशा अंतरीय, सिंगापुर, हांगकांग, मैगलन जल डमरूमध्य, के ऑफहान जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों पर ब्रिटिश नौसेना ने अपने नौसैनिक बेड़े तैनात कर लिए थे।
- (vii) इन नौ सैनिक बेड़ों के आधार पर ग्रेट ब्रिटेन यूरोप, एशिया, एवं प्रशांत एवं अटलांटिक महासागरीय क्षेत्रों में आसानी से निर्णायक स्थिति में आ गया था।

ग्रेट ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति के विकास के विश्लेषण के आधार पर अल्फ्रेड थेयर महान ने समुद्रिक शक्ति के विकास के लिए निम्नलिखित छः प्रमुख कारकों की पहचान की —

1. राज्य की भौगोलिक स्थिति और उसकी स्थलीय सीमाओं का विस्तार/लम्बाई;
2. राज्य का भौतिक धरातलीय प्रारूप जो आन्तरिक एवं तटीय भागों के बीच यातायात को सरल एवं सुगम बना सके और बन्दरगाहों के निर्माण में सहायक हो;
3. राज्य का भौगोलिक विस्तार तथा स्थलीय सीमाओं की सुरक्षा;
4. राज्य की जनसंख्या का आकार अर्थात् अधिक जनसंख्या — बड़ा नौसैनिक बेड़ा;
5. राज्य का राष्ट्रीय चरित्र अर्थात् राज्य के नागरिकों में सामुद्रिक यातायात के प्रति रुचि एवं सामुद्रिक शक्ति विस्तार में आस्था;
6. प्रशासन का स्वरूप एवं सरकारी नीतियाँ — जो सामुद्रिक शक्ति विस्तार के प्रति सचेष्ट हों।

ग्रेट ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति के विकास के विश्लेषण के आधार पर और सामुद्रिक शक्ति के विकास हेतु पहचाने गए निर्णायक तत्वों का दृष्टि में रखकर महान के निष्कर्ष निकाला विश्व में कि मात्र स० रा० अमेरिका ही ऐसा देश है जो समुद्रिक शक्ति विस्तार में ग्रेट ब्रिटेन को मात दे सकता है। अमेरिका की सामुद्रिक शक्ति के विकास हेतु महान ने पनामा नहर के निर्माण की सिफारिश की थी। महान को पूरा विश्वास था कि एक दिन स० रा० अमेरिका विश्व का सबसे शक्तिशाली राज्य बनेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के शक्तिशाली राज्य बनने में वे रूसी साम्राज्य को एक बाधा मानते थे, इसीलिए उन्होंने इस बात पर भी बल दिया था कि रूसी सामरिक उद्देश्यों को असफल करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन एवं अन्य सामुद्रिक शक्तियों का एक जुट होना अनिवार्य है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि महान के ये विचार, विश्लेषण एवं निष्कर्ष उनकी किसी एक पुस्तक में नहीं हैं, बल्कि उनके द्वारा लिखे गए लेखों, कथनों और भाषणों में बिखरे पड़े हैं। महान की मृत्यु हवाई शक्ति के विकास के पूर्व ही हो गई थी, इसलिए उनकी अवधारणा में हवाई शक्ति का उल्लेख नहीं है।

6.5 सर हेल्फोर्ड जॉन मैकिन्डर की हृदय स्थल संकल्पना

लंदन विश्वविद्यालय में भूगोल के आचार्य, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के निदेशक, ब्रिटिश संसद के सदस्य एवं रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के उपासभापति जैसे सम्मानित पदों पर आसीन रहे सर हेल्फोर्ड जॉन मैकिन्डर (1861–1947) अपने समय के एक ऐसे विचारक और मूर्धन्य भूगोलविद् थे जिन्होंने यूरोप के राजनीतिक इतिहास को समुद्री शक्ति और स्थल शक्ति के मध्य अनवरत संघर्ष के रूप में देखा मैकिन्डर ने अपने विश्व

सामरिक मॉडल को वैश्विक अर्थव्यवस्था के उस संकटकालीन दौर में विकसित किया जब सम्पूर्ण विश्व में स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य शिविर से अवनतिरी और अग्रसर हो रहा था। वास्तव में अल्फ्रेड थेयर महान जहाँ आकर रुक गए थे, वहीं से मैकिन्डर ने प्रारंभ किया तथा महान के अनेक निष्कर्षों से अपनी असहमति प्रकट की।

मैकिन्डर ने अपने विश्व सामरिक मॉडल को विभिन्न संशोधनों के "साथ तीन बार तीन स्वरूपों में प्रास्तुत किया—

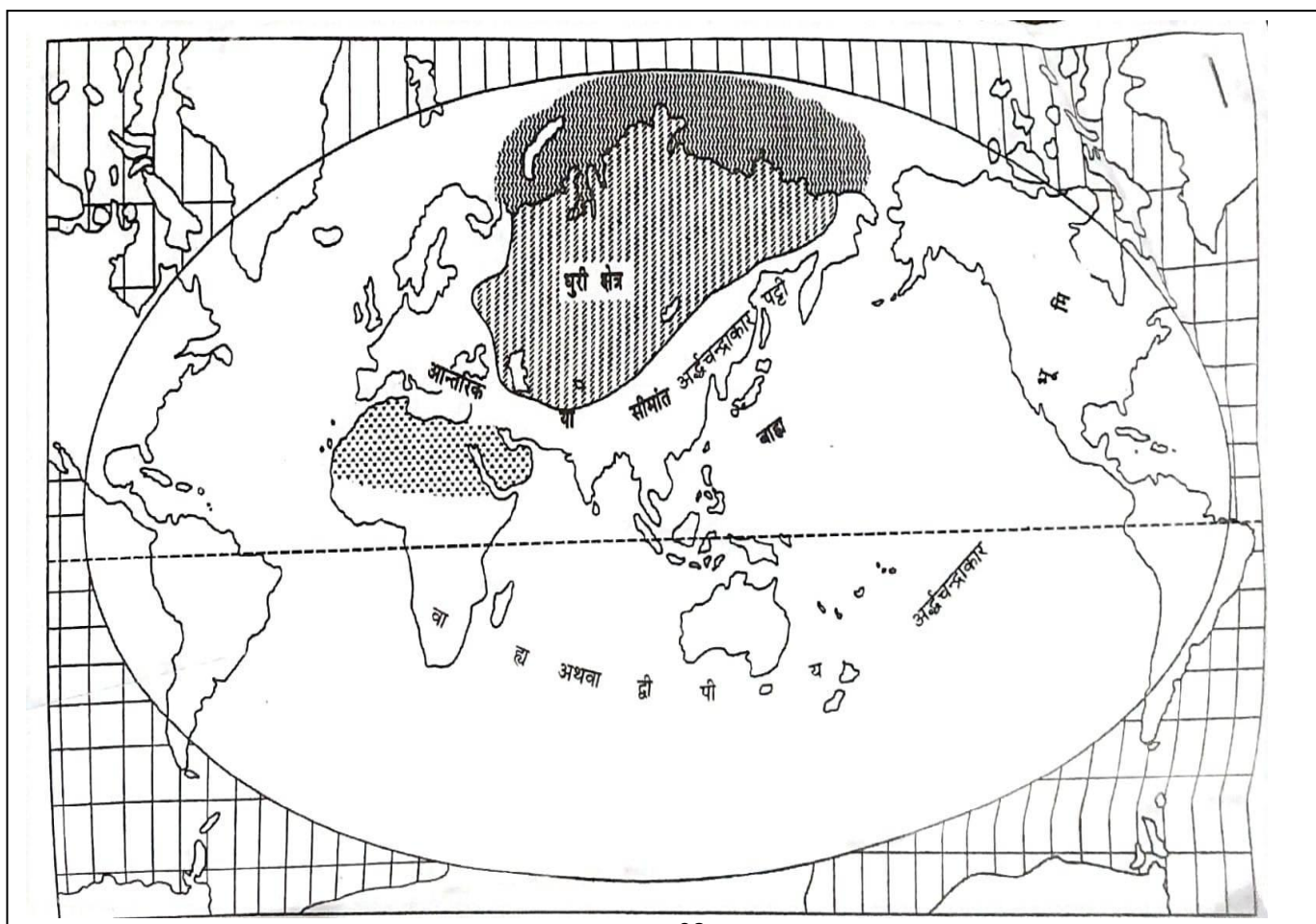
प्रथम – इतिहास की भौगोलिक धुरी (Geographical Pivot of History): 1904

द्वितीय – हृदय स्थल की संकल्पना (Concept of Heart Land): 1919

तृतीय – मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना (Concept of Midland Basin): 1943 (संशोधित)

6.5.1 इतिहास की भौगोलिक धुरी (1904) –

मैकिन्डर ने अपना विश्व सामरिक मॉडल 'इतिहास की भौगोलिक धुरी (The Geographical Pivot of History) 25 जनवरी 1904 जनवरी को 'रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के सम्मुख पहली बार एक शोध पत्र के रूप में प्रस्तुत किया जो बाद में (1904) Geographical Journal (vol. XXIII, PP,421-444) में प्रकाशित हुआ। अपने शोध प्रपत्र में संख्या-नात्मक पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के बाद सर्वप्रथम उन्होंने 'विश्वद्वीप को रेखांकित किया। पृथ्वी के स्थलाकृतिक मानचित्र के आधार पर मैकिन्डर ने यह निष्कर्ष निकाला कि भू-मण्डलीय स्तर पर पृथ्वी की सतह पर अफ्रीका, यूरोप तथा एशिया के परस्पर संयोग से निर्मित एक विशाल भू-खण्ड है जो सम्पूर्ण पृथ्वी के दो तिहाई क्षेत्रफल को अपने में समेटे हुए है। इसे मैकिन्डर ने 'विश्वद्वीप (World Island) की संज्ञा दी। इसी विश्वद्वीप पर पृथ्वी की कुल जनसंख्या का "सात बटे आठ (87.5%) भाग निवास करता है। पृथ्वी का शेष एक तिहाई भू-भाग छोटे-बड़े खण्ड स्थल खण्डों (उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ग्रेट ब्रिटेन और जापान आदि) के रूप में भू-सतह पर फैला हुआ है (चि०सं० 6.1)



अपने विश्व सामरिक मॉडल में मैकिन्डर से विश्वद्वीप और खण्डित स्थल खंडों को तीन स्तरों (वर्गों) में विभाजित किया है –

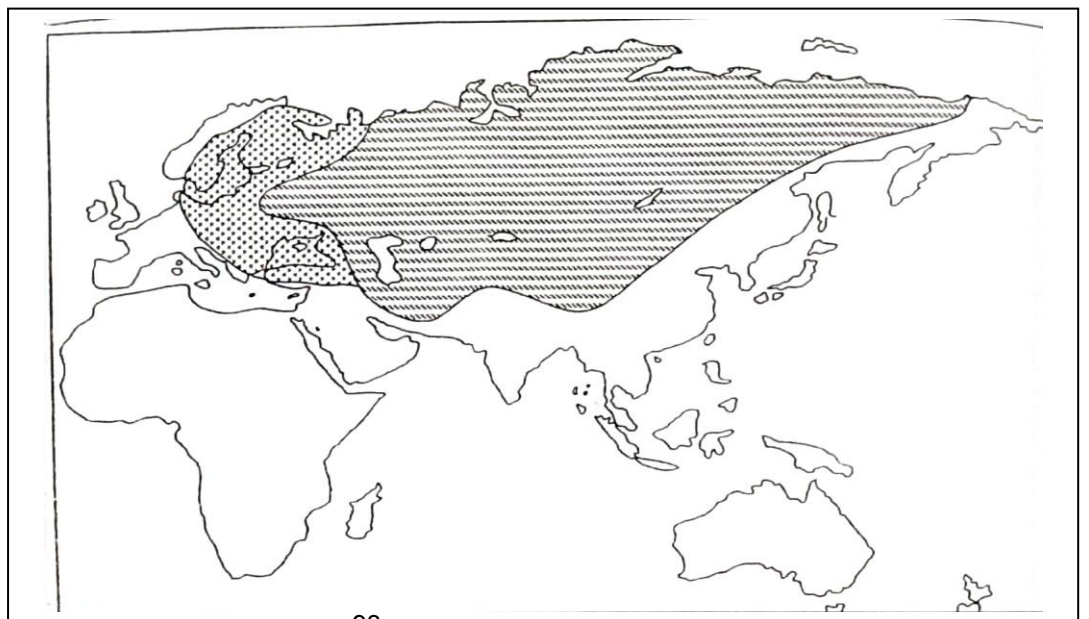
(अ) प्रथम स्तर (वर्ग) आंतरिक और आर्कटिक जल प्रवाह वाले एशिया के आन्तरिक क्षेत्रों का है जो तीन ओर से पर्वतों से और ऊँची अवरोधक पहाड़ियों से घिरा हुआ है और चौथी ओर वर्ष पर्यन्त जमे हुए सागर हैं जो नौशक्ति के लिए अगम्य है। यही मैकिन्डर का 'धुरी क्षेत्र' (Pivot) है।

(ब) द्वितीय स्तर (वर्ग) धुरी क्षेत्र' के पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व में स्थित उन भू-भागों का है जिनका विस्तार यूरेशिया के स्केण्डिनेविया से मंचूरिया तक के तटीय क्षेत्रों तक है। इसे मैकिन्डर ने 'आन्तरिक या सीमावर्ती अर्धचन्द्राकार वृत्त (Inner or Marginal Crescent) नाम दिया है। यह अर्धचन्द्राकार क्षेत्र पूरी तरह सामुद्रिक शक्तियों के प्रभाव में है कारण कि यहाँ की नदियाँ वर्ष पर्यन्त खुले सागरों में प्रवाहित होती है।

(स) तृतीय स्तर स्थलीय क्षेत्रों की वह पेटी है जो यूरेशिया के बाहर स्थित महाद्वीपों एवं द्वीपों की है। इसमें उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, सहारा के दक्षिण में स्थित अफ्रीकी महाद्वीप के क्षेत्र ग्रेट ब्रिटेन जापान एवं आस्ट्रेलिया तथा सम्बद्ध द्वीपीय क्षेत्र शामिल हैं। इसे मैकिन्डर ने बाहरी या द्वीपीय अर्धचन्द्राकार वृत्त (Outer or Insular Crescent) रहा है।

इस प्रकार मैकिन्डर का धुरी क्षेत्र' अर्थात् इतिहास की भौगोलिक धुरी' यूरेशिया का वह विस्तृत क्षेत्र है जिसकी नदियाँ या तो आन्तरिक झीलों में गिरती हैं" अथवा वर्ष पर्यन्त बर्फ से ढके समुद्र में अतः सामरिक दृष्टि से यह एक विशाल दुर्ग के समान सुरक्षित है। यहाँ की भौगोलिक – राजनीतिक घटनाओं का मूल्यांकन करने के बाद मैकिन्डर ने यह निष्कर्ष निकाला कि पुरानी दुनिया में आन्तरिक यूरेशिया ही विश्व का एक मात्र ऐसा भूखण्ड है जिसने अपने भू-सामरिक महत्व के कारण पुरानी दुनिया के इतिहास और राजनीति को काफी प्रभावित किया है। लेकिन मैकिन्डर के अनुसार धुरी क्षेत्र पश्चिम और पूर्व से अभेद्य है। इस प्राकृतिक अभेद्य किले का निम्न तलीय क्षेत्र जर्मनी के उत्तरी मैदानों में जाकर मिल जाता है, इस प्रकार जर्मनी के लिए यह आसान है कि वह धुरी क्षेत्र पर अधिकार कर ले और वहाँ से समूचे विश्व पर अपना अधिकार स्थापित करें। सुदूर पूर्व में प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में शताब्दी के प्रारंभ में रूस को सैनिक सम्बन्ध में पराजित करने के बाद जापान का सैन्य शक्ति के रूप में अभ्युदय भी एक खतरे के रूप में था जो धुरी क्षेत्र को पूर्व से भेद करता था। इस तरह से पूर्व (जापान) और पश्चिम (जर्मनी) की बढ़ती शक्ति ध्रुवी क्षेत्र के लिए घातक थी और मैकिन्डर के इंग्लैण्ड एवं उसके विश्व प्रभुत्व के लिए चुनौती थी। अपने इस शोध प्रपत्र में मैकिन्डर ने निष्कर्षित: यह स्पष्ट किया था कि केवल सामुद्रिक शक्ति पर आधारित राज्य दीर्घकाल तक अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकते। इसके विपरीत एक स्थलीय शक्ति अपने संसाधनों के बल पर स्थाई रूप से शक्तिशाली रह सकती है। इसलिए 'धुरी क्षेत्र' भावी विश्वशक्ति के लिए आधार बन सकता है।

6.5.2 हृदय स्थल की संकल्पना (1919) –



मैकिन्डर ने अपनी इतिहास की भौगोलिक धुरी' संकल्पना (1904) में यह स्पष्ट रूप से कहा था कि उनके द्वारा निर्धारित 'विश्वद्वीप का धुरी क्षेत्र' विश्व की किसी भी सामुद्रिक शक्ति के लिए अगम्य है और सामरिक दृष्टि से वह एक विशाल दुर्ग के समान सुरक्षित है। लेकिन 1914-1919 के प्रथम विश्वयुद्ध में कुछ ऐसी घटनाएं घटी (जैसे- रूसी साम्राज्य का 1917 में पतन; रूस के नए कम्युनिस्ट शासकों का जर्मनी के साथ उसी की शर्तों के साथ शान्ति समझौता; युद्ध के दौरान तुर्की जल डमरू मध्य के रास्ते कालासागर में प्रवेश करने की ग्रेट ब्रिटेन की असफलता, जर्मनी की बारूदी सुरंगों का ब्रिटिश नौ सेना को बाल्टिक सागर के बाहर ही रोके रखना; जिससे मैकिन्डर को लवण कि 1904 में उनके द्वारा प्रति पारित आन्तरिक जल प्रवाह पर आधारित 'धुरी क्षेत्र' उससे अधिक व्यापार था। अतः प्रथम विश्व युद्ध के घटनाक्रमों के परिप्रेक्ष्य में मैकिन्डर को अपनी इतिहास की 'भौगोलिक धुरी' संकल्पना में कुछ संशोधन आवश्यक प्रतीत हुए। इसलिए 1919 में उन्होंने एक पुस्तक 'Democratic Ideals and Reality' प्रकाशित दी की और इसमें अपनी 'धुरी' संकल्पना को संशोधित स्वरूप में प्रस्तुत करने उसे 'हृदय स्थल संकल्पना' का नाम दिया (चि0 सं0 6.2)।

मैकिन्डर का 1919 का 'हृदय' स्थल 1904 के 'धुरी क्षेत्र' से थोड़ा अलग और विस्तृत है। सामरिक चिंतन है। के उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने हृदय स्थल की एक नई परिभाषा प्रस्तुत की और कहा कि 'हृदय स्थल वह क्षेत्र है जिसमें आधुनिक तकनीक के सारे सामुद्रिक शक्तियों को प्रभावी ढंग से बाहर रखा जा सकता है। इस आधार पर परिभाषित सामरिक हृदय स्थल के अन्तर्गत उन्होंने बाल्टिक सागर, डैन्यूबनदी की नौका गम्य मध्य और निचनी घाटी, कालासागर, आर्मेनिया, एशिया माइनर, पर्शिया, तिब्बत एवं मंगोलिया को शामिल किया। युद्ध के अनुभव के आधार पर मैकिन्डर को स्पष्ट था कि 'हृदय स्थल' में एक कमजोर और मोर्चा है- दक्षिणी रूसी का स्टेस्स का वह प्रदेश जिससे होकर 1917 में जर्मन फौजें आगे बढ़ी थी। यूराल और कैस्पियन सागर के बीच स्थित यह स्टेपी संकरा गलियारा ही हृदयस्थल को पूर्वी यूरोप से जोड़ता है। पूर्वी यूरोप में अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभाव के परिणाम स्वरूप जर्मनी हृदय स्थल के एकमात्र प्रवेश द्वार पर की सरलता से निमंत्रण स्थापित कर सकता है और भविष्य में कमजोर रूस से गठजोड़कर अपने नेतृत्व में यूरेशिया में विश्व का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर सकता है। अतः हृदय स्थल क्षेत्र में जर्मनी भी विश्व विजय की भावी संभावनाओं को समाप्त करने के और पेरिस में शांतिवार्ता के लिए एकत्र यूरोपीय और अमेरिकी राजनायकों को भावी जर्मन संकट से आगाह करने के लिए मैकिन्डर ने एक नई सामरिक शक्ति प्रतिपादित की

“जो पूर्वी यूरोप पर शासन करेगा, वह हृदय स्थल को नियंत्रित करेगा;

जो हृदय स्थल पर शासन करेगा, वह विश्वद्वीप को नियंत्रित करेगा;

जो विश्वद्वीप पर शासन करेगा, वह विश्व को नियंत्रित करेगा।”

मैकिन्डर के हृदय स्थल मॉडल' की यह सूक्ति प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी की नीतियों के लिए निःसंदेह प्रासंगिक थी। इस सूक्ति की भौगोलिक वास्तविकता ने ही जर्मनी के क्षेत्रीय प्रसार के आकार एवं दिशा को निर्धारित करने में यूरोपीय और अमेरिकी राजनायकों की सहायता की।

6.5.3 मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना (1943 में संशोधित) -

अमसामायिक भूराजनीतिक वैश्विक परिवर्तनों को देखते हुए मैकिन्डर ने अपने भूसामरिकता के दृष्टिकोण में पुनः एक बार फिर परिवर्तन किया। उन्होंने 1943 में 'Foreign Affairs' नामक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'The Round World and Winning of the Peace' में विश्व भूराजनीति को नई व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी इस नवीनतम आख्या में दो बिन्दु प्रमुख थे :-

प्रथम - उनके अनुसार 'हृदयस्थल आज भी पृथ्वी का महानतम दुर्ग है तथा इतिहास में पहली बार एक ऐसी जन समष्टि द्वारा रक्षित है जो संख्या और गुण के सन्दर्भ में पर्याप्त है। अपनी इस मान्यता के बावजूद भी उन्होंने 1919 में प्रस्तुत हृदयस्थल की सीमा में परिवर्तन करते हुए तत्कालीन सोवियत संघ के उस क्षेत्र को हृदयस्थल से पृथक् कर दिया जो येनेसी नदी के पूर्व में स्थित है। यह क्षेत्र, जिसे उन्होंने 'Lena Land (लीना स्थल) कहा, उनकी दृष्टि में किसी भी राजनीतिक महत्व वाला नहीं है, कारण कि यह क्षेत्र पर्वतों; पठारों एवं कोणधारी वनोवाली घाटियों से आच्छादित है।

द्वितीय - उनके अनुसार-पश्चिमी यूरोप और पूर्वी उत्तरी अमेरिका व्यावहारिक स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक और

सांस्कृतिक रूप से इतने निकट से जुड़े हैं कि वे एक दूसरे के परिपूरक दिखाई पड़ते हैं। मैकिन्डर के शब्दों में स0रा0 अमेरिका के प्रभूत वर्षा प्राप्त करने वाले क्षेत्र और उसकी सारी कोयला खाने पूर्वी हिस्से में स्थित हैं, जबकि यूरोप में उनका केन्द्रीकरण पश्चिमी भाग में है। अतः प0 यूरोप और पूर्वी स0रा0 अमेरिका एक ही समुदाय के दो संतुलित अंग हैं।' उनकी दृष्टि में— पश्चिमी यूरोप और स0रा0 अमेरिका के बीच फैला आन्ध्र महासागर एक समुद्र मात्र न रह कार व्यावहारिक स्तर पर—संघन सागरीय और वायु मार्गों की जाल बन गया है जिसकी भू-राजनीतिक क्षमता गणनातीत है। इसी परिक्षेत्र को मैकिन्डर ने 'मिड लैण्ड बेसिन (मध्य स्थलीय बेसिन) की संज्ञा दी है।

अपनी नवीनतम व्याख्या में मैकिन्डर ने स्पष्ट किया कि अब दो पृथक-पृथक अपराजेय शक्तियों (पश्चिम में मिडलैंड बेसिन और पूर्व में संशोधित हृदय स्थल का अस्तित्व है और इन दो शक्तियों के मध्य पूर्वी-मध्य यूरोप एक अन्तस्थ क्षेत्र के रूप में उभरेगा। मैकिन्डर के अनुसार — 'मिडलैंड बेसिन तथा (संशोधित) हृदय स्थल एक दूसरे के करीब आकर जर्मन सैन्य शक्ति के संभावित खतरों का सामना करेंगे। सारांशतः मैकिन्डर का 1943 का संकल्पनात्मक संशोधन अधिक व्यापक है और समसामयिक राजनीतिक परिदृश्य को प्रतिबिम्बित करता है।

6.5.4 मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा —

मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा के मुख्य बिन्दु निम्न हैं :-

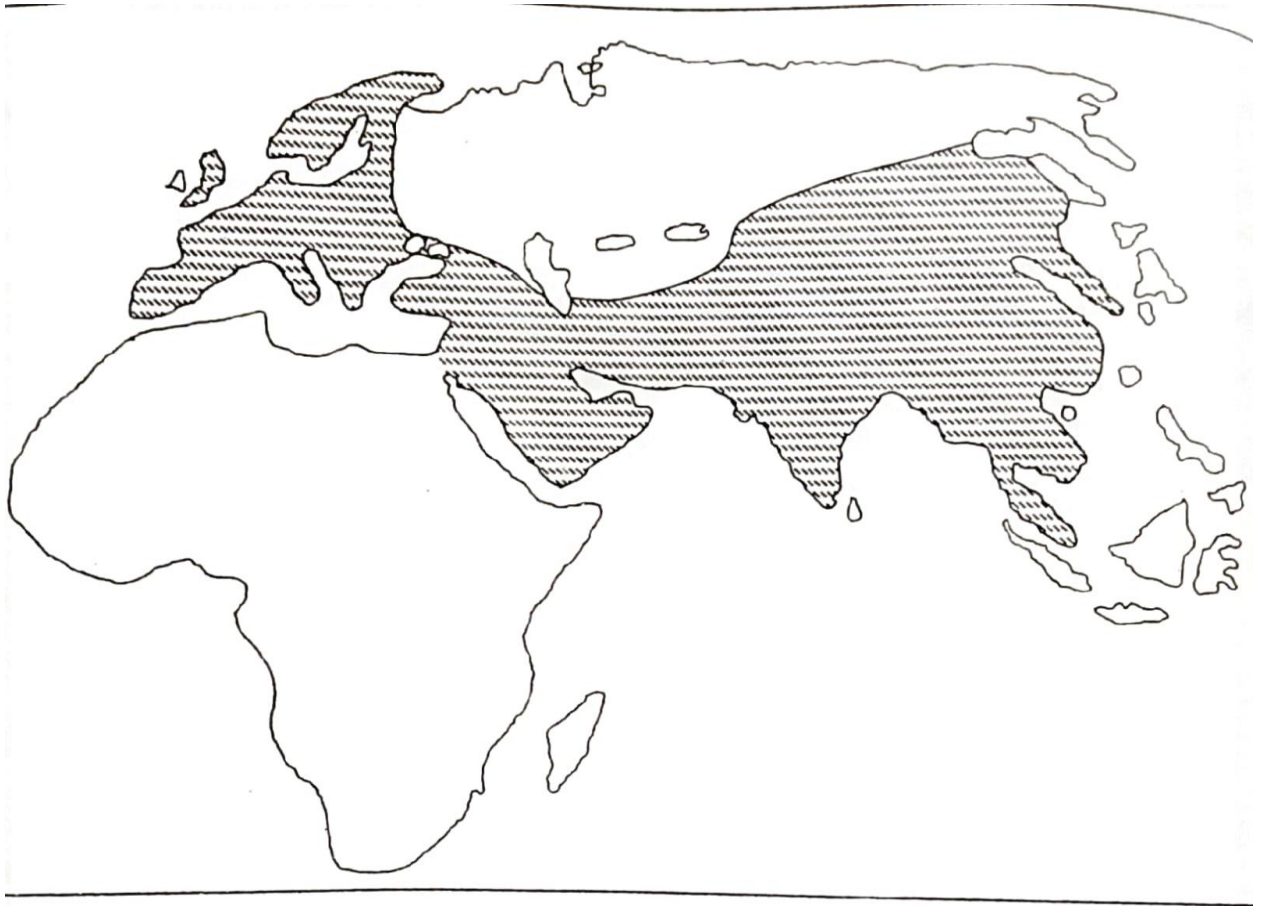
- (1) यूरोपीय इतिहास का संघर्ष सदा से मिश्रित प्रकार का रहा है, लेकिन मैकिन्डर ने इसे सीधे तौर पर स्थल शक्ति बनाम सामुद्रिक शक्ति संघर्ष के तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जो वास्तविकता से बिल्कुल विपरीत था।
- (2) मैकिन्डर ने धुरी क्षेत्र की संसाधन संभाव्यता का अति आंकलन किया है। उन्होंने "शक्ति संभाव्यता को भौगोलिक क्षेत्र की संसाधन संभाव्यता के साथ एकीकृत कर दिया, जो उचित नहीं है।
- (3) महाद्वीपीय आन्तरिक स्थितियों के परिणाम स्वरूप हृदय स्थल की जलवायु बेहद असुविधा जनक है। भौगोलिक समस्याओं के कारण यह शाश्वत कठिनाइयों का क्षेत्र है अतः यहाँ विकास की प्रक्रिया उसी अनुपात में बेहद खर्चीली है।
- (4) हृदय स्थल में गतिशीलता प्रभावशाली नहीं है।
- (5) मैकिन्डर ने 1904 के अपने शोध पत्र में हवाई जहाज के बारे में कुछ नहीं कहा जब कि इसकी शुरुवात हो चुकी थी।
- (6) 1943 में प्रस्तुत मिडलैंड संकल्पना के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मैकिन्डर परिवर्तनशील तकनीकी का वर्तमान राजनीतिक प्रारूपों पर पड़ने वाले प्रभावों और उसमें उनकी नई भूमिका को आँकने में असफल सिद्ध हुए।
- (7) जिस 'Leena Land' को मैकिन्डर ने आर्थिक-राजनीतिक महत्वहीन कहा था, उसी लीना लैण्ड का आर्थिक एवं सामरिक महत्व युद्धोपरांत क्रमशः बढ़ने लगा। रूस और चीन के बीच आर्थिक-सामरिक समझौते ने इसके महत्व में और वृद्धि की है।
- (8) हृदय क्षेत्र की भ्रामक विशालता जो मर्कटर प्रक्षेप पर बने मानचित्र है का परिणाम थी। की इनकी आलोचकों की परिधि में है जिसे बाद में अमरीकी विद्वान वीगर्ट और स्टीफेंशन (1944) ने हृदय स्थल को अलग से शीर्ष केन्द्रित समान दूरी वाले प्रक्षेप पर निरूपित करके भ्रांति को उद्घाटित किया था।

सारांशतः, यदि मैकिन्डर को आलोचनाओं के रूप में पत्थर मिले तो प्रशंसा के रूप में फूलों की भी प्राप्ति उन्हें हुई। उनकी हृदय स्थल संकल्पना अपने प्रकाशन की तिथि (1904) से 1990 तक विश्व सामरिक चिंतक का केन्द्र बनी रही। जर्मन भू-राजनीति को भी उसने प्रभावित किया है।

6.6. निकोलस जान स्पाइक मैन की रिमलैण्ड की संकल्पना (1944)

येल विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान के आचार्य व निर्देशक निकोलस जान स्पाइक मैन (1893-1943 ई0) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कुशलज्ञाता एवं भू-राजनीति के महान विशेषज्ञ थे। उनकी अपनी

पुस्तक 'The Geography of Peace' जो उनकी मृत्यु के बाद 1944 में प्रकाशित हुई, वास्तव में मैकिंडर के विचारों की विस्तृत समीक्षा के उद्देश्य से लिखी गई थी। पुस्तक में व्यक्त उनके समीक्षात्मक विचार ही बाद में "रिमलैण्ड (उपान्त क्षेत्र) संकल्पना" के नाम से प्रसिद्ध हुए (चि०सं० 6.3)।



चित्र-6.3 स्पाइकमैन का रिमलैण्ड (1944)

स्पाइकमैन ने अपनी पुस्तक में मैकिंडर के हृदय स्थल सम्बन्धी संकल्पना की समीक्षा करते हुए उनकी मूलभूत भौगोलिक व ऐतिहासिक मान्यताओं को तो स्वीकार किया लेकिन मैकिंडर द्वारा प्रतिपादित सामरिक परिदृष्टि के निष्कर्षों से अपनी अस्मृति प्रकट की। उनकी असहमति के कई कारणों में दो कारण प्रमुख थे।

प्रथम :- भौगोलिक बाधाओं, कठिन जलवायु, विरल प्राकृतिक संसाधनों एवं यातायात के समुचित साधनों के अभाव आदि के कारण हृदय स्थल का विश्व शक्ति के रूप में विकसित होने में संदेह है।

द्वितीय:- कम कृषि उत्पादकता के कारण हृदय स्थल एक बड़ी जनसंख्या के भरण-पोषण में सक्षम नहीं है। यहाँ औद्योगिक विकास की संभावनाएं भी काफी क्षीण हैं।

उपरोक्त तर्कों के परिपेक्ष्य में स्पाइकमैन ने 'हृदय स्थल' की अपेक्षा यूरोशिया के परिधीय क्षेत्र को अधिक महत्व प्रदान किया जो वास्तव में मैकिंडर का 'आन्तरिक या सीमावर्ती अर्धचन्द्राकारवृत्त' है जिसे स्पाइकमैन ने "आंशिक रूप से स्थलीय और आंशिक रूप से समुद्रिक" पट्टी के रूप में स्वीकार किया है और उसे 'Rimland' (उपान्त क्षेत्र) की संज्ञा दी है। स्पाइकमैन के रिमलैण्ड में बाल्टिक और कालासागर, इस्थुमस के पश्चिम स्थित प्रायः पूरा महाद्वीपीय यूरोप, एशिया के पर्वतीय, द० पश्चिमी, दक्षिणी और द० पूर्वी क्षेत्र तथा चीन शामिल थे। स्पाइकमैन का दृढ़ मत था कि उत्तर कोलम्बस काल में सामुद्रिक शक्ति का व्यापक वर्चस्व निर्विवाद है। वर्तमान विश्व राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक सम्बन्धों का मूल आधार आज भी सामुद्रिक सामर्थ्य में निहित है न कि

हृदय स्थल में विकास की भावी संभावनाओं में अपने इस दृढ़ मत के आधार पर एवं मिडलैण्ड' की शक्ति, सामर्थ्य एवं सामरिक महत्व का आंकलन करते हुए स्पाइक मैन ने बताया कि पुराने विश्व की शक्ति राजनीति के लिए अगर कोई कथन सही है, तो वह यह है :-

“ जो रिमलैण्ड को नियंत्रित करेगा, वह यूरेशिया पर शासन करेगा, जो यूरेशिया पर शासन करेगा, वह विश्व के भाग्य का निर्णय करेगा।”

स्पाइक मैन का यह भी कहना था कि अमेरिका की नीति रिमलैण्ड पर अधिकार करने की होनी चाहिए अथवा कम से कम अपने नियंत्रण को सोवियत संघ से संरक्षित करना चाहिए।

6.6.1 रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन :-

स्पाइक मैन की “रिमलैण्ड संकल्पना” में कई कमजोर बिंदु हैं, जैसे -

1. रिमलैण्ड कोई एक भौगोलिक इकाई नहीं है। यह भौगोलिक विविधताओं का सार संग्रह है, तथा इसमें अनेक भाषा-भाषी, धर्म एवं जाति के लोग निवास करते हैं जिनमें स्वाभाविक एकता का भाव असंभव है।
2. रिमलैण्ड में अनेक राज्य हैं जो राजनीतिक विविधताओं से युक्त हैं। ये सभी देश एक शक्ति के नियंत्रण में नहीं आ सकते।
3. रिमलैण्ड सुरक्षात्मक दृष्टि से कमजोर है। इस पर दोनों ओर हृदय स्थल की ओर से एवं सागरीय क्षेत्रों की ओर से आक्रमण किया जा सकता है। अतः यह विश्व शक्ति नहीं बन सकता।

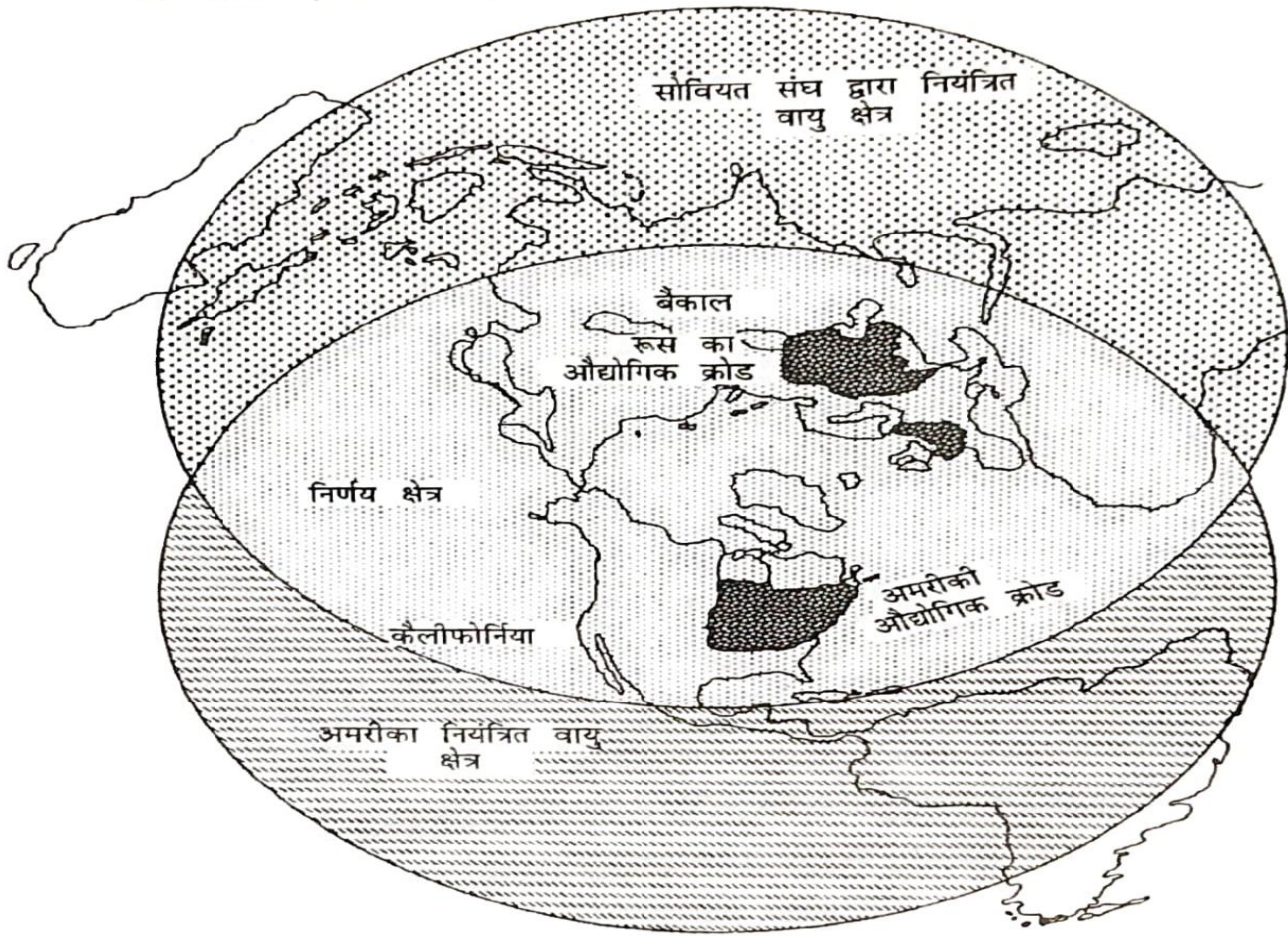
6.7. अलेक्जेंडर पी०डी० सेवेरस्की की वायु शक्ति संकल्पना

सन् 1894 में रूस में जन्मे, पले, बड़े और रूसी वैमानिकी सैनिक स्कूल से शिक्षा प्राप्त अलेक्जेंडर पी०डी० सेवेरस्की (1894-1974) अभियांत्रिक योग्यता से सम्पन्न हवाई युद्ध कला के एक महान् रणनीतिक विशेषज्ञ थे। रूसी नौसैनिक विभाजन मिशन के सदस्य के रूप में 1918 स०रा० अमेरिका आए सेवेरस्की ने 1927 में अमेरिकी नागरिकता प्राप्त की और अमेरिका वायु सेना में मेजर के रूप में कमीशन प्राप्त किया सेवेरस्की अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो रूस व स०रा० अमेरिका की वायुशक्ति से परिचित थे, इसलिए उन्होंने दोनों देशों ‘के सन्दर्भ में ही अपनी वायुशक्ति संकल्पन की रूपरेखा प्रस्तुत की। सेवेरस्की तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की-

- (1) Victory through Air Power (1942),
- (2) Air Power Key to Survival (1950), एवं
- (3) America: too young to Die (1961) | अपनी प्रथम पुस्तक (Victory through Air Power) में उन्होंने युद्ध में वायु शक्ति की भूमिका पर जोर दिया और स्थल सेना और नौसेना को वायुसेना का अधीनस्थ कहा इसी पुस्तक में उन्होंने वायुसेना के आधुनिकीकरण के लिए 11 सूत्री फार्मूला प्रस्तुत किया।

सेवेरस्की ने अपनी दूसरी पुस्तक (Air Power:Key to Survival) में अपने 11 सूत्री फार्मूले को एक संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया। अपने संकल्पनात्मक विचारों को स्पष्ट करने के लिए सेवेरस्की ने उत्तरी ध्रुव पर केन्द्रित समान दूरी वाले एजिमुयल प्रक्षेप' का प्रयोग किया जिसमें “उत्तरी ध्रुवकेन्द्र में तथा सोवियत संघ वायु प्रभाव क्षेत्र’ एवं ‘संयुक्त राज्य वायु प्रभावक्षेत्र एवं संयुक्त राज्य वायु प्रभाव क्षेत्र उसके दोनों ओर हैं। दोनों राज्यों के वायु प्रभुत्व क्षेत्रों का प्रदर्शन उन्होंने निर्णय क्षेत्र (Aren of Decision) की संज्ञा दी जहाँ वायुशक्ति भी कुशलता के आधार पर ही निर्णय संभवया।

सेवेरस्की के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका को अपनी सामरिक शक्ति परीक्षण में उसकी विजय के बारे में किसी प्रकार का सन्देह ने रहे। वस्तुतः पी०डी० सेवेरस्की की यह संकल्पना अमेरिकी आवश्यकता के अनुरूप



चित्र : 6.4 डी० सेवेरस्की की वायु युद्ध कला का सामरिक परिदृश्य (1950)

6.7.1 वायुशक्ति संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन

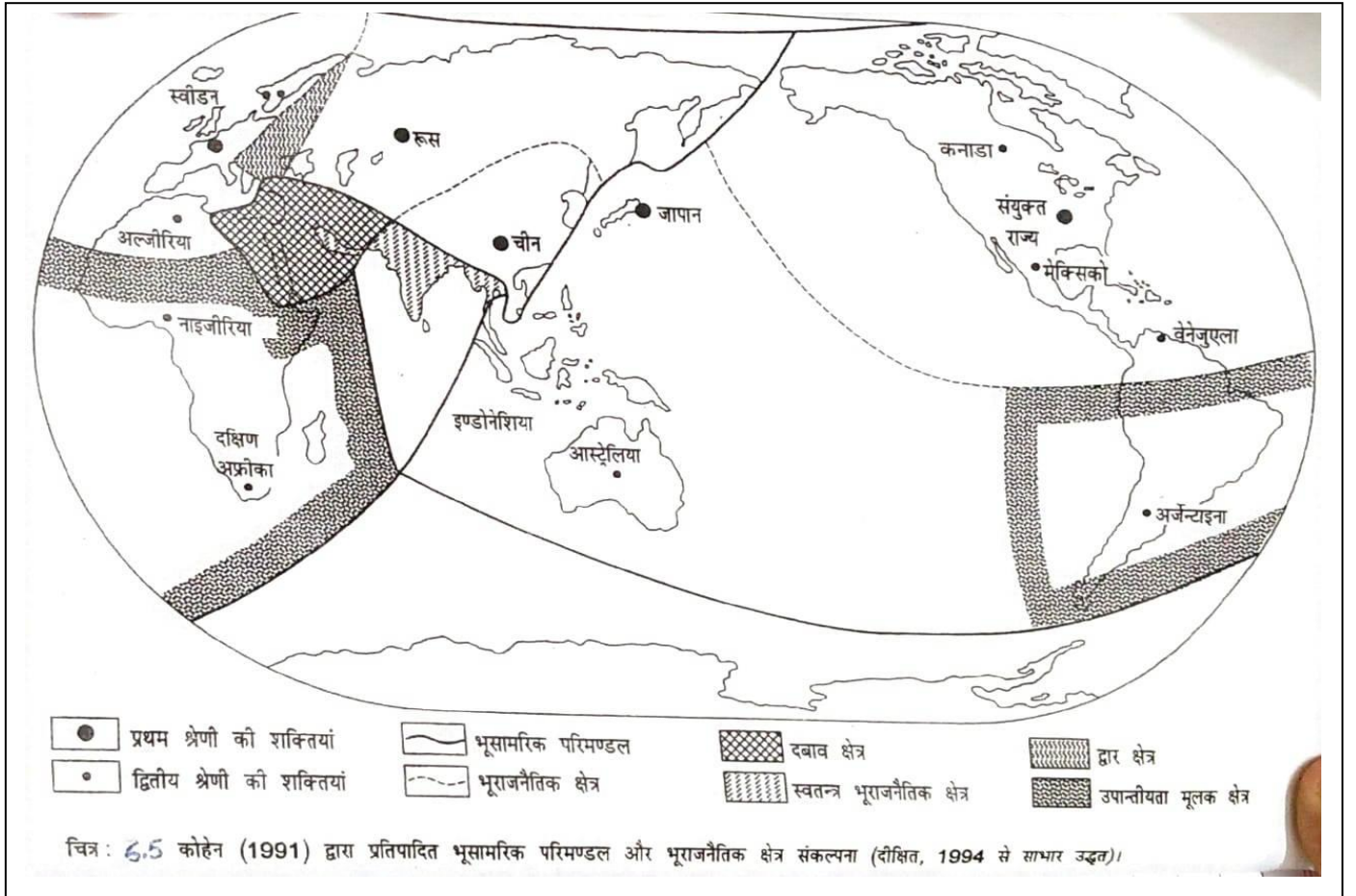
1. एस० बी० जोन्स के अनुसार – अर्न्तमहाद्वीपीय मिसाइल, आणविक शक्ति एवं उपग्रह प्रणाली के विकसित हो जाने के बाद खेलवायु शक्ति पर निर्भर रहना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।
2. बन्दी के अनुसार – किसी देश का शक्ति सामर्थ्य केवल सैन्य शक्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अधिकाधिक देशों को अपने पक्ष में कैसे किया जाय, इस पर निर्भर करता है।
3. हवाई बमबारी के विरुद्ध जिस रक्षा प्रणाली का जिक्र सेवेरस्की ने किया है, उसकी विश्वसनीयता पर राजनीतिक विश्लेषकों को संदेह है।
4. वर्तमान युग में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आए क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने सेवेरस्की की भी संकल्पना की विश्वसनीयता काफी घटा दी है और इस सिद्धांत को पुराना बना दिया है।
5. सेवेरस्की ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को पूरी तरह दो महाशक्तियों के बीच के सीधे संघर्ष के रूप में

देखने का प्रयास किया है, जो उचित नहीं है।

6. शीतयुद्ध के युग में दोनो महाशक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की पहरेदार अवश्य थी परन्तु उसका केन्द्र नहीं। हाँ दोनों की मानसिकताएं संकल्पना के अनुरूप अवश्य।

6.8 सॉल बी० कोहेन का भूसामरिक एवं भूराजनीतिक प्रदेश मॉडल

1950 ई० के बाद परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश और बहुनामीय सामरिक परिदृष्टि में उभरते हुए तटस्थ भू-दृश्य को ध्यान में रखकर अमेरिकी भूगोलविद् एस० बी० कोहेन ने एक नई सामरिक संकल्पना अपनी पुस्तक *Geography and Politics in a Divided World* (1963) में प्रस्तुत की। कोहेन की मान्यता थी कि, स्थल शक्ति – सामुद्रिक शक्ति संघर्ष की स्थिति को देखते हुए नियंत्रण की नीति कारगर नहीं हो सकती। गति आधारित रण क्षेत्र की एकता भी सम्पूर्ण नहीं हो सकती, कारण कि वे रणक्षेत्र विभाज्य है। मौलिक रूप से विभाजित विश्व में अलग-अलग रणक्षेत्र है। अपनी इन्हीं मान्यताओं के आधार पर कोहेन ने अपने सैनिक रूप से प्रत्यास्थ एवं भौगोलिक रूप से संवेदनशील मॉडल में विश्वस्तरीय विभाजन के लिए 'भू-सामरिक प्रदेश' एवं प्रादेशिक विभाजन के लिए भू-राजनीतिक प्रदेश' शब्दावली का चयन किया। कोहेन के मॉडल के अनुसार राजनीतिक दृष्टि से विश्व को दो प्रकार के क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है— (1) भू-सामरिक, भू-राजनीतिक भू-राजनीतिक प्रदेश सामरिक प्रदेश के उप विभाग जो भौगोलिक लक्षणों की एकता को अभिव्यक्त करते हैं। (चि० सं० 6.5) कोहेन के भू-सामरिक व भू-राजनीतिक प्रदेशों का विवरण निम्नवत् है—



(अ) व्यापार आधारित सागरीय विश्व

(i) सागरीय रोव

(ii) एंग्लो अमेरिका तथा कैरीबियन

(iii) दक्षिणी अमेरिका

(iv) सहारा के दक्षिण स्थित अफ्रीका

(v) सागर तटीय एशिया

(vi) ओशेनिया-आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड

(ब) यूरेशियन महाद्वीपीय शक्ति

(vii) हृदय स्थल एवं पूर्वी यूरोप

(स) खंडित पेटियाँ (षैटर बेल्ट्स)

(viii) मध्य-पूर्व एशिया

(ix) दक्षिण-पूर्व एशिया

(द) हिन्द महासागर से घिरा द0 एशियाई पटार

(x) दक्षिण एशिया

6.8.1 मॉडल में प्रथम संशोधन (1982) –

मॉडल का प्रथम स्वरूप प्रस्तुत करने के बाद बोले धीरे-धीरे कोहेन ने अनुभव किया कि द्विध्रुवीय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के बावजूद विश्व राजनीति उत्तरोत्तर एक बहुनामीय प्रक्रिया बन गई थी; अतः 1982 में उन्होंने अपने मॉडल में संशोधन किया। उनके संशोधन के अनुसार—

(i) मूल मॉडल के भू-राजनीतिक प्रदेश प्रथम श्रेणी के बहुशक्ति केन्द्र हैं; ये ही इनके विभाजन के आधार हैं।

(ii) चीन, जापान तथा यूरोप द्वितीय श्रेणी के भू-राजनीतिक प्रदेश हैं जो नये विश्वशक्ति केन्द्र के रूप में उभरे हैं। भारत, ब्राजील तथा नाइजीरिया कि भी द्वितीय श्रेणी के शक्तिकेन्द्र के रूप में उभरने की संभावना है। रोहेन ने ऐसे 27 राज्यों की सूची प्रस्तुत की है।

(iii) इसके बाद उन्होंने तृतीय, चतुर्थ और पंचमश्रेणी के राज्यों सूची बद्ध किया है।

(iv) सहारा के स्थिति द0 अफ्रीका को तीसरी खंडित पेटि (षैटर बेल्ट) के रूप में मान्यता प्रदान थी।

6.8.2 मॉडल में द्वितीय संशोधन (1991) –

बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य 1990 में सोवियत संघ के विघटन और वारसा संधिकी समाप्ति को ध्यान में रखकर कोहेन ने 1991 में पुनः अपने मॉडल में संशोधन किया जो शीत युद्ध के बाद की स्थिति के अनुरूप था। इस संशोधन में उन्होंने विश्व राजनीतिक परिदृश्य को चार श्रेणियों में विभक्त किया – (i) भूसामरिक परिमण्डल, (ii) भूराजनीतिक क्षेत्र, (iii) राष्ट्रीय इकाइयाँ, एवं (iv) राज्य क्षेत्र (Galaway Territories)। यह अंतिम श्रेणी कोहेन के चिंतन का नया पक्ष है। उनके अनुसार— द्वार राज्य क्षेत्र विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के अंग हैं और भिन्न-भिन्न पड़ोसी इकाइयों के बीच सम्पर्क के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। ये कालान्तर में स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व प्राप्त कर सकते हैं और विश्व राजनीति को स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अपने इस संशोधन में कोहेन ने यह भी स्पष्ट किया कि प्रायः द्वितीय श्रेणी की भू-राजनीतिक शक्तियाँ एक-दूसरे के सामरिक परिमण्डल में व्याप्त रहती हैं लेकिन तीन क्षेत्र इस नियम के अपवाद हैं— (i) दक्षिण एशिया, (जो एक पृथक भू-राजनीतिक क्षेत्र बन गया है; (ii) द0प0 एशिया, जो दो प्रधान परिमंडलों के मध्य एक दबाव क्षेत्र है, (iii) मध्य और पूर्वी यूरोप, जो एक पारगम्य परिवर्तनशील क्षेत्र है।

6.8.3 भू-सामरिक एवं भू-राजनीतिक प्रदेश मॉडल का (समालोचनात्मक मूल्यांकन) –

1. यह स्थाई नहीं बल्कि परिकर्तनशील मॉडल है, जिसमें निरंतर संशोधन आवश्यक रहेगा।

2. भू-सामरिक प्रदेशों की सीमाओं को लेकर भी विवाद हो सकता है।
3. कोहेन के विचारों में तटस्थता नहीं है। इनमें राष्ट्रीय तरफदारी का गंध आती है।
4. इनके मॉडल में घरे बन्दी की नीति का यद्यपि कि आंशिक समर्थन है, लेकिन यह विश्व संघर्ष को प्रोत्साहित कर सकता है।

6.9 सारांश

आपने इस इकाई में भू-राजनीति की मूल भावना तथा उसके संकल्पनात्मक विकास का विस्तार से अध्ययन किया है। इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने यह जाना कि जैविक राज्य विचारधारा ने किस प्रकार जर्मन भूराजनीति को प्रभावित किया और तत्कालीन शासकों की सोच को बदल कर रख दिया। सामुद्रिक शक्ति अवधारणा, हृदयस्थल संकल्पना, मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना, रिमलैण्ड संकल्पना, वायुशक्ति संकल्पना एवं भूसामरिक तथा भूराजनीतिक प्रदेश मॉडल के अध्ययनों से निश्चित रूप से आपके भू-राजनीतिक ज्ञान में वृद्धि हुई होगी और आपको यह समझने में मदद मिली होगी कि स्थलीय, सामुद्रिक एवं वायु शक्तियाँ वैश्विक भू-राजनीतिक एवं भूसामरिक सोच पर अपना गहन प्रभाव डालने में बेहद सक्षम होती हैं।

6.10 शब्द सूची

धुरी	Pivot	भू-राजनीति	Geo-Politics
जैविक राज्य	Organic state	मिथ्या प्रचार	Propaganda
हृदय स्थल	Heart Land	भू-सामरिकता	Geo-strategy
समुद्रिक शक्ति	Sea Power	वायु शक्ति	Air Power
अर्धचन्द्राया वृत्त	Crescent	सीमावर्ती	Marginal
द्वीपीय	Insular	अन्तर्महादीपीय	Intercontinental

6.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. Democratic Ideals and Reality' पुस्तक के लेखक हैं—

(अ) एख०बी० कोहेन (ब) मैकिन्डर (स) पी.डी. सेवरेस्की (द) ए.टी. महान

2. विश्व सामरिक मॉडल के जनक हैं—

(अ) ए०टी० महान (ब) एस०बी० कोहेन (स) पी०डी० सेवरेस्की (द) मैकिन्डर

3. अल्फ्रेड थेयर महान ने जो सामरिक दृष्टिकोण दिया, वह है—

(अ) वायु शक्ति (ब) स्थल शक्ति (स) सामुद्रिक शक्ति (द) उक्त सभी

4. एस०बी० कोहेन द्वारा का प्रतिपादित विश्वप्रदेश हैं—

(अ) भू-सामरिक प्रदेश (ब) भू-आर्थिक प्रदेश (स) भू-गर्भिक प्रदेश (द) उक्त सभी

5. एच०जे० मैकिन्डर ने अपना विश्व सामरिक मॉडल विभिन्न संशोधनों के साथ प्रस्तुत किया—

(अ) एक बार (ब) दो बार (स) तीन बार (द) चार बार

आदर्श उत्तर –

1. (ब) ; 2. (द); 3. (स); 4. (अ); 5. (स)

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

de Seversky, (1942): "Victory Through Air Power", New York, Simon and Schuster.

de Seversky, A- (1950) : Air Power : Key to Survival, Newyork Simon and schuster.

Kohen, S.B., (1963) : Geography and Politics in a Divided World, New York Randsome House.

Mackinder, H.J., (1904) The Geographical Pivot of history, Geos. Jour., 23: pp. 421–437.

Mackinder, H.J. (1919): 'Democratic Ideals and Reality'; Constable & Co., London

Mackinder, H.J., (1943): The Round World and the Winning of The Peace, Foreign Affairs, 21, pp. 595–605

Mahan, AT, (1890) The Influence of Sea Power upon thistory: 1660–1783, Bostan, Little Brown & Co.

Pearcy, G.E.etal., (1939). "World Political Geography, Geography; Thomas V. Crowell Co., New York.

Spykman, NJ., (1944): 'The Geography of Peace', Hast court Brace and World, New York,

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु –

1. हृदय स्थल परिकल्पना का मूल उद्देश्य क्या है?
2. कोहेन द्वारा प्रतिपादित भू-सामरिक प्रदेशों के नाम लिखिए।
3. मैकिन्डर के विश्व सामरिक मॉडल' की वर्तमान वैश्विक राजनीति में प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए।
4. स्पाइक मैन की रिमलैण्ड विचारधारा का विश्लेषण कीजिए।
5. सेवेरस्की के भू-सामरिक विचारों की समीक्षा कीजिए।

इकाई-07 संघवाद की संकल्पना तथा भौगोलिक आधार

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 प्रस्तावना
- 7.1 उद्देश्य
- 7.2 विषय प्रवेश
- 7.3 संघवाद की संकल्पना
- 7.4 संघवाद की प्रकृति
- 7.5 संघवाद की वांछनीयता के आधार
- 7.6 संघीय तंत्रों की अवधारणा
- 7.7 संघ, परिसंघ तथा सम्मेल
 - 7.7.1 संघ
 - 7.7.2 परिसंघ
 - 7.7.3 सम्मेल
- 7.8 साहचर्य तथा संगठन
 - 7.8.1 साहचर्य
 - 7.8.2 संगठन
- 7.9 संघात्मक राज्यों के प्रकार
- 7.10 संघवाद की असफलता
- 7.11 विश्व के संघीय राज्य
- 7.12 संघवाद के भौगोलिक आधार
- 7.13 संघीय राज्यों की स्थापना के प्रमुख भौगोलिक कारक
- 7.14 भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधार
- 7.15 सारांश
- 7.16 शब्दसूची
- 7.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्शउत्तर
- 7.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 7.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

7.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल विषय के पाठ्यक्रम की यह सातवीं इकाई है। इसमें आप संघवाद भी संकल्पना और उसके भौगोलिक आधारों का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः कुशल राजनीतिक प्रबन्धन से उपजी अनेकता में एकता की शासन व्यवस्था को संघीय राज्य व्यवस्था कहते हैं। यह एक त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था होती है जिसमें केन्द्रीय एवं स्थानीय स्तरों के बीच प्रांतीय स्तर पर स्वायत्त प्रादेशिक सरकारों का अस्तित्व होता है। वास्तव में संघवाद शब्द 'सहअस्तित्व का द्योतक है लेकिन भूगोलविदों में इसके संकल्पनात्मक स्वरूप को लेकर पर्याप्त मतभेद है। ऐसी स्थिति में एक राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी को संघवाद भी मूलभावना से परिचित होना आवश्यक है,

इसीलिए इस इकाई में संघवाद के विविध पक्षों को विस्तार से प्रस्तुत किया जा रहा है। विद्यार्थियों के ज्ञान को संपुष्ट बनाने के उद्देश्य से यहाँ संघवाद के भौगोलिक आधारों की भी विस्तृत समीक्षा की जा रही है। एक संघात्मक राज्य के रूप में भारतीय शासन प्रणाली का मूल्यांकन भी इस इकाई में प्रस्तुत किया जायेगा जो विद्यार्थियों के संघात्मक शासन प्रणाली सम्बन्धी ज्ञान में अभिवृद्धि करेगा।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. संघवाद की मूलभावना से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
2. संघवाद की प्रकृति और उसकी वांछनीयता के आधारों को स्पष्ट करना।
3. संघीय शासन प्रणाली के विभिन्न पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
4. संघवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से विद्यार्थियों के राजनीतिक— भौगोलिक ज्ञान में अभिवृद्धि करना।
5. भारतीय संघवाद के मूल्यांकन के माध्यम से विद्यार्थियों को भारतीय संघीय शासन प्रणाली के प्रति अभिरुचि पैदा करना।

7.2 विषय प्रवेश

राज्य पद्धति और उसका शासन स्वरूप' राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय वस्तु है। किसी राज्य की राज्य पद्धति Polity उस राज्य की राजनीतिक शक्तियों के क्षेत्रीय एवं कार्यात्मक विभाजन का परिणाम होती है तथा वह राज्य के विभिन्न भागों की भौतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक—विधिक विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करती है। शासन' सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है। व्यवस्था के अभाव में कोई समाज समग्र इकाई नहीं बन सकता। शासन मूलतः संस्थाओं पर आधारित प्रक्रिया और व्यवस्था है जिसके माध्यम से राज्य के नागरिकों के आपसी सम्बन्धों एवं उनके बीच होने वाले विविध सम्बन्धों को समग्रता और अनुशासन बद्धता प्राप्त होती है। यह समग्रता और अनुशासन बद्धता ही किसी राज्य का राजनीतिक भू-दृश्य' विकसित करती है। सैद्धान्तिक स्तर पर लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में दो भिन्न—भिन्न प्रकार की शासन पद्धति और तदनुरूप दो अलग—अलग प्रकार की संवैधानिक व्यवस्थाओं का प्रचलन है। एक को एकात्मक राज्य व्यवस्था (Unitary Polity) तथा दूसरी को संघीय राज्य व्यवस्था (Federal Polity) की संज्ञा दी गई है। राजनीतिक शक्तियों का केन्द्रीकरण जब एक ही स्थान पर होता है, तो एकात्मक राज्य व्यवस्था का जन्म होता है ऐसे राज्य प्रायः छोटे आकार के होते हैं इस व्यवस्था में केन्द्रीय व्यवस्थापिका, केन्द्रीय कार्यपालिका और केन्द्रीय न्यायपालिका सर्वोच्च होती है जनसंख्या—संरचना, उसने ऐतिहासिक संस्कार, भाषा साहित्य, धर्म एवं समरस जीवनमूल्य राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ प्रायः एक जैसे रहते हैं वहाँ एकात्मक राज्य व्यवस्था सफल द्विस्तरीय केन्द्रीय एवं स्थानीय प्रणाली वाली एकात्मक राज्य व्यवस्था में अपकेन्द्रीय। (Centrifugal) शक्तियाँ, जो राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में मिलती हैं, जब प्रभावहीन हो जाती हैं, तब एकात्मक राज्य व्यवस्था दीर्घकालीन एवं स्थाई होती है। फ्रांस ऐसी केन्द्रीकृत ऐकिक राजनीतिक इकाई का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके विपरीत वृहत् आकार वाले राज्यों में अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक कारणों से अन्तर्क्षेत्रीय विविधताएँ अधिक मुखर होती हैं। वहाँ सम्पूर्ण राज्य को पूर्णतया केन्द्रीकृत सूत्र में बाँधे रखना कठिन कार्य होता है। ऐसे राज्यों में राजनीतिक प्रबन्धन ऐसी शासन व्यवस्था को जन्म देता है जो अनेकता में एकता का संचार कर सके और क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक असंतोष को "जन्म दिए बिना राज्य के केन्द्रीय मूल्यों और उद्देश्यों के प्रति नागरिकों को अधिक आस्थावान बना सके। कुशल राजनीतिक प्रबन्धन से उपजी इसी शासन व्यवस्था को संघीय राज्य व्यवस्था कहते हैं। यह त्रिजतीय प्रशासनिक व्यवस्था होती है जिसमें केन्द्रीय व स्थानीय स्तरों के बीच प्रांतीय स्वरूप स्वायत्त प्रादेशिक सरकारों का अस्तित्व होता है। इस सम्पूर्ण त्रिस्तरीय राजनीतिक व्यवस्था का अंतिम सन्दर्भ बिन्दु राष्ट्रीय संविधाना है जिसकी रचना राज्य अपनी ऐतिहासिक और साँस्कृतिक धरोहर और अपने भौगोलिक एवं सामाजिक पहल के अनुकूल है। यही संघवाद (federalism) है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए संघवाद वृहदाकार राज्यों की एक भूराजनीतिक आवश्यकता है क्योंकि यही एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था है जो क्षेत्रीय आधार पर सक्रिय अपकेन्द्रीय शक्तियों को प्रभावशाली ढंग से समायोजित कर सकती है। भारत, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं सं०रा०

अमेरिका इसके अद्भुत उदाहरण है।

7.3 संघवाद की संकल्पना (Concept of Federalism)

हिन्दी भाषा का 'संघवाद' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Federalism' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। 'Federal' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Foederi' (फोडेरिस) शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'League' अर्थात् 'संघ' होता है। 'संघवाद' शब्द सह-अस्तित्व का द्योतक है। इसका प्रयोग आन्तरिक विविधता युक्त उन राजनीतिक इकाइयों के लिए किया जाता है जो अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए विविधता के बावजूद भी संघीय एकता को स्वीकार करती हैं। संघवाद पर उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से ज्ञात होता है कि भूगोलविदों में संघवाद की परिभाषा और उसके संकल्पनात्मक स्वरूप को लेकर पर्याप्त मत भेद है। लेकिन इस तथ्य पर प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं। कि संघवाद की संकल्पना के अभ्युदय का इतिहास लगभग 235 वर्ष से अधिक पुराना है। इसका प्रारंभ 1787 ई० में तब हुआ जब संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की घोषणा हुई। तब से लेकर अब तक अनेक विद्वानों ने संघवाद और उसके संकल्पनात्मक स्वरूप पर अलग-अलग ढंग से अपने विचार प्रकट किए हैं।

के० डब्ल्यू० राबिन्सन (1961) के अनुसार – “संघात्मक व्यवस्था सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक सार्थक व्यवस्था है जो क्षेत्रीय विभिन्नताओं के अस्तित्व तथा संघटक क्षेत्रों के वैयक्तिक चरित्र कायम रखने की माँग को स्वीकार कर लेने पर आधारित है।”

के० सी० ह्वीयर (1963) के अनुसार – “संघीय संविधान में सरकार की शक्ति सम्पूर्ण देश की सरकार एवं देश के विभिन्न भागों की सरकार के बीच में इस प्रकार विभक्त होती है कि प्रत्येक सरकार अपने क्षेत्र में विधिक रूप से स्वतंत्र होती है।”

एन० जे० जी पाउण्डरात (1963) के अनुसार – “संघीय सिद्धान्त एक सरकारी उपाय है जिसके जरिए संघटक प्रदेशों को प्रशासन में कुछ हद तक स्वायत्तता देते हुए वाह्य एकता को बनाए रखा जाता है।”

डब्ल्यू० एच० राइकर (1964) के अनुसार – “किसी भी देश का संघीय संविधान पूर्व केन्द्रीयकरण की पक्षधर शक्तियों एवं अधिकतम क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग करने वाली क्षेत्रीय शक्तियों के बीच मोल-भाव के आधार पर निर्मित व्यवस्था है।... यह अभिकेन्द्री और अपकेन्द्री बलों के बीच एक समझौता है।”

एफ० न्यूमान (1965) के अनुसार – “संघवाद एक ऐसी युक्ति है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रतिस्पर्धी इकाइयों के द्वारा शक्ति के गलत उपयोग को नियंत्रित किया जाता है। इसमें नागरिक दोहरी न्याय प्रणाली—एक संघ सरकार के तथा दूसरा प्रान्तीय सरकार के अधीन रहता है।”

सी० डी० टार्लटन (1965) के अनुसार – “संघीय सम्बन्ध का वास्तविक अर्थ इस पद्धति में विभिन्नता युक्त क्षेत्रीय इकाइयों का समायोजन है।”

एच० जे० डी ब्लिज (1972) के अनुसार – “संघात्मक ढाँचे में एक केन्द्रीय सरकार होती है जो राज्य के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करती है तथा अनेक सामान्य विषय, जैसे— रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, संचार आदि को संचालित करती है तथा राज्य की विभिन्न इकाइयों अपना अस्तित्व रखती हैं, राजस्व वसूली करती हैं तथा अपने कानून बनाती हैं।”

आर० डीन्दिश्चित (2000) के अनुसार – संघीय व्यवस्था एक विशिष्ट प्रकार की संविदा (Contract) का परिणाम है। अन्य प्रकार की संविदा की भाँति इस राजनीतिक संविदा की शर्तें भी लिखित रूप में होनी अनिवार्य हैं। देश का संघीय संविधान यही लिखित शर्तनामा है जिसका अनुपालन केन्द्रीय और क्षेत्रीय सरकारों के लिए समान रूप से अनिवार्य है तथा जिसकी शर्तों को एक पक्षीय निर्णय से नहीं बदला जा सकता।... इस तरह संघीय व्यवस्था एक विशेष प्रकार की ऐतिहासिक—सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित “व्यवस्था” है। यह एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, न कि एक स्थूल अचलकृति विद्वानों के उपरोक्त विभिन्न मतों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघवाद की संकल्पना प्रादेशिक विविधताओं को संरक्षित तथा अभिकल्पित करने के साथ-साथ उसको अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग की सुविधा प्रदान करने वाली एक सफलतम विधि है। विविधता एवं असमानता की समस्या को हल करने के लिए यह संकल्पना एक सार्वभौम उत्तर है। टार्लटन (1965) ने संघवाद की संकल्पना को मुख्य सर्व रोग हर औषधि (Panacea) के रूप में स्वीकार किया है वास्तव में संघवाद ऐसी गतिशील भू-राजनीतिक संकल्पना है,

जिसके राजनीतिक प्रणाली सबसे अधिक लचीली होती है और बदलते हुए स्थानिक राजनीतिक सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तनशील होती है।

7.4 संघवाद की प्रकृति (Nature of Federalism)

उपलब्ध साहित्य के अनुशीलन से यह स्थिर होता है कि राजनीतिक भूगोल में संघवाद की प्रकृति पर बहुत गहराई से बहुत कुछ नहीं कहा गया है, परिणाम स्वरूप इसकी प्रकृति और स्वरूप के प्रति भ्रामक स्थिति बनी रहती है। आ0डी0 दीक्षित (2000) के अनुसार 1989 में भारत में मिली-जुली सरकारों द्वारा केन्द्र में सत्ता संभालने के बाद तथा सत्ता में क्षेत्रीय दलों की प्रमुख भागीदारी के परिणाम स्वरूप यह भ्रम और भी गहन हो गया है। फिर भी कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो संघवाद की प्रकृति के मूल में हैं और उनके विषय में राजनीतिक भूगोलविदों में मतैक्य है। संघवाद भी प्रकृति के प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं—

1. संघवाद एक ऐसी परिकल्पना है जिसके द्वारा राज्य राष्ट्र में समायोजित होते हैं अथवा राष्ट्र का समायोजन राज्य के साथ होता है
2. संघवाद तब विकसित होता है जब संघ के लिए उत्सुक राजनीतिक इकाइयों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सुरक्षात्मक हित समान होते हैं
3. राजनीतिक इकाइयाँ एक साथ रूप में तब मिलती हैं जब केन्द्राभिमुखी शक्तियाँ केन्द्रोपसारी शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं
4. केन्द्राभिमुखी और केन्द्रीय शक्तियों को संतुलित रखना संघवाद की मूल प्रकृति। एकता के स्थान पर सहअस्तित्व को सक्षम बनाना संघवाद का मूल स्वभाव है;
5. राज्य विचार संघीय व्यवस्था की जीवन-संजीवनी है। संघवाद का सृजन ही राज्य विचार को विकसित करने के लिए किया गया है;
6. संघवाद अत्यधिक क्षेत्रीय विविधता वाले राज्य के लिए केन्द्राभिमुख-सह-राज्य विचार का वाहक है;
7. संघवाद भी प्रकृति और संतुलन समय सापेक्ष होता है। यह गतिशील संकल्पना है;
8. प्रादेशिकता की भावना संघवाद के विकास का मूल है। यह भावना राजनीतिक इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने का काम करती है;
9. प्रायः उपनिवेश के विघटित क्षेत्रों पर विकसित संघवाद भौगोलिक रूप से अभिव्यक्त-शील नहीं होता। ऐसे संघ स्वेच्छाचारी संघवाद के पोषक होते हैं;
10. निरंतर विकास शील व्यवस्था संघवाद की स्वाभाविक प्रकृति है;
11. संघवाद में राजनीतिक इकाइयाँ पूर्ण एकता और पूर्ण पृथक्ता के बीच मध्यम मार्ग का अनुसरण करती हैं और इसका ही भू-राजनीतिक परिणाम होता है-संघ।

7.5 संघवाद की वांछनीयता के आधार (Bases of Desirability of federalism)

कुछ निश्चित भौगोलिक दशाएँ संघवाद की वांछनीयता के लिए आधार का सृजन करती हैं, यथा —

1. शक्ति नियंत्रण — अपनी भौगोलिक विविधताओं के कारण जब कोई एकात्मक राज्य केन्द्रोपसारी शक्तियों के प्रभाव में आकर विखराव व विखण्डन की स्थिति में आता है तो वह राज्य को एक राजनीतिक इकाई के रूप में बनाये रखने के लिए संघीय शासन प्रणाली की ओर उन्मुख होता है। अधिकांश मामलों में संघीय प्रणाली केन्द्रोपसारी शक्तियों को नियंत्रित करने में सक्षम सिद्ध होती है। डी ब्लिज (1972) के अनुसार संघीय ढाँचा केन्द्रोपसारी शक्तियों का सामना करने में समर्थ है। यह इस (संघीय) प्रणाली की उपयुक्तता एवं वांछनीयता का परिचायक है।
2. राज्य का आकार — प्रायः बड़े आकार वाले राज्यों में प्रादेशिक तौर पर समूहित विविधता व्याप्त रहती है संचार व्यवस्था अविकसित मिलती है, सम्पर्क स्थापित करने में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, परिणामतः

राज्य के विस्तृत भू-भागों पर प्रशासनिक नियंत्रण प्रभावहीन रहता है। ऐसे राज्यों के लिए संघीय ढाँचा ही अधिक वांछनीय होता है जो सम्पूर्ण राज्य में अपनी प्रान्तीय सरकारों के माध्यम से प्रभाव – पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकता है।

3. राज्य की आकृति – राज्य की आकृति भी संघवाद भी वांछनीयता का एक प्रमुख आधार भूत कारक है। यदि कोई एकात्मक राज्य 'लम्बाकार आकृति' वाला है। तो वह केन्द्रोपसारी शक्तियों का स्रोत हो सकता है जिससे राज्य के आन्तरिक प्रशासन के लिए समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। अतः केन्द्रोपसारी शक्तियों को निष्क्रिय करने के लिए तथा क्षेत्र को विखण्डन से बचाने के लिए संघीय ढाँचे के अन्तर्गत क्षेत्रीय स्वशासन ही एक मात्र उपाय होता है। इसी तरह यदि कोई राज्य अपखण्डित आकृति वाला है, जनसंख्या में एकरूपता नहीं है, धार्मिक, प्रजातीय तथा भाषाई विविधता है, तो ऐसी भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न केन्द्रोपसारी शक्तियों को प्रभावहीन करने के लिए संघीय शासन प्रणाली ही उपयुक्त एवं वांछनीय होती है। दीर्घ वृत्तीय आकृति वाले राज्यों के लिए भी संघीय ढाँचा सुप्रभाव्य एवं उपयुक्त होता है। ब्राजील, चिली देश इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।
4. अधिक क्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति – किसी राज्य में बहुक्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति भी केन्द्रोपसारी शक्तियों को बल प्रदान करती है और वे क्रोड क्षेत्र अपनी भाव प्रवणता एवं विशिष्ट जीवन पद्धति के कारण अपनी अस्मिता को क्षेत्रीय अभिव्यक्ति देने लगते हैं और राज्य की एकता के लिए संकट बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में संघीय प्रणाली ही उन्हें एक सामान्य तंत्र के अधीन लाकर एकता एवं अनेकता का सह-अस्तित्व कायम कर सकती है। डी ब्लिज (1972) के अनुसार— 'केवल संघीय संविधान द्वारा ही विभिन्नता वाले प्रदेशों को एक साथ जोड़े रखा जा सकता है।
5. विरल जनसंख्या वाले विशिष्ट जनसमूह – अल्प जनसंख्या और विशाल क्षेत्रों वाले राज्यों में अलग-अलग भौगोलिक परिस्थितियों में विकसित विशिष्ट जनसमूह भी राज्य की एकता एवं अखण्डता में बाधक हो सकते हैं, कारण कि प्रत्येक विशिष्ट जन समूह में क्षेत्रीय भावना बहुत प्रबल होती है। राबिन्सन (1961) के अनुसार—वृहत् क्षेत्र एवं छोटी जनसंख्या वाले राज्यों अथवा बड़ी जनसंख्या जिसका संकेन्द्रण विस्तीर्ण रूप से हुआ हो, के लिए संघीय प्रणाली स्पष्ट रूप से उपयुक्त है।

सारांशत –

संघवाद उन राज्यों के लिए भी वांछनीय है, जहाँ –

- विभिन्न प्रजातीय मूल एवं भाषा के लोग निवास करते हैं;
- जहाँ साँस्कृतिक एवं धार्मिक विविधताएं विद्यमान हों;
- जहाँ के निवासी अपने व्यक्तिगत क्षेत्र को गृहक्षेत्र (Home Land) के रूप में देखते हों, और उनकी भावनाएं उसके साथ गहराई से जुड़ी हों;
- जहाँ कठोर एवं प्रखर धार्मिक विभेद की स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हों।
- संघवाद उन राज्यों के लिए भी भौगोलिक आवश्यकता बन जाता है जिनका आधार धर्म निरपेक्षता होता है।

7.6 संघीय तंत्रों की अवधारणा (Concept of federal Systems)

सी० डी० टार्लटन ने सन् 1965 ई० में अपने शोध लेख (Symmetry and Asymmetry as Elements of Federation: A Theoretical speculation) में संघवाद की भौगोलिक प्रकृति के आधार पर संघवाद की दो अवधारणाओं का प्रतिपादन किया है

- (1) सममित अवधारणा
- (2) असममित अवधारणा

- (1) सममित अवधारणा (**Symmetrical Concept**)– सममित का अर्थ वे सामान्य विशेषताएँ हैं जिसमें सभी अंगीभूत इकाइयाँ समानरूप से हिस्सेदार होती हैं। टार्लटन (1965) के अनुसार— 'एक आदर्श सममित संघीय व्यवस्था वह होती है, जो वैसी राजनीतिक इकाइयों से निर्मित है जिसका क्षेत्र, जनसंख्या, आर्थिक विशेषताएँ, जलवायु

दशाएँ, सांस्कृतिक प्रारूप, सामाजिक समुदाय तथा राजनीतिक संगठन समान हो। सममित संघीय व्यवस्था के इस मॉडल में प्रत्येक राजनीतिक इकाई सम्पूर्ण संघीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को लघुरूप में प्रतिबिम्बित करती है। महत्वपूर्ण मुद्दों पर, राजनीतिक-तंत्र तथा संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में अंगीभूत इकाइयों के बीच कोई मतभेद नहीं होता।" टार्लटन की यह भी अवधारणात्मक मान्यता थी कि इस मॉडल में किसी खास सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक विशिष्टताओं का कोई अस्तित्व नहीं होता बल्कि केन्द्र व राज्य सरकारों के मध्य शक्ति का विभाजन प्रत्येक मामले में समान होता है।

- (2) असममित अवधारणा (**Asymmetrical Concept**)— असममित का अर्थ वे सामान्य विशेषताएँ जिसमें सभी अंगीभूत इकाइयाँ समान रूप से हिस्सेदार नहीं होती। टार्लटन (1965) के अनुसार— "असममित संघीय व्यवस्था वैसी राजनीतिक इकाइयों से निर्मित होती है जिनके हितों, प्रकृति, बनावट तथा समाज में विविधता हो। इस प्रकार की संघीय व्यवस्था विशिष्ट राज्यों द्वारा सृजित होती है जिसमें प्रत्येक की अलग-अलग समस्याएँ तथा प्रतिस्पर्धात्मक हित रहते हैं। इसमें केन्द्र- राज्य संघर्ष की संभावना रहती है तथा कभी-कभी समाधान कठिन हो जाता है।"

किसी अंगी भूत राजनीतिक इकाई का संघ से सम्बन्ध, जिसका वह सदस्य है, सममित है अथवा असममित है, इसका निर्णय निम्नलिखित पाँच विशेषताओं के प्रारूप से निर्योत होता है —

- (i) संघ की जातीय विशेषता (ii) संघ की सामाजिक विशेषता, (iii) संघ की साँस्कृतिक विशेषता, (iv) संघ की आर्थिक विशेषता, एवं संघ की राजनीतिक विशेषता ।

सारांशतः उन राज्यों में संघीय प्रणाली उपयुक्त होती है, जहाँ राज्य में समान (सममित) विशेषताएँ मिलती हैं। इसके विपरीत जहाँ पर पर्याप्त राजनीतिक शक्ति तथा प्रेरणा युक्त विविधता के तत्वों का अभाव होता है, वहाँ एकात्मक तथा केन्द्रीयकृत व्यवस्था बेहतर सिद्ध होती है।

7.7 संघ, परिसंघ तथा सम्मेल (federation, Confederation and Union)

संघ' और 'परिसंघ' दो ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग' राजनीतिक विश्लेषकों के द्वारा प्रायः पर्यायवाची के रूप में होता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं से जुड़े हुए ये दोनों शब्द व्युत्पत्ति में समानार्थी हैं और उनकी राजनीतिक संरचना भी एक ही प्रकार की है, लेकिन राजनीति तथा विधि के शास्त्रीय विमर्ष में दोनों की परिभाषाएँ सर्वथा भिन्न हैं।

7.7.1 संघ (Federation) —

के० सी० हवीयर (1963) के अनुसार — संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य का संविधान केन्द्र सरकार को उसके विनिर्दिष्ट कार्य क्षेत्र में राज्य के सभी भागों में स्वतंत्र प्रशासकीय निर्णय का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। इस व्यवस्था में राज्य के नागरिक एक साथ ही द्विस्तरीय राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया के प्रभाव क्षेत्र में रहते हैं, एक केन्द्रीय तथा दूसरा क्षेत्रीय (प्रान्तीय)। दोनों स्तर एक-दूसरे के कार्य क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकते। आर०डी० दीक्षित (2000) अनुसार — 'एक संघ में राज्य के लोगों एवं केन्द्र सरकार के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है जो केवल इनके गठन में ही भाग नहीं लेते, बल्कि अपने कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित विधि सम्मत सूत्रों को प्रादेशिक सरकार की मध्यस्थता के बिना केन्द्र सरकार के सम्मुख प्रस्तुत भी कर सकते हैं।

7.7.2 परिसंघ (Confederation) —

के० सी० हवीयर (1963) के अनुसार — 'परिसंघ स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों का एक ऐसा संघ है जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सत्ता विभिन्न क्षेत्रीय सत्ताओं पर निर्भर होती है। केन्द्रीय सत्ता ऐसा कोई निर्णय नहीं ले सकती जो प्रत्येक राजनीतिक इकाई को पूरी तरह स्वीकार्य न हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि परिसंघ के संविधान में क्षेत्रीय सरकारों पर केन्द्र सरकार की निर्भरता का सिद्धांत समाविष्ट होता है। परिसंघ में सभी प्रादेशिक या क्षेत्रीय सरकारें अपनी सम्प्रभुता बनाये रखती हैं। केन्द्रीय सत्ता उस प्रादेशिक इकाई पर इकाई छोटी हो या बड़ी अपना निर्णय आरोपित नहीं कर सकती। इसमें प्रभुता का विभाजन भी नहीं होता।

संक्षेप में 'संघ' और परिसंघ में मूलभूत अन्तर यह है कि— 'संघ (फेडरेशन) स्वायत्त क्षेत्रों के संयोग से निर्मित एक प्रभुता सम्पन्न और सन्निहित राष्ट्रीय इकाई है, जबकि 'परिसंघ' (फॉनफेडरेशन) स्वतंत्र राज्यों के

आपसी समझौते के आधार पर निर्मित अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक व्यवस्था है' (आर० डी० दीक्षित, 2000)।

7.7.3 सम्मेल (Cnion) –

सम्मेल एक ऐसी एकात्मक राजनीतिक इकाई है जो सीधे केन्द्र सरकार से शासित होती है। इस एकात्मक व्यवस्था में सारी शक्तियाँ केन्द्र सरकार में निहित होती हैं। एक तरह से वे केन्द्र सरकार की दया पर निर्भर रहती हैं, लेकिन संघीय व्यवस्था के सदस्य के रूप में वे केन्द्र प्रदत्त सारी सुविधाओं का लाभ उठाती हैं।

7.8. साहचर्य तथा संगठन (Alliance and Leage)

राजनीतिक भूगोल में संघवाद की संकल्पना से उपजे दो और शब्द हैं – 'साहचर्य' या मैत्री तथा संगठन"। इन दोनों शब्दों की व्याख्या भी आवश्यक है क्योंकि राजनीतिक भौगोलिक रूप में इनका भी पर्याप्त महत्व है।

7.8.1 साहचर्य (Alliance) –

'साहचर्य' एक क्षणिक समझौता है जो विभिन्न स्वतंत्र राज्य अपने कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करते हैं। ये प्रायः सैन्य, आर्थिक या राजनीतिक उद्देश्यों से अभिप्रेरित होते हैं"। इन समझौतों की शर्तें नियम, उपनियम सदस्य राज्यों की पारस्परिक सहमति के आधार पर तय किए जाते हैं। इनका कोई संवैधानिक अधिकार नहीं होता। जब उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है तो 'साहचर्य' भंग हो जाता है।

7.8.2 संगठन (Leage) –

'संगठन' अर्थात् 'लीग' विभिन्न राज्यों का एक स्थाई संघ रहता है जिसे कुछ स्वतंत्र राज्य मिलकर कुछ निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्मित करते हैं। सदस्य इकाइयों की पारस्परिक सहमति के आधार पर इसे कुछ संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त होने हैं, लेकिन इन अधिकारों का प्रयोग सदस्य इकाइयों की सर्वसम्मति से ही किया जा सकता है। इन संघों में कुछ समान नियम-परिनियम आपसी सहमति के आधार पर बना लिए जाते हैं जो कि सदस्य राज्यों द्वारा मान्य होते हैं। संयुक्त राष्ट्र, सार्क, आसियान, नाटो, जी आदि ऐसे ही संगठन हैं।

7.9. संघात्मक राज्यों के प्रकार (Types of federal States)

नई दुनिया (अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया) तथा उदीयमान विश्व (उपनिवेशों से आजाद हुए एशिया एवं अफ्रीका के देश) के संघीय व्यवस्था वाले राज्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि सभी संघीय राज्यों की स्थापना का आधार एवं उद्देश्य एक जैसा नहीं रहा है। कुछ राज्यों ने संघीय व्यवस्था का चयन स्वयं किया है; कुछ बहुसंख्यक जनता भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप विकसित हुए हैं, जबकि कुछ राज्यों पर यह व्यवस्था थोप दी गई है। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रख कर एच०जे०डी० ब्लिज (1972) ने संघात्मक राज्यों को चार प्रकारों में विभक्त किया है—

1. पारस्परिक हित पर आधारित संघात्मक राज्य (Federal States Based on Mutuall Interest) –

कुछ संघात्मक राज्यों में जातीय एवं भाषाई एकता होती है तो कुछ दूसरे राज्यों में क्षेत्रीय विविधता होती है। ये वैसे संघात्मक राज्य हैं जो एकात्मक राज्य के रूप में भी अच्छी तरह से कार्य कर सकते हैं, लेकिन इसके बावजूद भी उन्होंने अपने राज्यों में संघीय राज्य व्यवस्था लागू की। इसका मूल कारण था उनके पारस्परिक साइला हित; उदाहरण के लिये आस्ट्रेलिया जो मानवीय कारक के दृष्टिकोण से एक समरूप संघ है, परन्तु उसे प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में साम्राज्यवादी गतिविधियों एवं आर्थिक प्रभाव का भय है जिसकी वजह से वह एक जुट हुआ है। विस्तारशील संयुक्त राज्य अमेरिका के भय एवं दक्षिण से आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए दो भाषा-भाषी (फ्रेंच एवं अंग्रेजी) समुदायों वाला क्षेत्र होने के बावजूद भी कनाडा समझौते पर आधारित संघ के रूप में उभरा। सं० रा० अमेरिका, ब्राजील, स्विट्जरलैण्ड, द० अफ्रीकी संघ जैसे कुछ ऐसे संघीय राज्य हैं जो पारस्परिक हितों के आधार पर ही अस्तित्व में आये। अधिकांश संघ जिनमें पारस्परिक हित निहित हैं, स्थाई एवं शक्तिशाली हैं और वहाँ पूरे संघ में राज्य विचार फल-फूल रहा है।

2. आपसी समझौते पर आधारित संघात्मक राज्य (Federal States Based on Compromise) – जब कुछ क्षेत्रीय

राज्य एक वृहद् राज्य की स्थापना के लिए अपने कुछ व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर देते हैं और कुछ समझौतों के आधार पर एक संघीय राज्य को जन्म देते हैं, तो उन्हें इस श्रेणी में रखा जाता है। नाइजीरिया और भारत इस श्रेणी के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। नाइजीरियाई संघ में तीन प्रमुख समुदायों (द०पू० के योरुबा, द०पू० के इबो तथा द० के हौउसा) के बीच का समझौता अन्तर्निहित है। 1960 में जब यह स्वतंत्र हुआ, तब यह तीन संघीय प्रदेशों से युक्त था। लेकिन बाद के वर्षों में यहाँ जाति एवं भाषाई आधार पर गृह युद्ध की दशाएँ पैदा हो गई जिन्हें कठिनाई से शान्त किया गया। अंततः 1968 में नाइजीरिया के प्रमुख समुदायों के बीच समझौते के परिणाम स्वरूप नाइजीरिया को 12 प्रदेशों में विभक्त कर संघीय स्वरूप दिया गया। इसी तरह 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो यहाँ की दो दर्जन से अधिक पूर्ववर्ती ब्रिटिश प्रान्त तथा 562 विभिन्न आकार वाली अर्ध संप्रभु देशी रियासतें थीं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख समुदाय थे। उत्तर दक्षिण विवाद था। विभिन्न भाषा-भाषीय क्षेत्रीय वर्ग थे, जिनमें समन्वय एक अत्यधिक कठिन कार्य था। लेकिन कुशलता से समझौतों के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। देशी रियासतों को भारतीय संघ में शामिल किया गया और संवैधानिक आधार पर भारत को संघीय राज्य रूप में स्थापित किया गया। उल्लेखनीय है कि समझौता युक्त संघ कभी-कभी आंतरिक राजनीतिक अस्थिरता के शिकार हो जाते हैं तथा वहाँ क्षेत्रीयता व भाषा की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है और अलग प्रान्त की माँग उठने लगती है।

3. केन्द्रीयकृत संघात्मक राज्य (**Centralized federal states**) –

इस श्रेणी में वे संघात्मक राज्य आते हैं जिनका स्वरूप तो संघीय होता है, लेकिन संवैधानिक कार्यकलाप काफी केन्द्रीयकृत होते हैं। ऐसे संघात्मक राज्यों में प्रादेशिक विविधताएं काफी अधिक होती हैं और उन्हें एक जुट रखने के लिए एकता ऊपर से आरोपित करने की आवश्यकता पड़ती है। केन्द्रीय सत्ता को अतिरिक्त शक्ति देकर इस आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। पूर्व सोवियत संघ और यूगोस्लाविया इसके उत्तम उदाहरण हैं क्योंकि यहाँ संघीय इकाइयों को अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं का परित्याग कर वृहद् राष्ट्रीय हित के लिए एकीकृत होने को बाध्य किया गया था। राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार “भारत देखने में संघीय राज्य जैसा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में एकात्मक राज्य जैसा है, क्योंकि अत्यधिक केन्द्रीकरण ने इसकी संघीय संरचना को परिवर्तित कर दिया है”।

4. आरोपित संघात्मक राज्य (**Imposed federal states**) –

वे संघात्मक राज्य जिनका सृजन बहुसंख्यक समुदाय की अनुमति के बिना एवं उनकी इच्छा के विरुद्ध किसी शक्तिशाली अल्पसंख्यक समुदाय, औपनिवेशिक शक्ति या बाह्य अभिकर्ता द्वारा किया जाता है, तो वे आरोपित संघात्मक राज्य कहे जाते हैं। ऐसे संघात्मक राज्यों का जीवन छोटा होता है। उनमें काफी मात्रा में राजनीतिक अस्थिरता पाई जाती है। उनकी सफलता सदैव संदिग्ध रहती है और वे असफल हो जाते हैं। वेस्टइंडीज संघ (जो 1958 में सृजित हुआ और बाद में असफल होकर टूट गया), मध्य अफ्रीकी संघ (जो अपने जन्म के एक दशक के भीतर ही समाप्त हो गया), मलेशिया संघ, इथियोपिया और इरीट्रिया संघ (जिसका सृजन 1952 में किया गया और 1962 में समाप्त हो गया) आरोपित संघात्मक राज्यों के बेहतर उदाहरण हैं।

7.10 संघवाद की असफलता (**Failure of Federalism**)

पारस्परिक समझौते पर आधारित संघीय प्रणाली की स्वीकृति के कुछ प्रमुख कारण होते हैं, जैसे –

- (i) इसकी संरचना और प्रशासनिक वैधता;
- (ii) इसमें निहित क्षेत्रीय स्वायत्तता का सिद्धांत;
- (iii) पड़ोसी प्रान्तीय इकाइयों से परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध; और
- (iv) हितों और उद्देश्यों में पर्याप्त समानता।

एक आदर्श संघीय राज्य में संघीय सरकार के कुछ कर्तव्य भी होते हैं जैसे –

- (i) सभी प्रान्तीय राजनीतिक इकाइयों के साथ वह समभाव रखे;
- (ii) यथेष्ट आधार पर वित्तीय अनुदानों का निर्धारण एवं वितरण करे,
- (iii) आपात काल में सभी को यथोचित सहायता प्रदान करें;
- (iv) सभी प्रान्तीय इकाइयों का, उनके उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप विकास करे;
- (v) संसाधन की दृष्टि से विपक्ष इकाइयों को संसाधनों के सही आवंटन द्वारा सहायता प्रदान करें।

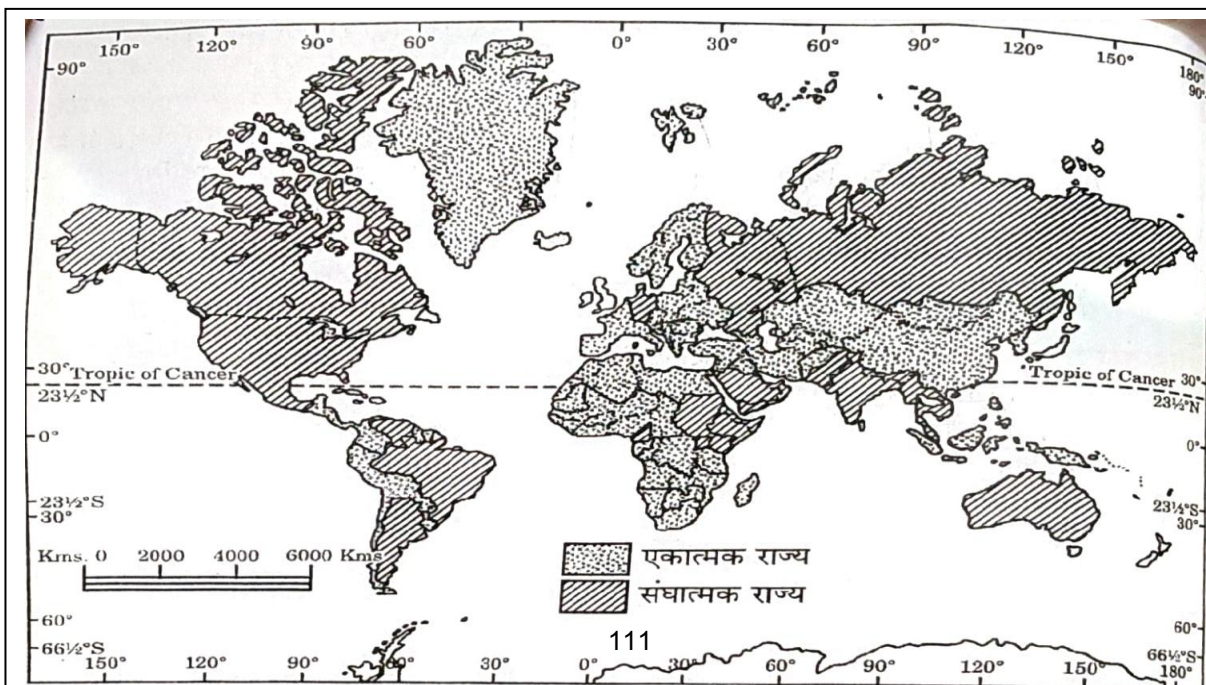
यदि कोई संघीय सरकार अपनी स्वीकृत के प्रमुख आधारों एवं कारणों से हटने लगती है, अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं करती है, तो प्रान्तीय राजनीतिक इकाइयों में केन्द्र के प्रति असंतोष उपजने लगता है और वे संघीय प्रणाली से अलग होने की भावना से प्रेरित होने लगती है। उनमें क्षेत्रीय अस्तित्व का भाव प्रबल होने लगता है और कालान्तर में वह संघीय राज्य बिखरने लगता है और अंततः टूटकर असफल हो जाता है।

संघीय राज्यों के बिखराव के कई उदाहरण वर्तमान समय में भी हमें देखने को मिले हैं। यूगोस्लावियाई संघ टूट चुका है। यहाँ संघीय शासन में सभी जातीय व धार्मिक समूहों का समुचित प्रतिनिधित्व न होने से, विभिन्न धार्मिक समूहों के क्षेत्रीय समूहन से संघ में बिखराव की स्थिति पैदा हुई। यही प्रक्रिया चेकोस्लोवाकिया के बिखराव में भी देखी जा सकती है। पूर्व सोवियत संघ भी संघीय असफलता का एक बेहतर उदाहरण है। यह विखंडित होकर 15 राज्यों में विभक्त हो गया। वेस्ट इंडीज संघ जो 1958 में सृजित हुआ, वह भी असफल होकर टूट गया। लीबिया-मिस्री संघ भी मिस्र में प्रबल जन विरोध के कारण टूट गया। संघात्मक से एकात्मक व्यवस्था स्वीकार करने वाले राज्यों में इथिओपिया (1962), लीबिया (1963), जाम्बिया व वेनेजुएला (1953) और इंडोनेशिया प्रमुख हैं।

सारांशतः संघ की अंगीभूत प्रादेशिक इकाइयों के बीच का सम्बन्ध संघवाद की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण होता है। जब उनके बीच कोई विवाद पैदा होता है तो वह संघीय प्रणाली को कमजोर बनाता है। एक और मौलिक कारक जो संघीय स्थिरता की प्राप्ति में सहायक होता है, वह है प्रादेशिक अस्मिता जिस पर संघ की अंगीभूत राजनीतिक इकाइयाँ आधारित होती है। किसी भी संघीय राज्य को बिखराव व असफलता से बचने के लिए उपरोक्त दो महत्वपूर्ण कारकों पर ध्यान देना व उन पर अमल करना आवश्यक है।

7.11 विश्व के संघीय राज्य (Federal States of the World)

एन0जे0जी0 पाउण्ड्स द्वारा प्रस्तुत सूची के अनुसार 1960 के प्रारंभिक दशक में कुल 16 संघात्मक राज्य थे जो विश्व के कुल राज्यों के 11.3 प्रतिशत भाग का निर्माण करते थे। महाद्वीपीय स्थिति के अनुसार इन संघीय राज्यों का विवरण निम्नवत् है (चित्र नं. 7.1)



चित्र 7.1 : विश्व के एकात्मक एवं संघात्मक राज्य

उत्तरी अमेरिका महाद्वीप— इस महाद्वीप में कुल तीन संघात्मक राज्य हैं— संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और मेक्सिको।

दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप — इस महाद्वीप में कुल दो संघात्मक राज्य हैं— ब्राजील एवं अर्जेन्टिना ।

यूरोप महाद्वीप — इस महाद्वीप में कुल चार संघात्मक राज्य हैं—पश्चिमी जर्मनी, यूगोस्लाविया, स्विट्जरलैंड तथा सोवियत संघ । उल्लेखनीय है कि पाउंड्स ने सोवियत संघ को एशिया महाद्वीप में सम्मिलित न कर यूरोप महाद्वीप में सम्मिलित किया है।

अफ्रीका महाद्वीप — इस महाद्वीप में कुल तीन संघात्मक राज्य हैं— नाइजीरिया, इथियोपिया, कांगो (जायरे)।

एशिया महाद्वीप — इस महाद्वीप में कुल तीन संघात्मक राज्य हैं— भारत, पाकिस्तान एवं मलेशिया ।

ओशिनिया — इस महाद्वीप में मात्र एक संघात्मक राज्य है — आस्ट्रेलियाई वर्तमान में संघात्मक राज्यों की संख्या मात्र 13 है, कारण कि तीन संघीय राज्यों (इथियोपिया— इरिट्रिया का 1962 में, सोवियत संघ और यूगोस्लाविया का 1992 में का विघटन हो चुका है। अब विश्व के कुल राज्यों का मात्र 6.63 प्रतिशतही हिस्सा हो संघात्मक राज्यों के पास है।

7.12 संघवाद के भौगोलिक आधार (Geographical Bases of Federalism)

राजनीतिक भूगोल में एक लम्बे अर्से तक संघवाद का विश्लेषण वैधानिक आधार पर ही किया जाता रहा है और इसे क्षेत्र विशेष की एक वैधानिक विशेषता ही माना जाता था, लेकिन संघवाद की उत्पत्ति, उसका विकास और कार्यप्रणाली तथा विभिन्न देशों की शासन प्रणालियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि संघीय प्रणाली मूलतः भौगोलिक आधारों पर ही विकसित हुई है। विभिन्न संघीय राजनीतिक इकाइयों की विशिष्ट पहचान भौगोलिक कारणों से ही संभव है। अर्थात् धरातलीय, जलवायविक जनांकिकीय तथा प्राकृतिक संसाधनों की विषमताएँ तथा इनसे उत्पन्न ऐतिहासिक—सामाजिक—राजनीतिक विशिष्टता के परिणाम स्वरूप ही पृथक—पृथक राजनीतिक इकाइयों को पृथक—पृथक विशिष्टता प्राप्त होती है। राजनीतिक भूगोल में इसीलिए संघीय व्यवस्था का भौगोलिक विश्लेषण तर्कसंगत माना जाता है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास डी0 हिवटलसी ने 1935 में प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने शोध प्रपत्र (Political Geography : A Complex Aspect of Geography) में विभिन्न राज्य प्रणालियों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि राज्य के विभिन्न कार्यों का भू-दृश्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। **वॉन वाल्डेन वर्ग** ने 1939 में अपनी पुस्तक 'Elements of Political Geography' में विभिन्न शासन प्रणालियों की उत्पत्ति विकास और अस्तित्व के सन्दर्भ में एक भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। वस्तुतः संघीय राज्य व्यवस्था भौगोलिक रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण योग्य होने के बावजूद भी किसी भी भूगोलविद् ने इसका क्रमबद्ध अध्ययन नहीं किया है। स्पेट (1944) पहले ऐसे भूगोल वेत्ता थे जिन्होंने संघवाद की विभिन्न विशेषताओं के लिए भौगोलिक कारकों को उत्तरदायी ठहराते हुए अपनी एक अवधारणा प्रस्तुत की।

ओ० एच० के० स्पेट की अवधारणा के अनुसार — स्पेट ने अपने शोध पत्र 'Geography and Federalism' (1944) में विभिन्न संघात्मक राज्यों का अध्ययन करके यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि "विस्तृत क्षेत्रफल और विरल जनसंख्या वाले राज्य संघीय होते हैं। अपनी परिकल्पना का आधार प्रस्तुत करते हुए स्पेट ने कहा— "एक विस्तृत भू-क्षेत्र में अनेक प्राकृतिक विषमताएँ होंगी। ये क्षेत्रीय विषमताएँ अलग—अलग क्षेत्रीय इकाइयों में ऐसे समाजों का विकास करेंगी, जो किसी सीमा तक. एक—दूसरे से अलग होंगे। इसलिए अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखने हेतु ये इकाइयाँ कभी भी एकात्मक शासन प्रणाली में नहीं बदलेगी, बल्कि वे एक संघीय प्रणाली में ही बदल जायेंगी।" स्पेट की यह अवधारणा यद्यपि कि बहुत से बड़े आकार वाले राज्यों के सन्दर्भ में सही दिखाई पड़ती है, जैसे कि भारत जहाँ 1947 ई. की से संघात्मक राज्य प्रणाली सफलता पूर्वक चल रही है। लेकिन इस अवधारणा का साधारणीकरण नहीं किया जा सकता, कारण कि स्विट्जरलैंड जो कि एक लघु आकार का देश है, लेकिन वहाँ संघीय शासन प्रणाली 1848 से सफलता पूर्वक चल रही है। आलोचकों के अनुसार इस अवधारणा से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि— संघवाद और विस्तृत क्षेत्रफल या विरल जनसंख्या में क्या भौगोलिक अन्तर्सम्बन्ध है इस सन्दर्भ में आलोचकों ने भारत का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि भारत क्षेत्रफल में भले ही विशाल है, लेकिन

यहाँ जनसंख्या अति संघन है जबकि स्पेट की अवधारणा के अनुसार क्षेत्रफल की विशालता के साथ जनसंख्या का विरल होना आवश्यक है। आलोचकों का यह तर्क वस्तुतः विल्कुल सही नहीं है, कारण कि कनाडा और आस्ट्रेलिया क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से दो वृहद् संघ हैं और जनसंख्या के दृष्टिकोण से दोनों लघुतर (विरल) भी हैं जो स्पेट भी अवधारणा के अनुरूप ही संघीय राज्य के रूप में विकसित हुए हैं।

डब्ल्यू० एम० राबिन्सन (1952) के अनुसार :- 'अगर किसी राज्य में राजनीतिक इकाइयाँ प्रादेशिक रूप से समूहित हैं, तो भौगोलिक दृष्टि से इसका परिणाम यह होगा कि समाज संघीय होगा। इस प्रकार राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत एक संघ प्रादेशिक रूप से समूहित अनेक समुदायों के अस्तित्व पर आधारित होता है।

के. डब्ल्यू० राबिन्सन (1961) के अनुसार :- 'संघीय व्यवस्था सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक अभिव्यक्तिशील है। यह प्रादेशिक विभिन्नताओं पर आधारित है तथा अंगीभूत इकाइयों को अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को कायम रखने के दावे को मान्यता प्रदान करता है।

राबिन्सन का यह कथन संघवाद के भौगोलिक आधारों को स्पष्ट करता है। वस्तुतः संघीय व्यवस्था में राज्य का आकार चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, अगर वहाँ धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधताएँ विद्यमान हैं, तथा सभी भाषाई-धार्मिक समुदायों के ऐतिहासिक अनुभव एवं उद्देश्य अलग-अलग हैं, तो संघवाद-वहाँ के लिए भौगोलिक आवश्यकता बन जाती है।

आर०डी० दीक्षित (1971) के अनुसार :- संघीय व्यवस्था भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक अभिव्यक्तिशील है दीक्षित के अनुसार इसके दो मुख्य कारण हैं- संघवाद की संरचना एवं प्रशासनिक वैधता संघवाद के संरचना के सन्दर्भ में दीक्षित का कहना है कि- 'इसकी संरचना में निहित क्षेत्रीय स्वायत्तता का सिद्धान्त और इसकी स्थानिकता 'और 'क्षेत्र मूलकता इस विश्वास पर आधारित है कि विभिन्न क्षेत्रीय सामाजिक इकाइयों अपनी स्थानिकता के कारण अनेक क्षेत्रीय इकाइयों से अनेक अर्थों में विशिष्ट हैं, इस तथ्य के उपरान्त भी कि अपनी अन्य पड़ोसी इकाइयों से उनके सम्बन्ध परस्पर मैत्रीपूर्ण हैं और उनके हितों और उद्देश्यों में पर्याप्त समानता है। दीक्षित के अनुसार 'संघीय व्यवस्था की भौगोलिक अभिव्यंजना का दूसरा कारण यह है कि प्रशासनिक वैधता की व्यवस्था में क्षेत्रीय स्वायत्तता के परिणाम स्वरूप क्षेत्रों को उनके संविधान द्वारा निर्धारित दायरे में विचार स्वातंत्र्य और राजनीतिक वरण की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, परिणाम स्वरूप उनकी क्षेत्रीय विविधता और स्थानिक अस्मिता को निरंतरता मिल जाती है।' राजनीतिक भूगोल: समसामयिक परिदृष्टि, 2000, पृ 130।

7.13 संघीय राज्यों भी स्थापना के प्रमुख भौगोलिक कारक

संघवाद के भौगोलिक आधारों के सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए विभिन्न भूगोल विदों के उपरोक्त विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघीय राज्यों के स्थापना में निम्नलिखित भौगोलिक कारकों का प्रमुख योगदान होता है-

- (1) राज्य का विशाल क्षेत्र स्थानिक तौर पर समूहित असमान जनसंख्या
- (2) अनूठी आकृति
- (3) राज्य में कई क्रोड क्षेत्रों भी उपस्थिति

1. राज्य का विशाल क्षेत्र और स्थानिक तौर पर समूहित असमान जनसंख्या :-

एक वृहद् आकार वाले राज्य में अनेक भौगोलिक विषमताएँ मिलती हैं, जिससे अलग-अलग भागों में (स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले जनसंख्या के कई समुदाय विकसित होते हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ संघवाद ही एकमात्र उपयुक्त प्रणाली रहती है क्योंकि इसमें विभिन्न समुदायों की क्षेत्रीय स्वायत्तता भी बनी रहती है और संघ का भी स्थायित्व बना रहता है। संभवतः इसीलिए

आए० एस० पारकर (1949) ने लिखा है- "अधिकतर आधुनिक संघ अपने प्रारंभिक काल में विशाल क्षेत्रों पर राजनीतिक संघ के रूप में उभरे जहाँ जनसंख्या के केन्द्र बिखरे हुए तथा संचार व्यवस्था अपेक्षाकृत कम विकसित थी। ऐसी भौगोलिक परिस्थितियों में" संघवाद एक आवश्यक राजनीतिक ढाँचा प्रतीत हुआ।

"कॉर्नेल (1961) का भी अभिमत है कि "संघवाद विशेष रूप से उन बड़े महाद्वीपीय राज्यों के राजनीतिक

एकीकरण के लिए उपयुक्त हो सकता है जिनकी जनसंख्या कम है तथा संचार माध्यम कम विकसित है।” जी० सॉवर (1969) ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि— “आज भी राज्य के आकार तथा उनके संचार माध्यमों की समर्थता को एकात्मक एवं संघात्मक राज्यतंत्र के बीच चयन के भौगोलिक कारक के रूप में देखा जाता है।”

2. अनूठी आकृति – भौगोलिक कारक के रूप में राज्य आकार की तुलना में उनकी आकृति उतनी महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी डी ब्लिज (1912) ने राज्य कुछ की आकृतियों को संघीय व्यवस्था के लिए उत्तरदायी बताया है। उनके अनुसार खंडित आकृति वाले एवं लम्बायित आकृति वाले राज्य संघीय व्यवस्था के लिए अधिक अनुकूल होते हैं कारण कि वे राज्य की कार्य प्रणाली को प्रभावित करते हैं। एशिया महाद्वीप का मलेशिया संघ जिसकी आकृति खंडित है, इसके दूसरे उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है।
3. राज्य में कई क्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति – जब कोई राज्य बहु क्रोड क्षेत्र वाला होता है तो सभी क्रोड क्षेत्रों की भाव-प्रवणता केन्द्रीय सभी शक्तियों को बल प्रदान करती है, तथा वे शक्तियों संगठित होने लगती हैं। इन शक्तियों पर तभी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है जब राज्य संघीय प्रणाली के अधीन हो और उसमें एकता एवं अनेकता का सह-अस्तित्व कायम रहे। भारत इसका एक अच्छा उदाहरण है भारत एक बहुक्रोड वाला राजा है और यहाँ संघीय प्रणाली केन्द्रोपसारी शक्तियों से उत्पन्न खिंचाव कारक से निपटने में काफी सिद्ध हुई है।

7.14. भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधार

भारत विश्व का सातवाँ बृहद्देश है। इसका कुल क्षेत्रफल 3287263 वर्ग कि०मी० है और जनसंख्या 140 करोड़ से अधिक है। इतने विशाल क्षेत्रफल तथा इतनी अधिक जनसंख्या में अनेक प्रकार की विविधताएँ मिलती हैं, जैसे आकार में विविधता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं अधिवास में भिन्नताएँ, भौतिक विविधता, जलवायु एवं मिट्टी में विविधता, भाषा, प्रजाति, धर्म एवं आर्थिक हितों में अन्तर, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं की भिन्नता आदि। ये विविधताएँ संघीय व्यवस्था को अपनाने का महत्वपूर्ण कारण है। डी० ब्लिज (1972) के अनुसार – भारत में संघीय विचार का उदय देश के स्वशासन की ओर बढ़ते कदम के साथ हुआ तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य एक संघीय संरचना, के रूप में, देश में मौजूद महान आन्तरिक विविधता की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में संविधान में संशोधन के द्वारा परिवर्तित हो गया” वास्तव में भारतीय सीमाओं के अर्न्तगत मौजूद प्रादेशिक रूप से समूहित विविधताएँ ही भारतीय संघवाद का भौगोलिक आधार हैं। भौगोलिक आधार के रूप में मौजूद भारतीय संघवाद की प्रादेशिक रूप से समूहित प्रमुख विविधताएँ निम्नलिखित हैं जो संघीय व्यवस्था के लिए आदर्श भौगोलिक आधार प्रस्तुत करती हैं –

- (1) स्वाकृतिक विविधता – भारत में चार महत्वपूर्ण भू-आकृतियाँ मिलती हैं— हिमालय पर्वत माला, मध्यवर्ती मैदान, प्रायद्वीपीय (दक्कन का) पठार तथा थार का रोगिस्तान। भौतिक अवरोधों एवं उच्चावच में अत्यधिक विविधता के कारण अनेक लघु भू-आकृतिक प्रदेशों का विकास हुआ है। यह प्राकृतिक विषमता की एक अपकेन्द्रीय बल है और इसे नियंत्रित करने के लिए संघीय व्यवस्था आवश्यक है।
- (2) भाषाई विविधता – 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 844 प्रमुख भाषा एवं बोलियाँ हैं। यह भाषाई विविधता भी प्रमुख अपकेन्द्रीय शक्ति है। अंधीय समन्वय बनाये रखने के लिए यहाँ त्रिभाषा सिद्धांत (हिन्दी-अंग्रेजी-क्षेत्रीय भाषा) को होकर किया गया है।
- (3) धार्मिक विविधता— भारत में विश्व की सर्वाधिक हिन्दू, सिक्ख एवं पारसी जनसंख्या तथा दूसरी वृहद् मुस्लिम जनसंख्या निवास करती है। इसने अलावा बौद्ध, इसाई एवं जैन धर्मावलंबी जनसमूह भी है। जनसंख्या का धार्मिक समूह भी प्रादेशिक रूप से अधिक प्रतिबिम्बित है, जैसे पंजाब में सिक्ख अधिक है, यह धार्मिक विविधा एक उपकेन्द्रीय बल हैं, जो भारतीय संघवाद की उत्पत्ति में सहायक है। नागालैंड एवं मिजोरम इसाई बहुल हैं, जबकि जम्मू-कश्मीर में मुस्लिम अधिक हैं।
- (4) सांस्कृतिक विविधता – भाषा एवं धर्म सामूहिक रूप में संस्कृति के जनक होते हैं। यही कारण है कि विशाल क्षेत्र एवं जनसंख्या वाले भारत में अनेक संस्कृतियाँ हैं। उत्तर भारत की संस्कृति दक्षिण भारत से भिन्न है, जबकि पूर्वोत्तर की संस्कृति मध्य भारत से भिन्न है। वस्तुतः यहाँ हर राज्य एक अलग संस्कृति का द्योतक

है। ऐसी भिन्न संस्कृतियों से समन्वित कर राज्य प्रणाली की स्थापना में संघीय पद्धति हो प्रमुख है।

(5) प्रजातीय भिन्नता – भारत में पांच प्रजाति के लोग का बसाव हैं।

ये प्रजातियाँ हैं— आस्ट्रेलायड, मंगोलायड, नार्डिक, अल्पनायड ये पाँच प्रजातियाँ लगभग 200 जनजातियों में विभक्त हैं जिनमें पर्याप्त विविधता है। सिक्किम में रहने वाले मंगोलायड की जीवन पद्धति अण्डमान-निकोबार द्वीप के लोगों से सर्वथा भिन्न है। यह प्रजातीय एवं जनजातीय विविधता व अपकेन्द्रीय बल है जो भारत राज्य में अस्थिरता उत्पन्न कर सकता है और इसीलिए भारत के संघीय स्वरूप के उद्भव में सहायक है।

(6) आर्थिक विषमता – आर्थिक विषमता भी संघीय व्यवस्था के लिए भौगोलिक आधार प्रस्तुत करती है। भारत में पर्याप्त आर्थिक विषमता मौजूद है। महाराष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था उद्योग प्रधान है, जबकि पंजाब हरित क्रांति पर आधारित अर्थ व्यवस्था वाला प्रान्त है। असम के चावल क्षेत्रों की तुलना राजस्थान भी शुष्क वातावरण में विकसित कृषि से नहीं की जा सकती। यही आर्थिक विषमता भावनात्मक विषमता पूर्व जन्म देती है एवं संघीय परिस्थितियों को अनिवार्य बना देती है।

(7) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भारत कभी भी एक देश नहीं था। यह सिर्फ भावनात्मक मान्यता थी जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अलग-अलग प्रशासन वाली 562 देशी रियासतों एवं 12 ब्रिटिश कालीन प्रान्तों को 1949 में। विलय द्वारा भारतीय संघ में आत्मसात किया। भारतीय संघ के रूप में इनका एकीकरण देश की अखण्डता व एकता के लिए आवश्यक था। बावजूद विविधता के यहाँ के जन-समूह में भारतीयता की भावना बहुत गहराई से विद्यमान है जो संघी व्यवस्था का आवश्यक तत्व है।

(8) अपकेन्द्रीय एवं अभिकेन्द्रीय शक्तियाँ – अपकेन्द्रीय एवं अभिकेन्द्रीय शक्तियाँ में इनका एकीकरण अगर भी भौगोलिक कारकों के अन्तर्गत आती है। अपकेन्द्रीय शक्तियाँ देश में क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद एवं अलगाववाद को बढ़ावा देती है, जिससे देश में अस्थिरता देश में उत्पन्न होती है। इसीलिए भारत में केन्द्रीयकृत संघवाद की व्यवस्था है जिससे इन शक्तियों पर नियंत्रण स्थापित हो सके अभिकेन्द्रीय शक्ति के रूप में भारत में विविधता में एकता एवं भारतीयता का सूत्र विद्यमान है जो भारतीय संघ को एक सूत्र में विद्यमान है जो भारतीय संघ को एक सूत्र में आबद्ध करने व उसे सुचारु रूप से संचालित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

7.15 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप यह भली भाँति समझ गए होंगे कि संघवाद की संकल्पना का विकास कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ और यह शासन प्रणाली किस प्रकार के राज्यों के लिए उपयुक्त होती है? वस्तुतः संघीय शासन प्रणाली की उन राज्यों के लिए वांछनीय होती है जहाँ प्रजातीय, धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक विविधताएं होती हैं। संघवाद उन राज्यों के लिए भी भौगोलिक आवश्यकता बन जाता है जिनका आधार धर्म निरपेक्षता होता है। संघवाद की असफलता के कारणों को भी आपने इस इकाई में भलीभाँति समझा तथा संघवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से आपने यह भी जाना कि किसी राज्य का प्रशासन उस राज्य के भौगोलिक परिवेश से किस हद तक प्रभावित होता है? भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से आपके भारत सम्बन्धी राजनीतिक – भौगोलिक ज्ञान में निश्चित रूप से अभिवृद्धि हुई होगी।

7.16 शब्द सूची

राज्य पद्धति	Polity	गृहक्षेत्र	Home Land
संघीय	Federal	संघ	Federation

एकात्मक	Unitary	परिसंघ	Confederation
संघवाद	Federalism	सम्मेल	Union
सर्वतमहर औषधि	Panacea	साहचर्य	Alliance
संगठन	League	आरोपित	Imposed

7.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

- संघीय राज्य की प्रमुख विशेषता है –
(अ) आर्थिक निर्भरता (ब) एकता का अभाव (स) अधिक जनसंख्या (द) अनेकता में एकता
- भारत की शासन व्यवस्था है—
(अ) संघात्मक (ब) एकात्मक (स) केन्द्रीकृत (द) सैनिक
- एकात्मक शासन प्रणाली उपयुक्त होती है—
(अ) बृहद् राज्यों हेतु (ब) छोटे राज्यों के लिए
(स) मध्यम आकार वाले राज्यों के लिए (द) संगठित राज्यों हेतु
- एकात्मक राज्यों में सर्वोच्च होती है –
(अ) केन्द्रीय न्यायपालिका (ब) केन्द्रीय कार्य पालिका
(स) केन्द्रीय व्यवस्थापिका (द) उपरोक्त सभी
- शासन की किस व्यवस्था में केन्द्रोन्मुखी एवं बाह्यमुखी शक्तियों का समायोजन होता है ?
(अ) एकात्मक (ब) संघात्मक (स) केन्द्रीकृत (द) अर्द्धसंघात्मक

आदर्शउत्तर –

1. (द); 2. (अ); 3. (ब); 4. (द); 5. (ब)

7.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

- De, Blij, H.J., (1992): 'Systematic Political Geography', Wiley New York.
- Dixit, R.D., (1971): 'Geography and federalism', A.A.A. Geographers, Vol. 61, pp. 97-115
- Neumann, F., (1965): 'On the Theory of Federal states', In (Ed.)
'Federalism Mature and Emergent', New York, C.u. Press.
- Parker, R.S., (1949): 'Australian Federation: The Influence of Economic Interest in Political Pressure! New Zealand, 4, pp-1-24 Pounds, N.J.G., (1963)- Political Geography, New York, Mc Graw-Hill Book Company

Riker, W- H-, (1964) % Federalism % Origins, Operation and significance Boston Little Braon and Co
Robinson, K.W., (1961)- "Sixty years of Federation in Australia, Geographical Review, Vol. 27, pp. 1-15.

Sawer, G-, (1969): 'Modern federalism, London, C. A. Watts. Tarlton, C. D., (1965): 'Symmetry and Asymmetry as Elements of federation: A Theoretical Speculation, Journal of Politics, Vol. 27, AP. 861-874.

Where, K.C., (1963): 'Federal Government, London, Oxford Univ. Press- Whittlesey. D., (1935): Political Geography: A Complete Aspect of Geography Education, 50: 293-298.

7.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. एकात्मक एवं संघात्मक राज्यों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. संघवाद के भौगोलिक आधार बताइए।
3. संक्षेप में संघात्मक राज्यों के प्रकार बताइए।
4. विश्व में वर्तमान में किस महादीप में कितने संघात्मक राज्य हैं।
5. भारत में कैसी शासन व्यवस्था है? समझाइए।

इकाई—08 भारत के राजनीतिक—भौगोलिक समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 प्रस्तावना
- 8.1 उद्देश्य
- 8.2 विषय प्रवेश
- 8.3 भारत : भौगोलिक स्थिति
- 8.4 भारत : आकार एवं आकृति
- 8.5 भारत : भू-राजनीतिक स्थिति
- 8.6 भारत: ऐतिहासिक विरासत
- 8.7 भारत : भौतिक परिवेश
- 8.8 भारत : सांस्कृतिक विरासत
- 8.9 राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्या
 - 8.9.1 कश्मीर समस्या
- 8.10 क्षेत्रीयतावाद की समस्या
 - 8.10.1 पूर्वोत्तर भारत में क्षेत्रवाद एवं विदेशी नागरिकों के घुसपैठ की समस्या
 - 8.10.2 पश्चिम बंगाल के हिमालय क्षेत्र में गोरखालैंड की समस्या
 - 8.10.3 मध्य जनजातीय क्षेत्रों में क्षेत्रवाद की समस्या
- 8.11 आतंकवाद एवं उग्रवाद की समस्या
 - 8.11.1 जम्मू—कश्मीर में सीमापार आतंकवाद
 - 8.11.2 पंजाब में सिक्ख आतंकवाद
 - 8.11.3 पूर्वोत्तर का उग्रवाद
- 8.12 नक्सलवाद की समस्या
- 8.13 सारांश
- 8.14 शब्दसूची
- 8.15 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 8.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 8.17 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

8.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम की यह आठवीं इकाई है। इसमें आप भारत की राजनीतिक — भौगोलिक समस्याओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे। भारत विश्व का एक ऐसा राज्य है जो अनेक उतार—चढ़ाव झेलते हुए अपने राजनीतिक—भौगोलिक व्यक्तित्व को एक विशिष्ट स्वरूप देने में सफल रहा है। लेकिन उस सफलता के पीछे समस्याओं का एक लम्बा इतिहास है। ये समस्यायें राजनीतिक भी हैं और भौगोलिक भी हैं। कुछ समस्यायें दोनों के समन्वय से जन्मी हैं। कश्मीर समस्या, क्षेत्रवाद की समस्या, आतंकवाद एवं उग्रवाद की समस्या तथा नक्सलवाद जैसी समस्याएँ आज भारत की शांति और सुरक्षा के लिए खतरा बन गई हैं। राजनीतिक भूगोल के

एक विद्यार्थी होने के नाते आपको इन समस्यायें के मूल में उपस्थित विभिन्न कारणों की खोज करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से इस इकाई में भारत की उक्त राजनीतिक-भौगोलिक समस्याओं का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. भारत के विशिष्ट भौगोलिक व्यक्तित्व से विद्यार्थियों को परिचित करना।
2. राजनीतिक-भौगोलिक समस्याओं के आधारी पक्षों को स्पष्ट करना।
3. कश्मीर समस्या का गहन विश्लेषण कर विद्यार्थियों को इस समस्या के खतरनाक पहलुओं से अवगत कराना।
4. क्षेत्रवाद जैसी समस्या के मूल कारणों को स्पष्ट कर विद्यार्थियों को ऐसी समस्याओं के प्रति सचेत करना।
5. नक्सलवाद की समस्या की जड़ में छिपे हुए आर्थिक असमानता के कारणों का विश्लेषण कर इस समस्या से मुक्ति के उपाय खोजना।

8.2 विषय प्रवेश

किसी भी राज्य के व्यक्तित्व निर्माण में उसके मानव समाज की ऐतिहासिक विरासत, भौगोलिक स्थिति, स्थिति का भू-राजनीतिक महत्व, आन्तरिक और समीपवर्ती भौम्याकृतिक स्वरूप, जलवायविक विशेषताएँ, प्राकृतिक वनस्पति और जीव जन्तु, खनिज सम्पदा, सांस्कृतिक चिंतन कर आधार, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की क्षमता, पड़ोसी देशों के साथ साहचर्य तथा अपने विरासत के प्रति आस्था आदि आधारी पक्ष माने गए हैं। विश्व के जिन राज्यों में उपरोक्त पक्ष मजबूत रहे हैं, वही राज्य विश्व के सन्दर्भ में 'एक शक्तिशाली कार्यात्मक इकाई' के रूप में स्थापित हुए हैं; और जिन राज्यों में उपरोक्त पक्ष कमजोर रहे हैं, उनके व्यक्तित्व निर्माण में अधिक उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। उत्कर्ष और अपकर्ष के बीच उपजी समस्याओं का अम्बार ऐसे राज्यों की नियति रही है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, तो यह विश्व का एक राज्य है, जो अनेक उतार-चढ़ाव झेलते हुए अपने राजनीतिक-भौगोलिक व्यक्तित्व को एक विशिष्ट स्वरूप देने में सफल रहा है। लेकिन उसकी इस सफलता के पीछे समस्याओं का लम्बा इतिहास है। ये समस्यायें राजनीतिक भी हैं और भौगोलिक भी हैं; कुछ समस्यायें दोनों के समन्वय से उपजी हैं। अतः भारत की विभिन्न राजनीतिक-भौगोलिक समस्याओं की पहचान तथा उनके मूल में विभिन्न कारणों की खोज करने हेतु उन आधारी पक्षों का विश्लेषण आवश्यक है जो उसके वर्तमान व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक रहे हैं।

8.3 भारत : भौगोलिक स्थिति

भू-मंडल के उत्तरी एवं पूर्वी गोलार्द्धों में भारत का भौतिक विस्तार 8°4' उ० अक्षांश से 37°6' उत्तरी अक्षांश तथा 68°7' पूर्वी देशान्तर से 97°25' पूर्वी देशान्तर तक है। भारत के द० भूभाग का वास्तविक विस्तार निकोबार दीप समूह के अन्तिम द० द्वीप 6°45' उ० अक्षांश तक पाया जाता है। इस सुदूर द० स्थल को इन्दिरा प्वाइंट (पिगमैलियन प्वाइंट) के नाम से जाना जाता है। दलदलों, रेगिस्तानों, मैदानों, रुक्ष पर्वतों, हिमाच्छादित क्षेत्रों एवं घने जंगलों से गुजरने वाली इसकी स्थलीय सीमा की लम्बाई 15200 किमी० है। मुख्य स्थल खंड के सहारे इसकी सागरीय सीमा की लम्बाई 6100 किमी० है। द्वीपीय तट रेखाओं को सम्मिलित करने पर यह लम्बाई 7516.6 किमी हो जाती है। दक्षिण में पाक जलडमरू मध्य द्वारा श्रीलंका से पृथक किए जाने वाले भारत के पश्चिम में पाकिस्तान व अफगानिस्तान व उत्तर में चीन, नेपाल और भूटान तथा पूर्व में म्यांमार तथा बांग्लादेश राज्यों भी स्थिति हैं। पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर तथा दक्षिण में हिन्द महासागर की उपस्थिति के कारण भारत एक विशाल जलराशि पर अपना प्रभुत्व बनाए हुए है।

8.4 भारत : आकार एवं आकृति

भारत का क्षेत्रीय विस्तार, आकार एवं आकृति अपने पड़ोसी राज्यों की तुलना में सर्वोच्चता का प्रतीक है।

2011 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार भारत का क्षेत्रीय विस्तार 3287261.71 वर्ग किमी क्षेत्र पर है जो भूमण्डल के कुल क्षेत्रफल का 0.57 प्रतिशत और स्थल मण्डल के क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से रूस, चीन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील और आस्ट्रेलिया के बाद भारत विश्व का सातवाँ बृहदतम राज्य है। राज्य की उस विशालता ने यहाँ अनेक भौतिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं को जन्म दिया है।

भारतीय राज्य का उत्तर-दक्षिण विस्तार 3214 किमी० तथा पूर्व-पश्चिम फैलाव 2933 किमी० है। दोनों के बीच मात्र 281 किमी० का अन्तर है। विस्तार के इस दृष्टि से भारत की आकृति लगभग चतुर्भुजाकार है। लेकिन यदि कर्करेखा (जो भारत के बीचोबीच गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा एवं मिजोरम राज्यों से होकर गुजरती है) को आधार मानकर एवं सियाचिन को उत्तरी एवं कुमारी अंतरीप को दक्षिणी शीर्ष मानते हुए दो त्रिभुजों की रचना की जाय तो इससे भारत भी आकृति का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

8.5 भारत : भू-राजनीतिक स्थिति

पड़ोसी देशों के सन्दर्भ में भारत की भू-राजनीतिक स्थिति केन्द्रीय है। पश्चिम में पाकिस्तान सहित मध्य-पूर्वी एशियाई देश तथा पूर्वी अफ्रीका, उत्तर में चीन अधिकृत तिब्बत सहित चीन, नेपाल और भूटान, पूर्व में म्यांमार और बंगाल देश सहित एशियाई देश, तथा हिन्द महासागर सहित इसके द० छोर पर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अन्टार्कटिक महादीप का विस्तार है। स्पष्ट है कि अपनी इस विशिष्ट भूराजनीतिक स्थिति के कारण भारत अपनी नियंत्रक स्थिति (Commanding Position) बनाए हुए है।

वैश्विक सन्दर्भ में भारत की भू-राजनीतिक स्थिति प्रभावकारी है। विश्व का सर्वाधिक विस्तृत भूखण्ड यूरेशिया भारत की पहुंच में है। नई दुनिया के सन्दर्भ में भी भारत की भू-राजनीतिक स्थिति अनुकूल है। हिन्द महासागर के माध्यम से यह पूर्व में प्रशान्त महासागर और पश्चिम में अटलांटिक महासागर से सम्बद्ध है। स्वेजमार्ग खुल जाने के बाद इसकी भू-राजनीतिक स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जीवन रेखा के निकट रही है। विश्व के प्रमुख पूर्वी-पश्चिमी समुद्री व्यापारिक मार्ग भारत के दक्षिण से होकर गुजरते हैं। इस दृष्टि से भारत की स्थिति जापान, चीन से होकर यूरोप जाने वाले समुद्री मार्ग के उपर है। अटलांटिक महासागर और प्रशान्त महासागर की तुलना में हिन्द महासागर की भू-राजनीतिक व भू-सामरिक महत्ता अधिक है। भारत भी स्थिति इस सन्दर्भ में भी प्रभावशाली है।

भू-राजनीतिक दृष्टि से भारत की कुछ सीमाएं बेहद संवेदनशील हैं। चीन की विस्तारवादी एवं आक्रामक मनोवृत्ति के कारण 3917 कि०मी० भारत-चीन सीमाएँ -चीन-भारत युद्ध (1962) के कारण सजीव हो गई है, जबकि भारत म्यांमार (1458 किमी०), नेपाल (1752 किमी०) एवं भूटान (587 कि०मी०) तथा अफगानिस्तान (80 कि०मी०) के साथ लगने वाली सीमाएं इन देशों के साथ अच्छे सम्बन्धों के कारण लगभग शांतिपूर्ण रही है। भारत-पाकिस्तान (3310 कि०मी०) भारत-बंगलादेश (4096 कि०मी०) सीमा के सहारे अनवरत तनाव बना रहता है, विशेषकर सियाचिन क्षेत्र में एवं जम्मू-कश्मीर की नियंत्रण रेखा के सहारे स्थिति विस्फोटक बनी रहती है। पाकिस्तान समर्थित छद्म युद्ध और आतंकवाद यहाँ की सबसे बड़ी भू-राजनीतिक समस्या है।

भू-राजनीतिक दृष्टि से भारत की आकृति एवं आदर्श संहत आकृति नहीं है। अण्डमान-निकोबार तथा लक्षद्वीप समूह के कारण आकृति में विखण्डन है। द्वीपीय क्षेत्र मुख्य भूमि से काफी दूर स्थित हैं। भारत की विचित्र आकृति दो और बड़ी भू-राजनीतिक कमियों को उजागर करती है— (अ) भारत के पूर्वोत्तर के सात प्रान्त नेपाल एवं बांग्लादेश के बीच के केवल 24 किमी चौड़े स्थलीय गलियारे द्वारा राज्य के क्षेत्र भाग से जुड़े हैं ; (ब) पर्वतीय क्षेत्र भू-आकृति वाले जम्मू और कश्मीर क्षेत्र मात्र एक सड़क मार्ग से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और उच्च पर्वत श्रेणियों द्वारा क्षेत्र भारत से पृथक् से दिखाई पड़ते हैं। विरोधी पाकिस्तान और शक्तिशाली चीन का घेरा इस क्षेत्र की भू-राजनीतिक स्थिति को कमजोर बनाता है।

भू-राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत चीन को छोड़कर कमजोर एवं गरीब पड़ोसियों से घिरा है, इस कारण इसके चतुर्दिक् विभिन्न महाशक्तियों के लिप्त होने की संभावनाएं प्रबल रहती है। सोवियत के विखंडन के बाद चीन के साथ सापेक्षिक स्थिति होने के कारण इसकी भू-राजनीतिक स्थिति महत्वपूर्ण हो गई है जिसकी वजह से अमेरिका व रूस दोनों ही इसे अपने खेमों में लेने को उत्सुक रहते हैं।

8.6 भारत : ऐतिहासिक विरासत

भारत की राजनीतिक – भौगोलिक समस्याओं के मूल को समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक विरासत को समझना आवश्यक है, कारण ऐतिहासिक विरासत ही आर्थिक समाजिक मूल्यों को निर्धारित करने में अहम् भूमिका निभाती है। पूर्वजों की उपलब्धियाँ सामाजिक-आर्थिक उन्नयन में निर्देशिक का काम करती हैं तथा अनुभावित आधारों पर समस्याओं के समाधान में सहायक होती हैं। इससे सांस्कृतिक परिधि दीर्घाकार होती है।

भारत के राष्ट्रीय स्वरूप के निर्माण में इसका ऐतिहासिक पक्ष विविधता पूर्ण रहा है। यहाँ का इतिहास अत्यधिक विशद एवं जटिल है। अतिप्राचीन काल में आर्य आक्रमणकारियों ने द्रविड़ लोगों को दक्षिण में धकेल दिया तथा उत्तर को एक नवीन संस्कृति प्रदान की जिसका वर्णन वेदों में मिलता है। ईसापूर्व 326 में अलेक्जेंडर ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय भारत चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन में एकता बद्ध था। मौर्यशासन के पश्चात गुप्त साम्राज्य का विकास हुआ जो भारत का स्वर्णयुग माना जाता है। गुप्त साम्राज्य के पश्चात यहाँ राजपूत राजाओं का आधिपत्य हुआ जिनकी छोटी-छोटी रियासतें थीं और वे परस्पर संघर्षरत रहती थी। गौरी और खिलजी जैसे विदेशी आक्रान्ता इसी काल में भारत आए और देश को लूटा। 1526 ई० में बाबर ने यहाँ मुगल साम्राज्य की नींव डाली। यह भारतीय इतिहास में एक लम्बा अध्याय है जिसका विस्तार लगभग दो शताब्दियों में है। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर शाहजहाँ, औरंगजेब इस काल के प्रमुख मुगल शासक हुए जिन्होंने देश के अधिकांश क्षेत्रों पर अधिकार करके इसे एक कार्यात्मक इकाई के रूप में विकसित करने का प्रयास किया। फिर भी इस समय भी अनेक छोटी-छोटी राजपूत रियासतें अस्तित्व में थी। इस काल में ही हिन्दू मुस्लिम मतभेद की नींव पड़ गई थी। मुगल साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात 18वीं सदी के अंत तक अभी ब्रिटिश शासन का विस्तार यहाँ धीरे-धीरे होने लगा था और 19 वीं शताब्दी के अंत तक लगभग सम्पूर्ण भारत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आ गया था। प्रशासन की दृष्टि से उन्होंने यहाँ अनेक सुधार किए लेकिन उनका एक मात्र उद्देश्य यहाँ का शोषण ही था। ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए यहाँ 1857 में आंदोलन की शुरुवात हुई। धीरे-धीरे ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध में यहाँ के निवासियों में एकता की भावना विकसित होने लगी और अंततः 15 अगस्त, 1947 को भारत एक पूर्ण राज्य इकाई के रूप में स्वतंत्र हुआ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के सामने अनेक राजनीतिक-भौगोलिक समस्याओं का अभ्युदय हुआ जिनमें प्रमुख थी – देशी रियासतों का एकीकरण, सीमाओं पर राजनीतिक स्थिरता, राज्यों का पुनर्गठन, आर्थिक विकास और देश को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करना और इसके लिए भारत ने संघीय शासन प्रणाली स्वीकार की।

8.7 भारत : भौतिक परिवेश

भारत के राजनीतिक भूगोल को प्रभावित करने में यहाँ के भौतिक परिवेश (भौमिकीय संरचना, भौम्याकृतिक स्वरूप, जलवायु, मृदाएं एवं प्राकृतिक वनस्पति) का अहम् योगदान रहा है। भौतिक परिवेश की विषमताओं के कारण ही यहाँ अनेक राज्य इकाइयाँ, भाषाएँ, धर्म, जातीय समूह आदि विकसित हुए हैं। विषमता-अनेकता उत्पन्न करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

भौमिकीय संरचना के दृष्टिकोण से भारत को भूगर्भिक घटनाओं का अजायब घर (Geological Museum) कहा जाता है, जहाँ आदि काल से लेकर नवीन काल तक और आग्नेय से लेकर अवसादी तथा कार्यांतरित शैले पाई जाती है तथा विविध विवर्तनिक घटनाओं से प्रभावित केली डोनियन वलित पर्वतों से लेकर तृतीय कल्प में निर्मित विशाल हिमालय विश्व के पर्वतों का सिरताज है। आदि चट्टानों में पोषित धात्विक और गैरधात्विक खनिज इसकी भूगर्भिक रचना की गुणवत्ता के प्रमाण हैं।

भारत भूमि की रचना आदि गोण्डवाना के अवशेष से प्रायद्वीपीय, और तृतीय युग की महान विवर्तनिक घटनाओं से प्रायदीप के उत्तरी अग्र भाग में स्थित वलित श्रेणियों तथा अवसाद निक्षेपित मैदान के रूप में हुई है। प्राचीन युग का प्रायद्वीपीय भाग अपरदित होकर समतल पठार में बदल गया है जहाँ पश्चिमी घाट, पूर्वीघाट और मध्य की विभक्त श्रेणियाँ उच्चावच को ढाल प्रदान करती है। उत्तर का मैदान जलोढ़ के निक्षेपण से समतल से विकसित हुआ है जिसने पश्चिमी भाग में वायूढ़ निक्षेप का विस्तार है। मैदान के उत्तरी छोर पर कश्मीर में लेकर अरुणचल प्रदेश, असम, नागालैंड और मणिपुर तक हिमालय भी वलित पर्वतीय श्रेणियों विस्तार है। इस विविधतापूर्ण भौम्याकृतिक स्वरूप का गहरा प्रभाव यहाँ की भाषा, जातीय समूह, जनसमुदाय, संस्कृति एवं मानवसमाज पर देखा

जा सकता है। उद्गम के दृष्टि कोण से यहाँ का अपवाह तंत्र प्रमुखतः दो भागों में बटा हुआ है—हिमालय जनित अपवाह तंत्र और प्रायद्वीपीय भारत का अपवाह तंत्र। इन्ही अपवाह तंत्र की नदी—घाटियों में विभिन्न प्रकार की सभ्यताएं एवं संस्कृतियां जन्मी और पली—बढ़ीं। इसका जलवायविक स्वभाव उपोष्ण कटिबंधीय है। पूर्व से परिचय विस्तारित हिमालय के जलवायु अवरोधक होने (Meteorological Barriers) के कारण भारत की जलवायु स्पष्टतः उष्ण कटिबंधीय मानसूनी जलवायु है जिसमें वर्ष के केवल चार माह में वर्षा प्राप्त होती है और आठ माह शुष्क रहते हैं। वर्षा का वितरण भी आसमान है जो आर्थिक विषमता को जन्म देता है और आर्थिक सामाजिक प्रक्रिया को निर्धारित करता है। मूलभूत चट्टानों के आधार पर जन्मी मृदाएं भी विविध प्रकार की हैं। छोटी—छोटी घासों से लेकर विशाल वृक्षों का आवरण यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति की विशेषता है।

भौतिक परिवेश की इन तमाम विविधताओं ने आर्थिक प्रतिरूप के साथ — साथ परम्परागत रूप से सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिरूप को भी प्रभावित किया है। भाषायी और जनजातीय प्रतिरूप उच्चावच्य विषमताओं का परिणाम माना जा सकता है। हिमालय पर्वतीय क्षेत्र ने भारत को एक भौगोलिक इकाई बनाने में यदि सहायता की है तो यहाँ के निवासी उच्च पर्वतीय परिवेश के कारण शेष भारत स्वयं को कटा हुआ अनुभव भी करते हैं। चारों ओर से घिरी कश्मीर घाटी आज भी भारत के क्षेत्र से अपना अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध नहीं बना पाई, परिणामतः यहाँ अनेक राजनीतिक—भौगोलिक समस्याओं ने जन्म ले लिया है। स्वायत्तता की भावना यहाँ विकसित हो रही है। यही स्थिति भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी देखने को मिलती है

8.8 भारत : साँस्कृतिक विरासत

भारत की साँस्कृतिक विरासत बहुवर्णीय विशेषताओं से युक्त है। प्राचीन काल से ही यहाँ विभिन्न प्रजातीय, साँस्कृतिक, नृजातीय (ethnic) एवं धार्मिक समूहों का मिलन होता रहा है। सबसे पुराने निवासियों में प्रोटो ऑस्ट्रेलायड थे जिनके बाद द्रविड़, आर्य, शक, हूण, यवन, किरात, तुर्क, अफगान, ईरानी और यूरोपियन भारत में आये। यही कारण है कि सहिष्णुता, अहिंसा एवं विश्वबन्धुत्व के मूल दर्शन पर आधारित भारतीय संस्कृति में विभिन्न धर्मों एवं साँस्कृतिक विचारों का सम्मिश्रण पाया जाता है। यहाँ अण्डमान—निकोबार द्वीप समूह के नेग्रिटो और नीग्रायड, मध्यभारत के मुण्डा, कोट, संथाल (प्रोटो आस्ट्रेलायड), उत्तरी—पश्चिमी क्षेत्र के भूमध्य सागरीय तमिलनाडु के दिनारिक, उत्तरी मैदान के नार्डिक और उत्तरी पहाड़ियों के मंगोलायड प्रजातियों के लोग एक साथ निवास करते हैं जिनकी पोषाक, भोजन की आदतें, — रहन—सहन के तरीके, भाषाएं तथा उपासना पद्धतियाँ अलग—अलग हैं। इनकी उपासना पद्धतियों में जीववाद (animism), रहस्यवाद (mysticism), एकेश्वरवाद (monism) द्वैतवाद (dualism), बहुत्ववाद (pluralism) एवं नास्तिकवाद (atheism) तक का समावेश मिलता है, जिसका आभास हिन्दू (80.46%), मुस्लिम (13.43%), ईसाई (2.34%), बौद्ध (0.77%), सिक्ख (1.87%), जैन (0.41%), यहूदी और पारसी धर्मावलंबियों के रूप में देखा जाता है (आर०सी० तिवारी, 2017)। देश में विभिन्न प्रकार की बोलियों एवं भाषाओं का भी प्रयोग किया जाता है जिनकी संख्या 1951 की जनगणना के अनुसार 844 है। धार्मिक, भाषाई, नृजातीय तथा साँस्कृतिक विविधता के ये अनेक तत्व भारत की संघीय व्यवस्था के लिए एक चुनौती हैं। राजनीतिक — भौगोलिक रूप से इन भाषाई, धार्मिक एवं नृजातीय समूहों का क्षेत्रीय रूप में होना भारत की संघीय व्यवस्था के लिए प्रतिकूल है क्योंकि ये धर्म, भाषा एवं जाति के नाम पर अपनी पहचान सुरक्षित रखने हेतु स्वायत्तता की माँग करते रहते हैं। पंजाब में (खालिस्तान, पश्चिम उत्तर प्रदेश में जाटलैंड, पूर्वोत्तर भारत में ईसाइयों का विरोध, मध्यभारत में नक्सलवाद की भावनाएं भारतीय संघ के लिए खतरनाक हैं। मुस्लिम धर्म के लोग यहाँ अब भी पृथक्तावादी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। कश्मीर में विद्रोह का स्तर एक सीमा तक धर्म की ही देन है। भारत की वर्तमान राजनीतिक — भौगोलिक परिस्थितियों में भाषा आज भी एक पृथक्तावादी तत्व के रूप में मौजूद है। नेपाली, गोरखा की जैसे भाषाई समूह अपनी भाषाओं को समवर्ती सूची में शामिल करने का प्रयास कर रहे हैं।

सारांशतः भारत की उक्त भौगोलिक, भूराजनीतिक, ऐतिहासिक एवं साँस्कृतिक विविधताओं के कारण, साथ ही राजनीतिक विकेंद्रीकरण एवं उत्तरोत्तर बढ़ते अन्तर्क्षेत्रीय आर्थिक असंतुलन की वजह से अनेक राजनीतिक भौगोलिक समस्याओं का जन्म हुआ है। इन समस्याओं को निम्नलिखित—चार वर्गों में बाँटा जा सकता है —

1. राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्या
2. क्षेत्रीयतावाद की समस्या
3. आतंकवाद एवं उग्रवाद की समस्या
4. नक्सलवाद की समस्या

8.9 राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्या

भारतीय जनसमुदाय और उनके क्षेत्रीय सह अस्तित्व का राजनीतिक – भौगोलिक मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट होता है कि अनेक भौतिक-सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद भी भारतीय मानव समाज में भारतीय राज्य अवधारणा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में सदैव विद्यमान रही है। इस अवधारणा को सतत बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यहाँ संघीय शासन प्रणाली स्वीकार की गई और संघ में शामिल विभिन्न राजनीतिक इकाइयों की क्षेत्रीय आकांक्षा को एक सीमा तक संतुष्ट बनाए रखने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय और कुछ क्षेत्रों को संविधान में विशिष्ट दर्जा देने की व्यवस्था की गई। विभिन्न क्षेत्रों और समूहों के प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण तथा प्राथमिकताएँ भी प्रदान की गई और भारतीय करण को प्रोत्साहित करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से विकास कार्यों को आगे बढ़ाया गया। लेकिन अदृश्य भारतीयतावाद के बाहर भी अनेक ऐसे विशिष्टतापूर्ण क्षेत्रीय समूह हैं जो वर्तमान समय में राष्ट्रीय एकीकरण एवं उसकी सुरक्षा के लिए समस्या के रूप में हैं। कश्मीर समस्या इनमें सर्वप्रमुख है।

8.9.1 कश्मीर समस्या (Kashmir Problem) –

राष्ट्रीय एकीकरण एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से कश्मीर समस्या' भारत की सर्वाधिक जटिल एवं पुरानी राजनैतिक-भौगोलिक समस्या है जिसका निराकरण आज तक संभव नहीं हुआ है – भारत के उत्तरी भाग में स्थित जम्मू-कश्मीर का एक केन्द्र शासित प्रदेश है। जिसमें कश्मीर की स्थिति एक सीमान्त प्रदेश के समान है जहाँ भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और चीन की सीमाएं मिलती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति यानी 15 अगस्त 1947 के पूर्व जम्मू-कश्मीर राज्य एक सामन्ती राज्य था। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से ही इसकी स्वतंत्र पहचान रही है। यह एक ऐसा राज्य था जहाँ मुस्लिम जनसंख्या की प्रधानता थी, लेकिन राजा हिन्दू था।

समस्या की भौगोलिक पृष्ठभूमि –

कश्मीर का अधिकांश धरातल पर्वतीय है। उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व को विस्तृत हिमालय पर्वत की चार समानान्तर श्रेणियाँ – कराकोरम श्रेणी, जास्कर श्रेणी, पीरपंजाल श्रेणी, एवं सबसे दक्षिण में शिवलिक श्रेणी इस क्षेत्र में विस्तारित हैं। सिन्ध, झेलम एवं चिनाव जैसी सदानीरा नदियाँ हिमालय से निकलाकर इस केन्द्र शासित प्रदेश से बहती हुई पाकिस्तान में प्रवेश करती हैं। कृषि और जलविद्युत उत्पादन की दृष्टि से इन नदियों का महत्व अत्याधिक है और यह एक महत्वपूर्ण भौगोलिक तथ्य है। धर्म एवं जातीय दृष्टि से कश्मीर में पर्याप्त विविधता है। हिंदुओं की मुख्य जाति डोगरा है। यही जाति इस राज्य की शासक रही है। 75% आबादी मुस्लिम है। कश्मीर घाटी में मुस्लिम आबादी का प्रतिशत लगभग 95 है। परिवहन एवं संचार के साधनों का यहाँ समुचित विकास नहीं हो पाया जिससे अलगाववादी गतिविधियों को बल मिलता है और सैन्य संचालन में कठिनाई होती है। हिम प्रभावित क्षेत्र होने के साथ-साथ यह एक दुर्गम क्षेत्र भी है जहाँ सुरक्षा स्वयं में एक समस्या है।

समस्या कि राजनीतिक पृष्ठभूमि –

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जम्मू-कश्मीर क्षेत्र में कई स्वतंत्र रियासतें थीं। कश्मीर उनमें सबसे बड़ी सामन्ती रियासत थी। पाकिस्तान- भारत विभाजन के समय जो देशी रियासतें स्वतंत्र इकाइयों के रूप में थीं, उन्हें 1935 के ब्रिटिश एक्ट के अनुसार स्वनिर्णय का अधिकार था। स्वनिर्णय के इस अधिकार के तहत वे भारत या पाकिस्तान के साथ मिलने के लिए स्वतंत्र थी। कश्मीर के शासक महाराजा हरि सिंह यद्यपि कि अपने राज्य की भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक प्रजातीय तथ्यों से अवगत थे शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में सामन्तवाद का प्रखर विरोध झेल चुके थे; फिर भी वे 15 अगस्त 1947 तक यह निर्णय नहीं ले पाये कि वे भारत या पाकिस्तान किसके साथ विलय करें। उन्होंने दोनों में से किसी के साथ न मिल कर अपने राज्य को स्वतंत्र रखने का मन बनाया। विभाजन के बाद पाकिस्तान मुस्लिम बहुल कश्मीर घाटी में कबाइलियों के वेश में घुसपैठ करने लगा और 20 अक्टूबर 1947

को उसने नियोजित तरीके से कश्मीर राज्य कि पश्चिमोत्तर भाग पर व्यापक पैमाने पर हमला किया। महाराजा की सेना उस हमले का कोई प्रतिरोध नहीं कर पाई। तब अन्त में बाध्य होकर – 26 अक्टूबर 1947 को महाराजा हरि सिंह ने भारत से सहायता की अपील की तथा भारत में कश्मीर विलय स्वीकार किया। इस तरह 27 अक्टूबर 1947 को भारतीय सेनायें कश्मीर पहुँची और स्थिति पर नियंत्रण किया। तब तक पाकिस्तान ने कश्मीर के एक तिहाई भाग पर अधिकार कर लिया था। पाकिस्तान ने भी अपनी सेनाएं भेजी, फलस्वरूप एकवर्ष तक लड़ाई चलती रही। 1 जनवरी 1948 को भारत ने कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद में रखा। संयुक्तराष्ट्र सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से तथा संयुक्त राष्ट्र आयोग के पूर्व प्रस्ताव के अनुसार कश्मीर में 29 जुलाई 1949 को युद्धविराम रेखा लागू की गई जो पाक अधिकृत कश्मीर को भारतीय कश्मीर से अलग करती है। तब से यह समस्या आज तक बनी हुई है।

समस्या पर पाकिस्तानी दृष्टिकोण –

6 मार्च 1951 को पाकिस्तानी प्रतिनिधि ने कश्मीर समस्या पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि—‘पाकिस्तान के लिए कश्मीर का सामरिक एवं भौगोलिक महत्व है। पाकिस्तान की मुख्यनदियाँ कश्मीर राज्य से होकर प्रवाहित होती हैं। इन नदियों का कृषि एवं जलविद्युत हेतु उपयोग तभी संभव है जब इनके ऊपरी प्रवाह क्षेत्र पर भी पाकिस्तान का अधिकार हो। यहाँ के पुराने मार्ग झेलम वेली रोड’ एवं ‘बनिहाल कार्ट रोड’ पाकिस्तान से होकर भारत जाते हैं”, इस तरह जनसंख्या, संस्कृति, धर्म, रहन-सहन सामरिक महत्व और भौगोलिक परिवेश के आधार पर कश्मीर का विलय पाकिस्तान में होना चाहिए।

समस्या पर भारतीय दृष्टिकोण –

भारत ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि सामरिक एवं रक्षा के दृष्टिकोण से कश्मीर का महत्व भारत के लिए अत्यधिक है। जल संबंधी विवादों को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों से सुलझाया जा सकता है। मुस्लिम जनसंख्या के अतिरिक्त कश्मीर में हिन्दू आबादी भी पर्याप्त संख्या में निवास करती है जिसकी सुरक्षा भारत का उत्तरदायित्व है। 1947 के बाद कश्मीर के विकास पर अत्यधिक व्यय किया जा रहा है। इसके अलावा कश्मीर सरकार ने कानूनी रूप से 1947 में भारत के साथ रहना स्वीकार किया है। अतः कानूनी विलय के बाद अन्य किसी विवाद की सम्भावना ही नहीं रहती।

कश्मीर समस्या की जटिलता –

कश्मीर समस्या भारत की सामरिक सुरक्षा एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इस समस्या के समाधान में गतिरोध का एक प्रमुख कारण विदेशी शक्तियों का एकपक्षीय झुकाव है। राजनीतिक कुचक्र और कूटनीति ने इसे और जटिल बना दिया है। युद्ध विराम रेखा की स्थापना के बाद जो भारत पाकिस्तानी अधिकार में चला गया है, उसे वह आजाद कश्मीर कहता है और वह उसे किसी की स्थिति में छोड़ने को तैयार नहीं है, बल्कि अन्य भागों पर भी अधिकार जमाने की चेष्टा में रहता है। दो बार इस क्षेत्र में इस समस्या के कारण युद्ध भी हो चुका है। प्रथम 1965 में जब पाकिस्तानी सेना ने छद्म वेश में प्रवेश कर छम्ब, कारगिल, उरी आदि क्षेत्रों में आक्रमण कर दिया था। द्वितीय पाकिस्तानी आक्रमण 3 दिसम्बर 1971 को हवाई आक्रमण के रूप में किया गया। यह आक्रमण सम्पूर्ण पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों पर था। दोनों ही युद्धों में उसे मुँह की खानी पड़ी। प्रथम युद्ध में ताशकन्द समझौते के अन्तर्गत भारत द्वारा विजित क्षेत्र पाकिस्तान को वापस कर दिए गये, लेकिन द्वितीय युद्ध में 17 दिसंबर 1971 की युद्ध विराम स्थिति को स्वीकार किया गया जिसमें 765 वर्ग किमी० पाकिस्तानी क्षेत्र भारत के अधिकार में आया गया और 83 वर्ग०कि० भारतीय क्षेत्र पाकिस्तानी अधिकार में चला गया आज भी कश्मीर समस्या यथावत् है। कश्मीर क्षेत्र को अशान्त एवं कश्मीर समस्या को जीवंत बनाए रखने के लिए पाकिस्तान ने यहाँ आतंकवाद के रूप में छद्म युद्ध का सहारा किया है। आतंकवाद यहाँ आज भी जारी है। समस्या की गंभीरता देखते हुए भारत ने 05 अगस्त 2019 को संविधान संशोधन के माध्यम से समरित कर उसे धारा-370 के कुछ प्रावधानों को निरस्त कर जम्मू-कश्मीर का राज्य का दर्जा दो केन्द्र शासित प्रदेशों जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख में विभाजित कर दिया है।

8.10 क्षेत्रीयतावाद की समस्या

क्षेत्रीयतावाद से तात्पर्य है अपने राष्ट्र के बजाय अपने क्षेत्र के प्रति अधिक लगाव या आसक्ति भारत में

विभिन्न भौतिक बाधाओं के कारण अनेक प्रजातीय, जनजातीय एवं उपेक्षित समूह आज भी अपना सांस्कृतिक वैशिष्ट्य बनाए हुए हैं। एक लम्बे काल तक आवागमन एवं संचार रहा सुविधाओं के अभाव में उनका क्षेत्र ही उनकी विशिष्टता की पहचान रहा है। देश के स्वतंत्र होने के बाद जब प्रान्तों का पुनर्गठन किया गया, तो यह ध्यान रखा गया कि ऐसे क्षेत्रों की विशिष्ट पहचान भी बनी रहे और वे देश की मुख्यधारा में शामिल होकर भारत की संघीय प्रणाली में अपना योगदान दे सकें। लेकिन विषम क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के विकसित न होने के कारण कई जनजातीय/प्रजातीय समूह भारतीय राज्य अवधारणा में आत्मसात नहीं हो पाए और वे राष्ट्रीय एकता के लिए समस्या बन गए। प्रायः ऐसे समूहों के उल्लेखनीय क्षेत्र निम्नलिखित हैं – (अ) पूर्वोत्तर भारत, (ब) हिमालय क्षेत्र, (स) मध्य जनजातीय क्षेत्र

8.10.1 पूर्वोत्तर भारत में क्षेत्रवाद एवं विदेशी नागरिकों के घुसपैठ की समस्या –

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्यों के पुनर्गठन के समय पूर्वोत्तर भारत असम राज्य और केन्द्रशासित प्रदेशों में विभाजित था। विभाजन का आधार जनजातीय विशिष्टता थी, लेकिन कालान्तर में कई राज्यों का गठन तथा वर्तमानकाल में अनेक नए राज्यों की माँग यहाँ तक कि भारतीय राज्य से अलग अस्तित्व की माँग की जाती रही है। इनमें बोडो लोगों के लिए बोडोलैंड, मिकिर और कुकी लोगों के लिए अलग-अलग क्षेत्र, गारो-खासी-जयंतिया के लिए अलग क्षेत्र, त्रिपुरा में चकमा क्षेत्र तथा अरुणांचल में विभिन्न प्रजातीय समूहों के लिए अलग-अलग राज्यों की माँग की जाती रही। उल्फा मिजो नागा और बोडो जैसे उग्रवादी संगठन अपनी मांगों को मनवाने के लिए अलगाव व आतंक की घटनाओं का संचालन करते हैं ताकि अस्थिरता उत्पन्न हो और भय का वातावरण उपजे वर्ष 2023 के उत्तरार्द्ध में मणिपुर में उपजा जन जातीय संघर्ष इस तथ्य का ताजा प्रमाण है। यह वास्तव में आर्थिक असंतुलन, एकाकीपन, आर्थिक उपेक्षा एवं शोषण आधारित तंत्र के विकास का परिणाम है परिणाम जिसमें भौतिक बाधाओं एवं साँस्कृतिक विविधता ने भी अपना योगदान दिया है। सामाजिक विकास के नाम पर ईसाई मिशनरियों द्वारा यहाँ क्षेत्रवाद एवं पृथक्तावाद को प्रोत्साहन दिया गया जिससे क्षेत्रवाद की समस्या और गंभीर हो गई।

समस्या का दूसरा पहलू विदेशी नागरिकों की घुसपैठ है जो ज्यादातर पड़ोसी देश म्याँमार और बाँग्लादेश से हुई है। असमी लोग असम में रहने की इच्छा से बाहर से आए हुए लोगों का विरोध करते रहे हैं। इसके लिए उन्होंने आंदोलन का रास्ता भी अपनाया है। बाहर से आई जनसंख्या के क्षेत्रीय समूहन से आज पूर्वोत्तर के मूल निवासियों के समक्ष उनकी पहचान का संकट पैदा हो गया है। सीमित संसाधनों के कारण उनके सामने आर्थिक समस्याएँ पैदा हो गई हैं। रोजगार के अवसर कम हो गए हैं। बाह्य जनसंख्या द्वारा ही अधिकांश महत्वपूर्ण संसाधनों पर आधिपत्य हो जाने पर संकट और भी गहरा हो गया है। प्रजातीय समूहों की राजनीतिक महत्वाकांक्षा ने इस समस्या को और जटिल बना दिया है।

8.10.2 प० बंगाल के हिमालय क्षेत्र में गोरखालैंड की समस्या –

पश्चिम बंगाल के हिमालय क्षेत्र में गोरखालैंड के रूप में उपजी यह क्षेत्रीयता की भावना वास्तव में अविकसित आर्थिक संरचना और राजनीतिक महत्वाकांक्षा का परिणाम है। भौगोलिक रूप से यह पहाड़ी क्षेत्र, जिसमें दार्जिलिंग, सिली गुड़ी और कूच बिहार आते हैं एक सीमांतीय क्षेत्र है जहाँ चाय, वन एवं पर्यटन ही यहाँ की अर्थव्यवस्था के आधार हैं। परम्परागत रूप से नेपाली मूल के गोरखा, लेप्चा, भूटिया और तिब्बती शरणार्थी यहाँ रहते हैं। गोरखा समुदाय की बहुलता के कारण यहाँ क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग बढ़ी है जो भारत के इस सीमांत क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता के लिए एक बड़ी समस्या बन गई है। इस समस्या के समाधान के लिए यद्यपि कि पर्वतीय विकास परिषद की स्थापना की गई है लेकिन वह भी क्षेत्रीय नेतृत्व के आधार क्षेत्र के रूप में विकसित हो रही है, जो भविष्य में पुनः राष्ट्रीय एकता के लिए संकट का कारण बनेगी।

8.10.3 मध्य जनजातीय क्षेत्रों में क्षेत्रवाद की समस्या –

मध्य जनजातीय क्षेत्र में यद्यपि झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के गठन के बाद एक सीमा तक क्षेत्रीयता को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया, लेकिन अब भी अनेक जनजातीय समूह अपनी विशिष्टता को अक्षुण्य करने हेतु प्रयासरत हैं। विदर्भ राज्य और बुंदेलखण्ड की माँग ऐसी ही क्षेत्रीयतावाद की उपज है जहाँ राजनेता भी वहाँ के निवासियों पर अपनी पकड़ बनाये रखने के लिए क्षेत्रवाद की भावना को भड़काते रहते हैं। राजनीतिक क्षेत्रीय दल भी जनजातीय/क्षेत्रीय वोट बैंक की राजनीति कर समस्या की जीवन्त बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

8.11 आतंकवाद की समस्या

आतंकवाद एक धीमा युद्ध है। अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद की कोई 107 विभिन्न परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। विरोधी कानूनों के कड़े प्रावधानों में आतंकवाद यथासंभव व्यापक अर्थों में परिभाषित किया गया है। आतंकवाद एक ऐसा मसला है जिससे भारत के लोग लगभग पिछले 35 वर्षों से परेशान हैं। यह मर्ज ऐसा है कि इसकी जितनी दवा हुई, वह उतना ही बढ़ता गया। पिछले पैंतीस वर्षों से लगातार भारत आतंकवाद की बढ़ती घटनाओं के शिकंजे में है। उसे हिंसक और प्राणघाती घटनाओं के संकट से जूझना पड़ता है। भारत के करीब 238 जिले हिंसक आतंकी घटनाओं से प्रभावित हैं। इसमें करीब लखरे तैयबा, हिजबुल मुजाहिदीन, जैश-ए-मोहम्मद, स्टू डेन्ट इस्लामिक मूवमेन्ट ऑफ इंडिया, अलकायदा, इस्लामिक स्टेट आफ ईराक एण्ड सीरिया,, खालिस्तान लिबरेशन फोर्स, बब्बर खालसा, वारिस पंजाब दे, यूनाइटेड लिबरेशन, फ्रन्ट आफ असम, बोडो लिबरेशन टाइगर फोर्स, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी, पीपुल्स वार ग्रुप जैसे खतरनाक, बर्बर, मजबूत, संगठित एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं जो अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपराध-दर-अपराध करते रहते हैं। भले ही यह कहा जाय कि कानून व्यवस्था मूलतः राज्य का विषय है, पर आतंकवाद को सामान्य कानून व्यवस्था के दायरे में नहीं रखा जा सकता। इससे निपटने के लिए राज्यों की पुलिस को दूसरे राज्यों एवं केन्द्र के साथ समन्वय करने के साथ-साथ इंटेलिजेंस ब्यूरो (आई की.), रिसर्च एण्ड एनालिसिस विंग (रॉ), ज्वाइंट इंटेलिजेंस कमेटी और राज्य की खुफिया एजेंसियों के साथ भी समन्वय करना पड़ता है। भारत में इस समय तीन क्षेत्र आतंकवाद से ग्रस्त हैं— (अ) जम्मू-कश्मीर में सीमापार आतंकवाद, (ब) पंजाब में सिख आतंकवाद, (स) पूर्वोत्तर का उग्रवाद।

8.11.1 जम्मू-कश्मीर में सीमापार आतंकवाद –

जिस आतंकवाद का शिकार आज जम्मू-कश्मीर है, उसके सूत्र पड़ोसी देश पाकिस्तान तक पहुँचते साफ नजर आते हैं, फिर एक कदम आगे उस भू-भाग तक पहुँचते हैं जिसे आज अफ-पाक मोर्चे का नाम दिया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि आतंकवाद के जरिए भारत को हजार घाव देने की पाकिस्तान की नीति कारगर रही है। आतंकवादियों को प्रश्रय, प्रशिक्षण, पैसा और वैचारिक आधार देना और भारत में घुसपैठ कराना पाकिस्तान की राष्ट्रीय सम्मति नीति का हिस्सा है। सिद्धान्ततः आतंकवाद को वह युद्ध का हिस्सा मानता है। उसका कहना है कि युद्ध के कोई नियम नहीं होते। अपनी इसी सोच के मुताबिक वह जम्मू-कश्मीर में सीमापार से आतंकवाद का नियति कर रहा है। यदि हम इस सीमा पर आतंकवाद का भौगोलिक विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण एशिया का भौगोलिक विस्तार अफगानिस्तान से लेकर बांग्लादेश तक है जिसकी सीमा द०पू० एशिया को छूती है। चीन की गहरी सामरिक रुचि इस क्षेत्र में है। चीन भले ही भारत में घुसपैठान करे, लेकिन वहाँ से आतंकवाद के सामान भेजे जा रहे हैं। इनमें त्रिशूल की तरह मिसाइलें हैं तो ग्रेनेड लांचर, एके 47 और एके 56,57 जैसी राइफलें भी। चीन यह सब पाकिस्तान को देता है जहाँ से वह भारत के जम्मू-कश्मीर और पंजाब में आता है जिसे पाकर उसके आतंकवादी सिर्फ कश्मीर में ही नहीं बल्कि पंजाब और मुम्बई जैसे महानगरों को अपना निशाना बनाते हैं। आतंकवादी एवं विद्रोही गतिविधियों के आधार पर किए गए विश्लेषण में पाकिस्तान को विश्व का आठवाँ सबसे खतरनाक देश बताया गया है। इटेल सेंटर के 'शीर्ष 10 खतरनाक देशों की सूची में 'कट्टी थ्रेड इंडेक्स (सी0टी0आई0) के आधार पर पाकिस्तान की यह ग्रेडिंग की गई है जिसमें उसका सी0टी0आई0 122 है, जब कि अफगानिस्तान सी0टी0 आई0 186 है। यहाँ सबसे ज्यादा सी0टी0आई0 का मतलब सबसे ज्यादा खतरा होता है। सीमापार आतंकवाद के दीर्घकालीन समाधान के लिए किसी भी समझौता-मेज पर जाने से पहले भारत को यह ध्यान रखना होगा कि—

- (i) पाकिस्तानी घरती से निकट भविष्य में आतंकवादी ढाँचे नहीं हटने वाले, और कोई भी पाकिस्तानी सरकार इस पर अंकुश नहीं लगाना चाहेगी, इसलिए पाक सत्ता ढाँचे को देखते हुए उनके द्वारा आतंकवाद को खत्म करने के आश्वासन को महज औपचारिकता समझना चाहिए;
- (ii) इस्लामाबाद में सत्ता पर चाहे जो हो, सीमा पार से आतंकवादी हमले होते रहेंगे, आतंकियों को पाकिस्तान से लगातार मदद मिलती रहेगी लिहाजा भारत का उनका मुकाबला करना सीखना होगा।
- (iii) अंदरूनी तौर पर कुछ रणनीतिक और लोगों के समर्थन के बिना कोई भी आतंकी हमला संभव नहीं है, इसलिए निर्दोष लोगों को को प्रताड़ित करने के बजाय अत्याधुनिक तकनीकी खुफिया तंत्र का इस्तेमाल

कर सीमापार के आतंकी और के भीतर मौजूद उनके समर्थकों के गठजोड़ को हर हाल में तोड़ना चाहिए।

(iv) भारत को अपनी शासन व्यवस्था पर भी ध्यान देना होगा। आतंकवाद के संबंध में भारत की शासन व्यवस्था बहुत लचर-पचर है। यहाँ गुप्तचर, पुलिस कर्मी, अफसर और नेता सभी गफलत में जीते हैं। आम जनता में भी आवश्यक सतर्कता नहीं है।

(v) भारत को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि 'आतंकवाद का नियति पाकिस्तान का राष्ट्रधर्म है'।

8.11.2 पंजाब में सिख आतंकवाद –

भौगोलिक रूप से पंजाब देश का सर्वाधिक विकसित राज्य है। 1970 के दशक में शुरू हुई हरित क्रान्ति के बाद यहाँ सिक्ख समुदाय काफी समृद्ध हुआ। देश के अन्य भागों से भी इसके पर्याप्त कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के बाद भी बढ़ती आर्थिक समृद्धि के कारण पंजाब में भी क्षेत्रीयता की भावना विकसित हुई और वहाँ के चरमपंथी सिक्ख वर्ग ने 'खालिस्तान' नामक एक अलग राज्य (देश) की माँग की। इसके लिए बब्बर खालसा, इंटरनेशनल खालिस्तान कमांडो फोर्स, खालिस्तान लिबरेशन फोर्स, खालिस्तान जिंदाबादफोर्स, वारिस पंजाब दे जैसे चरमपंथी सिक्ख संगठन सामने आए। जनरल सिंह भिंडरावाला के नेतृत्व में यह विद्रोह 1980 में काफी हिंसक हो गया, परिणामतः 1984 में भारत सरकार ने आपरेशन ब्लू स्टार की शुरुवात की। इसका उद्देश्य सिक्खों के मुख्यतीर्थ स्थल अमृतसर के स्वर्णमन्दिर में एकत्रित किए गए हथियारों को निकालना तथा बाल पवित्र धार्मिक स्थल को सिक्ख आतंकवादियों से मुक्त कराना था। आपरेशन ब्लू स्टार के कुछ माह बाद ही 1984 में ही तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरागांधी की हत्या उसके दो सिक्ख अंगरक्षकों द्वारा कर दी गई। इस हत्या के कारण देश भर में भड़के सिक्ख विरोधी दंगों में लगभग 2000 से अधिक सिक्ख समुदाय के लोग मारे गए। दंगों के बाद सिक्ख आतंकवाद से समाप्त करने के लिए के०पी०एस० गिल के नेतृत्व में जो कार्यबल गठित किया गया, उसके कुशल प्रयास एवं पंजाब सरकार के सहयोग से 1993 में खालिस्तान समस्या पर काबू पाया जा सका।

लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पंजाब प्रांत संवेदनशील था और संवेदनशील है क्योंकि इस प्रान्त की सीमाएं उस देश पाकिस्तान से मिलती हैं जो भारत का कट्टर शत्रु है और आतंक का नियतिक है। पंजाब के गुरुदास पुर 2015 में हुआ आतंकी हमला इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है। याद किया जा सकता है पंजाब पुलिस को 1980 के दशक के अंतिम दिनों और 1990 के दशक के शुरुवाती दिनों में किस प्रकार से आतंकवाद का सामना करने में सक्षम और पूरीतरह से सुसज्जित ताकत के रूप में डाल दिया गया था। वह ऐसी पुलिस के रूप में उभरी जिसके प्रत्येक थाने के पास पर्याप्त समता-सुरक्षा, परिवहन, हथियार और भले ही सीमित मात्रा में उपलब्ध तकनीकी उपकरण थे, जिसके बल पर वह अपने इलाके में आतंकवादी हरकतों का कारगर तरीके से मुकाबला कर सका। स्पष्ट है कि थानों की वह ताकत आज कमजोर पड़ गई है। सीमा पर पेट्रोलिंग और लगातार चौकसी ढीली पड़ गई है। संवेदनशील सीमा पर लोगों का आना-जाना अब संजीदा मामला नहीं रह गया है। पुलिस और अर्द्ध सैनिक बलों के कुछ कर्मचारियों की देश विरोधी लोगो के साथ मिली- भगत भी बढ़ी है। पंजाब पुलिस के अधिक अधुनिकीकरण की योजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है, वह भी उस स्थिति में जब खुफिया ब्यूरो लगातार चेताता रहा है कि पंजाब संवेदनशीलराज्य रहा है, सीमांत राज्य है जहाँ आज भी सिक्ख आतंकवादी संगठन आंशिक रूप से ही सही, लेकिन सक्रिय है जिन्हें पाकिस्तान और कनाडा जैसे देशों से आर्थिक मदद मिल रही है। बेहद जरूरी हो गया है कि आतंकवादी घटनाओं का सामना करने के लिए पंजाब पुलिस की क्षमता को फिर से मजबूत किया जाय। राज्य के सभी थानों एवं खासकर अन्तराष्ट्रीय सीमा से सटे थानों में चाक चौबन्द व्यवस्था रखी जाय।

8.11.3 पूर्वोत्तर का उग्रवाद –

जम्मू-कश्मीर तथा पंजाब की भाँति भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र भी बेहद संवेदनशील क्षेत्र। यहाँ उग्रवाद वर्ष 1971 से ही अपने पाँव पसार रहा है। और अब तो उग्रवाद की जड़ें काफी सशक्त हो गई हैं। पूर्वोत्तर का पूरा इलाका 6700 किमी से अधिक की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा दूसरे देशों से साझा करता है। इसके उत्तर में चीन से, पूर्व में म्याँमार से द० पश्चिम में बंगलादेश से और उ०प० में भूटान से इसकी सीमाएं सटी हुयी हैं, जिसका लाभ उग्रवादियों को मिलता है। पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में करीब 94 छोटे-बड़े उग्रवादी संगठन हैं। अकेले मणिपुर में 40 विद्रोही संगठन हैं जिनमे 34 अलगाववादी संगठन मणिपुर में विशेष रूप से सक्रिय हैं। पूर्वोत्तर के इन विद्रोही संगठनों पर केन्द्रीय गृह मंत्रालय समय-समय पर प्रतिबंध लगाता रहा है, उसके बावजूद भी कामतापुर लिबरेशन

आर्गनाइजेशन, गारो नेशनल लिबरेशन आर्मी, इंडियन मुजाहिदीन, जमाते-उल- मुजाहिदीन, नेशनल लिबरेशन ऑफ त्रिपुरा, ऑल त्रिपुरा टाइगर फोर्स, मणिपुर पीपुल्स लिबरेशन फ्रन्ट, कंगलेई याओल कलालुप, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी, नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रन्ट ऑफ बोडोलैंड, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ असम (उल्फा), हमारी रिवोल्यूशनरी फ्रन्ट, बोडो सिक्योरिटी फोर्स, कार्बीपीपुल्स लिबरेशन टाइगर, मुस्लिम यूनाइटेड लिबरेशन टाइगर ऑफ असम, रिवोल्यूशनरी मुस्लिम कमांडो जैसे 20 ऐसे उग्रवादी संगठन हैं जिनके पास न तो धनकी कमी है, न लड़कों की कमी है और न ही हथियारों की कमी है। इन उग्रवादी संगठनों की आय तीन स्रोतों से होती है— (i) हवाला के जरिये, (ii) राज्य सरकारों के ढेकेदारों से वसूली, तथा (iii) मादक पदार्थों एवं हथियारों की आपूर्ति से।

कतिपय विद्रोही गुटों के साथ शांति समझौतों से यह नहीं समझा जाना चाहिए कि पूर्वोत्तर में उग्रवाद शांत हो जायगा, बल्कि यह और बढ़ेगा। मणिपुर की ताजा घटनाएं इसकी साक्षी हैं जहाँ जातीय संघर्ष में सैकड़ों लोग हताहत हुए हैं खुफिया एजेंसियाँ भी यह मानती हैं कि ज्यादा संवेदनशील मणिपुर ही है। पूर्वोत्तर में स्टीलवेल मार्ग के द्वारा आधुनिक हथियार लाये जा रहे हैं। स्टील वेल मार्ग जो 1726 किमी० लम्बी घुमावदार दुर्गम सड़क है, असम से शुरू होकर म्यांमार होती हुई दक्षिण चीन के कनिंग तक जाती है। यहीं पर चीन का रूली शहर है। यद्यपि कि, यह शहर काफी छोटा है लेकिन विश्व के हथियारों के हब के रूप में इसे जाना जाता है। पूर्वोत्तर के कुछ उग्रवादी संगठनों (उल्फा) की धुसपैठ रूली शहर में भी है — ऐसा खुफिया एजेंसिया भी मानती है।

उग्रवादियों को पकड़ने के लिए समय-समय पर सेना द्वारा अभियान भी चलाया जाता है। ऐसे अभियानों में 'आपरेशन आलक्लीयर', 'राइनो 1 व 2', 'बजरंग, आपरेशन कोबरा, आपरेशन एलीफैंटा, 'के उरोज, 'आँखे', 'वेस्टलैंड, 'बुलबुल', 'प्लैश आउट' व 'क्लाउड नाइट' प्रमुख हैं। ऐसे आपरेशनों के बावजूद भी पूर्वोत्तर का उग्रवाद बढ़ता जा रहा है। वास्तव में सहजता व चतुराई से पूर्वोत्तर को आतंक मुक्त कराने का सपना आकाश कुसुम की भाँति है। यह तबतक असंभव है जब तक राज्यों का खुफिया नेटवर्क लचर है। पूर्वोत्तर में विकास के नये रास्ते तभी खुलेंगे, चाय उद्योग को बढ़ावा तभी मिलेगा, कच्चे तेल, प्राकृतिक गैस, बाँस, सिल्क और हैंडी क्रैफ्ट का पूर्ण बाजार तभी बढ़ेगा जब उग्रवाद पर पूर्ण अंकुश लगेगा।

8.12 नक्सलवाद की समस्या

नक्सलवाद की समस्या मूलतः जनजातियों की उपेक्षा एवं शोषण से उत्पन्न एक समाजिक-आर्थिक समस्या है जो पश्चिम बंगाल के उत्तरी हिस्से में नक्सलवादी के आस-पास चाय, बागानों में काम करने वाले मजदूरों और दूसरे मजदूरों के शोषण के विरुद्ध 1967 ई० में एक जन आन्दोलन के रूप में खड़ी हुई और बाद में सम्पूर्ण देश में जहाँ कहीं भी शोषण के विरुद्ध जन आन्दोलन हुआ अथवा हो रहा है, उसे 'नक्सलवाद' कहा जाने लगा इस तरह नक्सलवाद नक्सलवादी के नाम पर अस्तित्व में आया। धीरे-धीरे नक्सली गतिविधियाँ जल, जंगल, जमीन की रक्षा एवं शोषण के विरुद्ध बस्तर, आंध्रप्रदेश एवं उड़ीसा के आदिवासी इलाकों में बढ़ीं। तब उनके सामाजिक आन्दोलन के केन्द्र आदिवासी थे। लेकिन अब यह आन्दोलन पूरी तरह अराजक हो उठा है और अब यह मूल उद्देश्य से भटक कर अलगाववाद और देशद्रोह के रूप में उभार ले चुका है जो भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा है। आज नक्सली गतिविधियों का विस्तार—देश के पन्द्रह राज्यों के लगभग 180 जिलों में देखा जा सकता है। इनमें छत्तीसगढ़ सुरगुजा, राजनांदगाँव, महासमुंद, धामतारी, कांकेर, बस्तर, दंतेवाड़ा, गरिया बंद, बलोदा जिले, मध्यप्रदेश (बालाघाट जिला), बिहार (शिवहर, मुजफ्फरपुर, खगड़िया, बाँका, बेगूसराय, जमुई, लाखीसराय, गया, औरंगाबाद, रोहतास, जहानाबाद, वैशाली जिले), आन्ध्र प्रदेश (खम्मम जिला), महाराष्ट्र (गोंदिया, गढ़चिरोली, अहेरी जिले), उत्तर प्रदेश (सोनभद्र जिला), ओडिसा (देवगढ़, संबलपुर, गजपति, रायगढ़, मल्कान गिरी, कालाहांडी, नौपदा, बोलनगीर, बाडगढ़ जिले), झारखंड (गरवा, पलामू, चतरा, हजारीबाग, देवघर, दुमका, पाकुड़, बोकारो, पूर्वी सिंह भूमि, पश्चिम भी सिंह भूमि, लोहरदगा, गुमला, लातेहार जिले) और पश्चिम पंजाब (वीर भूमि, पुरुलिया बाँकुड़ा, पंभिरलपुर जिले) नक्सलवाद के भयंकर चपेट में हैं। वस्तुतः नक्सलियों ने नेपाल की सीमा ले लेकर आंध्रप्रदेश तक 'लाल गलियारा' (Red Corridor) (दांदेकरन मेखला) का निर्माण कर रखा है। छत्तीसगढ़ के बस्तर के घने जंगलों में इनकी हिंसक गतिविधियों का गुरुत्व केन्द्र द० बस्तर के चिन्ताइने के चिन्ताइनेर क्षेत्र को उन्होंने अपनी राजधानी घोषित कर रखा है।

वस्तुतः माओवादियों का यह एक आसमान, हिंसक एवं असंयमित युद्ध है जिसमें माओवादी नक्सली कार्यवाहियों को सी०आर०पी०एफ० जवानों, निर्दोष ग्रामीणों एवं राजनेताओं की हत्या प्रशासनिक अधिकारियों एवं

राजनेताओं के अपहरण, प्राकृतिक खदानों के ठेकेदारों एवं मालिकों से वसूली तथा संसाधनों की लूट के रूप में देखा जा सकता है।

नक्सलवाद के पास कोई ठोस वैचारिक अधिष्ठान या रणनीति नहीं है। आतंकी हिंसा एवं अराजकता को वे अपना हथियार बनाए हुए हैं। उनकी सामाजिक संवेदनशीलता और राष्ट्रीय सरोकार एक ऐसे विचार से निर्देशित हो रहे हैं, जिनकी न तो वैधानिकता है न क्रांति के प्रति सजगता है और न ही प्रासंगिकता/वैचारिक परिपक्वता और ठोस संगठनात्मक आधार तो कतई नहीं है। भारत की इस भीषण आंतरिक समस्या के पीछे विदेशी संसाधन और प्रेरणा है। मूलरूप से चीन इस रक्तरंजित आन्दोलन की मदद कर रहा है, जो स्वयं विषमता एवं पूँजीवाद में कई विकासशील देशों को पीछे छोड़ चुका है। चीन का मूल उद्देश्य है भारत को आंतरिक रूप से अस्थिर करना। माओवादी नक्सलवाद उसके लिए एक अस्त्र के समान है।

वस्तुतः 1967 का नक्सलवाद एक दृष्टि (चाहे वह सही हो या गलत) लेकर चल रहा था जबकि आज वह एक दृष्टिविहीन हिंसक आंदोलन है जिसका नेतृत्व भी अराजक है। इसके पनपने का एक बड़ा कारण बनवासी क्षेत्रों में पूँजीवादी घरों की लूट और शोषण है। नई आर्थिकनीति ने सुधार के नाम पर पूँजीवाद को अराजक बनने का अवसर दिया। दूसरा बड़ा कारण इन क्षेत्रों में लोकतांत्रिक संघर्ष और नेतृत्व का अभाव है। वास्तव में नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में जितनी आर्थिक विषमता बढ़ेगी, जितना सामंतवादी उत्पीड़न होगा और विकास की प्रक्रिया में जितना शोषण, असंतुलन एवं भ्रष्टाचार बढ़ेगा, नक्सलवादियों की जमीन उतनी ही मजबूत होगी।

माओवादी नक्सलवाद में आज का एक सच यह भी है कि नक्सलियों में बहुत से युवक-युवती बहुत पढ़े-लिखे हैं और वे शोषण की व्यवस्था को बदलने के लिए वे सशस्त्र संघर्ष की सोच बनाकर निकल पड़े हैं। दूसरा सच यह भी है कि हथियार उठाये कुछ नौजवान 'लाइफ में लिबर्टी' रोमांचकारी जीवन की अवधारणा लेकर नक्सलवाद की राह पकड़ चले हैं। देश की इस भयावह समस्या से निपटने के लिए सरकार को तीन मुद्दों पर आधारित रणनीति बनाने की जरूरत है – (i) बातचीत (ii) लोगों को हुई हानि की क्षतिपूर्ति, और (iii) संसाधनों पर नियंत्रण को सर्वसुलभ बनाना। इन तीन मुद्दों पर यदि ध्यान दिया जाय तो मुश्किल दूर होने लगेगी। सशस्त्र हमले में लगे नक्सलवादियों को भी यह समझना होगा कि राज्य व्यवस्था की दमनकारी नीतियों के खिलाफ लोकतांत्रिक पद्धति के देश में जनता को संगठित करने के लिए 'संवाद' एक तार्किक हथियार है जो जनमानस को प्रशिक्षित करने के अवसर देता है।

सारांशतः भारत के विभिन्न भागों में अलगाववादी आंदोलनों का मूलकारण आर्थिक शिकायतें हैं, संयोगवश ये सभी आंदोलन (नक्सलवाद को छोड़कर) नृजातीय हैं। अतः भारत जैसा संघ तभी शाश्वत रह सकता है जब केन्द्रोपसारी शक्तियों को दबाने के लिए कठोरता के बदले उसकी उचित मांगों को मानकर कदम उठाया जाय। गोरखा, बोडो, झारखंड आदि में स्वायत्तता के लिए संघर्ष अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए ही था। असम समझौता, मिजोरम समझौता, गोरखालैंड समझौता ने यह सिद्ध कर दिया कि अगर सही समय पर प्रादेशिक हितों की बात मान ली जाय तो प्रदेश में अलगाववाद की भावना नहीं उठती है। (अधिकारी एवं कुमार, 2011)

8.13 सारांश

प्रस्तुत इकाई में दिए गए पाठ्यक्रम के अध्ययन से आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि भारत की सभी राजनीतिक भौगोलिक समस्याएं उसके विशिष्ट भौगोलिक व्यक्तित्व तथा भूराजनीतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं के कारण, साथ ही राजनीतिक विकेन्द्रीकरण एवं उत्तरोत्तर बढ़ने क्षेत्रीय एवं आर्थिक असंतुलन की वजह से जन्मी है। ये समस्याएँ इतनी विकट हैं कि इन समस्याओं से निजात पाने के लिए भारत का पर्याप्त

आर्थिक विकास नहीं हो पा रहा है। जो भारतीय क्षेत्र इन समस्याओं से ग्रस्त हैं, वहाँ विकास की योजनाओं को धरातल पर उतारना बेहद मुश्किल हो गया है जिसरी वजह से वहाँ की जनता में विद्रोह की भावना घटने भी बजाय बढ़ रही है।

8.14 शब्द सूची

नियंत्रण स्थिति	Commanding Position	भूगर्भिक अजायबघर	Geological Museum
जीववाद	Animism	रहस्यवाद	Mysticism
एकेश्वरवाद	Monism	द्वैतवाद	Dualism
बहुत्ववाद	Pluralism	नास्किवाद	Atheism
नृजातीय	Ethnic	आतंकवाद	Terrorism

8.15 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

- क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का बृहदतम राज्य है—
(अ) चौथा (ब) पाँचवाँ (स) छठवाँ (द) सातवाँ
- पड़ोसी देशों के सन्दर्भ में भारत की भू-राजनीतिक स्थिति है —
(अ) केन्द्रीय (ब) परिधीय (स) उपान्त (द) इनमें से कोई नहीं
- कश्मीर समस्या किन देशों के मध्य है ?
(अ) भारत—चीन (ब) भारत—पाकिस्तान (स) भारत—अफगानिस्तान (द) भारत—नेपाल
- गोरखालैंड की समस्या भारत के किस राज्य से सम्बन्धित है?
(अ) उत्तराखण्ड (ब) उ०प्रदेश (स) सिक्किम (द) पश्चिम बंगाल
- भारत में नक्सलवाद की समस्या का जन्म हुआ?
(अ) 1957 में (ब) 1967 में (स) 1977 में (द) 1987 में

आदर्श उत्तर—

1. (द); 2. (अ); 3. (ब); 4. (द); 5. (ब)

8.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें :—

❖ अधिकारी, सुदीप्ता एवं कुमार रतन, (2011) 'राजनीतिक भूगोल', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

❖ तिवारी, रामचन्द्र, (2017) : 'राजनीतिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, प्रयागराज।

8.17 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. भारत के भौगोलिक व्यक्तित्व की समीक्षा कीजिए।
2. किसी भी राज्य के व्यक्तित्व निर्माण के आधारी पक्षों की विवेचना कीजिए।
3. भारत की राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं की समीक्षा कीजिए।
4. आतंकवाद एवं उग्रवाद को परिभाषित कीजिए।
5. भारत की नक्सलवाद की समस्या के कारणों की विवेचना कीजिए।

इकाई—09 अन्तर्राज्य सीमा विवाद

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 प्रस्तावना
- 9.1 उद्देश्य
- 9.2 विषय प्रवेश
- 9.3 भारत की अन्तर्राज्य सीमाएं
- 9.4 भारत—पाकिस्तान सीमा विवाद
 - 9.4.1 कच्छ के रन का विवाद
 - 9.4.2 सरक्रीक विवाद
 - 9.4.3 राजस्थान से पंजाब तक भारत—पाकिस्तान सीमा विवाद
 - 9.4.4 पंजाब से पाक अधिकृत कश्मीर के उत्तरी भाग तक सीमा विवाद
 - 9.4.5 सियाचिन ग्लेशियर विवाद
- 9.5 भारत—चीन सीमा विवाद
 - 9.5.1 भारत—चीन सीमा : ऐतिहासिक सन्दर्भ
 - 9.5.2 सीमा विवाद की शुरुवात
 - 9.5.3 पश्चिमी खण्ड
 - 9.5.4 मध्य खण्ड
 - 9.5.5 पूर्वीखण्ड
- 9.6 भारत—भूटान सीमा
- 9.7 भारत—अफगानिस्तान सीमा
- 9.8 भारत—नेपाल सीमा विवाद
- 9.9 भारत — म्यांमार सीमा
- 9.10 भारत—श्रीलंका समुद्री सीमा विवाद
- 9.11. भारत—बांग्लादेश सीमा विवाद
 - 9.11.1 एन्क्लेव समस्या
 - 9.11.2 दहाग्राम एन्क्लेव एवं तीन बीघा कॉरिडोर
- 9.12 सारांश
- 9.13 शब्दसूची
- 9.14 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 9.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 9.16 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

9.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल विषय के पाठ्यक्रम की यह नौवीं इकाई है। इसमें आप भारत और उसके पड़ोसी राज्यों के मध्य अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवादों का अध्ययन करेंगे। आप जानते हैं कि राजनीतिक भूगोल में अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं का अध्ययन प्रारंभ से ही अध्येताओं की रुचि का विषय रहा है, कारण कि यही वे रेखाएँ होती हैं जो पड़ोसी राज्यों के बीच आवागमन संचार को प्रतिबंधित कर उन्हें स्पष्टतया पृथक-पृथक राजनीतिक इकाइयों के रूप में स्थापित करती हैं। भारत एक ऐसा देश है जिसकी सीमाएँ सात पड़ोसी राज्यों (पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश एवं म्यांमार) से स्थलीय सीमाएँ साझा करती हैं जबकि दक्षिण में यह देश श्रीलंका से समुद्री सीमा से जुड़ा हुआ है। इतने पड़ोसी देशों से सीमा जुड़ाव होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सीमाविवादों की उत्पत्ति यहाँ स्वाभाविक ही है। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवादों के अध्ययन के माध्यम से यह इकाई विद्यार्थियों को यह जानकारी देने में मदद करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ किसी भी देश की शांति और सुरक्षा के लिए कितना महत्व रखती हैं।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं की जानकारी विद्यार्थियों को देना।
2. भारत-पाकिस्तान के मध्य उत्पन्न सीमा विवाद के मूल कारणों से उन्हें अवगत कराना।
3. भारत-चीन सीमा विवाद सम्बन्धी चीनी कूटनीति एवं दृढ़ धर्मिता से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
4. भारत-बांग्लादेश सीमा विवादों के शांति पूर्ण समाधान की उन्हें जानकारी देना।
5. भारत-श्रीलंका सीमा विवाद की मूल भावना से उन्हें अवगत कराना।

9.2 विषय प्रवेश

राजनीतिक भूगोल में अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं का अध्ययन प्रारम्भ से ही एक महत्वपूर्ण विषय रहा है, कारण कि सीमा ही वह स्थान होता है जहाँ एक राज्य का दूसरे राज्यों से सम्बन्ध स्थापित होता है। प्रारंभ में सीमा रेखाओं के निर्माण का उद्देश्य पड़ोसी राज्यों के बीच आवागमन संचार को प्रतिबंधित कर उन्हें स्पष्टतया पृथक-पृथक इकाइयों के रूप में स्थापित करना था, उन्हें एक दूसरे से राजनीतिक-सामाजिक रूप से अलग करना था, परन्तु राज्यों के बीच आर्थिक सम्बन्ध बढ़ने से स्थिति में आमूल परिवर्तन आ गया है। जहाँ पड़ोसी राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं, वहाँ सीमाएँ राजनीतिक रूप से शान्त रहती हैं, लेकिन जहाँ राज्यों के मध्य शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध हैं, वहाँ सीमाएँ 'छुरी की धार' वाले स्वरूप में परिवर्तित होकर सक्रिय हो गई हैं और 'अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवाद' का कारण बन गई हैं। सर टी०एच० होल्डिच (1916) के अनुसार — विश्व के आधुनिक इतिहास में प्रायः सभी महत्वपूर्ण युद्ध में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े जो कि युद्ध में बदल सकते थे, सीमा विवादों के परिणाम से हैं। सीमा विवाद प्रायः सीमा की प्रवेश्यता अथवा अप्रवेश्यता तथा सीमा द्वारा निश्चित संगठन प्रणाली एवं विकास स्तर से जुड़े होते हैं, लेकिन कभी-कभी इन विवादों के पीछे अन्य कारक भी सक्रिय देखे गए हैं, जैसे— यदि किसी क्षेत्र का सामरिक महत्व बढ़ जाय या फिर दो पड़ोसी राज्यों के मध्य सीमान्तों का पुर्नगठन करने से मतभेद उत्पन्न हो जाय या फिर कोई राज्य राजनीतिक सीमाओं के कार्यों के सम्बन्ध में एकतरफा निर्णय ले आदि।

9.3 भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ

जहाँ तक भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवादों का प्रश्न है, तो भारत दक्षिण एशिया का राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण देश है। दलदलों, रेगिस्तानों, रुक्ष पर्वतों, हिमावृत क्षेत्रों एवं घने जंगलों से गुजरने वाली इसकी 15200 कि०मी० लम्बी स्थलीय सीमाएँ सात पड़ोसी राज्यों—पश्चिम में पाकिस्तान (3310 किमी० व अफगानिस्तान 106 किमी०), उत्तर में चीन (3917 किमी०), नेपाल (1752 किमी०) और भूटान (587 किमी०) तथा पूर्व में म्यांमार (1458 किमी०) तथा बांग्लादेश (4096 किमी०) से सटी हुई हैं। दक्षिण में जलीय सीमा (पाक जलडमरूमध्य) द्वारा भारत श्रीलंका से पृथक होता है। स्वतंत्र भारत के उदय के साथ पड़ोसी राज्यों के सन्दर्भ में कुछ राजनीतिक-भौगोलिक (समस्याएँ भारत को विरासत में मिली हैं, उनमें अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवाद भी हैं

जिनका समाधान भारत अब भी नहीं कर पाया है। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण के बाद सीमा विवाद दोनों राज्यों के लिए बरबादी का कारण बन गया है। पंचशील आधारित सह अस्तित्व की दुहाई देने वाला चीन भी पीछे नहीं है। नेपाल साथ और बांग्लादेश भी पड़ोसी देश के साथ मधुर सम्बन्धों में नई-नई सीमा समस्याओं को जन्म दे रहे हैं।

सारांशतः भारत के प्रमुख अन्तर्राज्यीय सीमा विवाद निम्नलिखित हैं—

9.4. भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद

भारत-पाकिस्तान के मध्य स्थलीय सीमा की लम्बाई 3310 किमी० है। 1947 में जब ब्रिटिश कूटनीति के तहत हिन्दू-मुस्लिम धर्म के आधार पर भारत का विभाजन हुआ। तब यह सीमा रेखा भारत और तत्कालीन (पश्चिमी) पाकिस्तान के मध्य अस्तित्व में आई। यह एक सांस्कृतिक या अध्यारोपित सीमा (**Superimposed Boundary**) है जो रेडक्लिफ अधिनिर्णय (**Radcliffe Award**) सर सिरिल रेडक्लिफ सीमा निर्धारण आयोग के अध्यक्ष थे) के अनुसार निर्धारित की गई है। गुजरात की कच्छ की खाड़ी से शुरू होने वाली यह सीमा रेखा राजस्थान के मरुस्थल और पंजाब के मैदान को पार करती हुई जम्मू-कश्मीर की पहाड़ियों से होकर कराकोरम पर्वत श्रेणी तक विस्तृत है। अपने अस्तित्व में आने के बाद से ही चूंकि भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद प्रारंभ हो गया। इस लिए इसे दुनिया की सबसे खतरनाक अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं में से एक माना गया है। यह सीमा विवाद सम्पूर्ण सीमा रेखा में कई स्थलों पर है।

9.4.1 कच्छ कारण का विवाद —

गुजरात सीमा से कच्छ के रन तक इस सीमा की लम्बाई 604 किमी० है। रेडक्लिफ अधिनिर्णय के अन्तर्गत भली-भांति निर्धारित होने के बावजूद भी पाकिस्तान ने यहाँ सीमा विवाद यह कहकर उत्पन्न किया कि कच्छ के रन में सीमा निर्धारण सही तरीके से नहीं किया गया है। कच्छ के रन वास्तव में 20720 वर्ग किमी० क्षेत्र में फैला एक दलदली एवं क्षारीय मिट्टी का समतल भाग है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के अन्तर्गत आ गया था। इस सन्दर्भ में पाकिस्तान का दृष्टिकोण था कि कच्छ का रन कोई दलदली खाड़ी नहीं है, बल्कि एवं स्थल आवृत्त सागर (Land-Locked Sea) है, अतः इसका विभाजन भारत-पाकिस्तान के मध्य बराबर होना चाहिए। 1965 में पाकिस्तान ने भारतीय क्षेत्र के रन पर आक्रमण कर दिया और उसकी सेनाएं काफी अन्दर तक प्रविष्ट हो गईं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री के हस्तक्षेप से यह विवाद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (**International Court of Justice**) को सौंपा गया जहाँ सीमा-ट्रिब्यूनल के द्वारा इस विवाद को हल करने का कार्य प्रारंभ किया गया। भारत ने अपने पक्ष में 1937, 1938, 1939 एवं 1942 में ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक विभाग के अधिकारियों द्वारा निर्मित ऐसे अनेक मानचित्र 'सीमा ट्रिब्यूनल' के सामने प्रस्तुत किए जिसमें कच्छ के रन को गुजरात का हिस्सा दिखाया गया था। मानचित्रों के अनुसार यह कभी भी सिन्ध प्रांत का हिस्सा नहीं था। भारतीय पक्ष ने यह भी कहा कि विभाजन के समय भी इस क्षेत्र में कोई सीमा सम्बन्धी विवाद नहीं था। फिर भी सीमा-ट्रिब्यूनल ने 19 फरवरी 1968 को निर्णय देते हुए कच्छ के रन का 906.5 वर्ग किमी० क्षेत्र पाकिस्तान को प्रदान कर दिया। इस निर्णय से दोनों पक्ष खुश नहीं थे, फिर भी अंततः सीमा-ट्रिब्यूनल का यह निर्णय दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया और कच्छ के रन में सीमा निर्धारण का कार्य जून 1969 में पूरा कर लिया गया।

9.4.2 सर क्रीक विवाद —

भारत के गुजरात राज्य और पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा सर क्रीक के मध्य भाग से होकर गुजरती है। यहाँ पर भी पाकिस्तान ने विवाद पैदा कर रखा है। पाकिस्तान का कहना है कि सर क्रीक के पूर्वी तट को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा माना जाना चाहिए और इस तरह से पाकिस्तान सर क्रीक क्षेत्र के 40 वर्ग किमी० क्षेत्र पर अपना दावा पेश करता है। भारत ने उसके इस दावे को स्वीकार करने से मना कर दिया है, इसलिए यहाँ अब? भी भारत-पाकिस्तान के मध्य सीमा रेखा विवाद का विषय बनी हुई है।

गुजरात से राजस्थान तक भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद —

गुजरात से राजस्थान तक भारत-पाकिस्तान सीमा लम्बाई 1042 किमी० है। थार के शुष्क रेगिस्तान में समतल भू-भाग पर कृत्रिम ढंग से निर्मित इस सीमा पर यद्यपि की कोई सीमा विवाद नहीं है, फिर भी यहाँ चोरी-छिपे पाकिस्तान द्वारा सीमा का अतिक्रमण किया जाता रहा है। यहाँ पर भी सीमा की चौकसी जबरदस्त

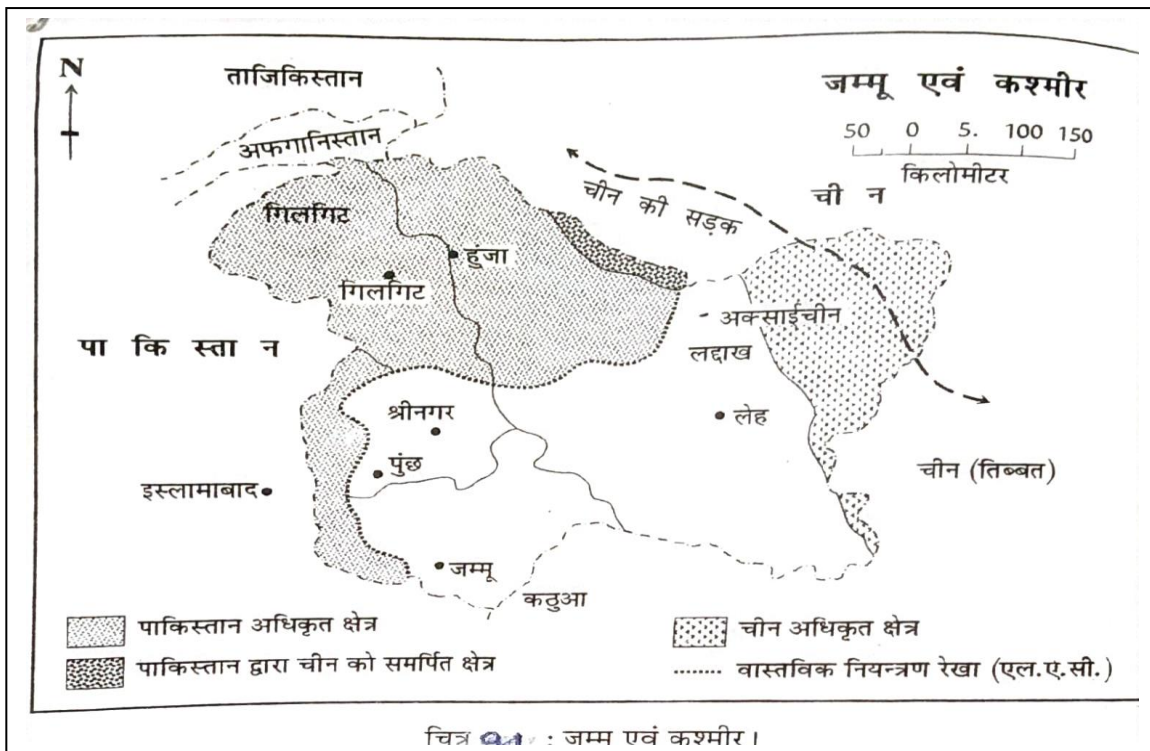
है।

9.4.3 राजस्थान से पंजाब तक भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद –

राजस्थान से पंजाब तक भारत-पाकिस्तान सीमा की लम्बाई 525 किमी० है जो शुष्क रेगिस्तान में कृत्रिम ढंग से निर्धारित की गई है। यह सीमान्त क्षेत्र अल्प संसाधन एवं विरल जनसंख्या वाला है जहाँ विभाजन के पूर्व दोनों ओर की जनसंख्या निर्बाध रूप से आवागमन करती थी। लेकिन विभाजन के बाद जब आवागमन में अवरोध पैदा हुआ तो पाकिस्तान में यहाँ तस्करों एवं घुसपैठियों को प्रश्रय देकर सीमा विवाद पैदा करने की कोशिश की। कोई गंभीर सीमा विवाद न होने के बावजूद भी यहाँ सीमा सम्बन्धी तनाव बना रहता है और सीमा सुरक्षा के लिए भारत को कड़ी चौकसी करनी पड़ती है।

9.4.4 पंजाब से पाक अधिकृत कश्मीर के उत्तरी भाग तक सीमा विवाद –

भारत-पाकिस्तान के मध्य सबसे गंभीर सीमा विवाद पंजाब से लेकर पाक अधिकृत कश्मीर के उत्तरी भाग तक है। इस क्षेत्र में सीमा रेखा की लम्बाई 1225 किमी० है। (चित्र संख्या- 9.1) रेडक्लिफ अधिनिर्णय के अनुसार यहाँ सीमा रेखा कहीं सर्वोच्च पर्वत श्रृंखलाओं से गुजरती है, तो कहीं सिंधु झेलम नदियों के सहारे निर्धारित की गई है। विभाजन के पूर्व इस सीमा पर मिलने वाले पर्वतीय दरों पर बने मार्गों से जनसंख्या का आवागमन वर्तमान पाकिस्तान की ओर से होता था, लेकिन विभाजन के बाद जब यह सीमा-रेखा निर्धारित हुई तो पाकिस्तान ने यहाँ भीषण विवाद पैदा किया। वस्तुतः इस क्षेत्र की भौतिक स्थिति जहाँ विषम धरातलीय है, वहीं जातीय एवं धार्मिक दृष्टि से भी यहाँ भारी विविधता है। भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अथवा भाषाई इकाई के बजाय यह क्षेत्र छः स्पष्ट प्रदेशों में बंटा हुआ है :-



- (i) कश्मीर घाटी :- यह सर्वाधिक विकसित मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र है, जहाँ कश्मीरी ब्राम्हण अल्प संख्यक समुदाय के रूप में रहते हैं। इसी घाटी में श्रीनगर राजनीतिक-प्रशासनिक केन्द्र भी स्थित है।
- (ii) जम्मू क्षेत्र :- कश्मीर घाटी के दक्षिण में स्थित यह क्षेत्र एक हिन्दू बाहुल्य क्षेत्र है। यहाँ जम्मू शहर में कश्मीर के पूर्व शासक (डोगरा राजपूत) का महल स्थित है।
- (iii) गिलगिट क्षेत्र – यह उत्तर का एक पहाड़ी मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र है।

- (iv) बाल्टिस्तान क्षेत्र – सुदूर उत्तर में स्थित यह एक अत्यंत पहाड़ी क्षेत्र है जो सिन्धु नदी के सहारे एक सड़क द्वारा पाकिस्तान से जुड़ा है।
- (v) पुंछ, जम्मू के उत्तर एवं कश्मीर घाटी के पश्चिम में स्थित क्षेत्र :- चिनाव एवं झेलम नदियों द्वारा प्रवाहित यह एक मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र है।
- (vi) लद्दाख क्षेत्र :- 'लघु तिब्बत' के नाम से विख्यात यह एक उजाड़ उच्च पठारी क्षेत्र है जहाँ तिब्बती संस्कृति एवं बौद्ध धर्मावलंबियों की प्रधानता है।

भौतिक रूप ही विषम एवं धर्म एवं जातीय रूप से विविधता लिए हुए यह सम्पूर्ण क्षेत्र जम्मू-कश्मीर रियासत के रूप में स्वतंत्र राज्य था। जिसके शासक डोगरा जाति के महाराजा हरीसिंह थे। इस स्वतंत्र रियासत में जम्मू एवं लद्दाख को छोड़कर शेष भाग में इस्लाम प्रमुख धर्म था। सन् 1947 में विभाजन के बाद जब भारत एवं पाकिस्तान का अभ्युदय हुआ तो मुस्लिम बहुल जनसंख्या होने के कारण पाकिस्तान ने इसे अपने में मिलाना चाहा, लेकिन महाराजा ने इसे एवं स्वतंत्र रियासत के रूप में रखना चाहा और भारत या पाकिस्तान किसी के भी साथ अपने राज्य का विलय कराने से मना कर दिया।

इस बात के ठोस प्रमाण है कि 1947 के युद्ध के लिए पाकिस्तान शत-प्रतिशत उत्तरदायी था। महाराजा हरीसिंह के साथ 'नो वार' (No War) समझौते के बावजूद उसने 20 अक्टूबर 1947 को मुजफ्फराबाद के रास्ते हमला बोलकर जम्मू-कश्मीर की तमाम भूमि हथिया ली। 26 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तानी फौज श्रीनगर हवाई अड्डे तक पहुँच चुकी थी। 27 अक्टूबर 1947 को देश के पहले गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन की उपस्थिति में जम्मू-कश्मीर के महाराज हरीसिंह ने 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' के द्वारा जम्मू-कश्मीर का विलय भारत में कर दिया। विलय पत्र पर हस्ताक्षर होते ही भारत ने अपनी सेना को हवाई मार्ग से श्रीनगर के लिए रवाना कर दिया था। श्रीनगर से उरी तक, यानी कृष्णगंगा नदी के पूर्वी भाग को पाकिस्तान के नियंत्रण से मुक्त करा लिया गया। इस बीच एक नवंबर 1947 को संयुक्त राष्ट्र ने युद्ध विराम का आदेश दिया, परिणामतः भारतीय सेना कृष्ण गंगा नदी के इसी पार रुक गई, लेकिन दूसरी ओर पाकिस्तान युद्धविराम ऐलान के बाद यानी 16 नवंबर तक पूरे गिलगिट क्षेत्र को अपने कब्जे में करता रहा। इस तरह अपने कब्जे वाले कश्मीर क्षेत्र को पाकिस्तान ने 'आजाद कश्मीर' का नाम दे दिया। वास्तव में तत्कालीन गवर्नर जनरल माउण्टबेटन ने भारत के साथ धोखेबाजी की थी। उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को सलाह दी थी कि भारत इस मामले को सुरक्षा परिषद में ले जाए जहाँ ब्रिटेन और अमेरिका भारत का साथ देंगे, परन्तु जब भारत इस मामले को 1 जनवरी 1948 को सुरक्षा परिषद में ले गया, तब ब्रिटेन व अमेरिका ने निर्लज्ज तरीके से पाकिस्तान का साथ दिया और सुरक्षा परिषद में यह प्रस्ताव पास करवा दिया कि जम्मू-कश्मीर में जनमत संग्रह होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि यह प्रस्ताव पास होने के बाद सुरक्षा परिषद ने जनमत संग्रह की कसौटी तय की जिसे भारत ने तो मान लिया पर पाकिस्तान ने अमान्य कर दिया, क्योंकि इस समय पूरे कश्मीर की आबादी भारत के साथ रहना चाहती थी। सुरक्षा परिषद में ब्रिटेन एवं अमेरिका का शत्रुतापूर्ण रवैया देवकर भारत ने लाचार होकर रूस का सहयोग मांगा। यदि रूस सुरक्षा परिषद में जम्मू-कश्मीर के मामले में वीटो नहीं करता तो जम्मू-कश्मीर कब का भारत के हाथ से निकल गया होता। अंततः सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से तथा संयुक्त राष्ट्र आयोग के पूर्व प्रस्ताव के अनुसार कश्मीर में 29 जुलाई 1949 को युद्ध विराम रेखा लागू की गई जो पाक अधिकृत कश्मीर को भारतीय कश्मीर से अलग करती है। तब से भारत पाकिस्तान के बीच यह सीमा विवाद आज तक बना हुआ है।

9.4.5 सियाचिन ग्लेशियर विवाद (Siachen Glacier Dispute) –

सियाचिन ग्लेशियर जो देखने में बिलकुल ही धवल, वर्ष की अनंत चादर औढ़े नीख शांति समेटे दुनिया का सबसे ऊँचाई पर स्थित रणक्षेत्र यानी युद्धभूमि है जहाँ सैनिक दुश्मन भी गोलियों से नहीं, बल्कि अत्यधिक ठंड एवं प्रतिकूल मौसम से उपजे विकार, हिमस्खलन और अचानक आने वाले बर्फ़ीले तूफानों से असमय काल के गाल में समा जाने हैं।

हिमालय के पूर्वी कराकोरम रेंज में भारत-पाकिस्तान नियंत्रण रेखा के पास स्थित सियाचिन ग्लेशियर दुनिया का सबसे बड़ा गैर ध्रुवीय ग्लेशियर है जिसकी लम्बाई 74 किमी० और चौड़ाई 2 से 8 किमी० है। पर्वतारोहियों द्वारा इसे 'Third Pole' की संज्ञा दी गई है। ग्लेशियर की समुद्र तल से ऊँचाई इसके स्रोत इंदिरा कॉल पर लगभग 5357 मीटर (18875 फिट) और अंतिम छोर पर 3624 मी० है। सदियों में यहाँ औसतन 35 फिट

तक की बर्फबारी होती है और तापमान -50 डिग्री से० से भी नीचे चला जाता है। प्रतिकूल और खतरनाक मौसम की वजह से वहाँ किसी भी सैनिक की तैनाती तीन माह से अधिक नहीं की जाती है।

सामरिक दृष्टि से बर्फीले रेगिस्तान सियाचिन का भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए महत्व उतना ही है जितना कि आबादी से भरे पूरे कश्मीर का। 24350 फीट ऊँची सिया कांगरी (**Sia Kangri**) चोटी से अफगानिस्तान, रूसी क्षेत्र चीन, तिब्बत, तुर्किस्तान और पाक अधिकृत कश्मीर पर आसानी से नजर रखी जा सकती है। यह क्षेत्र पाकिस्तान द्वारा किसी शर्त के बगैर तोहफे के तौर पर चीन को दी जाने वाली शाक्सगाम घाटी और पाक अविरत बाल्टिस्तान के बीचो बीच स्थित है। सियाचिनपा मारतरे कब्जे के कारण ही शाक्सगाम घाटी और बाल्टिस्तान के बीचोबीच स्थित है। सियाचिनपर भारत के कब्जे के कारण ही शाक्सगाम घाटी और बाल्टिस्तान अलग-अलग है। ये दोनों एक दूसरे से जुड़ने का मौका तलाश रहे हैं।

अगर विसैन्यीकरण के कारण धोखे से पाकिस्तान ने इस पर कब्जा कर लिया, तो फिर उत्तरी लद्दाख पर दबाव बहुत बढ़ जायगा। ऐसे में कश्मीर में भारतीय फौज को अपनी ताकत कम कर लद्दाख में लगानी पड़ सकती है। कारगिल युद्ध भी पाकिस्तान भी इसी चाल का परिणाम था।

भारत-पाकिस्तान के बीच 1971 के युद्ध तक सियाचिन ग्लेशियर विवाद का विषय नहीं था। माना जा सकता है कि सियाचिन विवाद कहीं न कहीं भारत-पाक के बीच 1972 में हुए ऐतिहासिक शिमला समझौते में छिपा हुआ है। जब यह समझौता हुआ तो सियाचिन के एन. जे. -9842 नामक स्थान पर युद्ध विराम की सीमा तय हो गई, लेकिन इस बिन्दु के आगे के हिस्से के बारे में कुछ नहीं कहा गया। 1974 से 1980 तक पाकिस्तान ने इस ग्लेशियर की ओर कई विदेशी पर्वतारोही दलों को भेजा। पाकिस्तान के कुछ मानचित्रों में भी यह भाग उसके हिस्से में दिखाया जाने लगा। 1978 में भारत ने भी इस क्षेत्र में सैनिक गश्त की अगस्त 1983 में पाकिस्तान ने पहली बार आपत्ति जताई तथा कहा कि यह ग्लेशियर पाक अधिकृत कश्मीर का हिस्सा है। पाकिस्तान की इस कुटिल मानसिकता को देखते हुए भारत ने अप्रैल 1984 में आपरेशन मेघदूत के तहत सैन्य कार्यवाही की और इस पर अपना कब्जा जमा लिया। तभी से सियाचिन क्षेत्र में दोनों देशों की सेना ने अपनी-अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू की। वास्तव में सियाचिन ग्लेशियर का मुद्दा और मतभेद 110 किमी० लम्बी '**Actual Ground Position Line**' कहाँ-कहाँ से गुजरती है, इस पर है। यह लाइन सोलतोरो रिज और सियाचिन ग्लेशियर से होकर गुजरती है। भारतीय सेना सोलतोरो रिज में प्रभावशाली स्थिति में बनी हुई है और चाहती है कि पाकिस्तान उसके दृष्टि कोण से सहमत हो, जबकि पाकिस्तान 1972 के परित-पाक शिमला समझौते की स्थिति चाहता है।

वास्तव में सियाचिन ग्लेशियर विवाद में पाकिस्तान पूरी तरह से गलत है। वह वहाँ लगातार घुसने की कोशिश में लगा रहता है। वर्ष 1984, 1990, 1995, 1996 और 1999 में हुई घुसपैठ की कोशिशें इसकी पुष्टि भी करती हैं। वस्तुतः जब तक पाकिस्तान सियाचिन की वास्तविक स्थिति को स्वीकार नहीं कर लेता, तब सियाचिन विवाद हल होने की उम्मीद नहीं है। सर्व विदित है कि कश्मीर कि तरह सियाचिन विवाद का जन्मदाता भी पाकिस्तान ही है। जब कश्मीर समस्या आजादी के बाद से पाकिस्तान की दृढधर्मिता के कारण आजतक नहीं सुलझ पाई, तो सियाचिन विवाद इतनी शीघ्र कैसे सुलझ पायेगा।

9.5 भारत-चीन सीमा विवाद

भारत की सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की लम्बाई 15200 किमी० है। इसमें चीन के साथ लगने वाली अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की कुल लम्बाई 3917 किमी है जो कुल स्थलीय सीमा का 25.77 प्रतिशत है। बांग्लादेश के बाद किसी दूसरे राज्य से लगने वाली यह सबसे लम्बी सीमा है। यह सीमा भारत के दो केन्द्रशासित प्रदेशों जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख को, तथा हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम एवं अरुणाचल प्रदेश प्रान्तों को चीन से पृथक करती है। भारत और चीन के मध्य इस सीमा रेखा का विस्तार पश्चिमोत्तर भाग के गिलगिट, हुजा से लद्दाख होते हुए नेपाल के उत्तरी-पश्चिमी सीमा तक और पूर्व में नेपाल के उत्तर-पूर्व से भूटान तक तथा पुनः भूटान के उत्तरी-पूर्वी भाग के अरुणाचल प्रदेश में म्यांमार की सीमा तक है। वस्तुतः यह एक पर्वतीय सीमा है जो तीन खण्डों में विभक्त है— पश्चिमी खण्ड, मध्य खण्ड एवं पूर्वी खण्ड। यह एक परम्परागत सीमा रेखा भी है जिसका निर्धारण चीन, भारत और तत्कालीन तिब्बत की आपसी सहमति से सर्वोच्च पर्वतीय शिखरों को मिलाने वाली रेखा के आधार पर, जल विभाजक रेखाओं के आधारपर परम्पराओं, रीतिरिवाजों और प्रजातीय विशेषताओं के अनुसार तथा पारस्थाकि समझौतों द्वारा किया गया था। वास्तव में मानचित्रों के माध्यम से ही इस सीमा रेखा

का निर्धारण किया गया। इसे वास्तविक धरातल पर कभी अंकित किया ही नहीं गया। एस0 मट (1967) के अनुसार 'भारत-चीन सीमा भूगोल, परम्परा और पारस्परिक समझौतों द्वारा मान्य है। यह कभी धरातल पर अंकित नहीं की गई लेकिन यही परम्परागत सीमा रेखा है जो वास्तव में दोनों देशों की प्रभुसत्ता के नियंत्रण की सीमा है।

9.5.1 भारत-चीन सीमा : ऐतिहासिक सन्दर्भ –

यदि ऐतिहासिक सन्दर्भ में भारत-चीन सीमा विवाद का विश्लेषण करते हैं, तो 1949-1950 में तिब्बत पर चीन के हमले और 1951 में पूरे कब्जे से पहले, तिब्बत पूरी तरह एक स्वतंत्र देश था और भारत तथा चीन के बीच सुरक्षा क्षेत्र जैसा था। (हुसेन 1977) इससे पहले इतिहास में कभी भी, किसी स्थान पर भारत और चीन की सीमा साझी नहीं थी। यही कारण है भारत के 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र होने और चीन के 1 अक्टूबर 1949 में साम्यवादी शासन स्थापित होने तक भारत और चीन के बीच सीमा विवाद नहीं था। वस्तुतः 1912 में जब चीनी गणतंत्र की स्थापना हुई तो ब्रिटिश प्रशासन ने चीन और तिब्बत के साथ 1914 में शिमला में एक सीमा सम्बन्धी समझौता किया। उसके सूत्रधार ब्रिटिश प्रतिनिधि आर्थर हेनरी मैकमोहन थे। यहीं पर परम्परागत रूप से चली आ रही हिमालय के सर्वोच्च शिखरों के अनुसार जल विभाजक रेखा को चीन तिब्बत और भारत के मध्य की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा माना गया इसीलिए इसे मैकमोहन रेखा के नाम से भी जाना जाता है। यही स्थिति 1 अक्टूबर 1949 तक चीन में साम्यवादी शासन स्थापित होने तक बनी रही।

तिब्बत पर कब्जा जमाने के बाद चीन ने तिब्बत को अपनी छावनी की तरह इस्तेमाल करना शुरू किया तब भारत ने इसका कोई प्रतिरोध नहीं किया उलट उसने तिब्बत पर चीन के प्रभुत्व को मान्यता दे दी जिससे उभय प्रतिरोधी राज्य के रूप में तिब्बत का महत्व समाप्त हो गया और चीन भारत की सीमा तक आ पहुंचा और दोनों देशों के मध्यकी सीमा 'छुरी की धार' वाले स्वरूप में परिवर्तित हो गई। 29 अप्रैल 1954 को भारत और चीन दोनों राज्यों ने पंचशील 'नामक पाँच सिद्धान्तों के प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए। इसमें शांति पूर्ण सह अस्तित्व एवं एक दूसरे पर आक्रमण न करने की व्यवस्था तो थी ही, साथ ही यह भी व्यवस्था थी कि भारत तिब्बत पर अपने अपरदेशीय. (extraterritorial) अधिकारों को छोड़ देगा जो ब्रिटिश प्रशासन के दौरान चीन-तिब्बत के साथ 1914 में हुए शिमला समझौते के अन्तर्गत उसे प्राप्त थे। इस तरह से 1954 में पंचशील सिद्धान्त के अन्तर्गत एवं सौहार्द्रपूर्ण वातावरण चीन और भारत के बीच कायम रहा।

9.5.2 सीमा विवाद शुरूवात –

पंचशील समझौते के बाद चीन के प्रति विश्वास के कारण भारत चीन के सीमावर्ती कार्यों की प्रति उदासीन रहा जबकि चीन ने सीमावर्ती क्षेत्रों में चौकी स्थापना एवं सड़क-निर्माण कार्य आदि प्रारंभ कर दिए। इसी क्रम में उसने 17 जुलाई 1954 को उत्तर प्रदेश के साथ लगी सीमा के बारे में मुख्य विरोध किया। इसके बाद 1956 में जिन्जियांका से तिब्बत तक राजमार्ग बनाया। 1958 में लद्दाख क्षेत्र में अक्साईचिन सड़क का निर्माण करके चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रमण किया। भारत-चीन सीमा विवाद उस समय पूरी तरह प्रकाश में आया जब 25 अगस्त 1959 को चीनी सेनाओं ने आक्रमण भारतीय पुलिस चौकी लोंगज (Longju) पर अधिकार कर लिया। विवाद को निपटाने के लिए भारत और चीन ने एक संयुक्त कमीशन नियुक्त और बौद्ध गुरु, दलाई लामा ने तिब्बत से भाग कर भारत में शरण ली। विवाद को निपटाने के लिए भारत और चीन के एक संयुक्त कमीशन नियुक्त किया जिसने ऐतिहासिक, भौगोलिक, परम्परागत, नृजातीय तथा सामाजिक तथ्यों के आधार पर एक प्रतिवेदन तैयार किया। इसमें भी चीन की ओर से गलत तथ्यों को प्रस्तुत किया गया और भारत के अनेक क्षेत्रों पर अधिकार का दावा प्रस्तुत किया गया। अन्ततः चीन ने 20 अक्टूबर 1962 को भारत पर आक्रमण कर भारत के विस्तृत भूभाग पर कब्जा कर लिया। भारत का लगभग 96000 वर्ग किमी क्षेत्र अब भी चीन के कब्जे में है। सारांशतः भारत-चीन सीमा विवाद तीन खण्डों में विभक्त है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

9.5.3 पश्चिमी खण्ड (The Western Sector) –

भारत-चीन सीमा के "पश्चिमी खण्ड में दोनों देशों के मध्य सीमा लगभग 1770 किमी लम्बी है। इसका विस्तार पाक अधिकृत कश्मीर से लेकर द०पू० में लद्दाख तक है। पाक अधिकृत कश्मीर व सिनक्यांग के मध्य यह सीमा 480 किमी० लम्बी है जबकि शेष 1290 किमी सीमा लद्दाख व तिब्बत के मध्य है। इस सीमा का निर्धारण 1665 ई. व 1694 में लद्दाख-तिब्बत समझौते द्वारा किया गया तथा पुनः 1842 ई० डोगरा – लद्दाख

समझौते के द्वारा इसकी पुष्टि की गई। 1846-47 में तत्कालीन चीनी सरकार ने ब्रिटिश सरकार को सूचित किया था कि हमारी 40,000 सीमाएं भलीभाँति स्थापित हैं। 1793 का तिब्बत का प्रकाशित मानचित्र एवं 1868 का कश्मीरी एटलस भी लद्दाख व तिब्बत के मध्य प्रामाणिक सीमा रेखा को दर्शाता है जिसमें कश्मीर का हुंजा क्षेत्र भारत का भू-भाग है जिसे पाकिस्तान ने अनधिकृत रूप से कब्जे में कर 2 मार्च 1963 को चीन को हस्तांतरित कर दिया।

भारत-चीन सीमा के इस पश्चिमी खण्ड में सीमा विवाद की जड़ अक्साई चीन (Aksai Chin), चंगमो घाटी (Changamo Valley), पनगोंग (Pangong Tso) तथा पूर्वी लद्दाख के सहारे लगभग 5000 वर्ग किमी० की पट्टी है जिसपर चीन अपना दावा करता है। वर्तमान स्थिति यह है कि अक्साई चीन का लगभग 38000 वर्ग किमी० भू-भाग चीन के कब्जे में है। अक्साई चीन जम्मू-कश्मीर के उत्तर-पूर्व में विस्तृत वह विशाल निर्जन इलाका है जिस पर भारत का अपना दावा है लेकिन नियंत्रण चीन का है। इस पर चीन ने सिनफ्यांग- लासा उच्चमार्ग निर्मित कर लिया है और इस क्षेत्र को वह किसी भी स्थिति में छोड़ने को तैयार नहीं है। कराकोरम दर्रे के पश्चिम में 5000 वर्ग किमी भू-भाग पाकिस्तान ने चीन को दिया हुआ है जहाँ चीन सामरिक रूप से महत्वपूर्ण गिलगिट- बाल्टिस्तान क्षेत्र पर चीन अपना वर्चस्व बढ़ा रहा है। वह इन क्षेत्रों में सड़कों एवं रेल सम्पर्कों का जाल बिछा रहा है सिर्फ इसलिए की इस क्षेत्र में भी उसकी पहुँच भारत तक आसान हो सके भारत-चीन सीमा के पश्चिमी खण्ड में चीन ने इस प्रकार अब तक भारत वर्ष के बड़े भू-भाग पर अपना कब्जा कर रखा है जिसमें से 37555 वर्ग किमी० भू-भाग अकेले लद्दाख का है। सीमा-रेखा के इस खण्ड में चीन द्वारा अधिकृत सीमा इस समय वास्तविक नियंत्रण रेखा (Line of Actual Control- LoAc) से 16 से 240 किमी० पश्चिम में स्थित है।

9.5.4 मध्यखण्ड (The Central Sector) –

इस क्षेत्र में भारत-चीन सीमा जल विभाजकों के सहारे लद्दाख से नेपाल तक लगभग 625 किमी० की लम्बाई में विस्तृत है। भारत के दो प्रान्त क्रमशः हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड मध्य खण्ड की इस सीमा रेखा से चीनी तिब्बत से पृथक होते हैं। हिमाचल प्रदेश में यह पारम्परिक सीमा पारा चू एवं स्वीति नदियों के बीच जल विभाजक के सहारे चलती है और सतलुज नदी की पूर्वी एवं पश्चिमी सहायक नदियों के बीच जल विभाजक तथा फैली है। उत्तराखण्ड में यह सीमा एक ओर सतलुज और काली तथा दूसरी ओर अलकनंदा एवं भागीरथी (जघांगा) नदियों के बीच जल विभाजक द्वारा निर्धारित है। चीन इस मध्यवर्ती सीमा खण्ड में बारा होती, निलांग – जदहांग, लपथल, शिपकीलादर्रा, संग, तसुंगसा आला क्षेत्रों के लगभग 2000 वर्ग किमी० भू-भाग पर अपना दावा व्यक्त करता है। इन सभी क्षेत्रों का प्रशासन एवं कर वसूली आदि का अधिकार भारत के पास है। वस्तुतः इन क्षेत्रों पर चीन का दावा न तो ऐतिहासिक है, न परम्परागत है और नही कानूनी है कारण कि सीमा के इस खण्ड को ब्रिटिश सरकार एवं तिब्बत के 1899 और 1919 के समझौतों द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसके बावजूद भी बारा होती दर्रा तथा कुछ अन्य भू-भाग पर चीन 1962 के युद्ध के बाद से अपना नियंत्रण बनाए हुए है।

9.5.5 पूर्वीखण्ड (The Eastern Sector) –

भारत-चीन सीमा का यह खण्ड दो उपखण्डों में विभक्त है। प्रथम सिक्किम के साथ लगी तिब्बत की सीमा। जिसे चुम्बी घाटी क्षेत्र कहा जाता है। सामरिक व भू-राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस क्षेत्र में सीमा रेखा की लम्बाई 225 किमी० है। द्वितीय उपखण्ड की सीमा 1140 किमी० की लम्बाई में भूटान के पूर्वी छोर से प्रारंभ होकर भारत, तिब्बत एवं म्यांमार (बर्मा) के मिलन स्थल पर, तालू दर्रे तक विस्तृत है। 1140 किमी० लम्बी इसी सीमा रेखा की मैक मोहन रेखा कहते हैं जिसे ब्रिटिश, चीनी तथा तिब्बत के प्रतिनिधियों द्वारा 1913-14 में शिमला समझौते के अर्न्तगत स्वीकार किया गया था। हेनरी मैक मोहन (Mc Mahon) ब्रिटिश प्रतिनिधि थे जिन्होंने उक्त शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। अतः उन्हीं के नाम पर इस सीमा रेखा का नाम करण किया गया था। यह सीमा रेखा ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी जल विभाजक और हिमालय के सर्वोच्च शिखरों के सहारे निर्धारित है केवल उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ लोहित, दीहांग, सुवन्सीरी एवं केमांग नदियाँ इस जल विभाजक को काटती है।

भारत-चीन के मध्य की यह सीमा रेखा काफी विवादास्पद है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस सीमा का भूमि पर अंकन नहीं किया गया। यहाँ चीन अरुणाचल प्रदेश के 90000 वर्ग किमी० क्षेत्र पर अपना दावा कर उसे अपना मानता है। यहाँ समझना जरूरी है कि आज के अरुणाचल (तब का नेफा NEFA) का तवांग क्षेत्र मैक मोहन द्वारा खींची गई रेखा के दक्षिण में होता था। विडंबना यह है कि चीन मैकमोहन रेखा को भी स्वीकार करने

को तैयार नहीं है। वह उसे अवैध मानता है। इस सन्दर्भ में चीन और भारत दोनों राज्यों के अपने-अपने तर्क हैं।
चीनी पक्ष के तर्क –

चीन का तर्क है कि चूँकि तिब्बत चीन का हिस्सा है, इसलिए उसकी संस्कृति से मेल खाता अरुणाचल भी उसका हिस्सा है। उसका कहना है कि तिब्बत से जुड़े अरुणाचल के तवांग क्षेत्र में छठे दलाईलामा सेयांग ग्यात्सो पैदा हुए थे। उसका यह भी तर्क है कि चूँकि 1914 के शिमला समझौते के तहत इस इलाके को भारत में शामिल करने से पहले तक वहां से तिब्बत को टैक्स जाता था, इसलिए यह तिब्बत का हिस्सा है। ध्यातव्य है कि चीन के सरकारी प्रकाशनों में अरुणाचल प्रदेश के लिए 'दक्षिणी तिब्बत' का प्रयोग किया जाने लगा है। उनमें छपने वाले लेखों में बीजिंग से पूछा जाता है कि वह दक्षिणी तिब्बत को भारत से कब मुक्त कराएगी विस्तृत: चीन की मान्यता है कि अरुणाचल प्रदेश पर भारत के साथ 'विवाद' एक 'अकाट्य तथ्य' है।

भारतीय पक्ष के तर्क –

भारतीय पक्ष का पहला तर्क यह है कि 1949 में चीनी गणराज्य के अस्तित्व में आने के पहले तिब्बत एक स्वतंत्र देश था। 1913 के बाद से तो था ही। दूसरा तर्क यह है कि पिछले 2000 साल से ज्यादा लम्बे इतिहास में अरुणाचल प्रदेश समेत 3917 किमी० लम्बी भारत-तिब्बत सीमा पर एक दिन के लिए भी एक इंच जगह पर न तो कोई चीनी सैनिक तैनात था और न टैक्स उगाहने वाला कोई चीनी कारिदा। इस सीमा पर तो चीन की करेंसी या चीनी डाक का चलन था और न किसी तरह का कोई चीनी कानून यहाँ लागू था। तीसरा तर्क यह है कि 1914 की शिमला संधि में भारत (ब्रिटिश भारत), तिब्बत और चीन अलग-अलग देशों के तौर पर शामिल हुए थे। उस संधि में तत्कालीन तिब्बत सरकार ने अरुणाचल प्रदेश (तब नेफा) को भारत का हिस्सा स्वीकार किया था और चीन ने इस पर कोई आपत्ति दर्ज नहीं कराई थी। एक तर्क यह भी है कि अरुणाचल प्रदेश के किसी भी जाति की चीनी जातियों से कोई समानता नहीं है। हालांकि मोन्पा जनजाति के लोग सीमा के दोनों ओर रहते हैं, उनकी संस्कृति भी समान है। लेकिन तिब्बती मोन्पाओं का चीन से रिश्ता उपनिवेशवादी गुलामी से ज्यादा कुछ नहीं है। भारत का यह भी कहना है कि अगर सचमुच अरुणाचल चीन का हिस्सा है तो 1962 के युद्ध में तवांग पर कब्जा करने के बाद भी उसने इसे भारतीय क्षेत्र मानकर खाली क्यों कर दिया था।

स्पष्ट है कि अरुणाचल प्रदेश पर कब्जा जमाने के लिए चीन झूठ का सहारा ले रहा है। आज की तारीख में सिक्किम-तिब्बत सीमा को छोड़कर लगभग पूरी भारत-चीन सीमा विवादित है। चीन की उदासीनता की वजह से दोनों देशों के बीच सीमा-विवाद ज्यों का त्यों बना हुआ है। उसके असंवेदनशील रुख के कारण 1976 से चल रही बातचीत किसी तार्किक नतीजे पर नहीं पहुंची है। उसके रुख को देखते हुए यह कहना गलत नहीं होगा कि वह सीमा विवाद को सुलझाने के बजाय उलझाये रखना चाहता है। यह कोई छिपी बात नहीं है कि सीमा विवाद को वह भारत के खिलाफ दबाव के हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है। वह सीमा विवाद में भारत को उलझाये रखकर उसका चारों ओर से भू-रणनीतिक घेराव करने में व्यस्त है।

9.6. भारत-भूटान सीमा (India-Bhutan Boundary)

भारत-भूटान सीमा 587 किमी० लम्बी है, जो भारतीय प्रान्तों असम, अरुणाचल प्रदेश, प० बंगाल, और सिक्किम को जोड़ती है। दोनों राज्यों के मध्य सीमा का निर्धारण 1865 में सांचुला में हस्ताक्षरित सन्धि के अधीन किया गया है। भूटान एवं तिब्बत (चीन) सीमा हिमालय के शिखरों एवं जल विभाजकों के सहारे निर्धारित है। चीन इस क्षेत्र में 775 वर्ग किमी० क्षेत्र पर दावा करता है। हाल के वर्षों में चीनी सेना गतिरोध भारत-चीन-भूटान ट्राइजंकषन में टकराव का एक प्रमुख कारण था। ऐसे किसी विवाद के बढ़ने से भारत-भूटान सम्बन्धों में तनाव आ सकता है। वस्तुतः भारत के उत्तरी-पूर्वी छोर पर स्थित भूटान एक मात्र राज्य है जिसकी विदेश और रक्षानीति का संचालन भारत करता है। भारत के सुरक्षा परिवेश में भूटान का महत्व बेशकीमती है क्योंकि यह चीन और भारत के बीच 'बफर स्टेट' के रूप में अवस्थित है। भूटान से राजनयिक सम्बन्ध नहीं होने के बावजूद चीन उसकी भौगोलिक स्थिति का फायदा उठाकर अरुणाचल प्रदेश सहित भारत के उत्तरी-पूर्वी प्रान्तों पर शिकंजा कसना चाहता है। भूटान भी उत्तरी सीमा को लेकर चीन से उसका विवाद चल रहा है जिसे सुलझाने के लिए पिछले 25-30 वर्षों से दोनों के बीच वार्ता चल रही है। भूटान की इस उत्तरी सीमा का पश्चिमी भाग सिक्किम से लगा है जबकि पूर्वी इलाका अरुणाचल प्रदेश से मिलता है। चीन इन दोनों इलाकों को हथियाने की फिराक में है और इसकी एवज में वह भूटान को सीमा का मध्यवर्ती क्षेत्र देने की पेशकश करता है। अगर ऐसा हो गया तो न केवल

अरुणाचल प्रदेश खतरे में पड़ जायेगा बल्कि भारत के उत्तरी-पूर्वी प्रान्तों को भारत की मुख्य भूमि से जोड़ने वाला 'सिलीगुड़ी गलियारा' भी चीन के रहमो करम पर आ जाएगा। भारत इस सौदे के सख्त खिलाफ है।

9.7 "भारत— अफगानिस्तान सीमा (India - Afghanistan Boundary)"

भारत अफगानिस्तान के साथ 106 किमी० स्थलीय सीमा को साझा करता है। यह सीमावर्ती क्षेत्र वर्तमान में पाक अधिकृत कश्मीर (PoK) का हिस्सा है। वस्तुतः यह डूरंड रेखा है जिसे ब्रिटिश हुकूमत ने सर डूरंड के नेतृत्व में 1883 में तत्कालीन अफगान शासन अब्दुल रहमान के साथ एक सीमा समझौते के अन्तर्गत अविभाजित भारत और अफगानिस्तान के बीच निर्धारित की थी।

9.8 "भारत— नेपाल सीमा विवाद (India – Nepal Border Dispute)"

भारत और नेपाल के बीच खुला हुआ अन्तर्राष्ट्रीय सीमान्त हैं जहाँ 1752 किमी० सीमा के दोनों तरफ 10 गज का आकर्षित क्षेत्र छोड़ा गया है। इस सीमान्त से भारत के पाँच प्रान्त सिक्किम, पं० बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड जुड़े हैं। भारत और नेपाल के बीच मुख्य रूप से कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा क्षेत्रों को लेकर सीमा विवाद है। नेपाल का दावा है कि महाकाली नदी के पूर्वी हिस्से में स्थित ये क्षेत्र 1816 की सुगौली संधि के तहत नेपाल के अभिन्न हिस्से हैं। संधि के तहत नदी के पश्चिमी हिस्से को भारत का इलाका माना गया था भारत के खिलाफ सीमा विवाद लेकर ऐतिहासिक सबूत जुटाने के लिए जून 2020 में नेपाल सरकार ने एक कमेटी का गठन किया जिसकी रिपोर्ट नेपाल सरकार को सौंप दी गई है। रिपोर्ट सौंप जाने के बाद नेपाल सरकार ने आधिकारिक रूप से एक नवीन मानचित्र जारी किया हैं जिसमें उत्तराखण्ड के कालापानी, लिपिया धुरा और लिपुलेख को अपने संप्रभु क्षेत्र का हिस्सा दिखाया है। भारत के अनुसार यह क्षेत्र उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले का हिस्सा है, जब कि नेपाल इस क्षेत्र को धरचूला इसी तरह उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों की सीमापर अवस्थित 'सुस्ता क्षेत्र' को भी नेपाल द्वारा अपने नवीन मानचित्र में शामिल किया गया है। नेपाल का कहना है कि भारत ने इस क्षेत्र पर अतिक्रमण किया है। वस्तुतः सुस्ता क्षेत्र बिहार में वाल्मीकि टाइगर रिजर्व की उत्तरी सीमा पर अवस्थित एक गांव है जहाँ 265 से अधिक परिवार निवास करते हैं और खुद को नेपाल से संबन्धित मानते हैं। विवाद का कारण गंडक नदी के बदलते मार्ग को माना जाता है। वर्तमान में यह क्षेत्र भारत द्वारा नियंत्रित है। इन दो सीमा विवादों के अलावा भारत और नेपाल के बीच अन्य कोई बड़ा सीमा विवाद नहीं है। लगभग 98% सीमा की पहचान व उसके मानचित्र पर सहमति बन चुकी है। शेष उक्त सीमा विवाद को बातचीत के माध्यम से सुलझाने की प्रक्रिया चल रही है।

9.9 भारत— म्यांमार सीमा

भारत और म्यांमार दोनों देश आपस में 1458 किमी० लम्बी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा साझा करते हैं और सीमा से 16 किमी तक 'मुक्त विकास' प्रणाली प्रदान करते हैं। यह सीमा रेखा भारत—चीन— म्यांमार के त्रिसंगम से शुरू होकर अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, होती हुई मिजोरम के दक्षिणी छोर तक विस्तृत है। प्राकृतिक विशेषज्ञों के सहारे निर्मित इस सीमा का निर्धारण 1926 में युंदाबू (Yundaboo) संधि के अन्तर्गत किया गया था। लगभग 870 किमी० लम्बी सीमा लघु जल विभाजकों के सहारे और एक तिहाई सीमा नदियों के मध्यरेखा के समानान्तर स्थित है। सीमा का शेष भाग सीमा—स्तंभों के बीच सीधी रेखा के सहारे विस्तृत है। सीमा का विधिवत सीमांकन 10 मार्च 1967 को एर द्विपक्षीय समझौते के अन्तर्गत पूर्ण कर लिया गया है 1970 में जोनों देशों के बीच फ्री मूवमेंट का एग्रीमेन्ट हुआ था जिसे फ्री मूवमेंट रिजीम यानी FMR कहा जाता है।

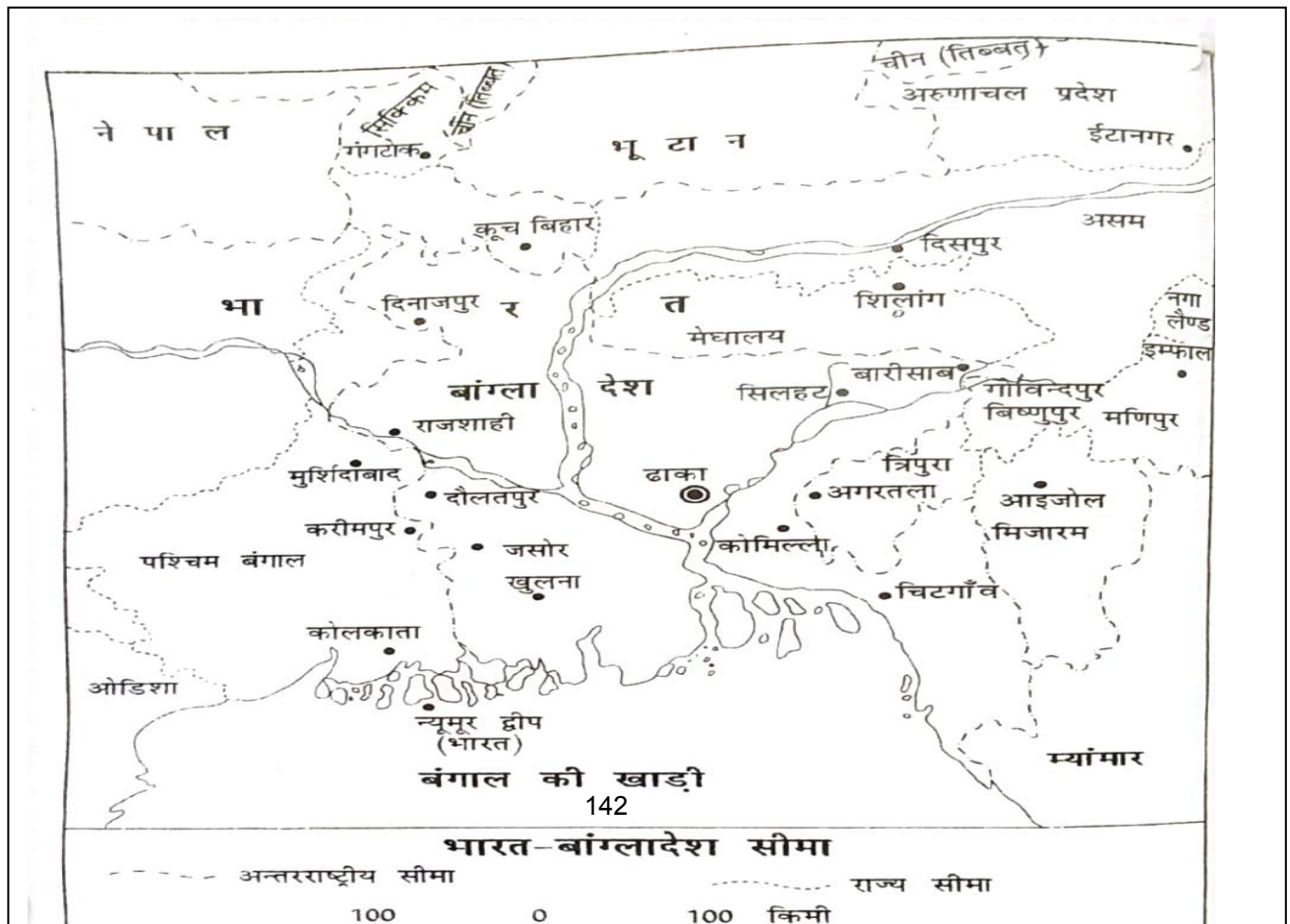
वर्तमान में भारत और म्यांमार के बीच सौहाद्रपूर्ण सम्बन्ध है और भारत—म्यांमार के बीच सीमा रेखा सम्बन्धित कोई विवाद नहीं है। तथापि भारत—म्यांमार के बीच सीमा रेखा सम्बन्धित मणिपुर विवाद नहीं है। तथापि भारत—म्यांमार सीमा के मणिपुर क्षेत्र पर 9 अनसुलझे हीमा खंभे (पिलर) हैं। दोनों देशों के सर्वेक्षण विभाग सीमांकन करने की प्रक्रिया में हैं और मुद्दे का समाधान कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने भारत म्यांमार के बीच सीमा पर बाड़ लगाने का फैसला किया है। कुल सीमा में से मणिपुर के मोरेह में स्थित 10 किमी० की दूरी वाले हिस्से में पहले से ही बाड़ लगाई जा चुकी है। बेहतर ढंग से सीमा निगरानी के लिए बाड़ के साथ—साथ एक पेट्रोलिंग ट्रैक भी बनाया जा रहा है।

9.10 भारत-श्रीलंका समुद्री सीमा विवाद

भारत श्रीलंका से 64 से 1371 किमी० चौड़ी तथा 136 लम्बी पाक जलसंधि (Palk strait) द्वारा अलग किया जाता है। इसकी न्यूनतम गहराई 9.1 किमी० से कम है। भारत का धनुष कोडि (तमिलनाडु) श्रीलंका के तलाई मन्नार से केवल 32 किमी० दूर है। इन दोनों 'के मध्य एक उपदीपो' (islets) की श्रृंखला है जिसे आदम का पुल (Adam's Bridge) कहा जाता है। यह एक समुद्री विवाद अनसुलझा है। दोनों देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री सीमा को परिभाषित करने के लिए भारत और श्रीलंका के बीच 1974 और 1976 में भारत-श्रीलंका समुद्री सीमा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे। कानून प्रवर्तन और संसाधन प्रबंधन को सुगम बनाने के लिए और पानी में संघर्ष से बचने के लिए समुद्री सीमा पर संधियाँ आवश्यक थी क्योंकि दोनों देश हिन्द महासागर में विशेष रूप से पाक जलडमरूमध्य में स्थित है। पहला समझौता आदमपुल (Adam's Bridge) और पाक जलडमरूमध्य के बीच जल में समुद्री सीमा के सम्बंध में था जो 8 जुलाई 1974 को लागू हुआ। दूसरा समझौते में जिस पर 23 मार्च को हस्ताक्षर किए गए और 10 मई 1976 को लागू हुआ, म्यामार की खाड़ी में चि- जंक्शन विन्दी के लिए निर्धारण के लिए एक और समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। सारांशतः यह एवं शांत समुद्री सीमा है, परन्तु कभी-कभी दोनों देशों के मछुआरों के बीच मत्स्य क्षेत्र सम्बन्धी मामूली विवाद उत्पन्न हो जाते हैं।

9.11 भारत-बांग्लादेश सीमा विवाद (India-Bangladesh Border dispute)

भारत-बांग्लादेश सीमा, जिसे स्थानीय रूप से रेडक्लिफ लाइन के रूप में जाना जाता है, बांग्लादेश और भारत के गणराज्यों के बीच चलने वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है जो बांग्लादेश और भारतीय राज्यों के आठ डिवीजनों का सीमांकन करती है। यह सीमा 4096 किमी० लम्बी है जिसमें असम भी 262 किमी० त्रिपुरा की 856 किमी०, मिजोरम की 318 किमी०, मेघालय की 443 किमी०—और पश्चिम बंगाल की 2217 किमी सीमाएं शामिल हैं। यह दुनियाँ की पाँचवी सबसे लम्बी भूमि सीमा है जो 1947 में भारत के विभाजन के बाद रेडक्लिफ रेखा के रूप में भारत और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के बीच की सीमा रेखा थी, और 1971 में बांग्लादेश की मुक्ति के बाद यही रेखा भारत और बांग्लादेश के बीच की सीमा बन गयी। (चित्र संख्या 9.2) सीमा के छोटे-छोटे सीमांकित हिस्सों पर दोनों तरफ बाड़ लगाई गई है और कई जगहों पर सीमा स्तंभ दोनों राज्यों के बीच की सीमा को चिन्हित करते हैं। सीमा पर एक संकीर्ण पट्टी है जिसे 'सिलीगुड़ी कॉरिडोर' के नाम से जाना जाता है। 1958 में हुए नेहरू-नून विचार-विमर्श के माध्यमों इस सीमा से जुड़ी कई समस्याओं को हल करने का प्रयास किया गया।



बांग्लादेश सीमा से सम्बन्धित अतिव्यापी दावों के पाँच क्षेत्र रहे हैं :-

- (1.) राजशाही (बांग्लादेश) और मुर्शिदाबाद (भारत), जहाँ गंगा नदी के बहाव में बार-बार परिवर्तन होते हैं। इस सम्बन्ध में अधिनिर्णय (**award**) के बाद जिले की उत्तरी सीमा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मान लिया गया।
- (2.) करीम पुर (भारत) और दौलपुर (बांग्लादेश) क्षेत्र। इस सम्बन्ध में रेडक्लिफ अधिनिर्णय को संशोधित कर सीमा को गंगा नदी के मध्य भाग से निर्धारित कर दिया गया। इससे बांग्लादेश को 13 वर्ग किमी० क्षेत्र का लाभ हुआ।
- (3.) सिलहट (बांग्लादेश) और गारो, खासी एवं जयंतिया पहाड़ियों के बीच स्थित क्षेत्र सघन वनाच्छादित क्षेत्र होने के कारण यहाँ सीमा निर्धारण भूमि पर संभव नहीं था। इसलिए यहाँ रेडक्लिफ अधिनिर्णय को माना गया और भारत के दावे की पुष्टि हुई।
- (4.) बारी सारी (बांग्लादेश) और गोविन्दपुर (भारत) के बीच स्थित मेघालय राज्य का परिदीवाह गाँव।
- (5.) विवादित क्षेत्र बेरुबारी का आधा भाग (लगभग 22.7 वर्ग किमी० क्षेत्र) विवाचन अधिनिर्णय के तहत बांग्लादेश को दे दिया गया।

9.11.1 एन्क्लेव समस्या -

भारत-बांग्लादेश के बीच सीमाओं को लेकर जो सबसे प्रमुख समस्या थी वह ऐसे गाँवों की थी जो पूरी तरह से एक-दूसरी रियासतों से घिरे थे। इन्हें एन्क्लेव (छिट्टमहल) कहते थे। रोचक बात यह थी कि उनमें कुछ सब-एन्क्लेव भी थे, यानी एक रियासत के अन्दर जो दूसरे रियासत की जमीन थी, उसके अन्दर भी एक छोटा टुकड़ा पहली रियासत का था। दोनों रियासतों में इस तरह के एन्क्लेव और सब एन्क्लेव लगभग 162 से अधिक थे। यह समस्या 1947 से बनी हुई थी।

वर्ष 2015 में भारत और बांग्लादेश के बीच सीमा का पुनर्निर्धारण किया गया जिसमें 'दहाग्राम एन्क्लेव' को छोड़कर सारे एन्क्लेव समाप्त कर दिए गए और 17160 एकड़ क्षेत्र में बसी 162 बस्तियों की भारत और बांग्लादेश के बीच अदला-बदली हुई। 10050 एकड़ क्षेत्र में बसी 111 भारतीय बस्तियां बांग्लादेश का हिस्सा बनी। उनमें 36 पंचागढ़, 4 निलफ मडी 59 लाल मोनिरहट और 12 कुरीग्राम में हैं और 7110 एकड़ क्षेत्र से बसी 51 बांग्लादेशी बस्तियां भारतीय सीमाई क्षेत्र में शामिल हो गईं उनमें 4 जलपाई गुडी और 47 कुच बिहार में हैं और इसके साथ ही दुनिया के सर्वाधिक पेंचीदा सीमाई मुद्दों में शामिल इस समस्या को दोनों देशों की आपसी सहमति से सुलझा लिया गया जो पिछले सात दशकों से अटकी पड़ी थी। इस पूरे कार्य को 06 जुलाई से 16 जुलाई 2015 के बीच 75 टीमों ने अंजाम दिया। इस सर्वे की अवधि में भारतीय और बांग्लादेशी सरकारों के 30 पर्यवेक्षक बस्तियों में मौजूद थे।

9.11.2 दहाग्राम एन्क्लेव एवं तीन बीघा कॉरिडोर -

'दहाग्राम एन्क्लेव' जो 2 किमी० लम्बा और 2 किमी चौड़ा है। इसमें बांग्लादेश के कई गाँव हैं जो चारों तरफ से भारत से घिरे हैं। इस एन्क्लेव से बांग्लादेश की मुख्य भूमि केवल 200 मीटर दूर है। 200 मीटर का यह टुकड़ा भारत में है। दोनों देशों के आपसी सहयोग से 200 मीटर लम्बे इस हिस्से (178×85 वर्गमीटर) को एक कॉरिडोर बना रखा है, ताकि दहाग्राम एन्क्लेव के निवासी बिना किसी समस्या के अपने देश में आवागमन कर सकें। इसी 200 मीटर लम्बे कॉरिडोर को जिसे 2011 में एक समझौते के तहत भारत ने 99 सालों के लिए बांग्लादेश को लीज पर दिया है तीन बीघा कारिडोर' कहते हैं'। यहाँ दो सड़कें एक दूसरे को 90 डिग्री पर काटती हैं। एक सड़क भारत के कूच बिहार और कुचलीबाड़ी को जोड़ती है, तो दूसरी सड़क बांग्लादेश के रंगपुर व दहाग्राम एन्क्लेव को जोड़ती है। यहाँ सीमा सुरक्षा बल की कड़ी निगरानी रहती है, ताकि एक देश के नागरिक दूसरे देश में न चले जाएं।

9.12 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि जहाँ पड़ोसी राज्यों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होते हैं, वहाँ सीमाएं राजनीतिक रूप से शान्त रहती हैं; लेकिन जहाँ राज्यों के मध्य शत्रुतापूर्ण

सम्बन्ध होते हैं, वहाँ सीमाएं 'छुरी की धार' वाले स्वरूप में परिवर्तित होकर सक्रिय हो जाती है। भारत के दो पड़ोसी राज्य पाकिस्तान और चीन भारत से शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध रखते हैं, परिणामतः इन दोनों देशों के साथ भारत के सीमा सम्बन्धी विवाद बेहद जटिल एवं गहरे हैं। आप ने इस इकाई के अध्ययन से यह भी समझ लिया होगा कि चीन और पाकिस्तान के अलावा शेष देशों के साथ भारत के अन्तर्राज्य सीमा विवाद या तो हल हो चुके हैं या फिर समाधान के काफी करीब है।

9.13 शब्द सूची

अन्तर्राज्य	Inter- State	अध्यारोपित	Superimposed
स्थल-आवृत सागर	Land-Locked Sea	विवाद	Dispute
अपरदेशीय	Extraterritorial	खण्ड	Sector
उपद्वीप	Islet	आदम का पुल	Adam's Bridge
अधिनिर्णय	Award	पाक जलसंधि	Palk Strait

9.14 स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न :-

1. सर क्रीक विवाद किन दो देशों के मध्य में है?

(अ) भारत-म्यांमार (ब) भारत-भूटान (स) भारत-नेपाल (द) भारत-पाकिस्तान

2. कच्छ के रन का विवाद किन दो देशों के मध्य में है?

(अ) भारत-चीन (ब) भारत-पाकिस्तान (स) भारत-म्यांमार (द) भारत-भूटान

3. पर्वतारोहियों ने किस स्थान को 'Third Pole' की संज्ञा दी है?

(अ) लद्दाख (ब) एवरेस्ट शिखर (स) सियाचिन ग्लेशियर (द) केदारनाथ

4. पंचशील समझौता किन दो देशों के बीच हुआ था?

(अ) भारत-चीन (ब) भारत-बांग्लादेश (स) भारत-श्रीलंका (द) भारत-अफगानिस्तान

5. दहाग्राम एन्क्लेव किस देश का भूखण्ड है?

(अ) भूटान (ब) बांग्लादेश (स) चीन (द) नेपाल

आदर्श उत्तर :-

1. (द); 2. (ब); 3. (स); 4. (अ); 5. (ब)

9.15. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Bhat, S., (1967) : 'India and China', New Delhi.

Holdich, Sir T.H., (1916) : 'Political Frontiers and Boundary Making', London, Macmillan.

Hussain, T. Karki, (1977) : 'Sino-Indian Conflict and International Politics in the Indian Sub-

9.16 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. भारत कितने देशों से अपनी स्थलीय सीमा साझा करता है?
2. सरक्रीक विवाद क्या है?
3. सियाचिन ग्लेशियर विवाद पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. एन्क्लेव समस्या पर लेख लिखिए।
5. 'तीन बीघा कॉरीडोर' के विषय में बताइए।

इकाई-10 निर्वाचन भूगोल का अर्थ, उद्देश्य एवं प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 प्रस्तावना
- 10.1 उद्देश्य
- 10.2 विषय प्रवेश
- 10.3 निर्वाचन भूगोल
- 10.4 निर्वाचन भूगोल का संकल्पनात्मक विकास
- 10.5 निर्वाचन भूगोल के अध्ययन में निहित परिदृष्टियाँ
- 10.6 निर्वाचन भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा तथा विषय क्षेत्र
- 10.7 निर्वाचन भूगोल का उद्देश्य
- 10.8 निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता
- 10.9 सारांश
- 10.10 शब्दसूची
- 10.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 10.13 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

10.0 प्रस्तावना

‘राजनीतिक भूगोल के पाठ्यक्रम की यह दसवीं इकाई है। इस इकाई में आप निर्वाचन भूगोल का अर्थ, उद्देश्य एवं उसकी प्रासंगिकता का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः आधुनिक राजनीति एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है जिसमें सत्ता प्राप्ति का एकमात्र रास्ता निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ता है। यही कारण है कि राजनीतिक के अध्ययन की अन्य शाखाओं के समान ही राजनीतिक भूगोल में भी निर्वाचन प्रक्रिया निर्वाचन परिणामों का अध्ययन, अनुशीलन एवं विश्लेषण एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी होने के नाते आपके लिए निर्वाचन भूगोल का अध्ययन आवश्यक है, कारण कि निर्वाचन प्रक्रिया सत्ता प्राप्ति का प्रथम सोपान मानी जाती है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न लिखित हैं—

1. एक स्वतंत्र विषय के रूप में निर्वाचन भूगोल की महत्ता से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
2. निर्वाचन भूगोल के संकल्पनात्मक विकास की रूपरेखा से उन्हें अवगत कराना।
3. निर्वाचन भूगोल के संकल्पनात्मक आधारों को स्पष्ट कराना।
4. निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य उन्हें बताना।
5. वर्तमान राजनीतिक सन्दर्भों में निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

10.2 विषय प्रवेश

राजनीति एक सत्ता केन्द्रित प्रक्रिया है और सत्ता प्राप्ति के लिए ‘संघर्ष’ राजनीति का एक स्वाभाविक गुण है। राजनीति का यह स्वाभाविक गुण आज अपने विकसित स्वरूप में ‘लोकतांत्रिक’ संघर्ष का रूप धारण कर चुका

है। कुछ अपवादों को छोड़कर आज वैश्विक स्तर पर यह धारणा बन गई है कि 'लोकतांत्रिक मतदान' के आधार पर ही राज्य भी सत्ता का अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह आधुनिक राजनीति एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है, जिसमें सत्ता प्राप्ति का एक मात्र रास्ता निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ता है (दीक्षित, 2000)। दूसरे शब्दों में निर्वाचन प्रक्रिया, जिसमें मतदाता अपना मत मतपेटी में स्वयं डालता है तथा प्रत्येक मत विजय अथवा पराजय की दृष्टि से समान महत्व का होता है, सत्ता प्राप्ति का प्रथम सोपान है। यही कारण है कि राजनीतिक अध्ययन की सभी शाखाओं अर्थात् राजनीतिक भूगोल में भी निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन परिणामों का अध्ययन, अनुशीलन एवं विश्लेषण एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। राजनीतिक भूगोल में इसका अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे सम्बन्धित राज्य की सम्पूर्ण जनसंख्या के प्रतिनिधित्व के परिणाम होते हैं और वहाँ थी जनसंख्या के राजनीतिक-भौगोलिक निर्णयों को प्रतिबिम्बित करते हैं तथा चुने हुए प्रतिनिधि को प्रकारान्तर से क्षेत्र विशेष की भौगोलिक-आर्थिक समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करते हैं। सारांशतः निर्वाचनों का भौगोलिक अध्ययन आज राजनीतिक भूगोल का प्रमुख अंग है, यद्यपि कि 'निर्वाचन भूगोल' को स्वयं एक विषय के रूप में स्थापित होने का गौरव प्राप्त है।

10.3 निर्वाचन भूगोल

'निर्वाचन भूगोल' (Electoral Geography) जिसे 'राजनीतिक स्वेच्छा का भूगोल' (Electoral of Political Choice) भी कहा जाता है, आज राजनीतिक भूगोलविदों का अध्ययन अभिरुचि के केन्द्र में है और इसका सर्वप्रमुख कारण है, सांख्यिकीय सूचनाओं की उपलब्धता जो शोधकर्ता की सहजता एवं सरलता से अपने मौलिक रूप में प्राप्त हो जाते हैं यद्यपि कि निर्वाचनों का अध्ययन समाजविज्ञान एवं राजनीतिक विज्ञान में भी प्रचलित है, लेकिन उन अध्ययनों में क्षेत्रीय सन्दर्भ (Spatial Context) का अभाव मिलता है: जब कि राजनीतिक भूगोल में निर्वाचनों का अध्ययन भूवैज्ञानिक संगठन में समाहित होता है जिसमें चुनी हुई लोकतांत्रिक सरकार निर्वाचकों के निर्णय के अनुसार उनकी अपेक्षाओं को ध्यान में रख कर ही सांस्कृतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक भदृश्यों में परिवर्तन करती है। इस तरह से निर्वाचन भूगोल की अध्ययन परिदृष्टि राजनीति एवं समाज वैज्ञानिकों की परिदृष्टि से भिन्न होती है।

10.4 निर्वाचन भूगोल का संकल्पनात्मक विकास

राजनीतिक भूगोल की एक विशिष्ट उपशाखा के रूप में निर्वाचन भूगोल के संकल्पनात्मक स्वरूप के विकास का इतिहास मात्र 65 वर्ष पुराना है जब जे० आर० वी० प्रेस्कॉट ने 1959 में 'Annals, Association of American Geographers (Vol.49)' में प्रकाशित अपने लेख, The Functions and Methods of Electoral Geography में पहली बार निर्वाचन भूगोल की संकल्पना, विधितंत्र और राजनीतिक भूगोल में इसके महत्व आदि का विस्तार विवरण प्रस्तुत किया। यद्यपि कि निर्वाचन परिणामों के क्षेत्रीय प्रारूप का छिट-पुट प्रतीकात्मक अध्ययन विद्वान लम्बे समय से करते रहे हैं जिनमें सर्व प्रथम प्रयासकर्ता के रूप में फ्रांसीसी समाज शास्त्री, भूगोलविद् एवं राजनीतिशास्त्री आन्द्रे सीगफ्रीड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने 1913 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Tableau Poltiqu de la France de L'oueste' (A. Colin, Paris) में पहली बार फ्रांस के निर्वाचन भूगोल के विविध पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत किया। आन्द्रे सीगफ्रीड (1913) से लेकर जे० आर० वी० प्रेस्कॉट (1959) तक निर्वाहन और उसकी पद्धतियों पर कई लेख एवं पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, यथा— ब्रिटिश भूगोलवेत्ता एडवर्ड फ्रेमील का 'ज्योग्राफिकल रिव्यू के मार्च 1916 के अंक पत्र-2 में प्रकाशित लेख Geographical Influences in British Elections (ब्रिटिश निर्वाचनों पर भौगोलिक प्रभाव):

- अमेरिकी भूगोल वेत्ता सी० ओ० सावर अमेरिकन पोलिटिकल साइंस रिव्यू पत्रिका में 1918 में प्रकाशित लेख— 'भूगोल एवं जेरीमाण्डर; स्टुअर्ट राइस द्वारा 1928 में मतदान व्यवहार पर पुस्तक' राजनीति में परिमाणात्मक विधियाँ; इस पुस्तक में कई भौगोलिक संरचनाओं का भी उल्लेख किया गया है।
- सी० ओ० पालिन की 1932 में प्रकाशित पुस्तक 'Atlas of thistorical Geography of the united States';
- जे० ई० राइट का 1932 में प्रकाशित लेख— Voting Habits in the United States: A Note on Two Maps';
- आन्द्रे सीग फ्रीड की 1949 में प्रकाशित (दूसरी) पुस्तक— Geographie Electorale det Ardecche Sous La Ille Republic' (A. Colin, Paris);

सीग फ्रीड ने इस पुस्तक में भौतिक वातावरण की विविधताओं का दलीय मतदान प्रतिरूप पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

वी०के०डीन का 1949 में प्रकाशित लेख— न्यूफाउण्डलैण्ड के मतदान के भौगोलिक पहलुओं का अध्ययन

—एफ० गोम्युल की 1951 में प्रकाशित पुस्तक—*Geographie des Elections Francaise de 1870 a 1951* (A. Colin, Paris);

जी०किश था 1953 में *Annals. Association of American Geographer* पत्रिका 43 वें अंक में प्रकाशित लेख—*Some Aspects of the Regional Political Geography of Italy*;

डब्ल्यू० वाटण्टज का 1955 में *Canadian Geographer* पत्रिका के प्रथम अंक में प्रकाशित लेख— *A Methodological Consideration of some geographie Aspects of New Foundland Referendum on Confederation with Canada 1945*'

निर्वाचन भूगोल के सम्बन्ध में किए इन प्रतीकात्मक अध्ययनों के अनुशीलन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि —

- (अ) ये सारे अध्ययन वर्णन प्रधान थे जिनमें मूलतः चुनाव परिणामों के आधार पर राजनीतिक रुझान के क्षेत्रीय विवरण का सीधा-साधा निरूपण था।
- (ब) अध्ययनकर्ताओं का मुख्य उद्देश्य चुनाव परिणामों को चुनाव क्षेत्रों के मानचित्र पर अंकित करना था और उसके स्थानीय भौगोलिक परिवेश के बीच कार्य- कारण सम्बन्ध निर्धारित करना मात्र था। इसी कारण ऐसे निर्वाचन अध्ययनों को मतदान का भूगोल (*Geography of Voting*) नाम दिया गया।
- (स) उक्त अध्ययनों की पद्धति मूलतः स्थान परक अध्ययन पद्धति थी जिसके दो स्वरूप थे— प्रथम स्थानीय संरचनाओं पर केन्द्रित अध्ययन जिनका मुख्य उद्देश्य था विभिन्न चुनाव क्षेत्रों के समुच्चयित आंकड़ों के आधार पर उनके मतदाताओं के राजनीतिक रुझान का निरूपण; और दूसरा स्थानीय पारिस्थितिकीय अध्ययन जिसका मुख्य उद्देश्य था चुनावी आँकड़ों का परिस्थितिजन्य सामाजिक आर्थिक और प्राकृतिक तत्वों के कार्य-कारण सम्बन्धों के आधार पर निरूपण।

जे०आर० वी० प्रेस्कॉट (1959) के बाद अर्थात् 1960 के पश्चात निर्वाचन भूगोल की अध्ययन प्रक्रिया के विधितंत्र में कई परिवर्तन आए।

इस दिशा में जो प्रमुख योगदान हुए वे निम्नलिखित हैं—

ए० एफ० बर्गहार्ट (1964) द्वारा प्रकाशित लेख— 'The Basic of Support for Political Parties in Voting Behaviour' जिसमें उन्होंने मतदान व्यवहार के स्थानिक प्रारूपों को स्पष्ट करते हुए स्थिति तथा धर्म को प्रमुख कारक माना है।

एम०सी० राबर्ट्स एवं के० डब्ल्यू० रुमेल (1956) द्वारा प्रस्तुत प्रपत्र— 'Spatial Variation in Urban Voting in England and Wales' जिसमें उन्होंने *Multiple Regression Analysis* तकनीक का प्रयोग किया है।

पी०एफ०लेविस (1956) द्वारा *Annals. Association of American Geographers* के अटू इड में प्रकाशित लेख— *Impact of Negro Migration on the Electoral Geography of Flint, Michigan* जिसमें उन्होंने फ्लिंट (मिशिगन) के निर्वाचन भूगोल पर नीग्रो प्रवास के प्रभाव का विश्लेषण किया है। इसमें मानचित्र निर्माण की विधियों पर भी विशेष बल दिया गया है।

के० आर० काक्स (1968) द्वारा *Annals, Association of American Geographers*, सा अडंक 58 में प्रकाशित लेख— 'Suburbia and Voting Behaviour in the London Metropolitan Area;' उपनगर एवं लंदन महानगरीय क्षेत्र में मतदान व्यवहार पर काक्स का यह लेख बहुतचर्चित रहा। इसमें सह सम्बन्ध तकनीक का प्रयोग किया गया था।

एम० ए० बस्टीड (1975) ने *Geography and Voting Behaviour* भूगोल एवं मतदान व्यवहार आक्स

कोई युनि० प्रेस, लंदन एक मोनोग्राफ प्रकाशित किया जिसमें निर्वाचन भूगोल के अर्थ, विषय क्षेत्र एवं अध्ययन उपागमों का वर्णन किया गया है।

पी०जे० टेलर एवं आर०जे० जांस्टन (1979) ने अपनी पुस्तक 'Geography of Elections' (Penguin Books, Hammond's Worth) में निर्वाचन भूगोल के संगठनात्मक एवं संकल्पनात्मक स्वरूप का विवरण विवेचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। निर्वाचन भूगोल में इन दोनों विद्वानों का योगदान उल्लेखनीय है कारण कि इन दोनों ने विभिन्न शोध पत्रिकाओं में निर्वाचन भूगोल पर लगभग एक दर्जन लेख प्रकाशित किए।

डी० रुमले द्वारा 1981 में (Spatial Structural Effects in Voting Behaviour: Descriptions and Explanations' in T.E.S.G., Vol. 72) और 1985 में (The Geography of Political Participation in Australian Geographer, Vol. 16, No.4) प्रकाशित लेख इस दृष्टिकोण से बहुत चर्चित हुए कारण कि उन्होंने इनमें मतदान व्यवहार एवं राजनीतिक सहभागिता को अपने अध्ययन का मुख्य विषय बनाया है।

साठोत्तर काल में निर्वाचन भूगोल में किए गए उक्त संगठनात्मक एवं संकल्पनात्मक अध्ययनों के अनुशीलन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि —

- (अ) 1960 के बाद के सारे निर्वाचन अध्ययन मुख्यतः विश्लेषण प्रधान थे और राजनीतिक भूगोल में निर्वाचनों के अध्ययन का यह नया दौर विशेष रूप से अमेरिका राजनीतिक समाजशास्त्र के प्रभाव में विकसित हुआ था।
- (ब) मात्रात्मक विश्लेषण पद्धति ही इस दौर में मतदान के भौगोलिक विश्लेषण का मुख्य आधार थी।
- (स) इस दौर के चुनावी अध्ययन की यह विद्या ' मात्रात्मक विश्लेषण पद्धति' के नाम से जानी जाती है।
- (द) वर्तमान समय में निर्वाचन भूगोल के अध्ययनों में व्यवहारवादी—तथा—क्षेत्र परक अध्ययन धारा प्रवाहित हैं। इस धारा के अन्तर्गत किए गए प्रयासों को 'समूह सदस्यता विश्लेषक अध्ययन की संज्ञा दी गई है। इस अध्ययन धारा के अन्तर्गत किया गया अध्ययन दो वर्गों में विभक्त दिखाई पड़ता है— (i) पड़ोस प्रभाव अध्ययन, (ii) मित्र—और—पड़ोसी प्रभाव अध्ययन।

भारत में निर्वाचन भूगोल का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रारंभ हुआ। 1952 में जब प्रथम आम चुनाव हुए, उसके बाद उनके परिणामों एवं प्रतिरूपों पर राजनीतियों एवं समाजशास्त्रियों ने अपनी राजनीतिक—सामाजिक परिदृष्टि से लेख लिखने प्रारंभ किए। ये लेख शोध पूर्ण कम विवरणात्मक अधिक थे। यह प्रक्रिया वर्ष 1969 तक बनी रही। 1970 में पहली बार के० जेड० अमानी ने भौगोलिक परिदृष्टि से निर्वाचन भूगोल पर लेख लिखा। यह लेख वास्तव में हरियाणु प्रान्त के आमचुनावों का मानचित्रीय विश्लेषण था। इसके बाद कई भूगोलविदों यथा, एम० सिन्हा (1971), बी०ए० सुखवल (1971), आर०डी० दीक्षित (1980), आर०पी० सिंह (1981), सी०पी० सिंह (1981), एम०के० श्रीवास्तव (1982) एस० के० दीक्षित एवं एस०एस० गिरि (1884) आदि ने निर्वाचन भूगोल के विविध पक्षों पर अपने शोध पूर्व लेख एवं मोनोग्राफ लिखे। वर्तमान समय में भी निर्वाचन भूगोल के विविध पक्षों एवं आयामों पर शोध अध्येताओं का अध्ययन जारी है, लेकिन यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अधिकांश अध्ययन निर्वाचन के आधार पर किए गए हैं जिनमें कालिक तुलना एवं प्रादेशिक भिन्नता का अभाव मिलता है। यहाँ निर्वाचन भूगोल के संकल्पनात्मक विकास के सन्दर्भ में क्यूर (1975) यहाँ कथन सत्य प्रतीत होता है कि—' यदि चुनाव अथवा निर्वाचन भूगोल राजनीतिक भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा है, तो इसके अध्ययन में उपयुक्त तकनीक, मॉडल एवं सिद्धान्तों का पर्याप्त अभाव है,।

10.5 निर्वाचन भूगोल के अध्ययन में निहित परिदृष्टियाँ

साठोत्तर काल के निर्वाचन भूगोल की प्रगति की समीक्षा करते हुए जॉन एग्न्यू (1990) ने इसके अध्ययन में निहित चार प्रमुख परिदृष्टियों की पहचान की है। ऐतिहासिक विकास के क्रम में ये निम्नलिखित हैं—

क्रमांक	काल	परिदृष्टि
01.	1965 — 1972	आधुनिकीकरण एवं राष्ट्रीय करण
02.	1972 — 1974	लोक कल्याण
03.	1974 — 1979	विकास का असमान स्तर
04.	1990 — आज तक	स्थानपरक सूक्ष्म सामाजिक परिदृष्टि

आधुनिकीकरण एवं राष्ट्रीय करण परिदृष्टि – इस परिदृष्टि के सर्वप्रथम प्रवर्तक काक्स थे। यह परिदृष्टि व्यक्तियों तथा अति लघु इकाइयों के अध्ययन पर केन्द्रित थी। इस अध्ययन धारा की यह भूलमूल मान्यता थी की आधुनिकीकरण (अर्थात् औद्योगिकीकरण और नगरी करण) मतदान व्यवहार का राष्ट्रीय करण कर देते हैं।

लोक कल्याण परिदृष्टि – यह परिदृष्टि बृहत् क्षेत्रीय इकाइयों पर केन्द्रित थी जिसमें नगरीय क्षेत्रों में मतदान व्यवहार की व्याख्या एवं विश्लेषण नगर विशेष में विभिन्न सामाजिक वर्गों के मतदाताओं के क्षेत्रीय वितरण तथा उनको प्राप्त होने वाली लोककल्याण सेवाओं की गुणवत्ता के आधार पर किया जाता था। इस परिदृष्टि की मुख्य मान्यता यह है कि मतदान निर्णय की प्रक्रिया जनसंख्या भी सामाजिक आर्थिक संरचना तथा सरकार द्वारा प्रदत्त सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता के क्षेत्रीय स्तर द्वारा प्रभावित होती है।

विकास के असमान स्तर की परिदृष्टि – यह परिदृष्टि क्रोड (Core) तथा उपान्तीय अंचलो के विश्लेषण पर आधारित थी। मार्क्सवादी चिंतनधारा से प्रभावित यह परिदृष्टि विशेष रूप से वालरस्टाइन की विश्व व्यवस्था संकल्पना पर आधारित है। वर्तमान राजनीतिक भूगोल में पी0जे0 टेलर इसके मुख्य प्रवक्ता रहे हैं। इसके अन्तर्गत निर्वाचन व्यवहार की व्याख्या केन्द्र-उपांत संकल्पना के अनुरूप असमान विकास प्रक्रिया जन्य प्रभावों के आधार पर की जाती है। इसमें विषमता पूर्ण विकास और उससे उत्पन्न विभाजन मतदान को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।

स्थानपरक सूक्ष्म सामाजिक परिदृष्टि – यह परिदृष्टि पृथक-पृथक स्थानीय (सामाजिक) इकाइयों के अध्ययन पर केन्द्रित है। वैचारिक विकास क्रम में सर्वाधिक नवीन इस चिंतन की शुरुवात अस्सी के दशक के मध्य में हुई। वस्तुतः यह परिदृष्टि समकालीन समाजशास्त्र से अभिप्रेरित है। इस परिदृष्टि की आधार भूत मान्यता यह है कि राजनीतिक चिंतन, दल संगठन और मतदान निर्णय आदि स्थानीय सांस्कृतिक चेतना के परिणाम हैं, अर्थात्, मतदाता का मतदान निर्णय उसके स्थानीय सामाजिक सन्दर्भ की उपज है क्योंकि प्रत्येक स्थान एक विशिष्ट प्रकार की ऐतिहासिक सामाजिक इकाई है जिसके अपने विशिष्ट स्थानिक संस्कार और क्षेत्रीय सम्बन्ध हैं। अतः यथार्थ परक मतदान विश्लेषण में स्थानीय सूक्ष्म सामाजिक परिदृष्टि अनिवार्य है।

10.6 निर्वाचन भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा तथा विषय क्षेत्र

अर्थ एवं परिभाषा – ‘निर्वाचन भूगोल’ राजनीतिक भूगोल की एक नवीनतम शाखा है जिसमें निर्वाचन से सम्बन्धित क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन निर्वाचक मण्डलों को ध्यान में रखकर किया जाता है। वस्तुतः यह विषय भौगोलिक स्थान के सन्दर्भ में भौगोलिक तकनीकों का उपयोग करके चुनाव कि तरीकों, प्रकार एवं परिणामों का विश्लेषण करता है। विशेष रूप से यह दोहरी बातचीत की एक प्रक्रिया है जिसमें भूगोल राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करती और चुनाव प्रणाली की भौगोलिक संरचना चुनावी परिणामों को प्रभावित करती है। विश्लेषण का उद्देश्य प्रेरक कारकों और क्षेत्रों की चुनावी विशेषताओं को व्यापक और एकीकृत तरीके से पहचानना और समझना होता है।

निर्वाचन भूगोल के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करने के लिए कई विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विचार एवं परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

जे0आर0वी0 प्रेस्कॉट (1970) के अनुसार – निर्वाचन भूगोल के क्रोड़ में एकात्मक एवं संघीय राज्यों के सरकार के सभी स्तरों पर निर्वाचनों का भौगोलिक विश्लेषण तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय निकायों के लोकनिर्णयों तथा जनमत संग्रहों में डाले गए मतों का भौगोलिक विश्लेषण होता है।

जैक्सन एवं सैमुएल (1971) के अनुसार – 'निर्वाचन भूगोल राजनीतिक तंत्र के कार्यात्मक पक्ष का अध्ययन है। यह तंत्र के कार्यात्मक पक्ष का अध्ययन करता है जिससे शक्ति व प्राधिकार का जन्म, निर्धारण एवं प्रभाव ग्रहण होता है तथा संगठित समाज द्वारा आवश्यकतानुसार उसके प्रतिरूप में परिवर्तन किया जाता है।

गलीज एवं सहयोगी (1972) के अनुसार – निर्वाचन भूगोल मानव के स्थानिक के सामान्य क्षेत्र में नवदृष्टि की प्रस्तुति का मुख्य स्रोत है।

रिचर्ड म्यूर (1975) के अनुसार – निर्वाचन भूगोल मतदान आंकड़ों का मानचित्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है और इन मानचित्रों द्वारा मतदाता व्यवहार की स्थानिक भिन्नता का विवरण प्राप्त किया जा सकता है।

एम0 ए0 बस्टीड (1975) के अनुसार – 'निर्वाचन अध्ययनों से भूगोल के क्षेत्र में पूर्णतः एक नये आयाम का सूत्रपात हुआ है। यह स्थानगत मानव व्यवहार पर आधारित प्रक्रियाओं एवं प्रतिरूपों के गहन अध्ययन द्वारा मुख्य विषय को लाभान्वित करता है। भूगोलवेत्ता निर्वाचन व्यवहार के अध्ययन में स्थानिक अवस्थित, वितरण एवं स्थानिक अन्तर्सम्बन्धों की विशेषताओं पर ध्यान आकृष्ट करता है जिनका अन्य शास्त्रों में अध्ययन नहीं होता है।

आई0ई0नोटिस एवं एल0 एल0 हेरिंग (1980) के अनुसार – राजनीतिक भूगोलवेत्ता का कार्यक्षेत्र में मतदान निर्णय की विभिन्नता की व्याख्या करना या विवरण देना है। अक्सर यह कार्य आसान नहीं होता है क्योंकि व्यवहार की व्याख्या करना कठिन होता है।

रमेशदत्त दीक्षित (2000) के अनुसार –

निर्वाचन भूगोल मूलतया निर्वाचन प्रक्रिया के संगठन, संचालन और उसके परिणाम के भौगोलिक पक्षों का अध्ययन है।

सारांशतः निर्वाचन भूगोल किसी भी क्षेत्र में विभिन्न राजनीतिक दलों के अनुसार मतदान व्यवहार और मतदाताओं के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का क्षेत्रीय अध्ययन है। यह भौगोलिक क्षेत्रों एवं निर्वाचन प्रक्रियाओं के मध्य अन्तर्क्रिया का भी अध्ययन है। यह अन्तर्क्रिया कई रूपों में धटित होती है,

- चुनाव क्षेत्र की भौगोलिक दशाएं मानव दृष्टिकोण को प्रभावित एवं निर्धारित करती हैं;
- मानव दृष्टिकोण मतदान व्यवहार के स्थानिक प्रतिरूप, सरकार के स्वरूप व उसकी स्थिरता को प्रभावित करता है;
- राज्य की निर्वाचन पद्धति, निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण, दलीय स्वरूप, मतदान प्रतिरूप, दलीय प्रगति तथा दलों के समर्थन आधार की भौगोलिक दशाओं से प्रभावित होते हैं
- निर्वाचन का भी राज्य के भौगोलिक भूदृश्य पर प्रभाव पड़ता है जो निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा क्षेत्र की प्रगति के रूप में दृश्यमान होता है।

इस प्रकार भौगोलिक दशाएं, मानव दृष्टिकोण और निर्वाचन प्रक्रियायें परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होती हैं और निर्वाचन भूगोल इन्हीं अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या से सम्बन्धित अध्ययन है।

विषय क्षेत्र :- आर0जे0जांस्टन (1994) ने निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के पाँच प्रमुख पक्ष बताए हैं—

1. निर्वाचन प्रक्रिया सम्पन्न करने हेतु चुनाव क्षेत्रों का संगठन, अर्थात्, चुनाव क्षेत्रों की संरचना और चुनाव परिणामों पर उसके प्रभाव का विश्लेषण।
2. मतदान के क्षेत्रीय वितरण प्रारूप का निरूपण और इस प्रारूप तथा जनसंख्या की सामाजिक विशेषताओं के क्षेत्रीय वितरण के बीच के कार्य-कारण सम्बन्ध का विश्लेषण।

3. मतदान निर्णय को प्रभावित करने वाले स्थानजन्य कारकों के प्रभाव का विश्लेषण।
4. सम्बद्ध संसद अथवा विधान सभा में दलगत प्रतिनिधित्व के क्षेत्रीय प्रारूप का निरूपण तथा विश्लेषण। इसमें दलों को प्राप्त मतों और सीटों के पारस्परिक सम्बन्ध का विश्लेषण सम्मिलित है।
5. सत्ताधिकार और नीतियों के कार्यान्वयन के क्षेत्रीय प्रारूप का विश्लेषण; यह प्रारूप सामान्यतया दलों के जनसमर्थन के क्षेत्रीय वितरण और सदन में उनके प्रतिनिधित्व के क्षेत्रीय प्रारूप को प्रतिबिम्बित करता है।
वस्तुतः इस विषय का सम्बन्ध इस बात से है कि सत्ता एक ही राजनीतिक दल अथवा गठबन्धन के पास होती है, इसलिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि उसके प्रतिनिधि किन क्षेत्रों से चुनकर आए हैं तथा उन क्षेत्रों की विशेष समस्याएँ क्या हैं?

ये प्रश्न सरकार के नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विकास सम्बन्धी नीतियों के कार्यान्वयन में बहुधा शासक दल के जनाधार वाले प्रमुख क्षेत्रों को वरीयता मिलती है।

आर०एल० द्विवेदी (2007) ने निर्वाचन अध्ययनों में निम्नलिखित तथ्यों के समावेश का सुझाव दिया है—

1. राज्य द्वारा अपनाई गई निर्वाचन प्रणाली;
2. मताधिकार
3. निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन

इसके अलावा निर्वाचन सहभागिता (प्रभावी सहभागिता—वैध मतों का प्रतिरूप, अप्रभावी सहभागिता—रद्द मतों का प्रतिरूप, स्त्री सहभागिता का प्रतिरूप) के भौगोलिक प्रतिरूप तथा राजनीतिक दलों के चुनाव प्रदर्शन के प्रतिरूप का भी अध्ययन/विश्लेषण भी निर्वाचन भूगोल के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।

रमेश दन्त दीक्षित (2000) के अनुसार निर्वाचन भूगोल के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन तथ्यों के भौगोलिक पक्षों का अध्ययन आवश्यक है—

1. निर्वाचन प्रक्रिया का संगठन;
2. निर्वाचन प्रक्रिया का संचालन; तथा
3. निर्वाचन परिणाम

10.7 निर्वाचन भूगोल का उद्देश्य

चुनाव के परिणामों की सफलतापूर्वक कल्पना और विश्लेषण करने के लिए उचित सन्दर्भ और पृष्ठभूमि ज्ञान के साथ विस्तृत और सटीक मानचित्रण तकनीकों पर निर्भर निर्वाचन भूगोल वास्तव में चुनाव के संगठन, आचरण और परिणामों के अध्ययन के लिए एक स्थानिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। चूँकि राजनीति एक सत्ता केन्द्रित प्रक्रिया है और निर्वाचन इस प्रक्रिया का प्रथम सोपान है, इसलिए निर्वाचन भूगोल एक विषय के रूप में अपने उद्देश्यों के प्रति स्पष्ट है।

प्रायः देखा गया है कि परोक्ष रूप में सरकार और उसकी संस्थाएँ ही संसाधन उपयोग, उपयोग स्थल तथा क्षेत्र का निर्धारण करती हैं। मतदाता अपनी पसन्द के अनुसार ही पार्टी विशेष को मत देते हैं ताकि संसाधनों पर उनका नियंत्रण बना रहे। इस तरह विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का जन्म होता है। इसमें राजनीतिक दलें अपनी पार्टी की नीतियों के अनुसार अपना जनाधार बनाते हैं। सामान्यतया बहुदलीय शासन प्रणाली वाले देशों में मतदान व्यवहार में इसीलिए पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। निर्वाचन भूगोल का मूल उद्देश्य यहाँ उक्त विविधता का भौगोलिक सन्दर्भों में अध्ययन करना है।

निर्वाचन भूगोल का मात्र यह उद्देश्य नहीं होता कि वह केवल मतों के क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप का वर्णन करे, बल्कि उसका यह भी उद्देश्य होता है कि वह इस तथ्य का भी विश्लेषण करे कि विभिन्न पार्टियों के अनुसार मतदाता व्यवहार कैसा है। उसमें क्षेत्रीय भिन्नता या समानता किस प्रकार की है और यह व्यवहार किन सामाजिक—आर्थिक—राजनीतिक तथ्यों से प्रभावित होता है।

विभिन्न पार्टियों के पक्ष अथवा विपक्ष में हुए मतदान व्यवहार का विश्लेषण करके उनके प्रभाव क्षेत्रों का निरूपण करना भी निर्वाचन भूगोल का एक प्रमुख उद्देश्य होता है। अपने इस उद्देश्य के माध्यम से वह विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं जातीय आदि चरों का आकलन करके आधार क्षेत्र में मतदान व्यवहार

और दूसरे क्षेत्र के मतदान व्यवहार से तुलनात्मक अध्ययन द्वारा परिकल्पनाओं एवं सिद्धान्तों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

विभिन्न पार्टियों के प्रभाव क्षेत्र समय-समय पर बदलते रहते हैं।

विभिन्न चुनावों में प्रभाव क्षेत्रों का क्रम बद्ध विश्लेषण करके परिवर्तनशील प्रवृत्ति का आकलन कर राज्य की राजनीति को दिशा देना भी निर्वाचन भूगोल का एक अहम् उद्देश्य होता है।

क्षेत्रीय सामाजिक-आर्थिक विषमताओं, ऐतिहासिक धार्मिक संरचना, राजनीतिक-अराजनीतिक संगठनों की संरचना व क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों की सक्रियता और स्थानीय नेताओं की लोकप्रियता का सही आकलन प्रशासनिक स्तर पर ही होता है। लेकिन निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाएं प्रशासनिक सीमाओं से नहीं मिलती, यही कारण है कि चुनाव परिणामों और प्रशासनिक कारकों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना कठिन होता है। इस कठिनाई को दूर करना भी निर्वाचन भूगोल का एक प्रमुख उद्देश्य होता है।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्वाचन भूगोल विभिन्न सांख्यिकीय विधियों (यथा— Interpolation या Extrapolation) का उपयोग कर वह निर्वाचन क्षेत्रों एवं प्रशासनिक इकाइयों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है।

निर्वाचन दुरुपयोग (Electoral Abuse) को प्रकाश में लाना भी निर्वाचन भूगोल के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। वस्तुतः निर्वाचन दुरुपयोग निर्वाचन क्षेत्रों की पश्चपात पूर्ण सीमा निर्धारण के कारण उत्पन्न होता है जिसमें निर्वाचन इकाइयों का इस तरह से निर्धारण किया जाता है कि विभिन्न निर्वाचन इकाइयों में अपेक्षाकृत कम मतों को प्राप्त करके भी कोई भी पार्टी अधिकांश सीटों पर विजय प्राप्त कर लेती है।

विगत एक दो दशकों से चुनाव के बारे में राजनीतिक दलों और नागरिक समाज का दृष्टिकोण अलग-अलग हो गया है। राजनीतिक चुनाव सत्ता की सीढ़ी मानकर इसे जितने के लिए हर तरह के प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं, दूसरी तरफ नागरिक समाज में चुनाव में बढ़ रही समस्याओं को लेकर खास तरह का अविश्वास का भाव बन गया है। ऐसी विषम परिस्थिति से नागरिक समाज को बाहर निकालना भी निर्वाचन भूगोल का एक अहम् उद्देश्य है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह नागरिक समाज की भूमिका को स्पष्ट कर उसे मानसिक रूप से इस बात के लिए तैयार करता है कि वह चुनाव प्रक्रिया की हर स्तर पर निगरानी करे, सबमें हिस्सेदारी करे और सब में योगदान करे।

वर्तमान में चुनाव व्यवस्था में तीन बहुत बड़े दोष हैं —

प्रथम — लोकशक्ति को धनशक्ति ने पराजित कर दिया है;

द्वितीय — मतदाताओं को सेवा और संगठन से पराजित करने के बजाय सभी दल प्रभावित करने के लिए मीडिया का सहारा लेने लगे हैं;

तृतीय — कई जगहों पर चुनावों के मौके पर असामाजिक तत्वों की भूमिका की महत्वपूर्ण हो जाती है।

ऐसे दोषों को अपने प्रभावी चुनावी विश्लेषण के माध्यम से दूर कर चुनावी राजनीति में शुचिता लाना भी निर्वाचन भूगोल का यह भी दायित्वपूर्ण उद्देश्य है कि वह नागरिक समाज को बजाए कि चुनाव क्षेत्रों का संगठन और संरचना कैसी? चुनाव परिणामों पर उनका क्या प्रभाव पड़ रहा है? मतदान के क्षेत्रीय वितरण का प्रारूप कैसा है, मतदान निर्णय को प्रभावित करने वाले स्थानजन्य कारक कौन-कौन से हैं तथा सम्बद्ध संसद और विधान सभा में दलगत प्रतिनिधित्व का स्वरूप कैसा है?

यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि नागरिक समाज, का क्या आशय है? वास्तव में ये वे लोग हैं जो सरकारी लोग हैं। संविधान प्रदत्त नागरिक कर्तव्य सूची को सम्मान देते हैं और चुनाव से अलग समाज की समस्याओं को सुलझाने में सार्थक और रचनात्मक सहयोग देते हैं। वस्तुतः किसी भी राज्य का लोकतंत्र चार खंभों पर खड़ी इमारत है। ये चार खंभे हैं— विधायिका, कार्यपालिका, न्याय पालिका और मीडिया। वस्तुतः एस लोकतंत्र रूपी इमारत के तीन खंभे और हैं, जो लोकतंत्र को बनाए रखने में योगदान देते हैं, ये हैं— राजनीतिक दल, शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र तथा नागरिक समाज। निर्वाचन भूगोल अपने उद्देश्यों के माध्यम से इस सत्य तथ्य को स्पष्टता से रेखांकित करने में समर्थ है कि सातवाँ खंभा अर्थात् नागरिक समाज बेहद मजबूत और महत्वपूर्ण है। इसमें यह

भाव नहीं है कि सत्ता हमारे पास आए बल्कि प्रयास यह है कि सत्ता योग्य व्यक्तियों के पास जाए ताकि विधायी, न्यायिक और प्रशासनिक शुचिता अक्षुण्ण बनी रह सके।

10.8 निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में राज्य चाहे एकात्मक हो या संघात्मक, कई प्रकार की राजनीतिक संस्थाओं, सरकार एवं प्रशासन द्वारा संचालित होता है। ये संस्थाएं एवं प्रशासन का स्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन से सम्बन्धित होती हैं। यह प्रक्रिया जहाँ एक ओर देश की आन्तरिक व्यवस्था का निर्धारण करती है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को भी नियंत्रित करती है। इस दृष्टि से निर्वाचन भूगोल की महत्ता एवं प्रासंगिकता निर्विवाद है।

निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता इन अर्थों में भी निर्विवाद है कि तमाम दोषों के बावजूद लोकतांत्रिक राज्यों के पास सत्ता के संचालन के लिए, राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए चुनाव के अलावा कोई विकल्प नहीं है, भले ही चुनाव की पद्धति कोई भी हो। प्रशासन के संचालन के लिए राज्य उम्मीदवारों का मूल्यांकन करने वाली परीक्षाओं का इंतजाम कर लेता है। उसमें लाखों प्रतियोगी भाग लेते हैं, कुछ सौ चुने जाते हैं जिनको पुलिस, प्रशासन, विदेश नीति आदि की जिम्मेदारी दी जाती है। संसद और विधान मंडल को चलाने के लिए हमारे जन प्रतिनिधि कैसे चुने जाए, इस प्रक्रिया को चुनाव के ही माध्यम से पूरा किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में निर्वाचन भूगोलवेत्ता का यह दायित्व बनता है कि वह चुनाव के हर मोड़ पर यानी चुनाव की घोषणा, घोषणापत्रों की तैयारी, प्रतिनिधियों को चयन और प्रचार का तंत्र, हर स्तर पर निगरानी करें, सक्रिय योगदान करे और अपने सटीक विश्लेषणों के माध्यम से नागरिक समाज को सचेत करे ताकि लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रदूषण मुक्त और निर्मल बनाया जा सके।

आज नागरिक समाज का आग्रह है कि चुनाव व्यवस्था में सुधार किए जाएं। सुधारों की लम्बी सूची उसके पास है। इसके अलावा उसके मन में अनेक प्रश्न भी हैं जैसे— क्या हमारा वोट एक उचित प्रतिनिधि का चयन करने में समाज की मदद करेगा? क्या चुने गए लोग वास्तविक जन प्रतिनिधि हैं या धनशक्ति के प्रतीक हैं? ऐसी स्थिति में निर्वाचन भूगोल का अध्ययन और उसके द्वारा किए गए विश्लेषण और भी प्रासंगिक हो उठते हैं। भारतीय जनमानस को अच्छी तरह याद है कि आपातकाल के दौरान चुनाव को एक साल के लिए आगे बढ़ा दिया गया था तो सारा देश एक खुली जेल जैसा हो गया था। किसी की कोई जिम्मेदारी नहीं थी। गैर संवैधानिक शक्ति केन्द्रों ने सिर उठा लिए थे। प्रधानमंत्री सचिवालय से लेकर थाने के स्तर तक हर तरफ गैर संवैधानिक ताकतों का बोलबाला था। उस समय यानी 1976 में पूरे देश में एक ही माँग आ रही थी कि चुनाव समय पर और ठीक से कराए जाएं। अतः ऐसे सन्दर्भों में चुनाव और निर्वाचन भूगोल की महत्ता और प्रासंगिकता निर्विवाद है।

निर्वाचन भूगोल में पी0जे0टेलर (1986) द्वारा प्रतिपादित 'विश्व व्यवस्था सिद्धान्त' के प्रवेश से निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता और बढ़ गई है।

टेलर की मान्यता के अनुसार — प्रत्येक देश की राजनीति को एक दूसरे से अलग तथा स्वायत्त प्रक्रिया के रूप में देखना भ्रंति मूलक है। आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व एक ही सन्निहित व्यवस्था का अंग बन गया है, परिणाम स्वरूप विभिन्न देशों के राजनीतिक दल भी विश्व व्यवस्था जन्य प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। विश्व व्यवस्था के निरंतर बढ़ते प्रभाव को ध्यान में रखकर ये दल देश की राजनीति को अपने-अपने आर्थिक दर्शन के अनुरूप समायोजित करने का प्रयास करते हैं। अतः विश्व के सभी देशों के राजनीतिक दल व्यवस्था में एक आधार समरूपता दिखाई देती है, भले ही इन दलों के नाम भिन्न-भिन्न हैं।

टेलर द्वारा प्रतिपादित निर्वाचन भूगोल के विश्वव्यवस्था सिद्धान्त के अनुसार आज प्रत्येक देश के लिए अपनी राजनीतिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाना आवश्यक सा हो गया है। इसके लिए आवश्यक है कि हर देश एक निश्चित अंतराल पर अपने यहाँ पश्चपात रहित निर्वाचन करवाता रहे। ऐसा करने से ही निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता अनवरत बनी रहेगी।

सारांशतः तमाम जटिलताओं के होते हुए भी आधुनिक समय में राजनीति अपना आधार भूत महत्व रखती है। अभी तक प्रत्येक राजनीतिक तंत्र में सरकार आय तथा रोजगार के मौकों के बढ़ते अनुपात को नियंत्रित करती रही है।

राज्य की इन समस्याओं पर मजबूत पकड़ हेतु चुनाव का महत्व अत्यधिक है।

चुनावों का भौगोलिक अध्ययन मुख्यतः इस बात पर आधारित है कि विभिन्न स्तरों पर बैठे राजनीतिज्ञ किस प्रकार सत्ता प्राप्त करते हैं, उसका दुरुपयोग करते हैं तथा सत्ता को बनाए रखते हैं। इस प्रकार चुनावी अध्ययन स्थानिक विभाजन के रूप में सरकारों की भूमिका को समझने में मूल तत्व के रूप में कार्यकरता है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक भूगोल में चुनावों का अध्ययन प्रशासन अथवा सत्ता प्राप्त करने की राजनीतिक प्रक्रिया को समुचित प्रकार से समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इन सन्दर्भों में निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। निर्वाचन भूगोल की महत्ता और प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि निम्नांकित तथ्यों का अध्ययन और विश्लेषण निर्वाचन भूगोल के अन्तर्गत समय-समय पर होता रहें—

(i) क्षेत्रीय विविधता, (ii) विभिन्न दलों के सुरक्षित क्षेत्र, (iii) दलों के असुरक्षित क्षेत्र, (iv) अत्यधिक परिवर्तनशील क्षेत्र, (iv) अत्यधिक परिवर्तनशील, (v) मतदाता व्यवहार अध्ययन, (vi) क्षेत्रीय विविधता का समयानुसार मानचित्रांकन, (vii) विश्लेषण के आधार पर दलीय योजना का प्रस्तुतीकरण, (viii) आदर्श परिस्थितियों का वर्णन जो शासक दल के लोगों पर आधारित न होकर क्षेत्रीय विशेषताओं पर आधारित हो।

10.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भली-भाँति समझ गए होंगे कि राजनीतिक भूगोल के अन्तर्गत निर्वाचन भूगोल का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि 'निर्वाचन परिणाम' सम्बन्धित राज्य की सम्पूर्ण जनसंख्या के प्रतिनिधित्व के परिणाम होते हैं और वहाँ की जनसंख्या के राजनीतिक भौगोलिक निर्णयों को प्रतिबिम्बित करते हैं तथा चुने हुए प्रतिनिधि को प्रकारान्तर से क्षेत्र विशेष की भौगोलिक-आर्थिक समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करते हैं। इस इकाई के अध्ययन से आपने यह भी समझ लिया होगा कि राजनीतिक भूगोल में चुनावों का अध्ययन दलों द्वारा सत्ता प्राप्त करने की राजनीतिक प्रक्रिया को समुचित प्रकार से समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसलिए आज के लोकतांत्रिक सन्दर्भों में इसकी महत्ता एवं प्रासंगिकता घटने की बजाय बढ़ गई है।

10.10 सारांश

निर्वाचन भूगोल	Electoral Geography	राजनीतिक स्वेच्छा	Political Choice
निर्वाचन दुरुपयोग	Electoral Abuse	क्षेत्रीय सन्दर्भ	Spatial context
मतदान	Voting	मतदान व्यवहार	Voting Behaviour
परिसंघ	Confederation	लोक कल्याण	Demographic Welfare

10.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. निर्वाचन भूगोल सम्बन्धी अध्ययन के प्रथम प्रयास कर्ता हैं—

(अ) आन्द्रे सीगफ्रीड (ब) एडवर्ड क्रेमील (स) सी० ओ० सावर (द) स्टुअर्टराइस

2. निर्वाचन भूगोल में अध्ययन किया जाता है।

(अ) मतदान व्यवहार (ब) मतदान का स्थानिक प्रतिरूप (स) मतदान का भौगोलिक पक्ष (द) उक्त सभी

3. निर्वाचन भूगोल पर भारत में भौगोलिक परिदृष्टि से पहला लेख किस भूगोल विद् ने लिखी

(अ) आर० डी० दीक्षित (ब) के० जेड० अमानी (स) आर० पी० सिंह (द) एम० सिन्हा

4. आन्द्रे सीगफ्रीड विद्वान थे—

(अ) अमेरिका (ब) जर्मन (स) फ्रांसीसी (द) अंग्रेज

5. मतदान निर्णय में कौन एक स्थानीय प्रभाव का कारण नहीं है?

(अ) स्थानीय मुद्दे (ब) नारा अभियान प्रभाव (स) आर्थिक विकास (द) मित्रव पड़ोसी प्रभाव

आदर्श उत्तर :-

1. (अ) ; 2. (द) ; 3. (ब) ; 4. (स) ; 5. (स)

10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Agnew, J.A., (1990) : From Political Methodology to Geographical Social Theory? A Critical Review of Electoral Geography, (Ed.) London Routledge, PP.15-22.

Amani, K.Z., (1970): Elections in Haryana, India: A study in Electoral Geography; The Geographer, Vol.17, PP.27-40.

Cox, K.R., (1969): 'The Voting Decision in a spatial context; Progress in Geography; Vol. 1, PP. 81-117.

Dikshit, R.D., (1980): 'On The Place of Electoral Studies in Political Geography; Transactions, T.T.G Vol.2, PP.23-28

दीक्षित, रमेश दन्त, (2000): 'राजनीतिक भूगोल: सम सामयिक परिदृष्टि; प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा० लि०, नई दिल्ली।

Dwivedi, R.L., (2007) : 'Fundamentals of political Geography; chatanya publishing House, Allahabad.

Johnston, R.J.' (1994): 'Electoral Geography; in Johnston et. al. (Eds.) The Dictionary of Human Geography' PP 157-158.

Maur, R.' (1975): 'Modern Political Geography; Me Millan, London. Norris, R.E. and Haring, L.L., (1980): 'Political Geography; Charles E Merrill Pub. Co., London

Singh, C.P., (1981): 'Geography and Electoral Studies; Transactions, I.I.G. Vol. 3, No. 1. PP. 814-87.

Singh, R.P., (1981) Electoral Politics in Manipur: A spatio-Temporal study; concept, New Delhi.

Taylor, P.J., (1986): 'An Exploration into World System Analysis of Political Parties; Pol. Geos. Qtrly., Vol. 15, PP.5-20

10.13 अम्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. निर्वाचन भूगोल की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
2. निर्वाचन भूगोल का संकल्पनात्मक विकास बताइए।
3. निर्वाचन भूगोल के अध्ययन निहित परिदृष्टियाँ स्पष्ट कीजिए।
4. निर्वाचन भूगोल का विषय क्षेत्र स्पष्ट कीजिए।
5. राजनीतिक भूगोल में निर्वाचन भूगोल की प्रासंगिकता बताइए।

इकाई-11 मतदान व्यवहार का भौगोलिक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 प्रस्तावना
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 विषय प्रवेश
- 11.3 निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के उपागम
- 11.4 निर्वाचन भूगोल में प्रतिमानों (Models) का प्रयोग
- 11.5 निर्वाचन भूगोल के में दलीय पद्धति
 - 11.5.1 दलीय पद्धति के प्रकार
 - 11.5.2 दलीय स्थिति की दिशा व प्रतिरूप
 - 11.5.3 दलों के समर्थन आधार
 - 11.5.4 दलगत राजनीतिक शक्तियों के प्रादेशिक संतुलन के कारक
- 11.6 निर्वाचन सहभागिता
- 11.7 मतदान व्यवहार
 - 11.7.1 मतदान निर्णय
 - 11.7.2 पड़ोस प्रभाव तथा मित्र और पड़ोसी प्रभाव
 - 11.7.3 मतदान प्रतिरूप का विवेचन
 - 11.7.4 मतदान परिणाम का विश्लेषण
- 11.8 सारांश
- 11.9 शब्द सूची
- 11.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

11.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल के पाठ्यक्रम की यह ग्यारहवीं इकाई है। इस इकाई में आप 'मतदान व्यवहार का भौगोलिक अध्ययन' करेंगे। वस्तुतः मतदान व्यवहार के भौगोलिक अध्ययन में निर्वाचन भूगोल के कई पक्षों का समावेश होता है, यथा— निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के उपागम, निर्वाचन प्रतिमान (Model), दलीय पद्धति, निर्वाचन सहभागिता एवं मतदान व्यवहार में अन्तर्निहित ये राजनीतिक तत्व ऐसे हैं जो भौगोलिक दशाओं से सीधे प्रभावित होते हैं। इस इकाई में आप निर्वाचन भूगोल के उन पहलुओं का भी अध्ययन करेंगे जो मतदान व्यवहार को सीधे प्रभावित करते हैं, जैसे मतदान निर्णय, पड़ोस प्रभाव तथा मित्र और पड़ोसी प्रभाव, मतदान प्रतिरूप तथा मतदान परिणाम। निर्वाचन भूगोल के ये पक्ष ऐसे हैं जो तर्कपूर्ण विश्लेषण के उपरान्त मतदान व्यवहार सम्बंधी परिकल्पनाओं और सिद्धांतों के निरूपण में शोध अध्ययता की मदद करते हैं और शोध अध्ययन हेतु नई दिशा प्रदान करते हैं।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. निर्वाचन भूगोल के अध्ययन उपागमों से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
2. निर्वाचन भूगोल में प्रतिमानों के प्रयोग की जानकारी प्रदान करना।
3. निर्वाचन प्रक्रिया में दलीय पद्धति के महत्व को समझाना।
4. लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्वाचन सहभागिता के महत्व का मूल्यांकन करना।
5. मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले हर पहलू से उन्हें अवगत कराना।

11.2 विषय प्रवेश

सामान्यतः मानव के राजनीतिक क्रिया कलाप मानव समाज से जुड़े रहते हैं, इसीलिए सामाजिक तथ्यों एवं राजनीतिक कार्यों में सकारात्मक अन्तर्सम्बन्ध मिलता है। मानव के राजनीतिक कार्यों का सबसे मूर्तरूप राज्यों के रूप में दृष्टव्य है जो कई प्रकार की राजनीतिक संस्थाओं, सरकार-प्रशासन द्वारा संचालित होते हैं। ये राजनीतिक संस्थायें अपने आप में स्वयं विकसित नहीं होती बल्कि राज्य की सम्पूर्ण जनसंख्या के प्रतिनिधित्व का परिणाम होती हैं। यह प्रतिनिधित्व निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से राज्य को प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में—बहुपार्टी राजनीतिक तंत्र वाले सभी प्रजातांत्रिक देशों में प्रतिनिधि के रूप में सत्ता में आने की प्रक्रिया का सर्वप्रथम चरण चुनावी युद्ध ही है जो राजनीतिक पार्टी—नेता—जनता के गठजोड़ से सम्पन्न होता है। इस चुनावी समर में दो चीजे सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती हैं, प्रथम—मतदाता का मतदान व्यवहार और द्वितीय—निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण। मतदाताओं के मतदान व्यवहार में जो राजनीतिक तत्व अन्तर्निहित होते हैं उनमें दलीय स्वरूप, दलों के समर्थन आधार, निर्वाचन सहभागिता, मतदान निर्णय, मतदान प्रतिरूप, निर्वाचन परिणाम, परिणामों पर राजनीतिक दलों का प्रभाव आदि प्रमुख हैं। मतदान व्यवहार में अन्तर्निहित ये राजनीतिक तत्व ऐसे हैं जो भौगोलिक दशाओं से सीधे प्रभावित होते हैं। इस प्रकार मतदान व्यवहार व भौगोलिक दशाएं परस्पर सम्बन्धित हैं। निर्वाचन भूगोल में क्षेत्र की जनता की भावनाओं का अध्ययन इसीलिए महत्वपूर्ण होता है कारण कि जनता की भावनाएं ही मतदान व्यवहार व उसके प्रतिरूप का निर्धारण करती हैं।

निर्वाचन के चुनावी समर का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है—निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण। परोक्ष रूप से सरकार और उसकी संस्थायें ही निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करती हैं। चुनाव क्षेत्रों के निर्धारण में निर्वाचन पद्धतियों का महत्व अन्तर्निहित होता है, कारण कि प्रत्येक चुनाव प्रणाली किसी राज्य विशेष के सम्पूर्ण क्षेत्रफल को सम्मिलित करने वाली क्षेत्रीय इकाइयों के निश्चित समूह के चारों ओर संगठित होती है जो अंततः चुनाव परिणामों को प्रभावित करती है।

निर्वाचन भूगोल के विभिन्न अध्येताओं की कृतियों का विश्लेषण करने से निष्कर्ष निकालता है कि यदि निर्वाचन भूगोलवेत्ता को मतदान व्यवहार व निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण व उनको प्रभावित करने वाले भूवैज्ञानिक संगठन का सटीक अध्ययन करना है तो सबसे पहले उन उपागमों एवं प्रतिमानों का अध्ययन आवश्यक है जो अध्येता को एक दृष्टि व दिशा प्रदान करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि अध्ययन प्रणालियों एवं प्रतिमानों को समझे बगैर कोई भी निर्वाचन शोध अध्येता विषय के साथ न्याय नहीं कर सकता।

11.3 निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के उपागम

राजनीतिक भूगोल में निर्वाचनों के वर्ष 1913 (सीगफ्रीड) से लेकर अब तक सम्पन्न हुए अध्ययनों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि समय के साथ जैसे-जैसे विषय का विकास हुआ है, उसी के अनुसार उसके अध्ययन की विधा (उपागम) में भी अन्तर आता गया है। अध्ययनों के विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि चुनाव परिणामों का 1960 के पहले तथा उसके बाद किए गए भौगोलिक विश्लेषणों में स्पष्ट गुणात्मक अन्तर था। 1960 के पूर्व

के अध्ययन वर्णन प्रधान थे जिनमें मूलतः चुनाव परिणामों के आधार पर राजनीतिक रुझान के क्षेत्रीय वितरणका सीधा-साधा निरूपण था। जब कि 1960 के बाद के अध्ययन विश्लेषण प्रधान थे। ये अध्ययन मतदान को प्रभावित करने वाले तत्वों के विश्लेषण अर्थात् मतदान में भौगोलिक प्रभाव के विश्लेषण पर केन्द्रित थे। विशेष बात यह कि दोनों अध्ययनों में भले ही स्पष्ट गुणात्मक अन्तर था, लेकिन दोनों में ही मानचित्रों की प्रमुख भूमिका थी जिनके माध्यम से तथ्यों का वस्तुनिष्ठ निरूपण और अनुभववादी विश्लेषण किया जाता रहा है। निर्वाचन भूगोल में समय के साथ परिवर्तनशील इन अध्ययन उपागमों को तीन वर्गों में विभक्त या समाहित किया जा सकता है— (1) पारंपरिक उपागम, (2) पारिस्थितिक उपागम, (3) व्यवहारात्मक उपागम

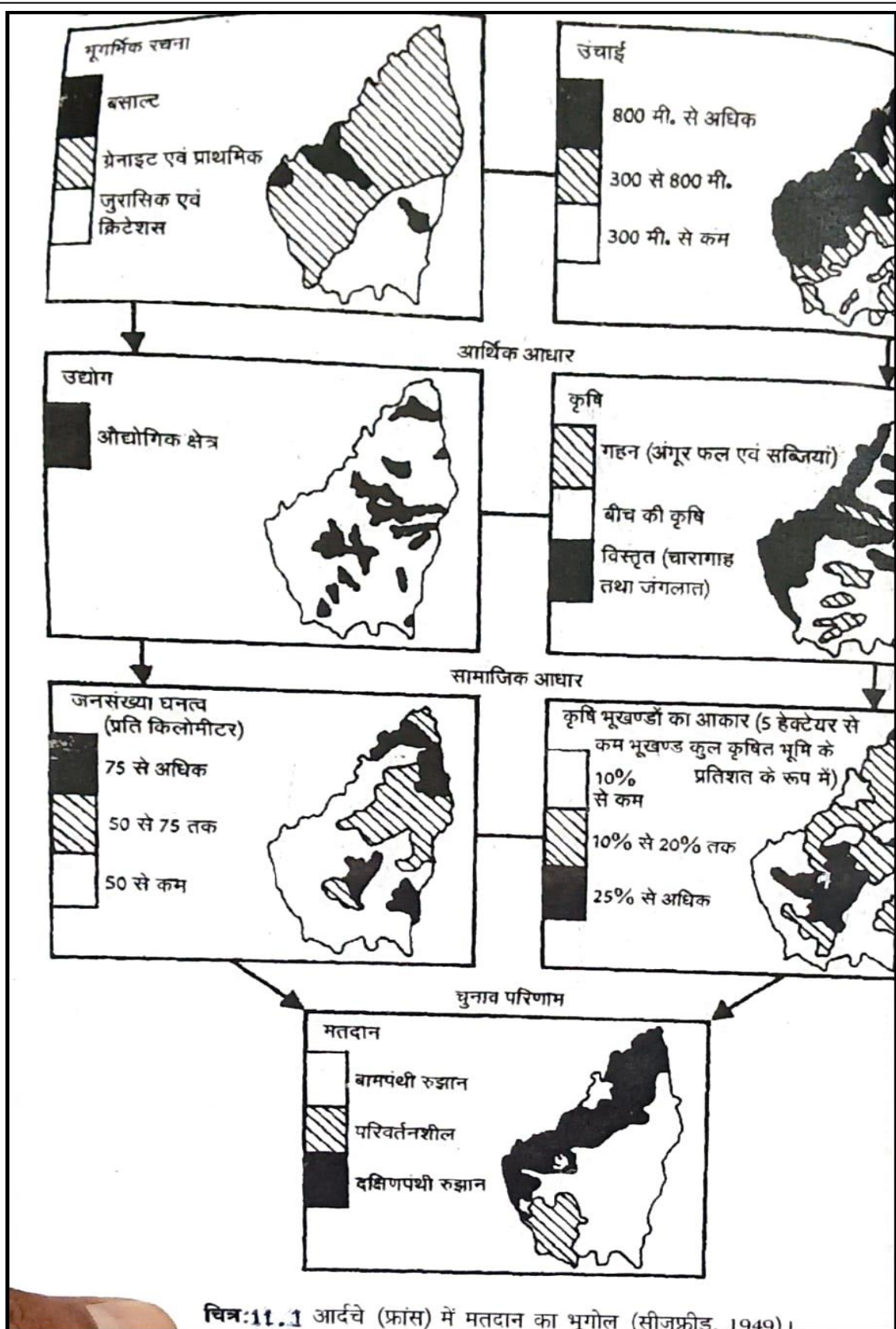
1. पारम्परिक उपागम –

प्रारंभिक निर्वाचन भूगोलवेत्ताओं के द्वारा अपनाये जाने के कारण इसे पारम्परिक उपागम कहा जाता है। यह इन अर्थों में भी पारम्परिक है क्योंकि इसमें सैद्धान्तिक और समालोचनात्मक दृष्टि के लिए कोई स्थान नहीं था। इस उपागम का प्रमुख उद्देश्य चुनाव परिणामों को चुनाव क्षेत्रों के मानचित्र पर अंकित करना और इस प्रकार तैयार किए गए मानचित्र के आधार पर क्षेत्र के मानचित्र पर अंकित करना और इस प्रकार तैयार किए गए मानचित्र के आधार पर क्षेत्र के राजनीतिक रुझान और उसके स्थानीय भौगोलिक परिवेश के बीच कार्य-कारण सम्बंध स्थापित करना मात्र था। वस्तुतः इस उपागम के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्राकृतिक परिवेश का निर्वाचन प्रारूप के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कर यह स्पष्ट किया जाता है कि एक क्षेत्र का प्राकृतिक (भौतिक) परिवेश (अर्थात् भू-आकृतिक स्वरूप, जलवायु की प्रकृति, मृदा, वनस्पति, जल, धरातलीय प्रकृति आदि) का सामूहिक रूप से अथवा एकांगी रूप में निर्वाचनों के परिणाम पर क्या प्रभाव पड़ता है? वास्तव में चुनावी अध्ययन की यह स्थान परक अध्ययन पर मतदाताओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रुझान के स्थानीय प्रारूप का अनुमान होता है।

स्थानीय संरचानाओं पर केन्द्रित इस अध्ययन उपागम का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी विद्वान आंद्रे सीगफ्रीड जो एक साथ ही समाज शास्त्री भूगोल बिंदु और राजनीति शास्त्री भी थे जो 1913 में फ्रांस के आर्थिक क्षेत्र के निर्वाचन परिणामों के लिए विस्तार से किया। अपने इस अध्ययन के माध्यम से उन्होंने यह स्पष्ट किया कि आर्थिक क्षेत्र के प्राकृतिक स्वरूप समग्र रूप से आर्थिक तथ्यों विशेषरूप से कृषि प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं तथा कृषि प्रतिरूप मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। सीगफ्रीड द्वारा किया गया यह अध्ययन बाद में परम्परागत ढंग से प्रचलित हो गया और उनके परवर्ती काल में क्रेमील (1916), सीओ0 पालिन (1932), जे0के0 राइट (1932) तथा वी0के0 डीन (1949) आदि के निर्वाचन अध्ययनों का आधार बना अपने अध्ययनों में इन विद्वानों ने निर्वाचन क्षेत्रों के प्राकृतिक व आर्थिक तत्वों विशेष रूप से कृषि क्षेत्रीय विभिन्नता का मानचित्रण करके मतदान व्यवहार के मानचित्रण से तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दोनों के अन्तर्सम्बन्ध को व्यक्त किया।

2. पारिस्थितिक उपागम –

पारिस्थितिक उपागम के अन्तर्गत निर्वाचन परिणामों का अध्ययन विश्लेषण सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय के सन्दर्भ में किया जाता है। इस उपागम के प्रवर्तकों के अनुसार—विभिन्न क्षेत्रों में मतदान प्रतिरूप वहाँ के मतदाताओं के सम्पूर्ण प्राकृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरण बोध से प्रभावित होता है। इस उपागम में अध्ययन के लिए जिन चरों (Variables) का प्रायः उपयोग किया जाता है, उनमें जाति, धर्म, भाषा, लिंग, राष्ट्रीयता, आर्थिक भिन्नता, जनसंख्या, भूगर्भिक संरचना एवं औद्योगिक विकास आदि प्रमुख हैं। प्रायः इन चरों को अध्येताओं द्वारा क्षेत्रानुसार अलग-अलग ध्यांकन विधि से मानचित्रित करके और मतदान परिणाम को भी चित्रित करके एक दूसरे पर अध्यारोपित किया जाता है। इससे मतदान परिणाम और विभिन्न चरों के बीच सहसम्बन्ध का दृष्टिक प्रदर्शन संभव होता है। सीगफ्रीड (1949) द्वारा प्रस्तुत फ्रांस के आर्द्रचे विभाग में तीसरे जनतंत्र (1871-1940) की अवधि में हुए चुनावों के परिणाम का विश्लेषण इस प्रकार के अध्ययन का आदर्श उदाहरण है।



अपने इस अध्ययन के आधार पर (चित्र सं० 11.1) सीगफ्रीड का निष्कर्ष था कि पारिस्थितिकीय प्रभाव राजनीतिक वरण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

पारिस्थितिकीय विश्लेषण एक लम्बे समय तक निर्वाचन अध्ययनों की एक महत्वपूर्ण विद्या के रूप में विद्यमान रहे लेकिन उनके निष्कर्षों में मात्रात्मक सत्यापन का अभाव था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ऐसे पारिस्थितिकीय निर्वाचन अध्ययनों को मात्रात्मक गुणवत्ता देने के प्रयास प्रारंभ हुए। 20वीं सदी के सावतें दशक में निर्वाचन अध्ययनों में पारिस्थितिक उपागम का महत्व तेजी से बढ़ा। वर्तमान समय में इस तरह के चरों और मतदान परिणामों के बीच अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या हेतु जटिल सांख्यिकीय विधियों (यथा—सहसम्बन्ध विश्लेषण, समाश्रयण विश्लेषण) एवं संगणक प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा है परिणाम स्वरूप निर्वाचन अध्ययनों की सांख्यिकीय विश्वसनीयता में आशातीत वृद्धि हुई है। पारिस्थितिकीय उपागम के प्रमुख समर्थन कर्ताओं में पीयर्स लेविस (1965), के० डब्लू रुमागे (1965), के० आर० काविस (1968), एस० एस बर्डसाल (1969), एस०डी०बून (1969), आर०आर० मैक फेल, और एम०के० श्रीवास्तव (1982) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपने शोध कार्यों (निर्वाचन सम्बन्धी) में इस उपागम का प्रयोग किया है।

3. व्यवहारात्मक उपागम –

निर्वाचन भूगोल के अध्ययनों के आचारपरक एवं व्यवहारवादी उपागम का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक की शुरुआत से हो चुका था। इस उपागम के प्रमुख प्रवर्तकों में के०आर० काक्स (1969) वारनेट (1973) जान्स्टन (1973) और डी० आर० रेनाल्ड्स के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस उपागम के प्रवर्तकों की मान्यता है कि मतदान व्यक्ति अथवा व्यक्तियों एवं समुदायों का अंग है और मानव व्यवहार स्थिति, स्थान तथा समय के साथ परिवर्तित होता है। यही नहीं अपितु मतदान व्यवहार व्यक्ति के आर्थिक शैक्षिक एवं सामाजिक स्थिति के साथ-साथ उसके राजनीतिक दृष्टिकोण से भी निर्धारित होता है कारण कि विभिन्न दलों और उनसे सम्बद्ध उम्मीदवारों की राजनीतिक विचार धारा क्षेत्र के विभिन्न अभिकेन्द्रों (Nocles) के माध्यम से निर्वाचकों तक पहुँचती है और अंततः मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है।

व्यवहारात्मक उपागम में प्रायः मतदाताओं के साक्षात्कार द्वारा भी सूचनाओं का एकत्रीकरण किया जाता है। समाचार पत्र भी इस प्रकार की सूचनाओं के प्रसार के प्रमुख साधन होते हैं। ये राजनीतिक सूचनाएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक, एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक विभिन्न स्रोतों से पहुँचती हैं। काक्स के अनुसार यदि चुनाव के प्रति निर्वाचकों में चेतना की कमी है तो प्राप्त/एकत्रित सूचनाएं कम मातृत्व भी हो सकती हैं। इस उपागम द्वारा अध्ययन की उपयोगिता हेतु निर्वाच के लिए जिनका साक्षात्कार किया जा रहा है, उनमें चुनाव के प्रति चेतनता व जागरूकता का होना आवश्यक है। उनमें इस प्रकार की क्षमता विद्यमान होनी चाहिए कि वह दलों से सम्बद्ध विभिन्न प्रतियोगी प्रत्याशियों के बीच अन्तर्सम्बन्ध कई प्रकार के पूर्वाग्रहों (यथा— भौगोलिक दूरी, परिचय क्षेत्र, दबाव युक्त क्षेत्र एवं पारस्परिकता) से युक्त होता है।

सारांशतः निर्वाचन भूगोल की व्यवहारवादी अध्ययन धारा राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तत्वों के क्षेत्रीय सम्पर्क और विस्तार का मतदान के क्षेत्रीय प्रारूप पर पड़ने वाले प्रभावों के विश्लेषण पर केन्द्रित है। इसमें मात्रात्मक अथवा सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग और बहुपक्षीय (Multivariate) विश्लेषण पहले की भाँति आज भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। भूलभूत अंतर अध्ययन भी परिदृष्टि अर्थात् वस्तुस्थिति को देखने और समझने के तरीके में निहित है। आज शोधकर्ता का ध्यान व्यवहारवादी उपागम के माध्यम से दूरी परक व्यक्तिगत रिश्तों, निवास स्थान, कार्य क्षेत्र के प्रभाव तथा अन्तर्क्षेत्रीय सम्बन्धों का मतदाता के मतदान निर्णय पर पड़ने वाले प्रभावों पर केन्द्रित हो गया है।

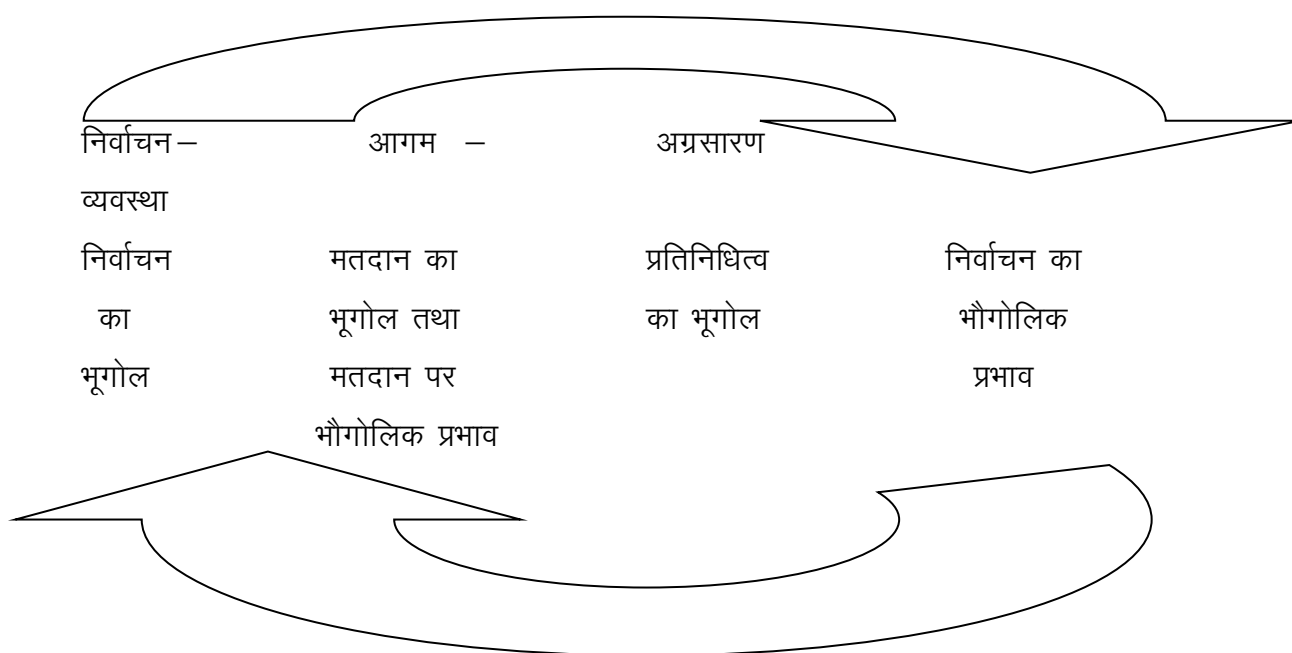
11.4. निर्वाचन भूगोल में प्रतिमानों (Models) का प्रयोग

यद्यपि कि राजनीतिक भूगोल में प्रतिमानों का प्रयोग सीमित रहा है, लेकिन निर्वाचन भूगोल में सामान्य निर्वाचन स्वरूप, निर्वाचन व्यवहार, दलीय स्थिति, परिणाम आदि तथ्यों के विश्लेषण हेतु कुछ प्रतिमानों का प्रयोग किया जाने लगा है ये प्रतिमान (मॉडल) प्रमुखतः चार हैं—

1. क्षेत्रीय सम्बन्ध मॉडल :- क्षेत्रीय सम्बन्ध मॉडल में एक समूह क्षेत्र के स्थानिक वितरण तथ्यों की तुलना दूसरे समूह क्षेत्र से की जाती है। इस मॉडल का सर्वप्रथम प्रयोग आन्द्रे सीगफ्रीड (1949) ने फ्रांस के आर्दचे

विभाग में तीसरे जनतंत्र (1871-1940) की अवधि में हुए चुनावों के विश्लेषण के लिए किया था।

- व्यवहारात्मक मॉडल :- इस मॉडल में निर्वाचन के व्यवहारात्मक पहलुओं खासकर निर्वाचन की सम्पूर्ण प्रक्रिया (मतदान निर्णय की प्रक्रिया, उसको प्रभावित करने वाले कारक तथा मतदान का क्षेत्रीय प्रारूप) की समीक्षा की जाती है। इस मॉडल के विकास में के० आर० फाक्स (1969) का महत्वपूर्ण योगदान है।
- सिस्टम मॉडल :- टेलर महोदय ने इस मॉडल का उपयोग सर्वप्रथम निर्वाचन भूगोल में किया है। इस तंत्र के तीन प्रमुख तत्व हैं— आगम (Input), अग्रसारण (Throughput), एवं निर्गम (Output)। एक अन्य तत्व प्रति पुष्टि (Feedback) भी है। इसे अग्रांकित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —



निर्वाचन भूगोल में सिस्टम मॉडल (आगम-अग्रसारण-निर्गम अवधारणा) -

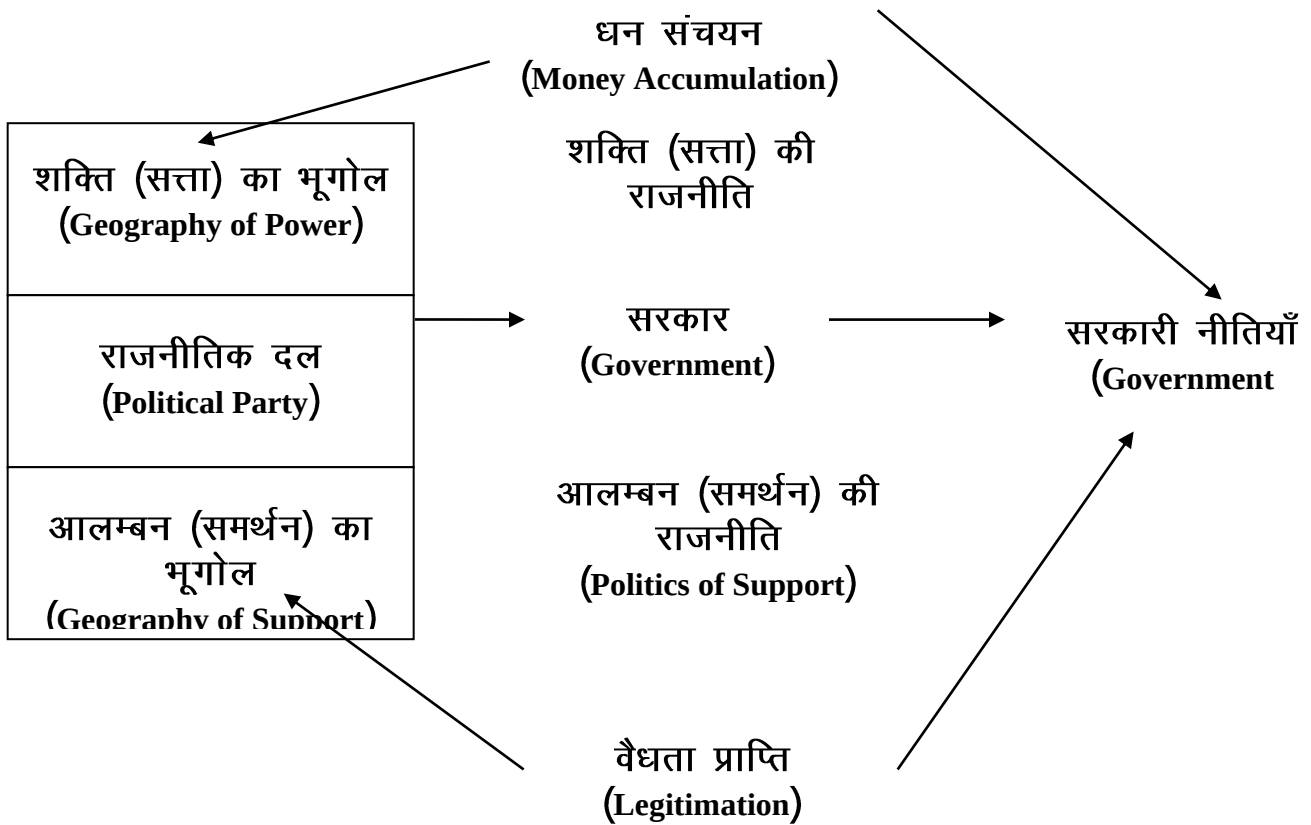
चुनाव व्यवस्था के 'आगनात्मक' तत्वों के अन्तर्गत सरकारी नीतियों का कार्यान्वयन है। उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न सामाजिक तथा राजनीतिक संतोष अथवा असंतोष 'अग्रसारण' है। आगामी चुनाव पर उसका प्रभाव और निर्वाचन परिणाम इसके 'निर्गत' है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सरकार द्वारा पारित नीतियाँ तथा उनके कार्यान्वयन से उत्पन्न मतदाता संतोष अथवा असंतोष चुनाव की प्रक्रिया में 'प्रति पुष्टि' की भूमिका निभाते हैं। यह प्रतिपुष्टि चुनाव प्रक्रिया को निरंतरता प्रदान कर अगले चुनाव के लिए पृष्ठभूमि (Feedback) तैयार करती है।

- संशोधित मॉडल - निर्वाचन भूगोल का यह चतुर्थ मॉडल वास्तव में एक संशोधित मॉडल है। जिसमें 'शक्ति का भूगोल' (Geography of Power) एवं 'आलम्बन का भूगोल' (Geography of Support) दोनों को समायोजित किया गया है। वस्तुतः चुनाव के दो पहलू महत्वपूर्ण होते हैं:-

प्रथम - प्रभुत्व सम्पन्न समूह में आन्तरिक प्रतिद्वन्द्विता;

द्वितीय - अन्तर समूह प्रतिद्वन्द्विता। इसी पर आधारित 'दो प्रक्रम हैं—' शक्ति की राजनीति' (Politics of Power) एवं 'आलम्बन की राजनीति' (Politics of Support) राजनीतिक दल दोनों प्रकार की राजनीति कर अपने मतदाताओं को गति देते हैं। दलों के चुनाव अभियान एक साथ ही दोनों स्तरों पर प्रयास होते हैं लेकिन समर्थन (आलम्बन) की राजनीति पर वे अधिक केन्द्रित होते हैं कारण कि उन्हें यह भली प्रकार मालूम रहता है कि व्यापक जनसमर्थन के आलम्बन आधार पर ही शासक दल को वैधता प्राप्त होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जन समर्थन ही राज्य की सर्वोपरि वैधता है। दोनों स्तरों की राजनीति और

सत्सम्बन्धित निर्वाचन प्रक्रियाओं के व्यवस्थापक अन्तर्सम्बन्ध निम्नवत् निरूपित हैं—



निर्वाचन भूगोल का संशोधित मॉडल

11.5 निर्वाचन भूगोल में दलीय पद्धति

महत्व – निर्वाचन भूगोल में राजनीतिक दल, दलीय स्थिति की दिशा व प्रतिरूप, दलीय समर्थन के क्षेत्र, दलों के समर्थन आधार एवं निर्वाचन परिणामों पर राजनीतिक दलों का प्रभाव जैसे विषयों के अध्ययन का पर्याप्त महत्व है, कारण कि इन्हीं के आधार पर मतदान निर्णय, मतदान प्रतिरूप और मतदान व्यवहार के विषय में सम्यक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। दलीय पद्धति सामान्यतः राजनीतिक तंत्र का एक भाग होती है जो राज्य के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित होती है। प्रत्येक राजनीतिक दल न्यूनाधिक रूप से एक ऐतिहासिक इकाई होता है, जिसका स्वरूप देश के राजनीतिक इतिहास में घटित होने वाले परिवर्तनों के लिए देश के राजनीतिक दलों की संरचना व उनके स्वरूप को समझना आवश्यक होता है। राज्य की राजनीति में सक्रिय सभी राजनीतिक दलों की अपनी अलग-अलग और बहुध स्पष्ट राजनीतिक पहचान होती है। यह पहचान उन दलों के चुनाव घोषणा पत्रों, उनके संविधान के मूलभूत उद्देश्यों में निहित होती है। दल की पहचान चुनावी समर में उतरे उम्मीदवारों और उनके चुनाव चिन्हों के साथ जुड़ी होती है। इससे मतदाता को उम्मीदवारों के बीच चुनाव करने में सरलता हो जाती है। यही कारण है कि निर्वाचन भूगोल में दलीय पद्धति का पर्याप्त महत्व है।

11.5.1 दलीय पद्धति के प्रकार –

दलीय पद्धति के सामान्यतः तीन प्रकार हैं –

- (i) एक दलीय पद्धति – एक दलीय पद्धति में राज्य के प्रशासन पर केवल एक ही दल का अधिकार होता है। साम्यवादी देशों जैसे— चीन, रूस, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड एवं क्यूबा जैसे देशों में एक ही पार्टी देश के प्रशासन एवं सरकार को परिचालित करती है।
- (ii) द्विदलीय पद्धति – द्विदलीय पद्धति में राज्य में सामान्यतः दो पार्टियाँ होती हैं। जो शासन सत्ता में राजनीतिक वर्चस्व के लिए होड़ करती हैं। ग्रेट ब्रिटेन (लेबर पार्टी एवं कंजरवेटिव पार्टी) एवं संयुक्त राज्य अमेरिका (रिपब्लिकन पार्टी एवं डेमोक्रेट) द्विदलीय पद्धति के बेहतर उदाहरण हैं।
- (iii) बहुदलीय पद्धति – बहुदलीय पद्धति में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर की कई पार्टियाँ होती हैं, जो अपने-अपने चुनाव घोषणा-पत्रों एवं चुनाव चिन्हों के आधार पर चुनावों में भाग लेती हैं। कई बार किसी राष्ट्रीय पार्टी को सरकार बनाने के लिए आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं होता तो कई दल मिलकर मिली-जुली सरकार बनाते हैं। भारत में बहुदलीय पद्धति ही प्रचलित है।

11.5.2 बहुदलीय पद्धति –

विभिन्न राष्ट्रीय व क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को उनके प्रभाव से जो मत प्राप्त होता है उससे उस राजनीतिक दल की राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्थिति व दिशा का निर्धारण होता है। चूँकि दलीय स्थिति पर स्थानिक कालिक एवं राजनीतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है इसलिए दलीय स्थिति के प्रतिरूप में भिन्नता का पाया जाना स्वाभाविक है। कोई एक राजनीतिक दल किसी एक क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित करता है तो दूसरे क्षेत्र में वह प्रभावहीन भी हो सकता है। वस्तुतः दलीय स्थिति की दिशा व प्रतिरूप के द्वारा विभिन्न दलों के घटते-बढ़ते राजनीतिक प्रभाव का ज्ञान होता है। दलीय स्थिति की दिशा व प्रतिरूप की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न दलों द्वारा जीती गई सीटों का स्थानिक विश्लेषण किया जाता है और इसके लिए मानचित्र पर विभिन्न दलों समर्थन क्षेत्रों को प्रदर्शित किया जाता है। इससे विभिन्न दलों के प्रभाव क्षेत्र को समझा जा सकता है। राजनीतिक दलों की क्षेत्रीय शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए दलीय मतों के प्रतिरूप का भी अध्ययन आवश्यक होता है और प्रतिरूप के आधार पर दलों के समर्थन आधारों का यथेष्ट विश्लेषण किया जा सकता है।

11.5.3 दलों के समर्थन आधार –

प्रायः राजनीतिक दलों के उद्देश्य व उनकी कार्य प्रणाली दलों के समर्थन के आधार का निर्माण करती है। पामर (1976) ने दलीय समर्थन के तीन प्रमुख आधारों का उल्लेख किया है—

- (अ) पारिस्थितिकीय आधार :— इसके अन्तर्गत वे सभी प्राकृतिक तत्व सम्मिलित किए जाते हैं जो पारस्परिक रूप से जुड़ाव रखते हैं।
- (ब) राजनीतिक आधार :— इसके अन्तर्गत तीन प्रकार के राजनीतिक तत्वों को सम्मिलित किया जाता है—
 - (1) प्रत्याशी उन्मुखता, अर्थात् प्रत्याशी का व्यक्तित्व और इसके प्रति मतदाताओं का झुकाव जो निर्वाचन परिणाम को प्रभावित करते हैं।
 - (2) दलीय पहचान, अर्थात् समाज में दलों की ऐसी विशिष्ट पहचान जिसकी नीतियों एवं कार्यक्रमों से मतदाता वर्ग भली भाँति परिचित हो। इस आधार उसे व्यापक जन समर्थन हासिल हो सकता है।
 - (3) उद्देश्य उन्मुखता, अर्थात् किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर जब राजनीतिक दल चुनाव लड़ते हैं, भारतीय जनता पार्टी धारा 370 को हटाने व राम मंदिर उद्देश्यों के साथ चुनाव में उतरी थी और उसे व्यापक जन समर्थन प्राप्त हुआ था।
- (स) सामाजिक-आर्थिक आधार— सामाजिक- आर्थिक आधारों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें विभिन्न सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म, अल्पसंख्यकता, सामुदायिकता, शिक्षा, व्यापार, आयु स्त्री-पुरुष अनुपात आदि अनेक तत्व सम्मिलित हैं। विभिन्न राजनीतिक दलों ने इसमें अनेक तत्वों को अपने समर्थन का आधार बनाया है। उदाहरण के लिए बहुजन समाज पार्टी का समर्थन आधार अनुसूचित जाति का मतदाता वर्ग है। समाजवादी पार्टी का समर्थन आधार यादव व मुस्लिम वर्ग है। कांग्रेस पार्टी के समर्थन का आधार कभी अल्पसंख्यक समुदाय, अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग थे लेकिन अब इसमें अन्य राजनीतिक दलों ने घुस पैठ

करली है। भारतीय जनता पार्टी का समर्थन आधार मूलतः ब्राह्मण, राजपूत एवं बनिया वर्ग है। साम्यवादी दल कुछ निश्चित क्षेत्रों में जैसे प० बंगाल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं केरल में कुछ निश्चित समुहों जैसे औद्योगिक श्रमिकों, कृषि श्रमिकों एवं मध्यमवर्गीय सेवाओं में रत लोगों से समर्थन प्राप्त करते हैं।

11.5.4 दलगत राजनीतिक शक्तियों के प्रादेशिक संतुलन के कारक –

दलगत राजनीतिक शक्तियों के प्रादेशिक संतुलन के विविध कारकों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

- (अ) क्षेत्रीय सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएं
- (ब) ऐतिहासिक—राजनीतिक परम्पराएं
- (स) राजनीतिक एवं जन संगठनों की प्रादेशिक संरचना
- (द) राजनीतिक संगठनों की सक्रियता, स्थानीय नेताओं की लोकप्रियता एवं प्रदेश में राजनीतिक स्थिति आदि।

उल्लेखनीय है कि इन कारकों के भौगोलिक राजनीतिक विश्लेषण में एक प्रमुख कठिनाई यह आती है कि निर्वाचन क्षेत्र और प्रशासनिक इकाइयों की सीमाओं में सामंजस्य का अभाव होने से पर्याप्त सांख्यिकीय सूचनाएं उपलब्ध नहीं हो पाती, परिणामतः विश्लेषण पूर्ण नहीं हो पाता।

11.5.5 निर्वाचन परिणामों पर राजनीतिक दलों का प्रभाव –

निर्वाचन परिणामों पर राजनीतिक दलों के प्रभाव का आकलन निम्न आधारों पर किया जा सकता है—

- (1.) दलों के गठन के आधार पर,
- (2.) दलों के उद्देश्यों के आधार पर,
- (3.) दलों के कार्यक्रमों के आधार पर
- (4.) दलों की वैचारिक सोच के आधार पर
- (5.) प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय दलों की संरचना एवं उद्देश्यों के आधार पर
- (1.) दलों के गठन के आधार पर— राजनीतिक दलों का गठन प्रायः क्षेत्र व समाज की आवश्यकता के अनुरूप होता है और जिन महान हस्तियों द्वारा उनका गठन किया जाता है वे ही जन समर्थन के आधार के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और निर्वाचन के परिणाम उनसे प्रभावित होते हैं। 198 भारतीय जनता पार्टी के सन्दर्भ में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर, अटल बिहारी वाजपेई आज की समर्थन आधार के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं।
- (2.) दलों के उद्देश्यों के आधार पर— बड़े राष्ट्रीय व प्रादेशिक राजनीतिक दल चुनाव घोषण पत्र के रूप में अपने दलों के उद्देश्यों को मतदान के समक्ष रखते हैं और निर्वाचन परिणामों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। 2024 के संसदीय चुनावों के लिए कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्र में जो उद्देश्य गिनाए हैं उनमें प्रकार हैं— आर्थिक सामाजिक जातिगत जनगणना, सभी शैक्षणिक कर्ज व्याज सहित माफ, सरकारी परीक्षाओं और सरकारी पदों के लिए आवेदन शुल्क की समारित, एक लाख रु की वार्षिक अप्रेंटिसशिप, गरीब परिवारों को एक लाख रु० की सालाना मदद, किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य, वरिष्ठ नागरिकों को 1000 रु पेंशन और रेल छुट आदि वास्तव में चुनाव घोषणा पत्र भावी योजनाओं का लेखा जोखा होता है जिससे मतदाता प्रभावित होता है।
- (3.) दलों के कार्य के आधार पर— देश की राजनीतिक स्थिति परिस्थिति के अनुसार दलों के कार्यक्रमों का निर्धारण करते और निर्वाचन परिणामों को प्रभावित करने की पूरी कोशिश करते हैं। राहुल गाँधी की भारत जोड़ो यात्रा (दक्षिण से उत्तर) एवं भारत जोड़ो—न्याय यात्रा (पूर्व से पश्चिम) कुछ ऐसे ही कार्य क्रम हैं जो मतदाता को प्रभावित करने व निर्वाचन परिणामों पर प्रभाव डालने के लिए सम्पन्न किए गए थे।
- (4.) दलों की वैचारिक सोच के आधार पर— दलों की वैचारिक सोच की निर्वाचन परिणामों को प्रभावित करती है। भारतीय जनता पार्टी की सोच भी निर्वाचन परिणामों को प्रभावित करती है। भारतीय जनता पार्टी की सोच

राष्ट्रीय गौरव एवं स्वाभिमान की रक्षा तथा सनातन धर्म की सुरक्षा पर आधारित है। कांग्रेस की मध्यममार्गी धर्म निरपेक्ष सोच है जबकि बामपंथी दल साम्यवादी विचार के पोषक हैं। समाजवादी पार्टी स्वयं को समाजवादी सोच भी बनाती है जबकि बहुजन समाज पार्टी स्वयं को अम्बेदकर के विचारों का पोषक मानती है और तदनुरूप ही मतदान के मानस को प्रभावित कर चुनाव परिणामों को अनुकूल बनाने की कोशिश करती है।

- (5.) प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय दलों की संरचना एवं उद्देश्य के आधार पर— प्रादेशिक ने क्षेत्रीय दलों का गठन जब किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है तो वह निर्वाचन परिणामों को काफी गहराई तक प्रभावित करता है कारण कि उस भावना का आदर करने वाले व्यक्तियों की उस दल के प्रति विशेष निष्ठा होती है। जैसे तेलंगाना राष्ट्र समिति पार्टी के गठन के बाद यह पार्टी तेलंगाना प्रांत में 10 वर्षों तक शासन-सत्ता में रही लेकिन परिवारवाद व भ्रष्टाचार के चलते वर्ष 2023 में सत्ता से च्युत हो गई।

11.6 निर्वाचन सहभागिता

निर्वाचन सहभागिता का तात्पर्य है और निर्वाचन प्रक्रिया में बढ़चढ़कर भाग लेना, मतदान के लिए उत्सुक होना मतदान केन्द्र जाकर अपना मत देना। यह जन सहभागिता की एक सापेक्ष प्रक्रिया है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति राज्य की जनता के विश्वास को व्यक्त करती है। ऐसे चुनाव प्रायः मूल्य विहीन माने जाते हैं जिनमें जनता की सहभागिता कम होती है। यही कारण है कि निर्वाचन भूगोल में निर्वाचन सहभागिता का अध्ययन महत्वपूर्ण माना गया है। निर्वाचन सहभागिता के अन्तर्गत निर्वाचन प्रक्रिया के निम्नलिखित पक्षों के अध्ययन पर बल दिया गया है—

- (1.) मतदान प्रतिरूप
- (2.) निरस्त मतों का प्रतिरूप
- (3.) संघर्ष की स्थिति
- (1.) मतदान प्रतिरूप— मतदान प्रतिरूप का अध्ययन वास्तव में राज्य की जनता की राजनीतिक चेतना व जागरूकता को जानने का सबसे सशक्त माध्यम है। प्रायः यह देखा गया है कि जिस राज्य की जनता राजनीतिक कार्यों में रुचि रखती है, राजनीतिक प्रक्रियाओं में बढ़चढ़कर भाग लेती है, वहाँ मतदान का प्रतिशत अधिक होता है; या फिर जहाँ राजनीतिक दलों प्रतिस्पर्धा है, वहाँ की मतदान का प्रतिशत अधिक होता है। निर्वाचन आयोग की सक्रियता भी मतदान प्रतिशत की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनेक विद्वानों ने मतदान प्रतिरूप का अध्ययन कर मतदान की कमी या वृद्धि के सम्बन्ध में कई निष्कर्ष निकाले हैं। एस0 एम0 लिपसेट (1960) के अनुसार 'पुरुष महिलाओं की अपेक्षा, युवक प्रौढ़ों की अपेक्षा, उच्चस्तरीय व्यक्ति न्यून स्तरीय व्यक्ति की अपेक्षा, संगठन के व्यक्ति बिना सदस्यों की अपेक्षा मतदान में अधिक भागीदारी करते हैं। दास गुप्ता एवं मोरिस जोन्स (1975) के अनुसार— जिन स्थानों पर राजनीतिक दलों में प्रतिस्पर्धा अधिक होती है, वहाँ मतदान प्रतिशत का धनात्मक सह सम्बन्ध होता है। इसके अलावा यातायात एवं जनसंचार साधनों की कमी, जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा का असर, नक्सली हिंसा, आतंकवादी एवं उग्रवाद की मतदान प्रतिशत की कमी के कारण माने गए हैं।
- (2.) निरस्त मतों का प्रतिरूप— जब किसी चुनाव क्षेत्र की जनता का शिक्षा स्तर सामान्य से भी न्यून होता है, या मतदान की तकनीक सहज एवं सरल नहीं होती, तब निरस्त मतों की संख्या अधिक होती है। स्थानीय नेताओं में सक्रियता का अभाव भी निरस्त मतों की वृद्धि के लिए उत्तरदायी माना जाता है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि मतदान के प्रति जागरूकता बढ़ने एवं शैक्षिक स्तर में वृद्धि से निरस्त मतों के प्रतिशत में कमी आई है। मतदान प्रक्रिया का मशीनीकरण होने से भी निरस्त मतों का प्रतिशत कम हुआ है।
- (3.) संघर्ष की स्थिति – मतदाताओं में राजनीतिक चेतना एवं जागरूकता का बोध कराने वाला निर्वाचन सहभागिता का यह महत्वपूर्ण पहलू है। जिस चुनाव क्षेत्र की जनता राजनीतिक रूप से अधिक चैतन्य व जागरूक

होती है, वहाँ चुनाव क्षेत्र की जनता राजनीतिक रूप से अधिक चैतन्य व जागरूक होती है, वहाँ चुनावी संघर्ष के लिए अधिक प्रत्याशी चुनावी समर में उतरते हैं। वस्तुतः प्रत्याशी ही वह मुख्य तत्व हैं जो मतदाताओं में प्रेरणा, क्रियाशीलता व गतिशीलता का संचार करता है। अपने व्यक्तित्व से मतदाताओं, दलों के समर्थन व निर्वाचन उद्देश्यों का प्रभावित करता है और जनता को अधिकाधिक निर्वाचन सहभागिता के लिए प्रेरित करता है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि आर्थिक व औद्योगिक रूप से सम्पन्न क्षेत्रों में या जहाँ नगरीकरण अधिक हुआ है, वहाँ चुनावों में प्रत्याशियों की संख्या अधिक होती है और चुनाव प्रायः त्रिकोणीय या चतुष्कोणीय संघर्ष में बदल जाता है। ऐसी स्थिति आने पर चुनाव रोचक बन जाता है।

11.7 मतदान व्यवहार

मतदान व्यवहार का अध्ययन निर्वाचन भूगोल का एक समसामयिक विषय है और मतदान की सम्पूर्ण प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह स्थिति, स्थान तथा समय के साथ परिवर्तित होता है तथा मानव का शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर इसे प्रभावित करता है। मतदान व्यवहार के अध्ययन के माध्यम से यह आसानी से समझा जा सकता है कि—

- क्षेत्र विरोध के मतदाताओं का राजनीतिक झुकाव किस राजनीतिक दल की ओर है
- उनकी दलीय प्रतिबद्धता किस स्तर की है?
- उनका राजनीतिक दर्शन क्या है?
- मतदाताओं के मतदान निर्णय को कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं? तथा
- क्षेत्र विशेष के भावी विकास भी क्या प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं?

मतदान व्यवहार के अध्ययन के लिए निर्वाचन प्रक्रिया के निम्न चार पक्षों का अध्ययन आवश्यक है—

- (1.) मतदान निर्णय का अध्ययन
- (2.) मतदान व्यवहार पर पड़ने वाले पड़ोस प्रभाव तथा मित्र-और-पड़ोसी प्रभाव का अध्ययन
- (3.) मतदान प्रतिरूप का विवेचन
- (4.) मतदान परिणाम का विश्लेषण

11.7.1 मतदान निर्णय—

के0आर0 काक्स ने 1969 में 'Progress in Geography' नामक पुस्तक में प्रकाशित अपने लेख 'The Voting Decision in a spatial context' के माध्यम से मतदान प्रणाली एवं व्यवहारात्मक समस्याओं का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है। काक्स की मान्यता है कि व्यवहार स्तर पर प्रत्येक मतदाता का मतदान निर्णय और प्रवाह तंत्र में उसकी स्थिति परस्पर सम्बद्ध तत्व हैं तथा प्रत्येक मतदाता इस सूचना प्रवाह तंत्र में तीन स्तरों पर क्रियाशील होता है—

- (1) सूचनाओं के प्रेषक के रूप में;
- (2) प्राप्त सूचनाओं के संसाधक के रूप में; तथा
- (3) अन्य सूचना केन्द्रों से सूचनाओं के प्राप्त कर्ता के रूप में काक्स (1969) का मानना है कि— सूचना प्रवाह तंत्र के विभिन्न बिन्दु समान महत्व के नहीं होते क्योंकि इनमें से कुछ मतदाता अपने ज्ञान और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर अधिक प्रभावी सूचना प्रेषक एवं संसाधक हैं, अतः उनके सम्पर्क में आने वाले उनके विचारों से प्रभावित होते हैं। साथ ही प्रत्येक सूचना प्रेषक और सूचना इन पूर्वाग्रहों से पूर्ण तथा प्रभावित होती है,?

काक्स (1969) ने मतदान निर्णय को प्रभावित करने वाली चार भिन्न-भिन्न पूर्वाग्रह स्थितियों की चर्चा की है—

1. भौगोलिक दूरी जनित पूर्वाग्रह — इसका तात्पर्य है कि किन्ही दो मतदाताओं के बीच का अन्तर सम्बंध उनके

बीच स्थित भौगोलिक दूरी पर निर्भर है भौगोलिक दूरी कम होने पर तथ्यों की सूचना शीघ्रता से पहुँचती है और अधिक होने पर देर से पहुँचती है। दोनों ही स्थितियों में मतदान अनुकूल अथवा प्रतिकूल रूप में प्रभावित होता है।

2. परिचयवृत्त पूर्वाग्रह – इसके अनुसार दो मतदाताओं के बीच परस्पर सम्बंध का स्वरूप और उसकी गहनता इस बात पर निर्भर है कि वे एक ही सामाजिक परिचय समूह के अंग हैं। यह भागीदारी जितनी ही सघन होगी, एक के मतदान निर्णय पर दूसरे के प्रभाव की संभावना उतनी ही अधिक होगी। यहाँ एक ही सामाजिक परिचय समूह का तात्पर्य है जाति, धर्म, रिश्ता आदि।
3. आरोपित क्षेत्र पूर्वाग्रह – आरोपित क्षेत्र पूर्वाग्रह का तात्पर्य है कि कुछ व्यक्ति अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक सम्पन्नता अथवा राजनीतिक प्रभाव आदि के कारण मतदान निर्णय को प्रभावित करने में अधिक सक्षम होते हैं। धनी उद्योग पतियों, सम्पन्न जमींदारों एवं पुराने राजघरानों का चुनावी महत्व इन्हीं कारणों से अधिक होता है।
4. आरोपित क्षेत्र पूर्वाग्रह – इसका तात्पर्य है कि दो मतदाताओं के बीच का सम्बंध उनकी परस्पर रिश्तेदारी पर निर्भर होता है, जैसे पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, सह उद्यमी। इनमें एक मतदाता उपरोक्त समाचार प्रेषक के रूप में होता है और दूसरा समाचार संसाधक के रूप में होता है।

के0 आर0 काक्स (1969) द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त भिन्न-भिन्न पूर्वाग्रह स्थितियों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मतदान व्यवहार 'पारिस्थितिक कारकों की अपेक्षा' निर्वाचकों के व्यवहार' से अधिक प्रभावित होता है। यह व्यवहार मतदाताओं की शिक्षा, धर्म, जाति, भाषा, राजनीतिक दर्शन एवं दृष्टिकोण आदि से निर्धारित होता है जो अंततः पार्टी विरोध या उम्मीदार के पक्ष में मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है।

11.7.2 पड़ोस प्रभाव तथा मित्र और पड़ोसी प्रभाव –

मतदान व्यवहार के विश्लेषण में कई विद्वानों ने दूरी, दिशा एवं पड़ोस प्रभाव जैसे स्थानिक चरों के अध्ययन को अधिक महत्व पूर्ण माना है जो मतदाता व्यवहार को प्रभावित करते हैं पी0जे0 टेलर एवं आर0 जे0 जांस्टन (1979) में अपनी पुस्तक में पड़ोस प्रभाव तथा मित्रों एवं पड़ोसियों का प्रभाव का विस्तार से अध्ययन किया है।

1. पड़ोस प्रभाव– मतदान व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव में दो प्रकार के पड़ोस प्रभाव मुख्य हैं— प्रथम निवास स्थान सम्बन्धी सहचार्य जिसमें कई प्रकार के पड़ोसी हो सकते हैं, जैसे सम्पन्न वर्ग, उच्च आय वर्ग, मध्यम आयवर्ग, निम्न क्षमावर्ग श्रमजीवी वर्ग, बौद्धिक वर्ग एवं अन्य विविध द्वितीय कार्य स्थान सम्बन्धी पड़ोस जैसे शैक्षणिक संस्थाएं, कचहरी, शासकीय कार्यालय, औद्योगिक कल कारखाने आदि इन संस्थाओं में काम करने वाले लोगों के बीच (चुनाव के दौरान) चुनाव सम्बन्धी राजनीतिक वार्तालाप सबसे रुचिकर विषय होता है। इससे लोगों को प्रभावित होने और प्रभावित करने का मौका मिलता है। आवासीय पड़ोसी भी चुनाव सम्बन्धी विचार विमर्श करते हैं और चुनाव के दौरान होने वाला उनका मतदान निर्णय प्रभावित होता है। इस तरह से पड़ोस प्रभाव की मतदान निर्णय में महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि पड़ोस क्षेत्र के निर्वाचन निर्णय पर पड़ने वाले प्रभाव के सर्वांगीण और यथार्थपरक विश्लेषण के लिए शोध अध्येता के लिए नृणमूल स्तर पर गहन सर्वेक्षण आवश्यक है और यह सर्वेक्षण कम से कम दो बार (एक चुनाव के पूर्व और दूसरा चुनाव परिणाम के बाद) आवश्यक होता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि 'पड़ोस प्रभाव' ने मतदान निर्णय एवं व्यवहार को किस सीमा तक प्रभावित किया है। ऐसे सर्वेक्षण पोषित निर्वाचन अध्ययनों की प्रमुख उपयोगिता यह है कि सम्बद्ध राजनीतिक दलों को अपने समर्थन के गढ़ों एवं कमजोर प्रभाव वाले क्षेत्रों की सहज पहचान हो जाती है जो भावी चुनावों में तदनुरूप दिशा प्रदान कर सकती है।
2. मित्र और पड़ोसी प्रभाव – यदि कोई व्यक्ति चुनाव में अपने ही गृह क्षेत्र से एक प्रत्याशी के रूप में चुनाव मैदान में उतरता है तो उसे अधिक जन समर्थन मिलता है कारण कि उसके क्षेत्र के लोग उसे अच्छी तरह से जानते- पहचानते हैं। तमाम मतदाता उसके मित्र, पड़ोसी, परिवारी जन एवं रिश्तेदार होते हैं। समीप की बस्तियों में भी उसका परिचय एवं प्रभाव अधिक होता है इसका परिणाम यह होता है। कि मतदाता उसके पक्ष में अधिक मतदान करते हैं और इस तरह उस का मतदान प्रतिशत बढ़ जाता है।

मतदान व्यवहार के इसी स्वरूप को 'मित्र और पड़ोसी प्रभाव' कहते हैं। निर्वाचन अध्ययन साहित्य ने इसका अध्ययन सर्वप्रथम बी०ओ०की ने अपनी पुस्तक 'Southern Politics in State and Nation' 1949 में किया था। निष्कर्ष के तौर पर की (पृ०37-38) ने रेखांकित किया कि—'प्रान्तीय सदनों के लिए हुए चुनावों में प्रत्याशी बहुधा अपने गृह प्रदेश तथा पास के प्रदेशों में अधिक समर्थन प्राप्त करते हैं। इसके दो कारण होते हैं, प्रथम, मतदाता अपने स्थानीय हितों की सुरक्षा की दृष्टि से एक जाने पहचाने मित्र अथवा पड़ोसी प्रत्याशी को अपना प्रतिनिधि बनाना चाहता है, तथा द्वितीय, ऐसा मतदान व्यवहार इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि सम्बद्ध क्षेत्र में राजनीतिक आस्था के स्थान पर जान-पहचान और जातीय आधार पर लिया जाता है।', इस सन्दर्भ में दीक्षित (1995) का मत है कि (भारत) में इस प्रकार का मतदान व्यवहार केवल स्थानीय निकायों के चुनावों में ही निर्णायक भूमिका निभा सकता है, क्योंकि इस स्तर के चुनावों में मतदान क्षेत्र छोटे आकार के होते हैं, मतदाता प्रत्याशी को जानता है ताकि मतदाताओं की संख्या सीमित होने के कारण इस प्रकार मतदान प्रत्याशी को जानता है तथा मतदाताओं की संख्या सीमित होने के कारण इस प्रकार के मतदान से परिणाम पर प्रभाव पड़ने की पूरी संभावना रहती है।

टेलर एवं जांस्टन (1979) ने भी प्रत्याशियों के अपने गृह क्षेत्र में अधिक मतदान प्रतिशत को अपने पक्ष में करने के दो प्रमुख कारण बताए हैं, प्रथम— प्रत्याशी अपने गृह क्षेत्र की समस्याओं से पूर्णतः परिचित होता है, दूसरा— मतदाता उसके व्यक्तित्व, व्यवहार व स्वभाव से भलीभाँति परिचित होता है, इसीलिए अपने हित को ध्यान में रखकर अपना मत उसे प्रदान करता है। यहाँ पर इस तथ्य का भी उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रत्याशी अपने गृह क्षेत्र की समस्याओं से पूर्णतः परिचित होता है, यहाँ पर इस तथ्य का भी उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रत्याशी को समर्थन उसके गृह क्षेत्र से दूरी के साथ घटता जाता है अर्थात् निवास स्थान से दूर जाने पर समर्थन के स्तर में उत्तरोत्तर ह्रास का कारण प्रत्याशी और मतदाता के बीच परस्पर बढ़ती हुई सामाजिक दूरी का परिणाम है (दीक्षित एवं सिंह 1993)।

11.7.3 मतदान प्रतिरूप का विवेचन—

चुनाव सम्पन्न होने के पश्चात जब चुनाव आयोग मतदान संबंधी आँकड़े प्रकाशित करता है, तो उन आंकड़ों के आधार पर मतदान प्रतिरूप का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय एवं मानचित्रण तथा कम्प्यूटरीकृत तकनीकों से विभिन्न राजनीतिक दलों के लिए क्षेत्रानुसार किया जाता है। इससे राज्य की जनता के मतदान व्यवहार, उनकी राजनीतिक चेतना, दलीय प्रतिबद्धता तथा जागरूकता का स्पष्ट पता चल जाता है। मतदान प्रतिशत के कमी के कारण भी ऐसे अध्ययनों से उजागर होते हैं। वर्ष 2024 के संसदीय चुनावों में प्रायः भारत के हर प्रान्त में मतदान प्रतिशत में काफी कमी दर्ज की गई और इसके लिए राजनीतिक विश्लेषकों ने जो कारण उत्तरदायी ठहराए हैं उनमें भीषण गर्मी, लू, शदियों का मौसम, अप्रत्याशित वर्षा, फसलकटाई आदि प्रमुख हैं। कम मतदान वाले चुनाव परिणाम पूरी आबादी की इच्छा को बेहतर ढंग से नहीं दर्शाते। उल्टे राजनीतिक अस्थिरता बढ़ाते हैं। वस्तुतः मत प्रतिशत बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य बूथ स्तर पर बी०एल०ओ० का होता है जो स्थानीय लोगों के बीच से ही होता है उसका कार्य सभी प्रकार से लोगों के नामों की सूची तैयार करने में मदद करना है। नामों की पर्चियाँ लोगो तक पहुँचाने का कार्य भी बी०एल०ओ० का है। बी०एल०ओ० की उदासीनता के कारण ही मतदान बूथों पर मतदाताओं को अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ता है, जैसे लोगो के नाम सूची में न होना, मृत लोगो के नाम सूची में रह जाना। बी०एल०ओ० का गंभीर न होना भी समस्या को बढ़ावा देता है।

11.7.4 मतदान परिणाम का विश्लेषण —

मतदान परिणामों का तर्कसंगत विश्लेषण करके भी मतदान व्यवहार का पता लगाया जाता है। इसमें कई चरों जैसे किस पार्टी को कितने वोट मिले, पक्ष-विपक्ष में कितने पत पड़े, किस गठबंधन का कैसा क्षेत्र वार

प्रदर्शन रहा आदि का उपयोग किया जाता है। और सांख्यिकीय विधियों का उपयोग कर अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। ये अंतिम निष्कर्ष ही मतदान व्यवहार सम्बंधी परिकल्पनाओं और सिद्धान्तों के निरूपण में मदद करते हैं और विषय के विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

सारांशतः कैस्पर्सन एवं मिधी (1969) अनुसार—‘ मतदान व्यवहार की तर्क संगत व्याख्या हेतु यह आवश्यक है कि मतदान क्षेत्रों की सीमाएं लम्बे समय तक स्थिर रहें। इसी प्रकार निर्वाचन जमावड़ा में अत्यधिक परिवर्तन भी मतदान व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। मतदान व्यवहार के विश्लेषण में निर्वाचन प्ररूपता की भी प्रासंगिकता पाई जाती है।

11.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि मतदान व्यवहार के भौगोलिक अध्ययन के लिए निर्वाचन भूगोल के किन-किन पक्षों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। वस्तुतः मतदान व्यवहार का भौगोलिक अध्ययन तभी सम्पूर्णता प्राप्त करता है जब उसके अन्तर्गत निर्वाचन भूगोल के अध्ययन उपागमों एवं प्रतिमानों के अध्ययन के साथ-साथ राजनीतिक दलीय पद्धति, दलों के समर्थन आधार, निर्वाचन परिणामों पर राजनीतिक दलों का प्रभाव निर्वाचन सहभागिता, मतदान निर्णय, पड़ोस प्रभाव तथा मित्र और पड़ोसी प्रभाव, मतदान प्रतिरूप एवं मतदान परिणामों का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में ये सभी पक्ष मिल कर ‘ मतदान व्यवहार’ की दिशा रूप रेखा एवं स्वरूप को निर्धारित करते हैं।

11.9 शब्द सूची

उपागम	Apparoach	आगम	Input
प्रतिमान	Model	अग्रसारण	Throughput
पारम्परिक	Traditional	निर्गम	Output
चर	Variable	प्रतिपुष्टि	Fedbaek
संगणक	Computer	निर्वाचन सह भागिता	Electoral Praticip
अभिकेन्द्र	Node	मतदान व्यवहार	Voting Behaviour

11.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. निर्वाचन भूगोल में सिस्टम मॉडल का सर्वप्रथम प्रयोग किया था—

(अ) टेलर ने (ब) मूडी ने (स) के0 आर0 काक्स ने (द) जे0 आरे0 वी0 प्रेस्कॉट ने

2. क्षेत्रीय सम्बंध मॉडल का सर्वप्रथम प्रयोग किस विद्वान ने किया था?

(अ) जे0आर0वी0 प्रेस्कॉट (ब) आन्द्रे सीग फ्रीड (स) एम0ए0बस्टीट (द) पी0जे0 टेलर

3. इनमें से कौन सा तत्व सिस्टम मॉडल में नहीं है?

(अ) आगम (ब) अग्रसारण (स) समर्थन (द) निर्गम

4. 'Geography and Voting Behaviour' पुस्तक का लेखक कौन है?

(अ) के० आर० काक्स (ब) आर० जे० जॉस्टन (स) एम० ए० बस्टीड (द) एम० के० श्रीवास्तव

5. भारत के निर्वाचन में दल सम्बंधी कौन सी प्रणाली प्रचलित है?

(अ) एक दलीय प्रणाली (ब) द्विदलीय प्रणाली (स) बहुदलीय प्रणाली (द) इनमें से कोई नहीं

आदर्श उत्तर

1. (अ) ; 2. (ब) ; 3. (स) ; 4. (स) ; 5. (स)

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Busteed, M.A., (1975): 'Geography and Voting Behaviour; Wxford, London Cox, K.R., (1969) : 'The Voting Decision in a Spatial Context' Progress in Geography, Vol. 1, PP. 81- 117.

Das Gupta, B. and Morris-Jones, W.H., (1975): 'Trends and Patlerns in Indian Politics: An Ecological Analysis of Aggrigate dala on Society and Elections; New dellu , Manohar Book Company.

Dikshit, R.D., (1995) : 'Geography of Elections': The Indian Context; (ED), Rawat Publications, Jaipur.

Dikshit, R.D. and swgh, S., (1993): 'Friends and Neighbours Influnce in Indian Elections: A Case Study of Rural Optuig in Sonipat 9Haryana), Asian Profite, Vot. 21, PP 483-493

Kasperson R. and Minghi, J.V., 9(1969): 'The Sturclure of Pltitical Geography; Aldine Pub. Co., Chicago.

Key, V.O., (1949) : 'Southern Politices in state and Nation New york, knoph.

Lipset, S.M., (1960) Political Man; Doubleday adn co., Garden City, New York.

Srivastava, M.K., 91982) : 'Electoral Geography of an Indian State, Cltlar Pradesh; Atul Dissertation, Allahabad

Taylor, P.J. and Johnston, R.J. (1979): 'Geography of Elections; Penguien Books, Hammonds worth.

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. मतदान व्यवहार किन तथ्यों से प्रभावित होता है?
2. निर्वाचन भूगोल में सिस्टम माडल का प्रयोग किस प्रकार किया गया है?
3. निर्वाचन भूगोल के व्यवहारात्मक उपागम की विवेचना कीजिए।
4. मतदान प्रतिरूप पर भौगोलिक प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
5. निर्वाचन सहभागिता का आशय समझाइये।

इकाई-12 निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 विषय प्रवेश
- 12.3 निर्वाचन पद्धतियाँ
- 12.4 जनमत संग्रह
- 12.5 मताधिकार
- 12.6 निर्वाचन क्षेत्र और उनकी क्षेत्रीय संरचना
- 12.7 निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण
- 12.8 निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण के आधार
- 12.9 भारत में निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण और प्रभाव
- 12.10 निर्वाचन दुरुपयोग
- 12.11 चुनाव क्षेत्रों के परिसीमन के कारण उत्पन्न प्रदूषण के प्रकार
 - 12.11.1 आवण्टन का दोष
 - 12.11.2 सीमांकन का दोष (जेरी मैण्डरिंग)
- 12.12 सारांश
- 12.13 शब्द सूची
- 12.14 स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 12.16 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

12.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम की यह बारहवीं इकाई है। इस इकाई में आप निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण संबंधी विविध पक्षों का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः निर्वाचन क्षेत्रों की क्षेत्रीय संरचना का अध्ययन करने के पूर्व यह आवश्यक है कि उन निर्वाचन पद्धतियों का भी अध्ययन किया जाय जिनके माध्यम से किसी राज्य या प्रान्तीय क्षेत्र में चुनाव प्रक्रिया सम्पन्न होती है कारण कि प्रत्येक चुनाव प्रणाली किसी राज्य विशेष के सम्पूर्ण क्षेत्रफल को सम्मिलित करने वाली क्षेत्रीय इकाइयों निश्चित समूह के चारों ओर संगठित होती है जो अंततः चुनाव परिणामों प्रभावित करती है। इस इकाई में निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण आधारों एवं प्रभावों के अध्ययन के साथ-साथ जनमत संग्रह एवं मताधिकार का भी अध्ययन किया गया है ताकि विषय के प्रत्येक पक्ष को विधिवत् समझा जा सके। निर्वाचन दुरुपयोग, आवण्टन दोष एवं सीमांकन दोष (जेरीमैण्डरिंग) का भी विस्तार से विवेचन करके आप निर्वाचन क्षेत्र निर्धारण सम्बन्धी ज्ञान को पूर्णरूप से परिपुष्ट करने का प्रयास इस इकाई में किया गया है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. निर्वाचन पद्धतियों की सम्पूर्ण जानकारी विद्यार्थियों को प्रदान करना।
2. जनमत संग्रह एवं मताधिकार की विशेष जानकारी उन्हें देना।
3. निर्वाचन क्षेत्र और उनकी क्षेत्रीय संरचना से उन्हें अवगत कराना।
4. विद्यार्थियों को यह बताना कि निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए?
5. निर्वाचन कदाचारों के विविध स्वरूपों से उन्हें उदाहरण सहित परिचित कराना।

12.2 विषय प्रवेश

निर्वाचन भूगोल के अध्ययन का एक विशेष पक्ष चुनाव क्षेत्रों का अध्ययन है, कारण कि निर्वाचन क्षेत्र ही किसी राज्य अथवा प्रदेश के निर्वाचन भूगोल के अध्ययन के आधार होते हैं। इनके आधार पर ही राज्य अथवा प्रान्त में क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व निर्धारित होता है। प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए सम्पूर्ण राज्य अथवा प्रान्त को अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है जिससे कि प्रत्येक क्षेत्र के मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें। चूँकि निर्वाचन क्षेत्रों का गठन राज्य विशेष में प्रचलित चुनाव प्रणाली के अनुसार किया जाता है, इसलिए चुनाव क्षेत्रों के अध्ययन में निर्वाचन पद्धतियों को भी शामिल किया जाता है। चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन, परिसीमन से उत्पन्न प्रदूषण, विसंगतियाँ एवं निर्वाचन भूगोल के विभिन्न विद्वानों की कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसी निर्वाचन भूगोल के अध्येता को निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण का भूगोल समझना है तो उसे सबसे पहले निर्वाचन पद्धतियों का अध्ययन करना चाहिए, कारण कि प्रत्येक चुनाव प्रणाली (पद्धति) किसी राज्य विशेष के सम्पूर्ण क्षेत्रफल को सम्मिलित करने वाली क्षेत्रीय इकाइयों के निश्चित समूह के चारों ओर संगठित होती है जो अंततः चुनाव परिणामों को प्रभावित करती है।

12.3 निर्वाचन पद्धतियाँ

निर्वाचन भूगोल में निर्वाचन पद्धतियों के अध्ययन का पर्याप्त महत्व है, कारण कि यही वह निर्वाचन प्रणाली है जिसके माध्यम से किसी क्षेत्र का मतदाता विधान सभा या संसद में कार्यपालिका के गठन के लिए अपना प्रतिनिधि चुन करके भेजना है। इसी कार्यपालिका द्वारा राज्य अथवा प्रान्त का शासन-प्रशासन संचालित होता है, राज्य के संसाधनों का आर्थिक सामाजिक-सामाजिक नियोजन एवं नियंत्रण होता है और राज्य के संस्थागत विकास की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। किसी भी राज्य की कोई भी निर्वाचन पद्धति उस राज्य के भौगोलिक परिवेश, (यथा-राज्य का आकार, उसका एकात्मक या संघात्मक स्वरूप, उस राज्य की जनसंख्या और उसकी प्रजातीय व गुणात्मक विशेषताएं साक्षरता, मानव दृष्टिकोण आदि) से प्रभावित होती हैं, इसलिए निर्वाचन पद्धतियों का राजनीतिक महत्व के साथ भौगोलिक महत्व भी है। इसी दृष्टिकोण से यहाँ निर्वाचन पद्धतियों की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। निर्वाचन की सारी प्रक्रिया और निर्वाचन परिणाम बहुत हद तक इस तथ्य पर निर्भर करता है कि क्षेत्र में सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया किस पद्धति से सम्पन्न हुई है। चुनाव सम्पन्न करने की मुख्यतः चार पद्धतियाँ हैं—

(1) बहुवाद पद्धति— (2) अधिमान पद्धति (3) सूची पद्धति (4) मिश्रित पद्धति

बहुवाद पद्धति— इस निर्वाचन पद्धति में किसी भी क्षेत्र में चुनाव लड़ रहे प्रत्याशियों में सबसे अधिक मतपाने वाले प्रत्याशी को विजयी घोषित कर दिया जाता है भले ही कुल मतदान का मात्र 20-25 प्रतिशत मत ही उसे क्यों न प्राप्त हुआ हो। इस रूप में विजयी प्रत्याशी उस क्षेत्र का प्रतिनिधि चुन लिया जाता है, जब कि 75 से 80 प्रतिशत मत उसके विरोध में पड़ते हैं जो विभिन्न पार्टी प्रत्याशियों में बँटे होते हैं। देखा जाय तो निर्वाचन की यह पद्धति दोषपूर्ण है, कारण कि इस रूप में विजयी प्रत्याशी पूरे चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता वस्तुतः लोकतंत्र की मूल भावना का यह अनादर होता है।

निर्वाचन की इस पद्धति को 'बहुमत प्रणाली' या 'पहले छूने वाली पद्धति' भी कहते हैं जो प्रायः ब्रिटेन,

भारत, कनाडा, यू0 एस0 ए0, न्यूजीलैंड, श्रीलंका और पाकिस्तान जैसे देशों में प्रचलित है। इस पद्धति के तीन प्रकारान्तर की हैं— प्रथम—एक प्रतिनिधि वाले निर्वाचन क्षेत्र; द्वितीय—दो अथवा अधिक प्रतिनिधियों वाले निर्वाचन क्षेत्र; तृतीय 'भारित बहुवाद'। एक प्रतिनिधि वाले निर्वाचन क्षेत्र में मत पर सभी प्रत्याशियों का नाम अंकित होता है, तथा मतदाता किसी एक प्रत्याशी के नाम के आगे अपना मत अंकित कर देता है (भारत में ऐसी ही व्यवस्था अब Electronic Voting Machine EVM) में की गई है। दो या इससे अधिक सदस्यों वाले निर्वाचन क्षेत्र वाली व्यवस्था के अन्तर्गत मतदाता दो अथवा तीन अलग-अलग नामों के आगे अपना मत अंकित करता है तथा दोनों या तीनों मतों की अलग-अलग गणना के आधार पर दो या तीन ऐसे प्रत्याशी जिनको सर्वाधिक मत प्राप्त हुए हैं, विजयी घोषित होते हैं। भारित बहुवाद के अन्तर्गत मत क्षेत्र से चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या उस क्षेत्र की जनसंख्या के आकार (मार) पर निर्भर करती है। वस्तुतः यह परोक्ष निर्वाचन पद्धति है।

अधिमान पद्धति— इस निर्वाचन पद्धति के दो प्रकार हैं—

- (1) एक सदस्यीय अधिमान
- (2) बहुसदस्यीय अधिमान

एक सदस्यीय अधिमान के अन्तर्गत निर्वाचक अपनी पसन्द के आधार पर प्रत्याशियों का मूल्यांकन करके उनके नाम के आगे उन्हें क्रमानुसार मत अधिमान प्रदान करता है। अधिमान के क्रम की गणना के आधार पर वह प्रत्याशी जिसे मतगणना की प्रक्रिया में सबसे पहले पचास प्रतिशत से एक अधिमान अधिक (50%+1) प्राप्त होता है, उसे विजयी घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति से विजयी प्रत्याशी सही अर्थों में बहु समर्थित प्रत्याशी होता है। यदि प्रथम मतगणना में किसी भी प्रत्याशी को पचास प्रतिशत मत प्राप्त नहीं होते तो प्रथम वरीयता के सबसे कम अधिमान प्राप्त करने वाले प्रत्याशी के पक्ष में पड़े द्वितीय अधिमान की गणना की जाती है और ये अधिमान (मत) दूसरी वरीयता के सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को दे दिए जाते हैं। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक किसी एक प्रत्याशी को मिला समर्थन पचास प्रतिशत की सीमा नहीं लांघ जाता।

बहुसदस्यीय अधिमान, अधिमान पद्धति के अन्तर्गत मतदाता के लिए सभी प्रत्याशियों के प्रति अधिमान व्यक्त करना आवश्यक नहीं होता, कारण कि एक निश्चित संख्या के बाद अधिमान निरस्त मान लिया जाता है। इस निर्वाचन पद्धति में किसी प्रत्याशी के विजयी होने के लिए न्यूनतम प्रथम अधिमान की संख्या विजय संख्यांक (Droop Quota) के आधार पर निर्धारित कर दी जाती है। निर्धारण की प्रक्रिया निम्नवत है—

$$\text{कुल प्रथम अधिमान मत} + 1$$

$$\text{निर्वाचन क्षेत्र में चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या} + 1$$

उदाहरण के लिए यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में कुल मतदान की संख्या 12000 है तथा क्षेत्र में चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या तीन है, तो विजयी होने के लिए किसी प्रत्याशी को

$$\frac{12000}{3+1} + 1 = 3001. \text{ मतों की आवश्यकता होगी। आयरलैंड में निर्वाचन की यही पद्धति लागू है।}$$

सूची पद्धति — इस निर्वाचन पद्धति में प्रत्याशी की तुलना में दलों का महत्व अधिक होता है। इस निर्वाचन पद्धति विशेषता यह है कि मतदाता के उम्मीदवार चयन का आधार पार्टी विशेष का दार्शनिक आधार होता है, क्योंकि यहाँ मतदाता किसी उम्मीदवार को नहीं बल्कि पार्टी सूची बद्ध उम्मीदवार को मत देता है। इस पद्धति में चुनाव आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त प्रत्येक राजनीतिक दल सदस्यों की निर्धारित संख्या से अधिक संख्या में उम्मीदवार खड़ा कर सकता है। मतपत्र में विभिन्न दलों की सूची दर्ज होती है और मतदाता अपनी रुचि के दल सूची से निश्चित संख्या में उम्मीदवारों के नाम अंकित कर देता है। मतदाता के लिए आवश्यक है कि वह एक ही दल के निश्चित उम्मीदवारों में से निर्दिष्ट संख्या में प्रतिनिधियों का चुनाव करे। निर्वाचन की यह पद्धति विशेष रूप से फ्रांस, नार्वे बेलजियम, इटली, स्वीडन और फिनलैंड में अपनाई जाती है।

मिश्रित पद्धति — चुनाव परिणामों को अधिक संतोष जनक बनाने के लिए कुछ देशों (जर्मनी, डेनमार्क) में निर्वाचन की मिश्रित पद्धति लागू है। इस पद्धति में दो या दो से अधिक निर्वाचन पद्धति के विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रक्रिया में संभावित विद्रूपता को कम करने के लिए कुछ सीटें सुरक्षित रख ली जाती हैं जिनको एक विधि सम्मत सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न राष्ट्रीय दलों में आवंटित कर लिया जाता है।

12.4 जनमत संग्रह

‘जनमत-संग्रह’ लोकतंत्र की वह प्रक्रिया है जिसमें सरकार या संसद को शामिल किए बगैर जनता को राज्य के किसी प्रस्ताव (या प्रस्तावों) पर राजनीतिक निर्णय लेने का सीधा अधिकार मिल जाता है। जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत किया गया प्रस्ताव किसी राजनीतिक विषय से सम्बन्धित हो सकता है या यह विधिक संशोधन से भी सम्बन्धित हो सकता है। इसमें सामान्यता: निर्वाचक समूह को किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने या अस्वीकार का विकल्प होता है। जनमत संग्रह पर जनता का निर्णय, कोई आवश्यक नहीं कि वैधानिक हो, लेकिन यह लोगों के विचारों को सुरक्षित रखता है और सरकार को उसके नीतिगत मामलों में मार्ग दर्शन देता है।

कुछ जनमत-संग्रह ऐसे भी होते हैं जिसमें निर्वाचक समूह के समक्ष कई विकल्प दिए जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में जनमत संग्रह का परिणाम सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है, कारण हो सकता है कि किसी एक विकल्प को पूर्ण बहुमत न प्राप्त हो। पूर्ण बहुमत से तात्पर्य 50% से अधिक मत प्राप्त करने से है। ऐसा होने पर अलग से व्यवस्था करने की जरूरत होती है। आवश्यक बहुमत प्राप्त होने पर वह प्रस्ताव (जिस पर जनमत-संग्रह कराया गया है) कानून भी बन सकता है। कुछ कानूनों में जनमत संग्रह आवश्यक होता है, जैसे संविधान संशोधन पर, या संविधान निर्माता के वैकल्पिक निर्णय पर या एक निश्चित संख्या में निर्वाचकों की माँग पर। इतिहास इस तथ्य का साक्ष्य है कि अब तक विश्व में सैकड़ों राष्ट्रीय स्तर के जनमत संग्रह आयोजित किए जा चुके हैं। भारत में गोवा के विलयन के (मुद्दे पर जनमत संग्रह कराया गया था। बांग्लादेश व पाकिस्तान में क्रमशः मु० इरशाद व जनरल जिया ने अपने शासन काल को बढ़ाने के लिए जनमत-संग्रह का सहारा लिया था। हॉल ही में 23 जून, 2016 को यूनाइटेड किंगडम के यूरोपीय संघ की सदस्यता से अलग होने के प्रस्ताव पर जनमत संग्रह कराया गया था। 1848 में अपने अभ्युदय काल से लेकर अबतक अकेले स्विट्जरलैंड में 600 से अधिक जनमत संग्रह कराए जा चुके हैं। इस क्रम में विश्व में आस्ट्रेलिया दूसरे स्थान पर है।

आलोचकों के अनुसार— लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनमत-संग्रह यद्यपि कि एक अच्छी प्रक्रिया है, लेकिन इसमें जनता द्वारा सुविचारित निर्णय लेने की संभावना कम रहती है। जटिल तकनीकी मुद्दों पर निर्णय लेने की जनता की समझ स्तरीय नहीं होती, बल्कि उसमें क्षणिक बौद्धिक सोंच का प्रभाव अधिक होता है। इसके इसी दोष को देखते हुए जेम्स मेडिसन ने इसे लोकतंत्र में ‘बहुमत की तानाशाही’ बताया है।

12.5 मताधिकार

लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम नागरिक को ‘मत का अधिकार’ सबसे बड़ा अधिकार माना जाता है और हर लोकतांत्रिक देश में आम जनता को यह अधिकार प्राप्त है, भले ही वह शिक्षित हो या अशिक्षित, अमीर हो या गरीब, नौकरी पेशा हो अथवा व्यापारी, उद्यमी कृषक या श्रमिक वर्ग बशर्ते वह संविधान के किसी प्रावधान के तहत अयोग्य घोषित न हो एक निश्चित आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात बिना लैंगिक भेदभाव के हर लोकतांत्रिक देश अपनी जनता को यह अधिकार देता है। भारत वर्ष में उन सभी युवाओं (स्त्री/पुरुष) को जिनकी उम्र 18 वर्ष पूरी हो जाती है, उन्हें वयस्क मताधिकार के आधार पर विधान सभा, संसद और स्थानीय निकाय के चुनावों में मतदान का अधिकार प्राप्त हो जाता है। संविधान में पहले मताधिकार प्राप्ति की उम्र 21 वर्ष थी जिसे 1988 में एक संविधान संशोधन के तहत कांग्रेस सरकार ने घटाकर 18 वर्ष कर दिया था।

आज भी विश्व में कई देश ऐसे हैं जहाँ महिलाओं को मताधिकार से वंचित रखा गया है कुवैत इसी प्रकार का एक देश है इसके विपरीत भारत के अब तक सम्पन्न सभी आम चुनावों में महिलाओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया है और देखा यह भी गया है कि बड़े उत्साह के साथ वे चुनावों में हिस्सा लेकर अपने मताधिकार का प्रयोग करती हैं।

12.6 निर्वाचन क्षेत्र और उनकी क्षेत्रीय संरचना

निर्वाचन भूगोल के अध्ययन का एक विशेष पक्ष निर्वाचन क्षेत्र और उसकी क्षेत्रीय संरचना का अध्ययन है। वस्तुतः प्रत्येक चुनाव प्रणाली किसी राज्य विशेष के सम्पूर्ण क्षेत्रफल को सम्मिलित करने वाली क्षेत्रीय इकाइयों के निश्चित समूह के चारों ओर संगठित होती है। यह मूल क्षेत्रीय इकाई निर्वाचन भूगोल के किसी अन्य पहलू जैसे चुनाव प्रक्रिया, पार्टी संगठन, चुनाव परिणाम आदि की तुलनात्मक सर्वाधिक जटिल तत्व होती है, कारण कि दूसरे आधार पर ही क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व निर्धारित होता है।

निर्वाचन क्षेत्र वास्तव में एक संक्रमित भौगोलिक क्षेत्र (Contiguous) होता है जिसकी सीमाएं प्रायः राजनीतिक सीमाओं से मेल नहीं खाती यह एक क्षेत्रीय इकाई होती है जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका में काउन्टी, कनाडा में 'Ridings' और भारत तथा यूनाइटेड किंगडम को 'Constituencies' (निर्वाचन क्षेत्र) कहा जाता है। प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए सम्पूर्ण राज्य अथवा प्रान्त को अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। क्षेत्र विभाजन करते समय उस निर्वाचन क्षेत्र के आकार, आकृति, उसकी भौगोलिक और राजनीतिक सीमाओं, जनसंख्या तथा उसकी गुणात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखा जाता है। निर्वाचन क्षेत्रों की यह संरचना चुनाव की प्रक्रिया और उसके परिणाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कारण कि इसी आधार पर जनता अपने मतदान द्वारा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। जहाँ प्रत्यक्ष शासन व्यवस्था है वहाँ सभी पदों के लिए जनता मतदान करती है जैसे सं०रा० अमेरिका दूसरी ओर भारतवर्ष में जनता प्रतिनिधियों का चुनाव करती है तथा प्रतिनिधि उच्च शासनाधिकारियों जैसे मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री आदि का चुनाव करते हैं। तात्पर्य यह कि निर्वाचन प्रक्रिया सम्पन्न करने हेतु राज्य को संसदीय क्षेत्र, विधान सभा क्षेत्र, नगर पालिका, टाउन एरिया, वार्ड ग्राम सभा या उसके अनुरूप अन्य में विभक्त कर दिया जाता है। निर्वाचन क्षेत्र की इस संरचना से सम्पूर्ण क्षेत्र और उसकी जनसंख्या का प्रतिनिधि के ऊपर उस क्षेत्र की समस्याओं के निराकरण व विकास का उत्तरदायित्व होता है।

12.7 निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण

निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण सामान्यतया राज्यविशेष में प्रचालित संवैधानिक व्यवस्था व चुनाव पद्धति के अनुसार होता है। संवैधानिक व्यवस्था में यदि चुनाव पद्धति बहुदलीय है, तो प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किसी दल विशेष के प्रतिनिधि द्वारा किया जाता है और यदि चुनाव पद्धति एक दलीय है, तो प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व एक ही दलके सदस्यों द्वारा होता है। पद्धति में अंतर के कारण ही चुनाव एक दलीय शासन व्यवस्था वाले राज्यों एवं बहुदलीय शासन व्यवस्था वाले राज्यों में निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में तथा निर्धारण प्रक्रिया में पर्याप्त असमानताएं रहती हैं वास्तव में निर्वाचन क्षेत्र का निर्धारण एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। चूँकि निर्वाचन क्षेत्रों की अभिव्यक्ति का आधार क्षेत्रीय होता है, इसलिए मतों के स्थानिक वितरण प्रतिरूप पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है।

12.8 निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण के आधार

विभिन्न देशों में अनेक आधारों को लेकर निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

1. निर्वाचन क्षेत्रों की भौगोलिक विशेषताएं,
2. निर्वाचन क्षेत्रों का आकार, आकृति एवं विस्तार,
3. निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या और उसका वितरण प्रतिरूप,
4. निर्वाचन क्षेत्रों की भौगोलिक सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ,
5. निर्वाचन क्षेत्रों की जनता का राजनीतिक दृष्टिकोण,
6. निर्वाचन क्षेत्रों में राजनीतिक दलों का आधार
7. राज्य के विभिन्न भागों में और नवगठित क्षेत्रों में राजनीतिक शक्तियों का संतुलन,
8. निर्वाचन क्षेत्रों के विभाजन में विशिष्ट हितों वाले सामाजिक समूहों का वितरण
9. निर्वाचन क्षेत्रों की संहतता (Compactness)
10. निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का प्राकृतिक-भौगोलिक सीमाओं के साथ समायोजन
11. निर्वाचन क्षेत्रों एवं अनुसूचित क्षेत्रों की अखण्डता,
12. निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या में असमानता का प्रतिशत अधिक न हो,

13. निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का राजनीतिक— प्रशासनिक सीमाओं के साथ समायोजन,
14. ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में विषमता अधिक न हो,
15. नगरीय क्षेत्रों में निर्वाचन क्षेत्र का आकार बहुत विस्तृत न हो आदि

12.9 भारत में निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण और प्रभाव

यदि निर्वाचन क्षेत्र निर्धारण के उक्त आधारों के आधार पर भारत में निर्वाचन क्षेत्रों के विभाजन का मूल्यांकन करते हैं तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं—

1. कतिपय अपवादों को छोड़कर भारत में निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण का एक ही मानदण्ड अर्थात् जनसंख्या जो देश के सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए लागू है। इसका परिणाम यह है कि कोलकता, मुम्बई, चेन्नई, बंगलुरु, दिल्ली, हैदराबाद जैसे महानगरों में निर्वाचन क्षेत्रों का आकार एवं विस्तार छोटा है, जबकि पहाड़ी क्षेत्रों, लद्दाख एवं राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में निर्वाचन क्षेत्रों का आकार बहुत बड़ा है। निर्वाचन क्षेत्रों के इस असमान आकार का प्रभाव चुनाव प्रचार एवं मतदान व्यवहार पर काफी पड़ता है। निर्वाचन क्षेत्र दुर्गम एवं पहाड़ी होने के कारण विभिन्न पार्टियों का चुनाव अभियान तथा सम्पूर्ण निर्वाचकों की मतदान में सहभागिता भी प्रभावित होती है। हिमालयी और पूर्वोत्तर के राज्य दूसरे ज्वलंत उदाहरण है।
2. अधिकांश देशों में निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाएं प्रायः प्रशासनिक—भौगोलिक—राजनीतिक इकाइयों से मेल खाती है, जिससे निर्वाचन आकड़ों के साथ—साथ जनसंख्या तथा विभिन्न सामाजिक—आर्थिक आँकड़ों की सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। भारत में प्रान्तों का प्रतिनिधित्व संसदीय इकाइयों से होता है। विधानसभा तथा केन्द्र का प्रतिनिधित्व संसदीय इकाइयों से होता है। विधानसभा इकाइयों का सीमांकन प्रायः तहसील सीमा के साथ मिलता है, लेकिन रही कहीं जनसंख्या के स्तर को पूरा करने के लिए न्याय पंचायत स्तरपर ये सीमाएं तय कर दी जाती हैं, परिणामतः एक विधानसभा इकाई कम से कम दो या अधिक से अधिक तीन जनपदों में फैल जाती है। इस वजह से चुनाव आँकड़ों एवं जनपद के आर्थिक—सामाजिक आँकड़ों की प्राप्ति में एवं उनके मिलान में काफी कठिनाई होती है चुनाव विश्लेषकों के लिए यह काफी कठिन एवं असहज कार्य होता है और प्रशासनिक इकाइयों को विकास सम्बन्धी योजनाओं को लागू करने में भी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। संसदीय सीमाएं कई विधान सभाओं को मिलकर जनसंख्या के आकार को ध्यान में रखकर खींची जाती हैं अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि निर्वाचन क्षेत्रों के सीमांकन की इस असमानता के कारण मतदान व्यवहार एवं विकास कार्य व्यापक रूप से प्रभावित होता है।
3. भारत वर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरीय क्षेत्रों में पर्याप्त विषमता है जिसकी वजह से मतदान प्रतिरूप अधिक प्रभावित होता है। नगरीय क्षेत्रों में निर्वाचन क्षेत्र छोटा होने से राजनीतिक दलों को चुनाव अभियान में आसानी रहती है, जब कि ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या के विरल प्रतिरूप के कारण निर्वाचन क्षेत्र का आकार बड़ा हो जाता है जिससे चुनाव अभियान में जन एवं धन शक्ति का भारी अपभ्यय होता है राजनीतिक दलों को कम मत प्राप्त करने के लिए भी धन एवं समय का अधिक ब्यय करना पड़ता है जिससे उनका चुनाव खर्च सीमा से अधिक बढ़ जाता है।

भारत में निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण सीमांकन कमीशन एक्ट 1952 के आधार पर किया गया है। इस एक्ट में इस बात का स्पष्ट उल्लेख एवं निर्देश है कि निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है—

1. जहाँ तक संभव हो, सभी निर्वाचन क्षेत्र भौगोलिक रूप से सद्गत (Compact) हों
2. भौतिक स्वरूपों (पर्वत श्रेणी, पठार, मरुस्थल, जंगल, आदि) पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
3. वर्तमान प्रशासनिक सीमाओं का ध्यान रखा जाना चाहिए।
4. संचार सुविधाओं, सड़कों, आवागमन के साधनों एवं प्रशासन मुख्यालय से गम्यता का ध्यान आवश्यक है।
5. सीमांकन में लोक सुविधा (Public Convenience) को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

6. निर्वाचन क्षेत्र के पुनर्गठन में 5% से अधिक परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

भारतीय संविधान में संसदीय न्याय प्रभुत्व (Parliamentary Jurisdiction) का स्थानिक आधार निर्धारण किया गया है जिसमें लोकसभा का आकार 545 सदस्यों से अधिक नहीं होना चाहिए, जिसमें 525 सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तों के निर्वाचन क्षेत्रों से होता है प्रांतीय राज्यों में लोकसभा सीट का निर्धारण संविधान की धारा 81 (2) में निम्न प्रकार वर्णित है—

- (अ) राज्यों (प्रान्तों) में लोकसभा सीट का निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि जहाँ तक संभव हो, उसकी संख्या व राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों में समान हो।
- (ब) प्रत्येक राज्य में निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि प्रत्येक क्षेत्र की जनसंख्या सम्पूर्ण राज्य में यथासंभव समान हो।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के प्रतिनिधित्व को लोक सभा में बनाए रखने हेतु धारा 330 के अन्तर्गत जन जातियों हेतु कुछ सीटें सुरक्षित हैं। जिनका निर्धारण कुल जनसंख्या में उक्त जातियों के प्रतिशत के आधार पर किया जाता है। लोकसभा के चुनाव के लिए भारत में 1991 की जनगणना के आँकड़ों के आधार पर भारत को 524 संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है (84वाँ संविधान संशोधन, 2001) भारत में 1952 के बाद से निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं में कई बार परिवर्तन किया जा चुका है।

सारांशतः स्पष्ट है कि भारत में निर्वाचन क्षेत्रों का गठन की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए महत्वपूर्ण आधार भूत तत्व है। निर्वाचन क्षेत्रों की भौगोलिक विशेषताएं, उनका आकार स्वरूप एवं विस्तार किसी भी क्षेत्र के मतदान प्रतिरूप को निम्न रूप में प्रभावित कर सकती हैं—

1. विभिन्न राजनीतिक दलों के समर्थन क्षेत्रों पर प्रभाव।
2. राजनीतिक दलों के चुनाव अभियान पर प्रभाव।
3. मतदाताओं पर मतदान केन्द्रों की दूरी व गम्यता के परिप्रेक्ष्य में प्रभाव।
4. मतदाताओं को विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की प्राप्ति पर प्रभाव।
5. प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रभाव।
6. शान्ति पूर्ण मतदान पर प्रभाव।

12.10 निर्वाचन दुरुपयोग

निर्वाचन क्षेत्रों के दोषपूर्ण परिसीमन या पक्षपाती परिवर्तन को निर्वाचन दुरुपयोग, (Electoral Abuse) की संज्ञा दी गई है। वास्तव में चुनावी क्षेत्रों के सीमांकन में किया जाने वाला यह स्थानीय फेर बदल है जो चुनावी पूर्वाग्रह की संकल्पना पर आधारित है। वह पूर्वाग्रह जिसके आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया गया है उसे चुनावी पूर्वाग्रह (Electoral Bias) कहते हैं। यह चुनावी पूर्वाग्रह एक राजनीतिक दल द्वारा जीती गई सीटों के प्रतिशत तथा इसके समर्थन में डाले गए मतों के प्रतिशत के मध्य अन्तर के आधार पर मापा जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई राजनीतिक दल 50 प्रतिशत सीट तथा 40 प्रतिशत मत प्राप्त करता है तो यह 10 प्रतिशत सकारात्मक पूर्वाग्रह होगा तथा इसके विपरीत यदि वह राजनीतिक दले 40 प्रतिशत सीट व 50 प्रतिशत मत प्राप्त करता है तो यह, नकारात्मक पूर्वाग्रह होगा दोनों ही उदाहरण में पूर्वाग्रह का स्तर 10% है यह निर्वाचन दुरुपयोग मतों को सीटों में परिवर्तित करने हेतु प्रयोग किया जाता है। अर्थात् यदि चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन न्याय संगत और मान्य सिद्धान्तों के अनुसार न हुआ तो मतदान परिणाम दोष पूर्ण हो जाता है और राजनीतिक दलों के जनसमर्थन और प्रतिनिधित्व के स्तरों में बेमेल अन्तर आ जाता है जिससे जनतांत्रिक मूल्यों का हनन होता है।

12.11 चुनाव क्षेत्रों के परिसीमन के कारण उत्पन्न प्रदूषण के प्रकार

चुनाव क्षेत्रों के परिसीमन के कारण उत्पन्न दूषण दो प्रकार का होता है—

- (1.) आबण्टन का दोष (Malapportionment)

(2.) सीमांकन का दोष (Gerrymandering)

12.11.1 आवण्टन का दोष –

भिन्न-भिन्न जातीय संरचना वाले क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न मतदाता आकार वाले चुनाव क्षेत्रों के निर्माण के आधार पर यह दोष उत्पन्न होता है वास्तव में चुनाव क्षेत्रों का यह असंगत जिसका तात्पर्य यह है कि निर्वाचन प्रतिनिधित्व के लिए गैर आनुपातिक या असमान वितरण का पाया जाना। निर्वाचन क्षेत्रों में प्रतिनिधियों का अलग-अलग अनुपात रखना। असंगत विभाजन की इस प्रक्रिया में निर्वाचन इकाईयों में अपेक्षाकृत कम मतों को प्राप्त कर लेता है। आवण्टन का दोष बहुधा सघन जनसंख्या वाले नगरीय आबादी प्रधान नई दुनिया के देशों तथा विरल जनसंख्या वाले कृषि प्रदेशों में पाया जाता है। आस्ट्रेलिया इसका एक अच्छा उदाहरण है इस देश का विशाल आंतरिक क्षेत्र अत्यधिक विरल जनसंख्या और बृहद् आकार वाले कृषि फार्मों वाला प्रदेश है। इसके विपरीत तटीय प्रदेशों के नगरीय तथा उपनगरीय सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं जहाँ देश की अधिकांश जनसंख्या निवास करती है। देश के राजनायकों ने कृषि प्रधान आन्तरिक क्षेत्रों के निर्वाचन क्षेत्रों को अपेक्षाकृत छोटी जनसंख्या आधार वाला बनाने का निर्णय लिया जबकि तटीय नगरीय, उपनगरीय क्षेत्रों में निर्वाचन क्षेत्रों को अपेक्षाकृत बहुत अधिक मतदाता संख्या वाला बनाने का निर्णय लिया, इस प्रकार के (असंगत) आवण्टन के परिणाम स्वरूप नगरीय और ग्रामीण (अर्थात् श्रमिकों एवं कृषकों के) मतों का सापेक्षिक महत्व असमान हो जाता है। परिणाम यह होता है कि कृषि प्रधान क्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत कम मतों के आधार पर अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेते हैं (दीक्षित, 2019 पृष्ठ 165)

पी0जे0 टेलर तथा आर0 जे0 जांस्टन (1979) ने आवण्टन दोष को दो प्रतिस्पर्धी दलों वाले एक छोटे काल्पनिक प्रदेश का उदाहरण देकर विश्लेषण करने का प्रयास किया है। टेलर एवं जांस्टन के अनुसार मान लीजिए कोई काल्पनिक प्रदेश और वहाँ पाँच निर्वाचन क्षेत्र हैं जहाँ कुल पाँच प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाना है। यहाँ दो दल हैं— पूर्वी (पू0पा0) और पश्चिमी पार्टी (प0पा0) ये दोनों दल क्रमशः (काल्पनिक) प्रदेश के पूर्वी और पश्चिमी भाग में विशेष रूप से प्रभावी हैं। चूँकि पूरे प्रदेश में कुल पाँच प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाना है, ऐसे में यदि पूर्वी क्षेत्र को 100 मतों वाले तीन चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाय तथा पश्चिमी क्षेत्र को 150 मतों वाले दो चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाय तो पूर्वी पार्टी अपने गढ़ से तीन प्रतिनिधि निर्वाचन कर लेगी, जबकि कुल उतने ही मतों का समर्थन प्राप्त करने के बावजूद प्रतिपक्षी पश्चिमी पार्टी मात्र दो प्रतिनिधियों को ही सदन में भेज पायेगी। ऐसी स्थिति में यदि पश्चिमी पार्टी की तरफ मतदाताओं का 10 प्रतिशत भी झुकाव (Swing) हो जाए तब भी दोनों दलों के प्रतिनिधित्व में कोई अन्तर नहीं आ सकता इसे निम्नांकित चित्र (8.12.1) द्वारा भलीभाँति समझा जा सकता है।

प. पा. 120	प. पा. 20	प. पा. 135	प. पा. 30
	पू. पा. 80		पू. पा. 70
पू. पा. 30	पू. पा. 20	पू. पा 15	प. पा. 30
पू. पा. 120	पू. पा. 80	प. पा 135	पू. पा. 70
	प. पा. 20		प. पा. 30
पू. पा. 30	पू. पा. 80	पू. पा. 15	पू. पा. 70

(क)

(ख)

चित्र 12.1 : चुनाव क्षेत्रों के निर्माण में मतदाता आवण्टन से उत्पन्न दोष

(पी0 जे0 टेलर तथा आर0 जे0 जास्टन, 1979 के आधार पर)

12.11.2 : सीमांकन का दोष जेरी मैण्डरिंग

अर्थ एवं परिभाषा – निर्वाचन भूगोल से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण तथ्य ‘जेरी मैण्डरिंग’ हैं। जेरी मैण्डरिंग का तात्पर्य है निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं में किया जाने वाला ऐसा परिवर्तन जो जनसंख्या के आकार में बदलाव किए बिना किसी दल विशेष को चुनावी लाभ पहुँचाने के लिए सम्पन्न किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है— ‘जब प्रतिद्वंद्वी दल के परिप्रेक्ष्य में इच्छित दल का समर्थन या निर्वाचन प्रभाव बढ़ाने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या बिना बदले निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं में काट-छाँट द्वारा उसकी आकृति विकृत की जाती है तो उसे ‘जेरी मैण्डरिंग’ रहते हैं।

रमेश दत्तदीक्षित (1982) के अनुसार – ‘जेरी मैण्डरिंग’ का तात्पर्य चुनाव क्षेत्र भी सीमाओं के दोषपूर्ण परिसीमन के माध्यम से प्रतिपक्ष के जनसमर्थक क्षेत्रों को इस प्रकार के विभाजन से है जिसके परिणाम स्वरूप प्रतिपक्षी दल को कुछ थोड़े चुनाव क्षेत्रों में बहुत अधिक बहुमत प्राप्त हो जाए, परन्तु शेष क्षेत्रों में उसके समर्थन का स्तर 50 प्रतिशत तक न पहुँच सके।’

शब्द की व्युत्पत्ति – ‘जेरी मैण्डरिंग’ शब्द की व्युत्पत्ति सं0रा0 अमेरिका के मैसा चुसेट्स राज्य के गवर्नर एल्विज जेरी के नाम के आधार पर हुई है। 1812 ई0 के प्रादेशिक स्तर चुनाव में गवर्नर जेरी ने प्रतिपक्ष के मतों को विभाजित करने के उद्देश्य से इतनी टेढ़ी-मेढ़ी सीमाओं वाले निर्वाचन क्षेत्रों का निमाण किया कि उसके परिणाम स्वरूप उनका अपना दल, रिपब्लिकन-डेमोक्रेट पार्टी 50176 मत प्राप्त कर कुल 29 क्षेत्रों में विजयी रहा जब कि उनका प्रतिपक्षी दल फेडरलिस्ट पार्टी कुल 51766 मत प्राप्त करने के बावजूद मात्र 11 क्षेत्रों में ही विजय प्राप्त कर सका। उसी समय से इस प्रकार के पक्षपात एवं दोष पूर्ण चुनाव क्षेत्र परिसीमन को जेरी मैण्डरिंग के नाम से जाना जाता है।

जेरीमैण्डरिंग शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्दों के संयोग से बना है— जेरी (गवर्नर एल्विज जेरी के नाम से) तथा मैण्डर (जोकि ‘सलामैण्डर’ शब्द से लिया गया है) सलामैण्डर एक मिथक जीव था, जो परम्परागत विश्वास के अनुसार आग खाता था। वर्तमान में ‘जेरीमैण्डर’ शब्द निर्वाचन भूगोल में एक प्रचलित शब्द बन गया है।

जेरी मैण्डरिंग प्रक्रिया के रूप और ज्ञात करने के सामान्य तथ्य – जेरी मैण्डरिंग की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न रूपों में की जाती है, जैसे— (1.) पहले से ही दो या अधिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त एक राजनीतिक दल के क्षेत्रों को संयुक्त करना, जिससे वे कुछ ही क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर सकें तथा सामान्य बहुमत से वंचित रह जाएं;

(2.) विरोधियों को विभक्त करने के लिए विरोधी दल के केन्द्रों को विभक्त करना ताकि उनके संभाव्य मतदाता विखर जाएं। एक कुशल जेरी मैण्डर वह माना जाता है जो निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्परिसीमन इस प्रकार करता है कि विपक्षी दलों का अधिकांश समर्थन केवल कुछ ही क्षेत्रों में सीमित रह जाता है जहाँ उन्हें भारी बहुमत से विजय मिलती है तथा अन्य निर्वाचन क्षेत्रों में उनके कुछ ही समर्थक रह जाते हैं। जिससे सत्तारूढ़ दल को अधिकांश सीटों पर भारी विजय प्राप्त होती है। और विपक्षी दल को भारी पराजय का मुँह देखना पड़ता है।

जेरी मैण्डरिंग ज्ञात करने के दो सामान्य तथ्य हो सकते हैं—

प्रथम— निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का मानचित्र पर अंकन तथा उनमें हुए विविध परिवर्तनों का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों के साथ समायोजन

द्वितीय—निर्भर मतों का ग्राफ में अंकित कर यह मालूम किया जा सकता है कि किस दल को कितने प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

जे0आर0वी0 प्रेस्काट (1972) ने अपने ग्राफ के अध्ययन से स्पष्ट किया है कि अनेक दल निर्भर मतों के आधार पर लाभान्वित होते हैं, लेकिन उनका यह भी कहना है कि इस आधार (पक्षपात की स्थिति के झुकाव) पर तुरंत

निर्णय नहीं ले लेना चाहिए, अपितु समुचित स्थिति तथा विभिन्न तत्वों का सह-सम्बन्ध देखने के पश्चात ही वस्तु स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए।

काल्पनिक प्रदेश का उदाहरण – चुनाव क्षेत्रों के निर्माण में त्रुटिपूर्ण सीमा निर्धारण से उत्पन्न दोष जेरीमैण्डरिंग को टेलर और जांस्टन (1979) के आधार पर उसी प्रकार के काल्पनिक प्रदेश के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र सं० 12.2 में पक्षपात (दोष) रहित और पक्षपात (दोष) पूर्ण परिसीमन प्रदर्शित है। चित्र सं० 12.2 में पूरे प्रदेश को बिना किसी भेद भाव के चार अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों में बाटा गया है। परिणाम स्वरूप पूर्वी पार्टी (पू०पा०) तथा पश्चिमी पार्टी (प०पा०) दोनों ही दलों के समर्थन क्षेत्र समान रूप से अलग-अलग क्षेत्रों में विभक्त हैं। परिणाम स्वरूप दोनों दलों को समान स्तर का प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। इसके विपरीत चित्र 12.2 ख में यद्यपि प्रत्येक चुनाव क्षेत्र समान मतदाता संख्या वाला है, परन्तु चुनाव क्षेत्रों की सीमाएं इस प्रकार अंकित की गई हैं कि पश्चिमी पार्टी (प०पा०) कुल 310 मत प्राप्त करने के बाद भी केवल एक प्रतिनिधि ही निर्वाचित कर पाई, जबकि प्रतिपक्षी पूर्वी पार्टी (पू०पा०) मात्र 310 मतों के आधार पर अपने तीन प्रतिनिधियों को भेजने में सफल रही।

प० पा० 130	प० पा० 30
पू० पा० 30	पू० पा० 130
प० पा० 130	पू० पा० 130
पू० पा० 30	पू० पा० 130
प० पा० 130	प० पा० 60 पू० पा० 90
	पू० पा० 60 पू० पा० 90
पू० पा० 30	प० पा० 60 पू० पा० 90

(क) पक्षपात (दोष) रहित
निर्धारण

(ख) पक्षपात (दोष) पूर्ण
निर्धारण

चित्र 12.2 'जेरी मैण्डरिंग' चुनाव क्षेत्रों के निर्माण में त्रुटिपूर्ण सीमा निर्धारण से उत्पन्न दोष (पी०जे०टेलर आर० जे० जांस्टन (1971) के आधार पर

विद्वानों द्वारा जेरी मैण्डरिंग के सम्बंध में किए गए अध्ययन –

निर्वाचन भूगोलवेत्ता जेरी मैण्डरिंग का अध्ययन करते रहे हैं।

इस दृष्टि से टेलर (1971) द्वारा राजनीतिक सीमा निर्धारण पर कैरोलीना की सीमा निर्धारण में हुए परिवर्तनों का अध्ययन तथा क्लेनविले द्वारा आस्ट्रेलिया प्रान्त में हुए सीमा निर्धारण परिवर्तनों के आधारों का अध्ययन उल्लेखनीय है। प्रेस्कॉट (1972) ने भी किसी भी क्षेत्र में जेरी मैण्डरिंग हुई है या नहीं, इसका मापन ग्राफ द्वारा वर्णित किया है। जेरी मैण्डरिंग के सम्बंध में कार्ल सोर (1918) ने अपने प्रपत्र Geography and the Gerrymander में लिखा है कि राजनीतिक गाली (Political Abuse) अमेरिका नाम है जो यद्यपि पूर्णरूपेण अमेरिकी नहीं है, परन्तु इस देश में बड़े पैमाने पर प्रयोग की जाती है तथा सहन की जाती है।

जेरी मैण्डरिंग के उदाहरण सं0रा0 अमेरिका, फ्रांस एवं यूनाइटेड किंगडम में बहुलता से देखे जा सकते हैं। भारत में चूँकि चुनाव क्षेत्रों की सीमाएं निर्धारित करने का कार्य एक स्वतंत्र प्राधिकरण द्वारा किया जाता है अतः उनके परिसीमन में पक्षपात की संभावना नहीं रहती। इसके अलावा यहाँ विधान सभा और लोकसभा दोनों के ही निर्वाचन क्षेत्र आकार में काफी बृहद होते हैं अतः पक्षपात या भेदभाव की संभावना कम हो जाती है। लेकिन स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन हेतु बनाए गए निर्वाचन क्षेत्रों के सीमा निर्धारण में इस प्रकार की संभावना हमेशा बनी रहती है कारण कि ये निर्वाचन क्षेत्र आकार में काफी छोटे होते हैं।

12.12 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि निर्वाचन पद्धतियों का अध्ययन निर्वाचन भूगोल में अति आवश्यक है, कारण कि ये निर्वाचन पद्धतियों चुनाव क्षेत्रों के स्वरूप व सांस्कृतिक गुणवत्ता के आधार पर तय की जाती हैं जो अंततः सम्बन्धित निर्वाचन क्षेत्रों के चुनाव परिणामों को प्रभावित करती हैं। इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने यह भी समझ लिया होगा कि कुछ निश्चित आधारों पर निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है और चुनाव परिणामों को पक्षपात पूर्ण बनाने के लिए किस तरह से दोष पूर्ण सीमांकन किया जाता है। वास्वत में यह निर्वाचन दुरुपयोग है जो सत्ताधारी दल चुनाव परिणामों को अपने पक्ष में करने के लिए निर्वाचन दुरुपयोग है जो सत्ताधारी दल चुनाव परिणामों को अपने पक्ष में करने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्परिसीमन के माध्यम से सम्पन्न करता है।

12.13 शब्द सूची

बहुवाद पद्धति	Plurality System	लोक सुविधा	Public Convenience
अधिगामी पद्धति	Preferential	न्याय प्रमुख	Jurisdiction
विजय संख्याक जनमत संग्रह	Droop Quota	निर्वाचन दुरुपयोग	Electoral Abuse
मताधिकार	Referendum	चुनावी पूर्वाग्रह	Electoral Bias
सूची पद्धति	Franchise	निरर्थक मत	Wastage Vote
	List System	संहतता	Compactness

12.14 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न :-

1. जेरीमैण्डरिंग शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम अमेरिका के किस निर्वाचन क्षेत्र के लिए किया गया?

(अ) मेसा चुसेट्स

- (ब) वाशिंगटन
- (स) न्यूयार्क
- (द) कैलिफोर्निया

2. Geography and the Gerrymander' प्रपत्र किस विद्वान लिखा था?

- (अ) पी०जे० टेलर
- (ब) आर०जे० जांस्टन
- (स) कार्ल सोर
- (द) जे० आरे० वी० प्रोस्कॉट

3. जेरी मैण्डरिंग' शब्द किस राजनीतिक के नाम से जुड़ा हुआ है?

- (अ) एल्लिज जेरी
- (ब) टॉम जेरी
- (स) फोकस जेरी
- (द) जेरी वाट्सन

4. राजनीतिक दल द्वारा अपने लाभ के लिए निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन को कहते हैं

- (अ) चुनावी पूर्वाग्रह
- (ब) न्याय प्रभुत्व
- (स) लोक सुविधा
- (द) जेरी मैण्डरिंग

5. भारत में 'सीमांकन कमीशन एक्ट' कब लागू हुआ?

- (अ) 1951
- (ब) 1952
- (स) 1953
- (द) 1954

आदर्श उत्तर :-

1. (अ) ; 2. (स) ; 3. (अ) ; 4. (द) ; 5. (ब)

12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तक

Dixit, R.D., (1982):' Political Geography: A Contemporary Perspective; Tata Mc Graw-Hill Book co. Ltd, New Delhi. दीक्षित, रमेश दन्त, (2019):' राजनीतिक भूगोल' समसामयिक परिदृष्टि पी-एच० आई० लर्निंग प्रा०लि०, दिल्ली, 280पृ०

Prescott, J.R.V.' Political Geography; Methuen, London. Sauer, C.O., (1918):' Geography and the

Gerrymander; Americal Political Science Review, Vol.12, P. 403.

Tayfor, P.J. and Johnston, R.J., (1979):' Geography of Elections; Penguin, London.

12.16 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. जेरी मैण्डरिंग किसे कहते हैं?
2. अधिमान पद्धति क्या है?
3. जनमत संग्रह का आशय समझाइए।
4. निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण के आधार बताइए।
5. आवण्टन-दोष पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई-13 विश्व राजनीतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 प्रस्तावना
- 13.1 उद्देश्य
- 13.2 विषय प्रवेश
- 13.3 वैचारिक पृष्ठभूमि और अन्तर्राष्ट्रीय मानव-पर्यावरण सम्मेलन,
- 13.4 विश्व की प्रमुख राजनीतिक पर्यावरणीय समस्या
 - 13.4.1 पर्यावरण प्रदूषण
 - 13.4.2 ओजोन परत का क्षरण
 - 13.4.3 हरित ग्रह प्रभाव
 - 13.4.4 अम्लीय वर्षा
 - 13.4.5 हरित क्रांति की सफलता हेतु प्रचलित कीटनाशकों का विपरीत प्रभाव
 - 13.4.6 मरुस्थलीकरण
 - 13.4.7 वनविनाश एवं पर्यावरण अवनयन
 - 13.4.8 भूमिगत जल प्रदूषण
 - 13.4.9 महासागरी प्रदूषण
 - 13.4.10 जैवविविधता ह्रास (क्षय)
 - 13.4.11 वैश्विक चरमघटनाएं, पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदाएं
 - 13.4.12 जलवायु परिवर्तन जन्य बाढ़ एवं सूखा
 - 13.4.13 भूमण्डलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन
- 13.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पर्यावरण समस्याओं के लिए जिम्मेदार राष्ट्र
- 13.6 भूमण्डलीय ऊष्मन एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास
- 13.7 सम्मेलनों, संधियों एवं समझौतों के बावजूद विद्यमान भूमण्डलीय ऊष्मन के खतरों
- 13.8 जन-जागरण एवं जन सहभागिता एवं पृथ्वी दिवस
- 13.9 सारांश
- 13.10 शब्दसूची
- 13.11 'स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

13.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल के पाठ्यक्रम की यह तेरहवीं इकाई है। इसमें आप विश्व की उन राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन करेंगे जो धरती की सम्पूर्ण मानव जाति, जीव-जन्तु एवं पादप समुदाय के लिए प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ी है। इस समस्याओं में सबसे प्रमुख समस्या है भूमण्डलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन। आप इस

इकाई में यह भी अध्ययन करेंगे कि स्वयं मानव समुदाय इस वैश्विक पर्यावरण समस्या के लिए स्वाभाविक है। इस इकाई में आप यह भी देखेंगे कि विकसित देश अमेरिका, चीन और यूरोपीय देश किस प्रकार अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर इस वैश्विक समस्या से निपटने के लिए अनुत्तर दायित्वपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं जबकि इस वैश्विक समस्या के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी वे हैं।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. समस्याओं की वैचारिक पृष्ठभूमि से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
3. हरित ग्रह गैसों की प्रकृति व प्रभाव को समझाना।
4. भूमण्डलीय ऊष्मण एवं जलवायु परिवर्तन के वैश्विक प्रभाव से अवगत कराना।
5. विकसित एवं विकासशील देशों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों का मूल्यांकन करना।

13.2 विषय प्रवेश

यह एक सामान्य अवधारणा है कि पर्यावरणीय समस्याएं आधुनिकता की देन हैं। लेकिन यदि हम गहराई से विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि मानव की विचार धाराओं एवं उसके सोचने-विचारने के ढंग में आया परिवर्तन पर्यावरण समस्याओं की उत्पत्ति का मूल कारण है वस्तुतः आज का मानव यह सोचता है कि अमुक कार्य करने से उसे क्या लाभ होगा? वस्तु स्थित यह है कि जब मानव कोई कार्य मात्र लाभ के लिए करता है तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसका कुप्रभाव पर्यावरण पर ही पड़ता है। एक समय ऐसा था जब धरती और उसके संसाधनों पर नियंत्रण कर पाना मानव क्षमता के बाहर था। वह अन्य जीव प्रजातियों की तरह ही इस पृथ्वी की प्राकृतिक क्रियाओं को नियंत्रित अथवा प्रभावित किए बिना प्रकृति पर निर्भर था। हजारों वर्षों तक मानव, अन्य जीवधारियों और प्रकृति की यह पारस्परिक निर्भरता चलती रही तथा मनुष्य और अन्य जीवधारियों के अस्तित्व के मध्य अन्तर्विरोध कभी नहीं आया। जैसे-जैसे विज्ञान और तकनीक में प्रगति हुई है, वैसे-वैसे मनुष्य के पास अपनी सुख-सुविधाएं जुटाने के लिए अनेक साधन भी उपलब्ध हुए हैं। मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने विज्ञान और तकनीक की मदद से प्रकृति का अन्धाधुन्ध इस सीमा तक शोषण किया है कि उसके अंगों के पुनर्जीवन की क्षमता ही समाप्त होने लगी है। आज इक्कीसवीं सदी का मानव एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व में फँस गया है। एक ओर निरंतर बढ़ती आबादी के उदर पोषण की समस्या; तो दूसरी ओर पेयजल का नित गहराता संकट एक ओर जीवन स्तर के उन्नयन हेतु विविध उपयोग की वस्तुओं की प्रचुरता; दूसरी ओर श्वास हेतु शुद्धवायु (आक्सीजन) का अभाव। एक ओर अधिक अन्न उत्पाद हेतु सिंचित क्षेत्र में विस्तार की आवश्यकता; तो दूसरी ओर सिंचित भूमि में जल सिक्तता (Water logging) तथा लवण जमाव से उपजाऊ भूमि का संकुचन। ईंधन की पूर्ति के प्रयास में खाद्य तापमान में वृद्धि के कारण द्वीपों एवं सागर तटीय क्षेत्रों के डूब जाने का खतरा एवं विभिन्न बीमारियों का वरण अर्थात् भौतिक विकास के प्रयास में संसाधन आधार का।

संक्षेप में जब तक मानव समाज और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध संतुलित रहे, पर्यावरणीय समस्याएँ न्यूनतम थीं जिनका समाधान प्रत्येक राष्ट्र अपनी क्षमता के अनुसार कर लेता था। लेकिन सतत वृद्धिमान आर्थिक विकास एवं पर्यावरण के मध्य जब तालमेल में असंतुलन आने लगा, पर्यावरणीय समस्याएँ राष्ट्रीय सीमाओं के पार जाकर वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में सामने आने लगीं। इन वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं (जैसे— ओजोन परत का क्षरण, हरित गृह प्रभाव का असंतुलन, जैव-विविधता का हरित, जलवायु परिवर्तन, स्वास्थ्य समस्या का बढ़ता प्रकोप, मानव जनित प्रकोपों का बढ़ता दायरा, अम्ल वर्षा का कुप्रभाव, प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि आदि) ने विश्व राजनीति का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। ये ऐसी समस्याएँ हैं जिनका समाधान केवल राष्ट्रों की सामूहिक सहभागिता से ही संभव है भले ही आज विश्व स्पष्टतया धनी और निर्धन, विकसित और विकासशील, स्वतंत्र अर्थव्यवस्था धनी और निर्धन, विकसित और विकासशील, स्वतंत्र अर्थव्यवस्था और परतंत्र अर्थव्यवस्था वाले देशों में बँटा हुआ है, लेकिन ये ऐसी वैश्विक राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याएँ हैं जो किसी भी आर्थिक-राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर चर्चा एवं चिंता का विषय बनी हुई हैं, फलतः विश्व राजनीतिक के विषय क्षेत्र में इन पर्यावरणीय समस्याओं का प्रवेश होना स्वाभाविक है।

13.3 वैचारिक पृष्ठभूमि और 'अन्तर्राष्ट्रीय मानव-पर्यावरण सम्मेलन'

पारम्परिक रूप से पर्यावरण को असीमित क्षमता का माना जाता रहा है और इसी कारण विकास के लिए पर्यावरण के संसाधनों का अनियोजित ढंग से दोहन किया जाता रहा है। यह विश्वास किया जाता है कि पर्यावरण के बिगड़ने के जो थोड़े बहुत प्रभाव दिखाई भी देते हैं, वे केवल कुछ ही समय के लिए हैं और बाद में सब कुछ ठीक हो जायगा। बीसवीं शताब्दी के छठें व सातवें दशक में इस वैचारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आना प्रारंभ हो गया इसके पीछे प्रमुख रूप से दो चिंतक वर्ग कार्य कर रहे थे—

- प्रथम चिंतक वर्ग वे अर्थशास्त्री थे जो राष्ट्रीय आय को विकास का आधार मानने के प्रति संदेहात्मक थे। उनका विश्वास था कि मात्र रुपये पैसे को आधार मानकर विकास का निर्धारण उचित नहीं, बल्कि विकास एक बहु-आयामी संकल्पना है जिसका तात्पर्य जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलू अथवा पर्यावरण की गुणवत्ता में सर्वांगीण विकास से है।
- दूसरे चिंतक वर्ग में वे पारिस्थितिक विज्ञानी थे जो विकास के नकारात्मक प्रभावों व संसाधनों के अनियोजित दोहन के प्रति चिंतित थे। इस वर्ग में प्रसिद्ध लेखिका राशेल कार्सन की पुस्तक 'Silent Spring' (1962) जैसे प्रकाशनों ने काफी सनसनी भी फलाई।

इस प्रकाशन के एक दशक पश्चात क्लब ऑफ 'रोम' द्वारा पर्यावरण के सम्बंध में एक अतिवादी दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया जिसके अनुसार यदि वर्तमान तकनीकी में परिवर्तन नहीं लाया गया तो विश्व के संसाधनों के समाप्त हो जाने का खतरा है। इस खतरे को कम करने के लिए इस क्लब ने उपभोग में स्वेच्छा से कमी लाने तथा शून्य वृद्धि की आर्थिक नीति पर चलने की सलाह दी। इस सिद्धांत के प्रतिपादकों का मत था कि पर्यावरण की रक्षा की परवाह करना एक विलासिता है जिसका मूल्य केवल पश्चिमी विकसित देश ही कर सकते हैं। विकासशील देश या विश्व का निर्धन समाज तो इस योग्य ही नहीं है। उल्लेखनीय है कि क्लब ऑफ रोम की सदस्यता केवल धनी पश्चिमी देशों तक ही सीमित है।

इसी प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों ने पर्यावरण के प्रति बढ़ती हुई चिन्ता को बेबुनियाद बताया तथा यह स्पष्ट किया कि उत्पादन के साधन सार्वजनिक क्षेत्र में होने से पर्यावरण समस्याएँ अपने आप हल हो जाएंगी। परन्तु ऐसा न तो साम्यवादी चीन में हो पाया और नही तत्कालीन सोवियत संघ में।

इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में वर्ष 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में स्टाकहोम (स्वीडन) में मानव-पर्यावरण पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन काफी महत्वपूर्ण था। इस सम्मेलन का स्थल 'स्टाक होम' इसलिए नहीं चुना गया कि स्वीडन एक तटस्थ देश है, बल्कि इसलिए कि वहाँ (तत्कालीन) पश्चिमी जर्मनी और ब्रिटेन जैसे दूरस्थ देशों के उद्योगों से निकलने वाली सल्फर डाई आक्साइड गैस द्वारा उत्पन्न तेजाबी वर्षा से स्कैन्डिनेवियन देशों की झीलों, वनों तथा अन्य प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रदूषित होने का खतरा बढ़ता जा रहा था। इस सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों द्वारा पर्यावरणीय संकट की समझ को सम्मेलन में सिरकत करने वाली तत्कालीन भारतीय प्रधान मंत्री स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है— 'जब कि पश्चिमी विकसित देशों के लिए पर्यावरण के बिगड़ने का सबसे बड़ा कारण विकास है, हमारे जैसे विकासशील देशों के लिए विकास पर्यावरण को सुधारने का एक आधार भारत में हम पर्यावरण को कोई क्षति नहीं पहुँचाना चाहते हैं, परन्तु हम अपनी जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग की गरीबी को एक क्षण के लिए भी नजरन्दाज नहीं कर सकते। क्या गरीबी और जरूरतें सबसे बड़े प्रदूषक नहीं हैं? यहाँ शार्ट (1993) का यह कथन उल्लेखनीय है— विकसित देशों में विकास का तात्पर्य आर्थिक प्रगति और आर्थिक स्वतंत्रता है जब कि विकासशील देशों में आर्थिक विकास का तात्पर्य सही अर्थ में इन देशों की बढ़ती आर्थिक परतंत्रता है'। वस्तुतः समकालीन विश्व अर्थव्यवस्था मुख्यतया औद्योगिक दृष्टि से विकसित और आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से धनी देशों द्वारा सामूहिक रूप से सम्पत्तियों के हित में संचालित व्यवस्था है जो पर्यावरणीय समस्याओं को पैदा करती है। कुछ गिने चुने यूरोपीय देश, सं०रा० अमेरिका और जापान इस व्यवस्था के उपान्त (Periphery) हैं जो पर्यावरणीय समस्याओं से पीड़ित और अभिशप्त हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ एक तरफ विकसित राष्ट्रों की पर्यावरणीय समस्याएँ उन देशों के अधिक औद्योगीकरण एवं विकास का परिणाम है; वहीं दूसरी तरफ विकासशील देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या और घटते संसाधनों के कारण आर्थिक एवं पर्यावरणीय समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। पर्यावरणीय दबाव से आर्थिक परेशानियों

भी बढ़ती है और इसी के साथ-साथ सामाजिक तंत्र में भी उथल-पुथल होती है। आज लगभग विश्व के हर राष्ट्र को यह समझ में आ गया है कि पर्यावरण की रक्षा एक न्यायोचित एवं शान्तिप्रिय समाज की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है, इसीलिए विकासशील देशों ने एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय नीति के लिए दबाव डालना शुरू किया है जिसके द्वारा विश्व के संसाधनों का न्यायोचित बँटवारा सुनिश्चित हो सके।

13.14 विश्व की प्रमुख राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याएँ

वैश्विक स्तर पर जिन प्रमुख राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान कि गई है, वे निम्नलिखित हैं—

1. पर्यावरण प्रदूषण— वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि तथा मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रदूषण एवं रेडियोधर्मिता का प्रदूषण।
2. ओजोन परत का क्षरण
3. हरित गृह प्रभाव (Green house effect)
4. अम्लीय वर्षा
5. हरित क्रान्ति की सफलता हेतु प्रचलित कीट नाशकों का विपरीत प्रभाव
6. मरुस्थलीकरण
7. वनविनाश एवं पर्यावरण अवनयन
8. भूमिगत जल प्रदूषण
9. महासागरीय प्रदूषण
10. जैव विविधता ह्रास (क्षय)
11. वैश्विक चरम घटनाएं, पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदाएं
12. जलवायु परिवर्तन जन्य बाढ़ एवं सूखा आपदाएं
13. भूमंडलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन

उपरोक्त समस्याएं किसी भी राज्य की राजनीतिक सीमाओं से आबद्ध नहीं हैं। इनका स्वरूप व्यापक है और इनमें से कई न केवल अन्त महाद्वीप विस्तार की हैं, अपितु विश्वव्यापी हैं। इनके व्यापक स्वरूप के ही कारण इनका राजनीति करण होना स्वाभाविक है। इसके लिए नीति निर्धारण करना, नियोजन करना, विभिन्न कार्यक्रम संचालित करना, आर्थिक व्यवस्था करना आदि कार्य राजनीतिक सहयोग द्वारा ही संभव हो सकते हैं।

13.4.1 पर्यावरण प्रदूषण —

पर्यावरण प्रदूषण का तात्पर्य है मानवीय कारणों द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास। विभिन्न समुदाय एवं वर्ग के लोग प्रदूषण को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। एक समाज विज्ञानी इसे सामाजिक समस्या के रूप में, अर्थशास्त्री आर्थिक समस्या के रूप में तथा पारिस्थितिकीविद् इसे पारिस्थितिकीय समस्या के रूप में देखता है प्रायः पर्यावरण प्रदूषण नगरीकरण, औद्योगिक क्रान्ति, प्रौद्योगिकी में विकास, प्राकृतिक संसाधनों के लोलुपतापूर्ण अंधाधुंध विदोहन, पदार्थ तथा ऊर्जा विनियम भी बढ़ीदर तथा औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों, नगरी मल-जल तथा न सड़ने-गलने वाली उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन एवं उपभोग में निरंतर वृद्धि का परिणाम है।

पर्यावरण में होने वाला यह प्रदूषण वायु, जल, भूमि, मृदा, ध्वनि, ठोस अपशिष्ट एवं रेडियोधर्मिता जैसे कई रूपों एवं स्तरों में होता है लेकिन इसका वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है, कारण कि प्रदूषण वे माध्यम संसाधन जिनके द्वारा होकर विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों का परिवहन एवं विसरण होता है आपसे इतने अधिक सम्बन्धित या सम्बद्ध होते हैं कि किसी खास प्रकार के प्रदूषक या प्रदूषण के साधन द्वारा किए गए प्रदूषण की अलग पहचान करना कठिन हो जाता है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले तमाम प्रदूषकों में कार्बनडाई ऑक्साइड, कणिकीय पदार्थ, सल्फरडाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड्स जहरीली भारी धातुएं, तेल, क्लोरीनेटेड

हाइड्रोजन कार्बन, रेडियोन्यूक्लाइड्स, घरों एवं औद्योगिक संयंत्रों से निस्तृत ऊष्मा एवं कार्बनिक रासायन को प्रमुख प्रदूषण माना जाता है जो वायु, जल, भूमि, मृदा, पादप समुदाय तथा मौसम एवं जलवायु को प्रभावित करते हैं। हैजा, तपेदिक, पीलिया, अतिसार, पैराटाइफाइड, पेचिस, फेफड़ों को कैंसर तथा मिनीमाता जैसे रोग इसी प्रदूषण के परिणाम हैं। प्रदूषण के कारण मिट्टियों की गुणवत्ता में ह्रास होने से उनकी उर्वारता भी घट जाती है। ध्वनि प्रदूषण से होने वाले कुप्रभावों में श्रवण सम्बन्धी प्रभाव एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव सर्व प्रमुख हैं जिनसे मानवों न्यूरोटिक मेण्टल डिस्ऑर्डर मांस-पेशियों में तनाव तथा खिंचाव तथा स्नायुओं में उत्तेजना पैदा हो जाती है।

13.4.2 ओजोन परत का क्षरण –

वायुमण्डल में ओजोन गैस का सर्वाधिक सान्द्रण समताप मण्डल में 12 से 35 किमी० की ऊँचाई के बीच (सागर तल से) पाया जाता है। इस ओजोन परत को पृथ्वी का रक्षा कवच या पृथ्वी का छाता कहते हैं, क्योंकि यह गैस सौर्यिक विकिरण की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है तथा पृथ्वी तल तक पहुँचने से रोकती है। परिणाम स्वरूप ओजोन परत भूतल को अत्यधिक गर्म होने से बचाती है, स्पष्ट है कि समताप मंडल में स्थित ओजोन परत का सभी प्रकार के जीवों के लिए अत्यधिक महत्व है। इस परत के अभाव में भूतल का तापमान इतना अधिक हो जाएगा कि भूमण्डलीय जैविक भट्ठी (Biological Furnance) में बदल जाएगी और समस्त जीव नष्ट हो जाएंगे विगत चार-पाँच दशकों में ओजोन परत के क्षरण को लेकर वैज्ञानिक जगत में इतना शोर मचाया गया है कि इस विषय ने अब विश्वव्यापी चिंता का रूप धारण कर लिया है। वस्तुतः विश्वस्तर पर बढ़ती यह चिंता निराधार एवं वैज्ञानिक प्रमाण रहित नहीं है। ओजोन के महत्व तथा उसके विनाश से उत्पन्न होने वाले भावी कुप्रभावों के प्रति वैश्विक स्तर पर जनसाधारण में जागरूकता बढ़ी है।

13.4.3 हरित गृह प्रभाव –

आक्सफोर्ड शब्द कोष के अनुसार—‘वायुमंडल में मानव-जनित कार्बनडाइआक्साइड के आवरण प्रभाव (Blanketing effect) के कारण पृथ्वी की सतह के प्रगामी तापन (Progressive Warming) को हरित गृह प्रभाव कहते हैं। अर्थात् पृथ्वी के सन्दर्भ में हरित गृह विशेषता वाली गैसों—कार्बनडाइआक्साइड (CO_2) मेथेन (CH_4), नाइट्रस आक्साइड (N_2O) हैलोजनिक गैसों (यथा—क्लोरोफ्लूरो कार्बन) तथा जलवाष्प हरित ग्रह की तरह व्यवहार करती हैं, क्योंकि ये सौर्यिक विकिरण को धरातल तक पहुँचने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करती परन्तु पृथ्वी से होने वाले बहिर्गामी दीर्घतरंग विकिरण खासकर अवरक्त किरणों को सोख लेती हैं तथा भूतल की ओर पुनः प्रत्यावर्तित कर देती हैं। परिणामतः धरातलीय सतह निरंतर गर्म होती रहती है। आईपीसीसी (Intergovernmental Panel on Climate change) 2007 की रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति (1750 ई०) के पश्चात मानवीय क्रिया कलापों के कारण इन गैसों के वायुमंडलीय सान्द्रण में लगभग 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जिसकी वजह से पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ने से स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर जलवायु दशाओं में कई तरह के परिवर्तन हुए हैं। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि यदि इन गैसों के उत्सर्जन में कमी न की गई तो भविष्य में वार्षिक वर्षा के दिनों में कमी आयेगी, हिमनदों के समाप्त होने का खतरा बढ़ जाएगा और सदानीरा नदियाँ भी सूखने के कगार पर आ जाएंगी।

13.4.4 अम्लीय वर्षा –

यह एक जटिल पर्यावरणीय समस्या है जिसके कई कारण और व्यापक परिणाम हैं। अम्ल वर्षा या अम्ल निक्षेप एक व्यापक शब्द है जिसमें सल्फरिक या नाइट्रिक अम्ल जैसे अम्लीय घटों के साथ किसी भी प्रकार की वर्षा शामिल होती है जो नम या शुष्क रूप में वायुमंडल से पृथ्वी पर गिरती है। वस्तुतः जब सल्फरडाइआक्साइड (CO_2) और नाइट्रोजन आक्साइड वायुमंडल में जन तथा आक्सीजन के साथ क्रिया करते हैं, तो वे क्रमशः सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) तथा नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) बनाते हैं। ये अम्ल फिर जल की बूंदों में धुल जाते हैं जिससे अम्ल वर्षा, बर्फ या कोहरा बनता है। अम्ल वर्षा के प्रमुख मानव जनित कारणों में जीवाश्म ईंधन के दहन से विशेष रूप से सल्फरयुक्त सल्फरडाइआक्साइड और उच्च ताप पर नाइट्रोजन आक्साइड निकलते हैं। ये प्रमुख वायुमंडलीय प्रदूषण हैं जो रासायनिक क्रियाओं के कारण अम्लीय रूप धारण कर और अंततः जल वाष्प के साथ मिश्रण कर वर्षण के दौरान अम्लीय वर्षा बनाते हैं। अम्लीय वर्षा के प्रमुखतः पाँच खतरनाक प्रभाव देखे गये हैं –

- (अ) जलीय जीवन पर प्रभाव,
- (ब) समुद्री जल व प्रजातियों के वितरण पर प्रभाव,
- (स) भौतिक अवसंरचना पर प्रभाव,
- (द) कवच युक्त समुद्री प्रजातियों पर प्रभाव, तथा
- (य) वास्तुशिल्प स्थलों की संरचनात्मक आवश्यक पर प्रभाव।

13.4.5 हरित क्रान्ति की सफलता हेतु प्रचलित कीटनाशकों का विपरीत प्रभाव –

हरित क्रान्ति को सफल बनाते हेतु प्रचलित कीटनाशकों के प्रयोग से तीसरी दुनिया (विश्व के निर्धन देश) के अधिकांश लोग जहर से प्रभावित हैं। इन दवाओं को छिड़कते समय मुँह, नाक न ढकने के कारण जिगर, आँख मस्तिष्क कुप्रभावित होते हैं और कैंसर होने का खतरा बढ़ जाता है। भारत में प्रचलित कीटनाशक दवाएं उन 12 खतरनाक कीटनाशक दवाओं में हैं जिनका उपयोग विकसित देशों में प्रति बंधित है। वस्तुतः इन खतरनाक कीटनाशकों के प्रयोग से जहरीले पदार्थों का संचय भोजन श्रृंखला के प्रत्येक स्तर तक बढ़ता जाता है। इसे जैविक विवर्धन (Biological Magnification) जितना दवाओं का अंश पौधों में मिलता है, उससे अधिक संकेन्द्रण इन पौधों को चरने वाले पशुओं में पाया जाता है तथा उससे भी अधिक संकेन्द्रण इन पशुओं का मांस खाने वाले मांसाहारी जन्तुओं एवं मनुष्यों में होता है। ऐसा इसलिए होता है कि ये तत्व चर्बी व तेल में धुलमिल जाते हैं तथा जीवों के चर्बी प्रधान ऊतकों में संचित हो जाते हैं वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या के उदर पोषण में स्तर लगभग हर निर्धन देश इस पर्यावरणीय समस्या से ग्रस्त है।

13.4.6 मरुस्थलीकरण –

मरुस्थलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो शुष्क, अर्धशुष्क एवं अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों में चलती रहती है, जिसमें एक ओर प्राकृतिक स्रोतों का योग होता है तो दूसरी ओर मानवीय क्रियाओं का। प्राकृतिक स्रोतों के अन्तर्गत वर्षा व तापमान का असमान वितरण एवं उच्चताप के साथ न्यूनवर्षा का होना प्रभावी कारक है, जबकि मानवीय क्रिया कलापों के अन्तर्गत भूमिगत जल का अधिक इस्तेमाल, औद्योगिक गतिविधियों के लिए रास्ता बदलना एवं अत्यधिक पशुचारण मरुस्थलीकरण का मुख्य कारक है। वस्तुतः मरुस्थलीकरण उन सभी प्रक्रमों का सामूहिक प्रभाव है जिसके कारण एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में मूलभूत बदलाव आते हैं एवं अमरुस्थलीय क्षेत्र मरुस्थल में परिवर्तित होने लगते हैं। दूसरे शब्दों में किसी मरुस्थल के आसपास गैर मरुस्थलीय क्षेत्रों में मरुस्थल के विस्तार को मरुस्थलीकरण कहते हैं।

ऐसा माना जाता है कि मरुस्थलीकरण के कारण विश्व में लगभग 42 बिलियन डालर की क्षति होती है। यह वैश्विक पर्यावरणीय समस्या है जिससे वैश्विक भूमि सम्पदा को क्षति पहुँचती है और विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न स्वरूप निर्धनता और भुखमरी में वृद्धि होती है। मरुस्थलीकरण से प्रभावित क्षेत्रों में आर्थिक अस्थिरता एवं राजनैतिक असंतोष बढ़ता है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में भूमि एवं जल संसाधन की कमी हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप आश्रय एवं पोषण की तलाश में पलायन भी बढ़ जाता है।

13.4.7 वन विनाश एवं पर्यावरण अवनयन –

वन किसी भी राष्ट्र की जीवन रेखा होते हैं क्योंकि इनसे आधुनिक उद्योगों के लिए कच्चे पदार्थ मिलते हैं, निर्माण कार्यों के लिए लकड़ी सुलभ होती है, जन्तुओं एवं विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों के लिए आवास मिलता है, उच्च जैविक तत्वों से युक्त पोषक तत्वों वाली कोमल मिट्टियों का निर्माण होता है, इनके जड़ों के जाल से मिट्टियाँ बँधी रहती हैं तथा वर्षा की जल बूँदों के प्रहार से इनकी रक्षा होती है, वर्षा के जल के धरातल में रिसाव में वृद्धि होती है जिससे भूमिगत जल भण्डार का अधिकतम पुनर्भरण (Recharge) होता है, धरातलीय वाही जल में कमी होती है जिस कारण बाढ़ की आवृत्ति, परिणाम एवं विस्तार में कमी होती है, वर्षण में वृद्धि होती है प्रकाश संश्लेषण के समय कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण करके पौधे इसके सान्द्रण में कमी करते हैं। इस तरह से वन प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र के प्रमुख जैविक संघटक होते हैं एवं जैव विविधता को बढ़ावा देते हैं।

बनों के विनाश से पारिस्थितिकीय संतुलन अव्यवस्थित हो जाता है और वायुमंडल की निचली परत में CO_2 का सान्द्रण बढ़ने से तापमान बढ़ता है जो अंततः मौसम एवं जलवायु परिवर्तन का कारण बनता है जो आज राजनीतिक-भौगोलिक जगत की सबसे ज्वलंत वैश्विक पर्यावरणीय समस्या है।

13.4.8 भूमिगत जल प्रदूषण –

भूमिगत जल का प्रदूषण कई स्रोतों से होता है, यथा-कृषि क्षेत्रों से कई प्रकार के प्रदूषकों (नाइट्रेट, फास्फोरस, पोटैश तथा विभिन्न प्रकार के कीटनाशी, रोगनाशी तथा शाकनाशी कृत्रिम रसायन) के निक्षालन (Leaching) तथा सतह के नीचे गमन से, ग्रामीण एवं नगरीय कचरों से, कच्चे सेप्टिक टैंकों से, प्रदूषित तालाबों, बावड़ियों एवं तड़ागों से। जिन क्षेत्रों में भुरभुरी मिट्टियाँ पाई जाती हैं, भूमिगत जल का स्तर भूसतह से काफी गहराई पर होता है, तथा सामान्य से उच्चवर्षा होती है, वहाँ वर्षा के जल का भूमि में अधिक अन्तः स्पंदन होता है जिस कारण प्रदूषकों का भी अधिक मात्रा में नीचे की ओर गमन होने के कारण भूमिगत जल का प्रदूषण अधिक होता है। भूमिगत जल प्रदूषण के सबसे अधिक शिकार मनुष्य होते हैं और कई प्रकार के संक्रामक एवं खतरनाक रोगों (हैजा, तपेदिक, पलिया, अतिसार, मियारी ज्वार, पेंचिश, पैराटाइफाइड आदि) का उन्हें सामना करना पड़ता। प्रायः निर्धन एवं विकासशील देशों की यह निकट पर्यावरण समस्या है।

13.4.9 महासागरीय प्रदूषण –

महासागरीय प्रदूषण मुख्य रूप से सागर तटवर्ती भागों में नगरीय एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों के विसर्जन के कारण होता है जिसका दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव सागरीय जीवों पर पड़ता है। सागरीय प्रदूषण से मछलियाँ एवं प्रवाल सीधे प्रभावित होते हैं। खनिज तेल वाहक जलयानों से भारी मात्रा में खनिज तेल का रिसाव तथा अपतट सागरीय कूपों से भी सागरीय जल का बड़े पैमाने पर प्रदूषण होता है। ऐसा अनुमान है कि 2000 एशियाई सागरों में 30 प्रतिशत प्रशान्त महासागर में 25 प्रतिशत, हिन्द महासागर में 24 प्रतिशत, कैरेबियन सागर में 09 प्रतिशत, लाल सागर सहित 10 एशियाई सागरों में 06 प्रतिशत एवं अटलांटिक महासागर में 06 प्रतिशत प्रवाल सागरीय प्रदूषण द्वारा संकटापन्न हैं। आयल रिलीफ से इन सागरीय भागों में एवं प्रभावित तटीय भागों के सागरीय अंचलों में पारिस्थितिकीय विनाश (Ecological disaster) भी स्थिति उत्पन्न हो गई है पर्यावरण जगत की यह विकट वैश्विक राजनीतिक पर्यावरणीय समस्या है कारण कि खनिज तेल वर्तमान युग का अहम राजनीतिक हथियार बन चुका है और 2050 एशिया के खनिज तेल उत्पादक देशों की राजनीतिक अशांति एवं अस्थिरता का यह मूल कारण है।

13.4.10 जैव विविधता ह्रास (क्षय) –

प्रजाति विलोपन (Species extinction) जैव विविधता क्षय की प्रमुख प्रक्रिया है। पृथ्वी पर आर्थिक मानव के अवतरण के पहले प्रजातियों का विलोपन केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा अत्यंत मन्दगति से होता था, जिसमें नई प्रजातियों के उद्भव के लिए पर्याप्त समय होता था; परन्तु अब मानव जनित प्रक्रिया प्रजातियों के विलोपन की मुख्य प्रक्रिया बन गई है। प्रजातियों के विलोपन एवं जैव विविधता के ह्रास की मानव जनित प्रक्रिया बन गई है। प्रजातियों के विलोपन एवं जैव विविधता के ह्रास की मानव जनित प्रक्रिया इतनी तीव्र होती है तथा इतनी लघु अवधि में सम्पन्न होती है कि नई प्रजातियों के उद्भव के लिए वांछित समय ही नहीं मिल पाता। पाल अरलिक के अनुमान के अनुसार वर्तमान समय में पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्रजातियों (पौधों, जन्तुओं एवं सूक्ष्म जीवों की) के एक तिहाई से दो तिहाई भाग का सन् 2050 के अन्त तक विलोपन हो जाएगा। एक अन्य अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्रजातियों की ज्ञात संख्या 40000 है जिसमें से 10000 प्रजातियों का मनुष्य के आर्थिक क्रिया कलापों (जैसे-कृषि क्षेत्रों में विस्तार, कृषि उत्पादकता में वृद्धि) बाँधों एवं कृत्रिम जलाशयों का निर्माण, निर्वनीकरण तथा तीव्र मृदा अपरदन, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पर्यावरण प्रदूषण आदि) के कारण प्रतिवर्ष विलोपन हो रहा है। वैज्ञानिकों ने मानव जनित भूमण्डलीय ऊष्मन को भी जैव विविधता क्षय के प्रमुख कारणों में से एक माना है। भूमण्डलीय ऊष्मन वर्तमान राजनीतिक पर्यावरण जगत की एक ऐसी विकट समस्या है जिसने वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है और इसके प्रभाव जलवायु परिवर्तन, हिमचादरों के संकुचन, सागरीय जल-तल में वृद्धि आदि के रूप में दिखाई भी देने लगे हैं।

13.4.11 वैश्विक चरम घटनाएं, पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदाएं –

प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न या मानव जनित वे घटनाएं जो कभी-कभी घटित होती हैं; तथा प्राकृतिक

प्रक्रियाओं को तेज कर देती हैं तथा मानव समाज के लिए आपदाएं उत्पन्न कर देती हैं चरम घटनाएं (Extrane evenb) जैसे-भूकम्पीय घटना, ज्वालामुखी का उद्भेदन, दीर्घकालिक सूखा, बाढ़, वायुमंडलीय तूफान, जहरीली गैसों का हिसाब, बड़े-बड़े तेल वाहक जलयान टैंकरों से पेट्रोलियम का सागरीय जल में बहाव, वनों में आग लगना।

वे चरम घटनाएं जब किसी भी तंत्र की सीमा शक्ति को पर कर जाती है, आदि मानव द्वारा उनका समायोजन कठिन हो जाता है, मानव सम्पत्ति को भारी क्षति होती है, जीव-जन्तुओं वनस्पतियों का विनाश हो जाता है, पर्यावरण प्रकोप (Hazards) कही जाती हैं।

वे चरम घटनाएं और प्रकोप जब त्वरित एवं तीव्र गति से घटित होती हैं और मानव समाज एवं जीव-जन्तु पादप समुदाय को अपार क्षति पहुँचाती हैं, आपदा (Disarler) कही जाती हैं। वर्ष 1999 का उड़ीसा का सपा चक्रवात एवं वर्ष 2004 में द0पू0 एशिया की सुनामी ऐसी ही आपदाएं थी। यह देखा गया है कि पिछले 50-60 वर्षों में बढ़ते भू-मण्डलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तनों के कारण इन चरम घटनाओं, प्रकोपों एवं आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि हुई है जिससे पर्यावरण की यह एक प्रमुख समस्या बन गई है।

13.4.12 जलवायु परिवर्तन जन्य बाढ़ एवं सूखा -

बाढ़ एक विनाशकारी प्राकृतिक आपदा है जो व्यापक स्तर पर जान माल को हानि पहुँचाती है। वस्तुतः जब नदियों का जल अपने प्राकृतिक तटबंधों को तोड़कर बाहर की ओर बहने लगता है तो सामान्यतः इसे बाढ़ कहा जाता है। यह एक ऐसी आपदा है जो प्रायः दुनिया का हर देश झेलता है।

सूखा एक ऐसी परिस्थिति है जिसके तहत एक क्षेत्र विशेष में वर्षा के अभाव लम्बे समय के लिए जल तथा नमी की कमी हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक वनस्पतियाँ समाप्त होने लगती हैं एवं शाकाहारी पशुओं को संकट का सामना करना पड़ता है और वे मरने लगते हैं। शाकाहारी पशुओं के मरने से उन पर निर्भर रहने वाले मांसाहारी पशु भी मरने लगते हैं। वर्षा के अभाव में ऐसे क्षेत्रों में कृषि कार्य नहीं होने के कारण जनसंख्या का संकेद्रण धीरे-धीरे कम हो जाता है और अंततः नगण्य हो जाता है। वैश्विक स्तर पर दुनिया के तमाम देशों में बाढ़ और सूखा की विभीषिकाएं देखी गई हैं जो वास्तव में बढ़ते भू-मण्डलीय ऊष्मन और तदजनित जलवायु परिवर्तनों का परिणाम हैं वस्तुतः जहाँ अधिक वर्षा के क्षेत्र में वर्षा के क्षेत्र में वर्षा की सकारात्मक विचलनशीलता (Variability) से बाढ़ भी समस्या उत्पन्न होती है, वहीं अपेक्षाकृत कम वर्षा के क्षेत्रों में वर्षा की नकारात्मक विचलन शीलता सूखे का कारक बनती है।

13.4.13 भूमण्डलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन -

आदम-दृत्वा, मनु-इड़ा या एडम-ईब ने जब दुनिया में कदम रखा होगा, तब यह धरती बहुत सुन्दर और हसीन रही होगी, पवित्र, अनछुई और बेदाग। बाद में समय के साथ सम्यताएं विकसित एवं बर्बाद होती रहीं। इसी दौरान ज्ञान विज्ञान की लौ भी तेज होती रही। फिर न जाने क्या हुआ कि विशाल भू-भाग पर राज कर रही कुछ कौमों के लिए धरती छोटी पड़ने लगी। छीना झपटी शुरू हुई। युद्ध शुरू हो गए जो आज तक जारी हैं। इसी बीच हुए दो विश्व महायुद्ध (1914-1918) तथा (1939-1945) भलेही अपनी प्रकृतिक में चाहे जितने कुरूप रहे हों, लेकिन उनकी वजह से मानव सभ्यता ने वह छलांग मारी कि वह चाँद पर जा बैठी। विज्ञान के उत्कर्ष के साथ ही चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, उद्दयन, सड़क निर्माण, युद्ध कौशल, अंतरिक्ष विज्ञान, दूर संचार, सूचना तंत्र एवं मीडिया विकास के नए शिखर छूने लगे। यानी कह सकते हैं कि दुनिया विकास के जिस शिखर पर आज खड़ी है, उसमें इन दोनों महायुद्धों का बड़ा योगदान है।

अब यहाँ से शुरू होती है राजनीतिक पर्यावरणीय समस्या, भूमण्डलीय ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन, की वास्तविक कहानी। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में जो काम सदियों में नहीं हुआ, उसे युद्ध काल के कुछ वर्षों में पूरा करने के बाद इंसान में और बेहतर जिंदगी जीने की ललक बढ़ गई। शुभ और हितकर का ध्येय लेकर निकली आधुनिक मानव सभ्यता ने धरती को रौंदना शुरू कर दिया। वन क्षेत्र साफ कर दिया। वन क्षेत्र साफ कर दिए और उनकी जगह खड़े कर दिए कंक्रीट के जंगल। अमेरिका और यूरोपीय देश आधुनिक सुविधाओं वाले सामान बनाने की मंडिया बन गए। कोयला, पेट्रो उत्पाद, लकड़ी सब जलाकर कल कारखाने खड़े किए गए; रेल गाड़ियाँ चलने लगीं। नतीजा यह हुआ कि वायु मंडल में गैसों के भारी असंतुलन से कई तरह की पर्यावरणीय समस्याएं खड़ी होने लगीं। कोयला, पेट्रोल, डीजल के प्रयोग से हवा में कार्बनडाइ आक्साइड का स्तर बेहद बढ़ गया। ग्रीन

हाउस गैसों की वृद्धि के चलते, भूमण्डलीय ऊष्मन (Global Warming) तथा उससे जनित भूमण्डलीय पर्यावरण परिवर्तन (Global Environmental Change) होने लगा। इस भूमण्डलीय पर्यावरण परिवर्तन से पूरी दुनिया के ऋतु चक्र पर असर पड़ा। हवा भी गर्म धाराओं ने पारिस्थितिकी का नक्शा ही बदल दिया। ग्लेशियर तेजी से पिघलने शुरू हो गए सागर तल में धनात्मक परिवर्तन आने लगा। कई देश अत्याशित बाढ़ सूखा झेल रहे हैं।

देखा जाय तो इन वैश्विक समस्याओं के कई कारण हैं; यथा— वायुमंडल की रासायनिक संरचना में परिवर्तन, ओजोन क्षरण, तीव्रगति से हरित गैसों (कार्बनडाइ आक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन आक्साइड, क्लोराफ्लोरो कार्बन आदि) का उत्सर्जन, औद्योगीकरण, नगरीकरण, भूमि उपयोग में परिवर्तन खासकर वन विनाश आदि। इनमें से सभी कारक प्रायः मानव जनित हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय भविष्य में होने वाले संभावित जलवायु परिवर्तनों के मनुष्य तथा प्रकृति पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभावों को लेकर काफी चिंतित एवं भयभीत है। उसे यह भय है कि लगातार बढ़ते भू-मण्डलीय ऊष्मन के चलते यदि मौसम एवं जलवायु में भारी परिवर्तन होता है तो कई तरह की समस्याएँ उठ खड़ी होंगी, यथा— विहिमानीकरण (deglaciation) एवं सागरतल में धनात्मक परिवर्तन, सागर द्वीपीय राष्ट्रों एवं सागर तटीय भागों का जलवाष्पन से निमज्जन, वाष्पीकरण एवं वर्षण सहित वायुमंडलीय विकिरण संतुलन में अव्यवस्था, प्रकाश संश्लेषण एवं पारिस्थितिकीय उत्पादकता में परिवर्तन, पादप एवं वनस्पति समुदाय पर प्रतिकूल प्रभाव, मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर आदि।

13.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याओं के लिए जिम्मेदार राष्ट्र

प्रश्न यह है कि धरती के विनाश के लिए उपजी इस विकट पर्यावरणीय समस्या का जिम्मेदार कौन हैं। अगर ग्लोबल वार्मिंग को 193 देशों के अनुमोदन वाले संयुक्त राष्ट्र के क्योटो प्रोटोकाल के तहत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न हुए कई सम्मेलनों के पन्ने पलटेंगे, तो वहाँ कुछ नहीं मिलेगा। इतिहास के पन्नों से जरूर इसका जवाब मिलता है। इसका सीधा सा जवाब है अमेरिका और उसकी अगुवाई में विकास की अंधी दौड़ में शामिल यूरोपीय देश और चीन। शोध बताते हैं कि भूमण्डलीय ऊष्मा के लिए जिम्मेदार देशों को प्रति व्यक्ति के आधार पर आँका जाय, तो तस्वीर थोड़ा बदल जाती है। प्रतिव्यक्ति के हिसाब से ब्रिटेन प्रथम स्थान पर, अमेरिका दूसरे, जर्मनी तीसरे और चीन सावतें स्थान पर आता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि 2007 में कार्बन का स्तर बढ़ाने में अमेरिका की भूमिका पर जोरदार हमला करने वाला चीन साल 2013 में कार्बन उत्सर्जन करने में प्रथम स्थान पर था। सस्ते उत्पादों से विश्व बाजार को पाटने में लगा चीन इस वक्त बेतहासा कार्बन उत्सर्जन कर रहा है। वैसे देखा जाय तो भूमण्डलीय ऊष्मन की वर्तमान दशा के लिए अकेले ब्रिटेन को भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। ब्रिटेन ने संवादों सौ साल पहले ही औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात करते हुए कार्बन उत्सर्जन शुरू कर दिया था। इसके बाद पूरे यूरोप में प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। जर्मनी के मैदान में कूदने से हालात और बिगड़े सवाल यह नहीं है कि अब ग्लोबल वार्मिंग को लेकर ब्रिटेन की क्या नीति है। प्रश्न यह है कि सवा दो साल का हिसाब कौन देगा?

13.6 भूमण्डलीय उष्मण एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

संयुक्त राष्ट्र संघ, विभिन्न राष्ट्रों, सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा उक्त पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अब तक कई सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है और कई महत्वपूर्ण संधियों पर हस्ताक्षर भी किए गए हैं, उनमें से निम्न सम्मेलन एवं संधियाँ महत्वपूर्ण हैं—

1. 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में मानव-पर्यावरण विषय पर आयोजित स्टॉकहोम (स्वीडन) सम्मेलन;
2. 1977 में कीनिया के नैरोबी में संयुक्तराष्ट्र के तत्वावधान में संपन्न मरुस्थलीकरण सम्मेलन,
3. 1979 में जिनेवा (स्विट्जरलैंड) में आयोजित प्रथम 'विश्व जलवायु सम्मेलन';
4. 1980 में वियना में मौसम विज्ञान संगठन द्वारा 'औद्योगिक कारणों से घटित जलवायु' विषय पर आयोजित सम्मेलन;

5. 1985 में ओजोन परत के संरक्षण हेतु वियना (आस्ट्रिया) में आयोजित 'वियना कन्वेंशन
6. 1987 में क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFCs) के उत्पादन एवं उपभोग में कटौती के लिए कनाडा के मॉन्ट्रियल नगर में मॉन्ट्रियल प्रोटोकाल पर सहमति;
7. 1988 में CO₂ उत्सर्जन में कमी करने के लिए टोरंटो (कनाडा) में आयोजित टोरंटो सम्मेलन;
8. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) तथा विश्वमौसम विज्ञान संगठन द्वारा जलवायु परिवर्तन के अध्ययन एवं विवरण प्रस्तुत हेतु जलवायु परिवर्तन अन्तरशासकीय पैनल का 1988 में गठन। इस पैनल का प्रमुख कार्य हरित गैसों के प्रभाव समय समय प्रतिवेदन प्रस्तुत करना था।
9. मार्च, 1989 की हेग उद्घोषण एवं 2 मई 1989 की हेलसिंकी उद्घोषणा।
10. 1990 में द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन का आयोजन एवं अंतरशासकीय संधिवाता समिति
11. 1992 (जून) में ब्राजील के रियादि जेनेरो नगर में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण का गठन व विकास सम्मेलन का आयोजन। इसे 'पृथ्वी सम्मेलन' या 'रियोसम्मेलन' के नाम से अधिक जाना जाता है।
12. 1994; पृथ्वी सम्मेलन के समय हस्ताक्षरित 'जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन' को कार्यरूप दिया गया। इसके अन्तर्गत 2000ई0 तक CO₂ के उत्सर्जन को 1990 के स्तर पर लाना तय किया गया 16 फरवरी 2005 को सं0रा0 अमेरिका व आस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी देशों ने इस प्रस्ताव के क्रियान्वयन पर हस्ताक्षर कर दिया। अब यह बन गया है।
13. 1995 (जून) में जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन के पक्षधरों का प्रथम सम्मेलन बर्लिन (जर्मनी) में आयोजित किया गया, परन्तु CO₂ उत्सर्जन की मात्रा निर्धारण हेतु कोई सहमति नहीं बनी।
14. 1996 (जुलाई) में जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन के पक्षधरों का द्वितीय सम्मेलन जिनेवा में सम्पन्न तो हुआ, पर इसमें भी CO₂ उत्सर्जन की मात्रा पर कोई सहमति नहीं बन पाई।
15. 1997 (23 जून-27 जून) में 'संयुक्त राष्ट्र द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन' का आयोजन न्यूयार्क (USA) में हुआ इसमें 178 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य 1992 के प्रथम पृथ्वी सम्मेलन में निर्धारित एजेन्डा 21 के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करना था।
16. 1997 में जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन के पक्षधरों का तीसरा सम्मेलन जापान के क्योकी नगर में (1-10 दिसंबर तक) सम्पन्न हुआ इसे 'क्योटो प्रोटोकाल' के नाम से जाना जाता है।
17. 2004 (6 से 17 दिसम्बर तक) संयुक्त राष्ट्र संघ के फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज' की 10वीं जलवायु परिवर्तन सभा का जिसे 'Tenth Conference of Parties' (COP-10) के नाम से जाना जाता है, का अर्जेन्टीना के न्यूनोन आयर्ष भी समस्या से निबटने के लिए कारगर रणनीति तैयार कराना एवं क्योटो प्रोटोकाल का क्रियान्वन शाखा।
18. 2005 (16 फरवरी) को क्योटो प्रोटोकाल को कानूनी जामा पहना दिया गया। अब औद्योगिक राष्ट्रों के लिए कानूनी तौर पर यह बाध्यकारी हो गया है।
19. 2015 (30 नवंबर से 12 दिसंबर तक) में फ्रांस की राजधानी पेरिस में यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (COP-21) पर जलवायु परिवर्तन के विषय में सम्पन्न हुए सम्मेलन में कई बिन्दुओं पर सहमति बनी तथा समझौते पर सभी 195 भागीदार राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किया। इसे पेरिस समझौता (Paris Agreement) कहा गया यह पहली बार है जब जलवायु परिवर्तन समझौते में कार्बन उत्सर्जन में कटौती पर सभी देशों की सहमति बनी है।

पेरिस समझौते की मुख्य बातें :-

- (अ) सभी देश कार्बन उत्सर्जन में जल्द से जल्द कमी लाएंगे।
- (ब) ग्रीन हाउस गैसों और उनके स्रोत के बीच सभी देश संतुलन बनाएंगे।
- (स) वैश्विक तापमान को 1.5° सेल्सियस पर सीमित करने की कोशिश का लक्ष्य रखा गया है।

- (द) हर पाँच साल में इस दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा की जाएगी
- (य) 2020 तक कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए विकासशील देशों को हर वर्ष 100 अरब डालर की मदद दी जायेगी जिसे और भी बढ़ाया जा सकता है।

पेरिस समझौता अंगीकार किए जाने के बाद COP -21 के मंच से संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ने कहा—‘आप सभी देशों ने एक ऐसा लक्ष्य निर्धारित किया है जिसे कोई एक अकेला देश हासिल नहीं कर सकता यह बहुपक्षीयता की शानदार सफलता है जो कार्बन उत्सर्जन पर रोक लगाने, लचीलेपन को मजबूत करने और साइका जलवायु कार्यवाही के लिए कृतसंकल्पित है।

13.7 सम्मेलनों, संधियों एवं समझौतों के बावजूद विद्यमान भू-मडलीय ऊष्मन के खतरे

वर्ष 1972 से शुरू हुए ‘स्टाकहोम मानव-पर्यावरण सम्मेलन से लेकर अब तक सम्पन्न हुए सम्मेलनों, संधियों एवं समझौतों से यह एक बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि दुनिया ने पर्यावरण को एक गंभीर राजनीतिक पर्यावरणीय मुद्दे के रूप में देखना शुरू कर दिया है, लेकिन चिंताजनक बात यह है कि प्रत्येक देश अपने मौजूदा हितों को तो देख रहा है लेकिन पर्यावरण की स्थिति में होने वाले हितों के नुकसान कोई भी देश गंभीरता से नहीं देख रहा इसे यूँ भी कह सकते हैं कि मौजूदा हित भावी हितों पर भारी पड़ रहे हैं। वैश्विक तापमान के बारे में नासा के गोडार्ड इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस स्टडीज’ के अध्ययन में खुलासा हुआ है कि बीते 30 वर्षों में धरती का तापमान 0.2 डिग्री से0 बढ़ गया है। इसमें यदि एक डिग्री से0 भी वृद्धि हो जाती है तो यह पिछले 10 लाख के बराबर हो जाएगा। वर्तमान में मानव जनित यह प्रदूषक खतरनाक स्तर के करीब है। वैज्ञानिकों के अनुसार 21वीं सदी बीतते-बीतते धरती का औसत तापमान 1.1 से 6.4 डिग्री से0 तक बढ़ सकता है। भारत में बंगाल की खाड़ी व उसके आस-पास यह वृद्धि 2डिग्री और हिमालयी क्षेत्र में 4डिग्री तक होगी जो समूची सभ्यता को तहस-नहस कर देगी।

सबसे बड़ी बात यह कि जलवायु परिवर्तन के चलते समूचे विश्व में अभूत पूर्व खाद्य संकट गहराएगा। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के जलवायु विज्ञान विभाग के अध्ययन में यह बात साबित हुई है कि जलवायु परिवर्तन की बढ़ती समस्या इस सदी के अन्त तक दुनिया की आधी आबादी को खाद्यान्न से वंचित कर सकती है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि इस संकट का उष्णकटिबंधीय इलाकों में फसल पैदा करने की क्षमता पर सबसे ज्यादा कुप्रभाव पड़ेगा और इसकी सबसे ज्यादा मार विषुवत रेखीय इलाकों को झेलनी पड़ेगी जहाँ दुनिया की सबसे ज्यादा गरीब और पिछड़ी आबादी वास करती है।

हालात की भयावहता की ओर इशारा करते हुए ‘क्रिश्चयन एड’ नामक संस्था की रिपोर्ट कहती है कि मौसम के बदलाव के कारण आगामी वर्षों में आजीविका के संसाधनों अर्थात् पानी की कमी और फसलों की बर्बादी के चलते दुनिया के अनेक भागों में स्थानीय स्तर पर जंग छिड़ने से 2050 तक एक अरब निर्धन लोग शरणार्थी के रूप में रहने को विवश होंगे संयुक्त राष्ट्र की अन्तरसरकारी पैनल रिपोर्ट के अनुसार 2080 तक 3.2 अरब लोग पानी की त्रगी से, 60 करोड़ लोग भोजन और तटीय इलाकों के लोग बाढ़ की समस्या से जूझेंगे।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक स्टीफन मर्म्स के अनुसार— ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर बहुत अधिक पड़ेगा। लोगों को पहले के मुकाबले ज्यादा संक्रामक रोगों का सामना करना पड़ेगा खासकर विकासशील देशों में उच्चघनत्व वाली आबादी के बीच तपेदिक, श्वासरोग और यौन रोगों में वृद्धि होगी।

निष्कर्ष यह कि ग्लोबल की भार से अमीर-गरीब, शहरी-ग्रामीण कोई भी नहीं बचेगा। इस समस्या से मुकाबले के लिए सालाना 60-80 अरब डालर से भी अधिक की धनराशि की आवश्यकता है जो फिलहाल उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति जलवायु परिवर्तन पर काबू पाने की उम्मीद करना बेमानी है।

13.8 जन-जागरण एवं जन सहभागिता एवं पृथ्वी दिवस

अब से लाखों साल पहले पृथ्वी जिस रूप में थी, तब से उसमें बहुत बदलाव आ चुका है। तरह-तरह के प्रदूषण ने इसके समूचे पर्यावरण को बुरी तरह प्रभावित किया है। न हवा साफ है, न पानी। ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का बेरहमी से दोहन जारी है। यह सिलसिला ऐसा ही राह तो आने वाली पीढ़ियों का भविष्य अंधकार मय होगा। यदि आज हमने धरती की परवाह नहीं की, तो कल हमारा अस्तित्व खत्म होना तय

है। इस धरा के प्रति अपने दायित्व बोध और जागरूकता के लिए ही हर साल दुनिया भर में 22 अप्रैल को 'पृथ्वी दिवस' मनाया जाता है। यह ऐसा दिवस है जिसे पृथ्वी के पर्यावरण के बारे में जानकारी और जागरूकता को प्रेरित करने के लिए डिजाइन किया गया है। इसकी स्थापना अमेरिकी सीनेटर जेराल्ड नेल्सन के द्वारा 1970 में एक पर्यावरण शिक्षा के रूप में की गई। यह तारीख उत्तरी गोलार्द्ध में वसन्त और दक्षिणी गोलार्द्ध में शरद के मौसम की है। पृथ्वी दिवस के नेटवर्क के माध्यम से कार्यकर्ता स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक पर्यावरण नीतियों और उनमें परिवर्तनों को आपस में जोड़ सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क 190 देशों में लगभग 17000 संस्थानों तक पहुँच चुका है जब कि घरेलू कार्यक्रमों में 5000 समूह और 25000 से अधिक शिक्षक शामिल हैं, जो साल भर लाखों समुदायों के विकास और सुरक्षा कार्यकर्ताओं की मदद करते हैं।

13.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भली-भाँति समझ गए होंगे कि वैश्विक स्तर पर जिन प्रमुख राजनीतिक पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान की गई है, वे पृथ्वी और सम्पूर्ण मानव समाज के अस्तित्व के लिए कितनी घातक हैं। ये समस्याएँ न केवल अन्तर्महाद्वीपीय विस्तार की हैं, अपितु विश्व व्यापी हैं। इनके व्यापक स्वरूप के ही कारण इन पर्यावरणीय समस्याओं का राजनीतिकरण होना स्वाभाविक है। सामूहिक दायित्व बोध, जागरूकता और ईमानदार अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास ही इन पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान का अंतिम विकल्प होगा।

13.10 शब्दसूची

जल सिक्ताता	Water Logging	प्रगामी तापन	Progressive Warming
कणिकीय	Particulate	निक्षालन	Leaching
श्रवण सम्बन्धी प्रभाव	Auditory Effects	प्रजाति विलोपन	Species extinction
धमन भट्ठी	Blast Furnance	विहिमानीकरण	Deglaciation
आवरण प्रभाव	Blanketing effect	पुनर्भरण	Recharge

13.11 : स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. प्रथम पर्यावरण सम्मेलन कहाँ आयोजित किया गया?
(अ) स्टॉकहोम (ब) पेरिस (स) मेलबोर्न (द) क्योटो
2. **U.N.E.P.** कार्यक्रम का सम्बन्ध किससे है?
(अ) आर्थिक विकास से (ब) पर्यावरण संरक्षण से (स) राजनीति से (द) सांस्कृतिक समन्वय से
3. 'पृथ्वी दिवस' दुनिया भर में किस तारीख को प्रतिवर्ष मनाया जाता है?
(अ) 5 जून को (ब) 5 जुलाई को (स) 22 अप्रैल को (द) 22 मई को
4. 'प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन' विश्व के किस शहर में आयोजित किया गया?
(अ) पेरिस (ब) मांट्रियल (स) वियना (द) जिनेवा
5. 'पेरिस समझौता' सिक वर्ष सम्पन्न हुआ?

(अ) 2015 (ब) 2016 (स) 2017 (द) 2018

आदर्श उत्तर—

1. (अ) ; (ब) ; 3. (स) ; (4) (द) ; 5.(अ)

13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

दीक्षित, रमेशदत्त, (2019), राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि, पी.एच.आई. लर्निंग, प्राइवेट लिमि0 दिल्ली, 280 पृष्ठ

सक्सेना, हरिमोहन, (2022–23), राजनीतिक भूगोल : रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ।

Short, J.R., (1993): 'An Introduction to Political Geography', 2nd Ed., London, Raoutledge.

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. पर्यावरणीय संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. वर्तमान विश्व में हो रही पर्यावरण राजनीति का वर्णन कीजिए।
3. पृथ्वी सम्मेलन के क्या उद्देश्य थे?
4. 'क्योटो प्रोटोकाल' क्या है?
5. 'पेरिस समझौते' के प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा कीजिए।

इकाई—14 विश्व के प्रमुख समस्या ग्रस्त क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 14.0 प्रस्तावना
- 14.1 उद्देश्य
- 14.2 राजनीतिक—भौगोलिक पृष्ठभूमि
- 14.3 समस्या ग्रस्त क्षेत्रों के अभ्युदय के आधारभूत कारक
 - 14.3.1 प्रतिस्पर्धी एवं साम्राज्यवादी राजनीतिक विचारधारा
 - 14.3.2 केन्द्रीय शासन पर बलात कब्जा करने की प्रवृत्ति
 - 14.3.3 अलगाववाद एवं आतंकवाद
 - 14.3.4 जातीय संघर्ष एवं साम्प्रदायिकता
 - 14.3.5 सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता
 - 14.3.6 संघीय सरकारें एवं राज्य विचार
 - 14.3.7 वैश्विक महाशक्तियों की दखलंदाजी
 - 14.3.8 तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति
 - 14.3.9 विश्व संसाधनों की राजनीति
 - 14.3.10 संयुक्त राष्ट्र संघ की अप्रभावी भूमिका
- 14.4 विश्व के प्रमुख समस्या ग्रस्त क्षेत्र
 - 14.4.1 दक्षिण—पश्चिम एशिया: समस्याग्रस्त क्षेत्र
 - 14.4.1.1 द०प० एशिया के खनिज तेल भंडार, खनिज तेल राजनीति और सं०रा० अमेरिका
 - 14.4.1.2 अरब जगत के खनिज तेज पर अमेरिकी वर्चस्व का मूल कारण
 - 14.4.1.3 सं०रा० अमेरिका की तेल अधिकार पर हवस और अरब जगत के युद्ध
 - 14.4.2 इजरायल—फिलिस्तीन समस्या एवं समस्या ग्रस्त क्षेत्र
 - 14.4.2.1 अरब—इजरायल संघर्ष एवं युद्ध के प्रमुख बिन्दु
 - 14.4.2.2 वर्तमान में जारी इजरायल—हमास संघर्ष
 - 14.4.2.3 इजरायल—फिलिस्तीन संघर्ष से जुड़े प्रमुख स्थल
 - 14.4.2.4 इजरायल और फिलिस्तीन की माँगे
 - 14.4.2.5 इजरायल—फिलिस्तीन संघर्ष के समाधान के मार्ग
 - 14.4.3 रूस—यूक्रेन युद्ध और समस्या ग्रस्त क्षेत्र
 - 14.4.3.1 रूस—यूक्रेन संघर्ष के कारण
 - 14.4.3.2 मानवीय प्रभाव
- 14.5 सारांश
- 14.6 शब्द सूची

- 14.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें
- 14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

14.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल के पाठ्यक्रम की यह 14वीं इकाई है। इस इकाई में आप विश्व के प्रमुख समस्याग्रस्त क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे। वर्तमान में तीन प्रमुख क्षेत्र ऐसे हैं जो वैश्विक जगत के लिए सिर दर्द बने हुए हैं। ये क्षेत्र हैं— द0प0 एशिया जिसके समस्याग्रस्त होने का मूल कारण है वहाँ के तेल क्षेत्र एवं खनिज तेल राजनीति; इजराएल—फिलिस्तीन क्षेत्र जो 1948 से युद्धरत है और रूस—यूक्रेन क्षेत्र जो 2014 से समस्याग्रस्त है। आप इस इकाई में उन आधारभूत कारकों का भी अध्ययन करेंगे जो विश्व के किसी भी भू-राजनीतिक क्षेत्र को समस्याग्रस्त कर सकते हैं।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

1. समस्याओं की राजनीतिक भौगोलिक पृष्ठभूमि से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
2. समस्याग्रस्त क्षेत्रों के अभ्युदय के आधारभूत कारकों को समझाना।
3. विद्यार्थियों को स्पष्ट करना कि किस तरह से कोई खनिज वैश्विक समस्या का कारण बन सकता है।
4. रूस—यूक्रेन युद्ध के मूल कारणों को समझाना।

14.2 राजनीतिक-भौगोलिक पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं सदी की समाप्ति के साथ ही पृथ्वी के सभी क्षेत्रों की खोज लगभग पूरी हो चुकी थी और लगभग सम्पूर्ण पृथ्वी (अण्टार्कटिक महाद्वीप को छोड़कर) विभिन्न देशों के अधिकार क्षेत्र में या तो प्रभुता सम्पन्न राज्यों के रूप में या फिर उपनिवेशों के रूप में आ गई थी। बीसवीं सदी के प्रारम्भ के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के बीच उनकी सरकारों के स्तर पर पारस्परिक वैचारिक आदान-प्रदान प्रारम्भ हो चुका था तथा राज्य प्रगति को ध्यान में रखकर आर्थिक और सांस्कृतिक समझौते बढ़ने लगे थे। परन्तु ये समझौते प्रायः द्विपक्षीय ही थे, अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति के नहीं थे। बहुपक्षीय सम्बन्धों की नींव प्रथम विश्वयुद्ध के साथ ही पड़ी। 1920 में 'लीग ऑफ नेशन्स' की स्थापना इस दिशा में पहला कदम था और इसी के साथ ही द्विपक्षीय राजनयिक सम्बन्धों के आधार पर आपसी 'समस्याओं एवं विवादों' का समाधान करने की पुरानी प्रणाली का अवसान हो गया।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मात्र यूरोप केन्द्रित राजनीति न रहकर राष्ट्रीय मूल्यों एवं उद्देश्यों की राजनीति बन गई थी कारण कि संयुक्त राज्य अमेरिका व जापान जैसे यूरोप के बाहर के कुछ देश इसके सक्रिय भागीदार बन गए थे। पुरानी समस्याओं का स्वरूप बदलने लगा था और नई समस्याएं जन्म लेने लगी थीं। द्वितीय विश्व युद्ध अर्थात् 1945 के बाद द्विध्रुवीय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शुरुआत हुई। एक ध्रुव 'पूँजीवादी राष्ट्रवाद' था। जिसका अगुवा अब प0 यूरोप नहीं बल्कि उत्तरी अमेरिका था; और दूसरा ध्रुव 'साम्यवादी राष्ट्रवाद' था जिसका अगुवा सोवियत संघ था। इन दोनों शक्ति ध्रुवों के बीच उत्पन्न सामरिक प्रतिस्पर्धा और शीत युद्ध ने यह तो सुनिश्चित कर दिया कि अब अगला कोई विश्वयुद्ध निकट भविष्य में तो संभव नहीं होगा, परन्तु प्रलय की संभावना हर समय विद्यमान थी। टी0आर0गर के अनुसार 'युद्ध अब मात्र अविकसित विश्व की घटना बन गई थी। अब यह सामान्य धारणा बन गई कि प्रत्येक देश की सीमाएं व्यावहारिक स्तर पर स्थाई सीमाएं हैं तथा इनके किसी प्रकार के अतिक्रमण का परिणाम विश्व राजनीति के दोनों प्रतिस्पर्धी ध्रुवों के बीच संघर्ष का कारण बन सकता है' (गर, 1994)। गर की यह सोच सही साबित हुई और दोनों शक्ति ध्रुवों के बीच सामरिक प्रतिस्पर्धा ने कई संघर्षों, विवादों एवं समस्याओं को जन्म दिया। इनमें सबसे प्रमुख था 1948 में द0प0 एशिया में फिलिस्तीनियों की छाती पर 'इजरायल' देश का अभ्युदय और 'इजरायल—फिलिस्तीन समस्या' का जन्म। वस्तुतः 1945 के बाद विश्व राजनीति का स्वरूप बदल गया। कल तक 'महान' शक्तियों के रूप में मान्य ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड जर्मनी जैसे देश अब मध्यम महत्व वाले लघु आकार के देश बन गए थे। पूँजीवादी

लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले पश्चिमी देशों का नेतृत्व अब ग्रेट बिट्रेन के हाथ से निकलकर सं0रा0 अ0 के पास चला गया। कई दशकों तक चले शीत युद्ध के बाद 1991 में सोवियत संघ में प्रयुक्त ग्लासनोस्त और पेरोस्ट्रोइका (खुलापन एवं पुनर्चना) नीतियों के कारण सोवियत संघ का विघटन हो गया। यही कारण है कि अनेक युद्धों, संघर्षों, विवादों एवं समस्याओं को जन्म देने वाले आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास को तीन प्रमुख कालखण्डों में विभक्त किया गया है—

1. 1914 से 1945 का काल खण्डों में विभक्त किया गया है – यह काल खण्ड वास्तव में यूरोपीय संघर्ष का युग था। इसी काल खण्ड में 1920 में लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना हुई और जिनेवा को इसका मुख्यालय बनाया गया। व्यावहारिक स्तर पर यह वास्तव में केवल यूरोपीय राष्ट्रों का संघ था। इसके सारे सदस्य यूरोपीय थे तथा इसकी स्थापना इन्हीं देशों में आपसी तालमेल बैठाने एवं तालमेल के अभाव में उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए की गई थी। 1945 में सं0रा0 अमेरिका ने लीग की सदस्यता स्वीकार करने से मना कर दिया था।

2. 1945 से 1990 के बीच का कालखण्ड – इस काल खण्ड को शीत युद्ध युग का नाम दिया गया है। इस काल खण्ड में विश्व राजनीति के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र प0 यूरोप से सं0 रा0 अमेरिका स्थानांतरित हो गया और संयुक्त राष्ट्र कार्यालय जिनेवा से हटकर न्यूयार्क स्थानांतरित हो गया। यह वह काल खण्ड था जब अनेक उपनिवेश परतंत्रता से मुक्त होकर स्वतंत्र राष्ट्र बने। भारत, पाकिस्तान, म्यांमार ऐसे ही देश थे। यही कारण था कि 1950 के बाद विश्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या द्रुतगति से बढ़ने लगी शीत युद्ध के इस युग में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कुछ विकसित देशों की क्रिया स्थली मात्र न रहकर अपेक्षाकृत एक मुक्त बहुराष्ट्रीय राजनीति के इस युग में आर्थिक दृष्टि से विकसित देश दो खेमों में बँट गए—

प्रथम— पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाले उदार जनतांत्रिक राजनीति के पक्षधर पश्चिमी यूरोपीय और उत्तरी अमेरिकी देश, जिनका नेतृत्व अमेरिका के हाथ में था। इस गुट को प्रथम विश्व (First World) कहा गया।

द्वितीय— साम्यवादी राजनीतिक और मार्क्सवादी आर्थिक दर्शन के पक्षधर हृदय स्थलीय सोवियत संघ, उसके पूर्वी यूरोपीय तथा अन्य सहयोगी देश इसका नेतृत्व सोवियत संघ के पास था। इस गुट को द्वितीय विश्व (Second World) कहा गया।

विकासशील और अविकसित अर्थव्यवस्था वाले नवोदित राज्यों का एवं विशाल समूह भी था जो दोनों प्रधान गुटों से समान दूरी बनाए रखना चाहता था। यह गुटनिरपेक्ष समूह था जिसका संयुक्त नेतृत्व भारत, मिश्र और यूगोस्लाविया के पास था। इस गुट निरपेक्ष समूह को तृतीय विश्व (Therd World) रह गया।

दो प्रधान गुटों की अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति और शीतयुद्ध का परिणाम यह हुआ कि इस काल खण्ड में तृतीय विश्व भी जमीन पर अनेक क्षेत्र समस्या ग्रस्त हुए और यहाँ तक उनमें पारस्परिक युद्ध हुए जैसे भारत—चीन युद्ध (1962) अनेक क्षेत्र समस्या भारत—पाकिस्तान युद्ध (1965 एवं 1971), खाड़ी युद्ध, सं0राज्य— वियतनाम युद्ध एवं सं0राज्य ईराक युद्ध तथा अफगानिस्तान संकट आदि इस काल खण्ड ने तृतीय विश्व के कई क्षेत्रों को ऐसे समस्या ग्रस्त क्षेत्रों के रूप में बदल दिया जो आज भी ज्वलंत रूप धारण किए हुए हैं।

1990 से अब तक का काल खंड – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इस काल खण्ड में अनेक भू—राजनीतिक परिवर्तन हुए, जैसे—1990 के बाद शीत युद्ध का समापन, 1991 में सोवियत संघ का विघटन एवं परमाणु शक्ति संपन्न नए गणराज्यों का अभ्युदय, जर्मनी का पुनर् एकीकरण, पूर्वी यूरोप से सोवियत नियंत्रण का समापन, चीन का विश्व शक्ति के रूप में अभ्युदय तथा भारत, ब्राजील, जापान एवं द0 अफ्रीका का प्रथम श्रेणी के प्रादेशिक शक्ति के रूप में उदय आदि। इन तमाम परिवर्तनों और उपलब्धियों के बावजूद भी विश्व आज भी उनके मानव कृत समस्याओं से ग्रस्त है जिनमें साम्प्रदायिक व जातीय संघर्ष, सत्ता संघर्ष, सीमा विवाद, राज्य अस्तित्व आदि के विवाद सम्मिलित हैं। वस्तुतः राजनीतिक—आर्थिक विकास के इस प्रति स्पर्धात्मक युग में जब व्यावहारिक स्तर पर विश्व राजनीतिक एक बहु नाभीय व्यवस्था बन गई है और सामरिक मुद्दों के स्थान पर आर्थिक व्यापारिक मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं, तब भी विश्व के अनेक राज्य ऐसे हैं जो राजनीतिक— आर्थिक महात्वाकांक्षा से बेहद ग्रस्त हैं, अपने प्रमुख विस्तार की उनमें जबरदस्त ललक है, अपना राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की उनमें अदम्य इच्छा है। इन्हीं सबका परिणाम है कि युद्ध भड़क उठते हैं, अपार जन—धन की हानि होती है। नगर व आवासीय प्रखण्ड खण्डहर के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इन समस्याओं के मूल में केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति और उन पर आधिपत्य बनाए रखने या प्राप्त करने की प्रवृत्ति भी उत्तरदायी रही है।

14.3 समस्या ग्रस्त क्षेत्रों के अभ्युदय के आधारभूत कारक

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय भू-राजनीतिक-आर्थिक परिदृश्य में आज तक उद्भूत विश्व के जो भी समस्या ग्रस्त क्षेत्र रहे हैं या अब भी हैं, उनके उत्पन्न होने के लिए निम्नलिखित कारकों को आधार माना जा सकता है।—

14.3.1 प्रतिस्पर्धी एवं साम्राज्यवादी राजनीतिक विचारधारा —

विश्व में चीन (जनवादी गणतंत्र) जैसे कई राष्ट्र हैं जो प्रतिस्पर्धी राजनीतिक विचार धारा से पीड़ित रहते हैं। उनके अन्दर अपने राज्य के क्षेत्रीय विस्तार की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि वे पड़ोसी राज्यों के लिए सदैव एक संकट के रूप में बने रहते हैं। राजनीतिक प्रमुख एवं राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की इच्छा उन्हें साम्राज्यवादी राजनीतिक सैनिक कार्यवाहियों के लिए सदैव प्रेरित करती रहती है जिससे पड़ोसी राज्य समस्याग्रस्त हो जाते हैं। चीन ऐसे राज्यों का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है जिसने सीमावर्ती देश तिब्बत का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया और सीमा विवादों को लेकर भारत के लिए एक स्थाई सिरदर्द बना हुआ है।

14.3.2 केन्द्रीय शासन पर बलात् कब्जा करने की प्रवृत्ति —

लोक तन्त्रात्मक पद्धति द्वारा राज्य संचालन विश्व में सर्वोत्तम माना जाता है कारण कि कल्याण परक राज्य (Welfare State) की कल्पना लोक तन्त्रात्मक पद्धति के शासन से ही साकार होती है कारण कि इसमें जनता को सत्ता की भागीदारी प्राप्त होती है। लेकिन कुछ देशों में सैनिक तानाशाही द्वारा प्रजातन्त्रात्मक सरकारों का तख्ता पलट व केन्द्रीय शासन पर बलात् कब्जा करने की प्रवृत्ति से अनेक देश समस्या ग्रस्त हुए हैं। म्यांमार, पाकिस्तान, नाइजर, नाइजीरिया, ईराक, अफगानिस्तान आदि देश इस समस्या से प्रभावित रहे हैं।

14.3.3 अलगाववाद एवं आतंकवाद —

विश्व के समस्याग्रस्त क्षेत्रों के तमाम आधार भूत कारकों में अलगाववाद एवं आतंकवाद भी अपनी प्रभावी भूमिका रखते हैं। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में अलगाववादी गतिविधियाँ एक बड़ा समस्या है। इस समस्या का मुख्य कारण आर्थिक असंतुलन एवं बांग्लादेश से धुसपैठ कर आई मुस्लिम जनसंख्या है। यहाँ अनेक उग्रवादी संगठन अलगाव गति-विधियों का सशस्त्र संचालन करते हैं। जिससे राज्य में अस्थिरता उत्पन्न हो और भय का वातावरण व्याप्त हो। इसमें नागरिकों की हत्या, बांग्लादेश व पाकिस्तान के हाथ होने के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुस्लिम आतंकवाद विश्व के अनेक देशों के लिए समस्या बन चुका है। भारत सीमापार मुस्लिम आतंकवाद से सर्वाधिक पीड़ित राज्य है। पाकिस्तान का प्रत्यक्ष एवं चीन, अफगानिस्तान का परोक्ष हाथ इस समस्या की पृष्ठभूमि में है। 1980 के दशक में आतंकवाद के प्रारंभ से अब तक हजारों लोगों की जाने जा चुकी है, अनेक परिवार बिखर और उजड़ गए हैं और करोड़ों रूप की सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है।

14.3.4 जातीय संघर्ष एवं साम्प्रदायिकता —

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में प्रजातिगत एवं धार्मिक विविधता विद्यमान है। ये प्रजातीय एवं धार्मिक समूह अपने जातीय एवं धार्मिक हितों की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि उनमें जाति एवं धर्म को लेकर पारस्परिक सह अस्तित्व एवं सहिष्णुता का अभाव होता जा रहा है। परिणामतः उनमें जातीय एवं साम्प्रदायिक संघर्ष पनपते हैं और कालांतर में वे जाति एवं सम्प्रदाय के आधार पर एक अलग राज्य व स्वायत्तता की माँग करते हैं। इसके लिए वे विद्रोही गतिविधियों का सहारा लेते हैं, यहाँ तक कि वे हिंसात्मक आंदोलन करने राज्य में अस्थिरता पैदा करते हैं। परिणामतः सम्बन्धित राज्यों में समस्याग्रस्त क्षेत्रों का जन्म होता है। श्रीलंका का तमिल-सिंहली संघर्ष, मुस्लिम राज्यों का सिया-सुनी संघर्ष, अफगानिस्तान कुर्द संघर्ष ऐसी ही जातीय एवं साम्प्रदायिक संघर्ष के उदाहरण हैं।

14.3.5 सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता —

सांस्कृतिक विविधता एवं भाषाई आधार पर भी अनेक राज्यों में आंदोलन हुए हैं और क्षेत्रीय समस्याएँ पैदा हुई हैं। भारत इसका बेहतरीन उदाहरण है, जहाँ भाषाई आधार पर 1956 में 14 राज्य एवं 6 केन्द्र शासित प्रदेशों का गठन किया गया। 1960 में बम्बई को भाषाई आधार पर महाराष्ट्र एवं गुजरात में विभाजित किया गया।

14.3.7 वैश्विक महाशक्तियों की दखलंदाजी –

जब वैश्विक महाशक्तियाँ विभिन्न देशों की समस्याओं में अनावश्यक हस्तक्षेप एवं दखलंदाजी करती हैं तो समस्याग्रस्त क्षेत्रों का जन्म होता है। वस्तुतः ये शक्तियाँ अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए जब विकासशील देशों की समस्याओं में मध्यस्थ की भूमिका निभाने लगती हैं या किसी राज्य के लिए एक पक्षीय होकर वीटों पावर इस्तेमाल करती हैं तो समस्याएँ सुलझने की बजाय उलझ जाती हैं। इसके अतिरिक्त अपने उद्देश्य की पूर्ति आक्रामक प्रवृत्ति वाले देशों को आर्थिक व सैन्य सहायता उपलब्ध कराती हैं, तो अनेक क्षेत्रीय समस्याएँ पैदा होती हैं और सन्दर्भित क्षेत्र धीरे-धीरे उस राज्य के लिए समस्याग्रस्त क्षेत्र बन जाते हैं। चीन और सं0राज्य अमेरिका का पकिस्तान को आर्थिक और सैन्य सहायता देना उस तथ्य का स्पष्ट उदाहरण है जिसके बलबूते पर वह भारत से दो युद्ध (1965 एवं 1971) लड़ चुका है, कारगिल में संघर्ष कर चुका है और भारत के जम्मू-कश्मीर क्षेत्र को सीमापार आतंकवाद से ग्रस्त कर रखा है। मध्यपूर्व देशों (सीरिया, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान) में ऐसे कई संघर्ष सं0 रा0 अमेरिका व रूस भी शह पर सम्पन्न हुए हैं और आज भी ये राज्य समस्याग्रस्त बने हुए हैं।

14.3.8 तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति –

तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति की क्षेत्रीय समस्याओं को जन्म दे सकती है, खास करके तब, जब इसका प्रयोग नरसंहार एवं विघटनकारी कार्यों के लिए होता है। आतंकवाद गतिविधियाँ ऐसी ही तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति के बलबूते पर बेहद विनाशकारी सिद्ध होती हैं। अल कायदा द्वारा अमेरिका पर आतंकी हमला ऐसे ही घातक विनाश का उदाहरण है। जापान के नागासाकी और हिरोशिमा पर द्वितीय विश्व युद्ध में परमाणु बम हमले का परिणाम है कि वहाँ हजारों लोग मारे गए और आज भी वहाँ विकलांग बच्चे पैदा होते हैं।

14.3.9 विश्व संसाधनों की राजनीति –

संसाधनों पर बढ़ते जनसंख्या के दबाव और नई आर्थिक शक्तियों के उदय से भूमण्डलीय प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। यद्यपि कि प्राचीन काल से ही संसाधनों की प्राप्ति हेतु युद्ध होते रहे हैं, लेकिन आज यह प्रतिस्पर्धा कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। सं0 राज्य अमेरिका एवं रूस की नजर मध्य एशिया के खनिज तेल पर है। सं0 राज्य अमेरिका एवं रूस की नजर मध्य एशिया के खनिज तेल पर है। पिछले दशकों में अफगानिस्तान में अमेरिका और रूस की उपस्थिति, ईराक-अमेरिका युद्ध इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं। कई क्षेत्रों के खनिज संसाधनों पर प्रभुत्व को लेकर चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका में परस्पर विवाद व टकराव चलता रहता है, परिणामतः वह क्षेत्र समस्याग्रस्त हो गए हैं। संसाधनों में धनी लैटिन अमेरिका पर संयुक्त राज्य अमेरिका लगातार भारी प्रभाव डाल रहा है। इन सब कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन राजनीतिक को नई दिशा मिली है और नए समस्याग्रस्त क्षेत्रों का अभ्युदय हुआ है। अण्टार्कटिक महाद्वीप संसाधनों पर आधिपत्य को लेकर भविष्य का समस्याग्रस्त क्षेत्र बनेगा-इस तथ्य को लेकर कोई संदेह नहीं है।

14.3.10 संयुक्त राष्ट्र संघ की अप्रभावी भूमिका –

अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा स्थापित करना, मानवाधिकारों को बढ़ावा देना, सामाजिक एवं आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना, पर्यावरण का संरक्षण करना ताकि सशस्त्र संघर्ष के समय लोकोपकारी सहायता प्रदान जैसे उद्देश्यों को लेकर 24 अक्टूबर 1945 को जन्मा संयुक्त राष्ट्र संघ वर्तमान में प्रायः अप्रभावी भूमिका में दिखाई पड़ता है। इसके विभिन्न घटकों (जैसे-महासभा, सुरक्षा परिषद; आर्थिक एवं सामाजिक परिषद, सचिवालय, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय एवं न्यासी परिषद) में बड़ी शक्तियों का ही वर्चस्व है जो अपने ढंग से किसी भी राज्य की क्षेत्रीय समस्या को हल करने का प्रयत्न करती है। परिणामतः विश्व के अनेक राज्यों की क्षेत्रीय समस्याएँ यथावत् हैं। वस्तुतः समस्याग्रस्त क्षेत्रों की समस्याओं के पूर्ण निदान में संयुक्त संघ की भूमिका उसके उद्देश्य के अनुरूप नहीं रह गई है।

14.4 विश्व के प्रमुख समस्याग्रस्त क्षेत्र

विश्व के सबसे प्रमुख समस्याग्रस्त क्षेत्र है दक्षिण-पश्चिम एशिया।

14.4.1 दक्षिण-पश्चिम एशिया : समस्याग्रस्त क्षेत्र -

परिचय- विश्व की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र एवं वर्तमान वैश्विक राजनीतिक जगत में अति महत्वपूर्ण दक्षिण-पश्चिम एशिया एक ऐसा विशिष्ट भौगोलिक प्रदेश है जहाँ तीन महाद्वीपों- एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप का सम्मिलन होता है। मोटे तौर पर छः सागरों (अरब सागर, फारस की खाड़ी, लाल सागर, भूमध्यसागर, कालासागर एवं कैस्पियन सागर) से घिरा यह भौगोलिक प्रदेश (अक्षांशीय विस्तार- $13^{\circ} 30'$ अक्षांश से $45^{\circ} 30'$ अक्षांश तक; देशान्तरीय विस्तार 26° पूर्वी देशांतर से 63° पूर्वी देशांतर तक) लगभग 64.62 लाख वर्ग किमी० क्षेत्र में विस्तृत हैं द0प0 एशिया के सम्पूर्ण परिक्षेत्र में कुल 18 (ओमान, यमन, सउदी अरब, कुवैत, ईराक, ईरान, जार्डन, इजरायल, लेबनान, सीरिया, साइप्रस, टर्की, आर्मेनिया, अजरबैजान, जार्जिया, बहरीन, कतर एवं संयुक्त अरब अमीरात) देश आते हैं (चित्र संख्या- 14.1) इनमें ईरान जनसंख्या के मामले में एवं सउदी अरब क्षेत्रफल के मामले में सबसे बड़ा राज्य है। प्राचीन बेबीलोनियन, सुमेरियन और नील घाटी की सभ्यताओं का यहाँ अस्तित्व रहा है, इसलिए इसे 'सभ्यता का उद्भव क्षेत्र' (Cradle land of Civilization) भी कहा जाता है। इस क्षेत्र को कई नामों से जाना जाता है, यथा-पश्चिम एशिया (West Asia), द0प0 एशिया (South - West Asia), मध्यपूर्व (Middle East), अरब जगत (Arab World), सांस्कृतिक मरुस्थल (Classical Desert), अतिरिक्त पूर्व (Nearer East) एवं निकट पूर्व (Near East)।

भौगोलिक, प्रजातीय एवं सांस्कृतिक परिवेश -

द0प0 एशिया में पर्याप्त भौगोलिक विविधता है। पैलेस्टाइन भी दरार घाटी तथा रैस्पियन सागर के तटीय क्षेत्र समुद्र तल से नीचे हैं। दूसरी ओर उच्च मोड़दार पर्वत श्रेणियाँ हैं। जिनकी ऊँचाई 900 मीटर तक पहुँच गई है। इन पर्वत श्रेणियों के मध्य अनातोलिया और ईरान के उच्च पठार तथा दक्षिण एवं द0प0 क्षेत्र में प्राचीन अरब का पठार स्थित है। जलवायु की दृष्टि से यह उपोष्ण जलवायु का क्षेत्र है, लेकिन पर्वत श्रेणियों की उपस्थिति एवं भूमध्य सागर के कारण जलवायु में विविधता है। जनसंख्या का वितरण यहाँ अधिक असमान है। जनसंख्या का प्रजातीय स्वरूप राजनीतिक दृष्टि से न केवल महत्वपूर्ण है, बल्कि राजनीतिक समस्याओं का प्रमुख कारण भी है। यहाँ चार प्रमुख प्रजातियाँ हैं- ईरानी प्रजाति (जो ईरानी अफगान शाखा है), अरब प्रजाति (जो भूमध्य सागरीय प्रजाति की शाखा है), तुर्क प्रजाति (जो अनातोलिया के क्षेत्रों में है), यहूदी प्रजाति (जो पैलेस्टाइन में रहे हैं)। चूँकि द0प0 एशिया पाश्चात्य और इस्लामी तथा यहूदी संस्कृतियों का मिलन स्थल है, इसलिए यह विविध प्रजातियों एवं संस्कृतियों के मध्य संघर्ष का भी क्षेत्र है।

सामरिक एवं भू-राजनीतिक महत्व -

वैश्विक भू-राजनीतिक में द0प0 एशिया का सामरिक महत्व है। पुरानी दुनिया के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के केन्द्र में स्थित होने के कारण इस क्षेत्र का ईसा पूर्व के वर्षों से ही भू-राजनीतिक महत्व भी रहा है और विभिन्न भू-मध्य सागर तटवर्ती और एशियाई सभ्यताओं के बीच सम्पर्क क्षेत्र के रूप में भी कार्य करता रहा है। विभिन्न राजनीतिक एवं कूटनीतिक कार्यकलाप इसी क्षेत्र से दक्षिणी एशियाई भागों को प्रभावित करते रहे हैं। लाल सागर एवं भू-मध्य सागर को जोड़ने वाली स्वेज नहर के बन जाने से अन्तर्राष्ट्रीय नौ परिवहन में इस क्षेत्र का विशेष स्थान है। द0प0 एशिया के सामरिक एवं भू-राजनीतिक महत्व को ध्यान में ही रखकर औपनिवेशिक काल में ब्रिटेन ने इस क्षेत्र के पूर्व और पश्चिम के अनेक क्षेत्रों पर अपने आधार केन्द्र स्थापित किए थे। उपनिवेशवादी युग की समाप्ति के बाद परिवर्तित समय में सं० रा० अमेरिका ने ब्रिटेन की उसी भूमिका को अपना लिया। परिवर्तित होती हुई वैश्विक अर्थ व्यवस्था के सन्दर्भ में दक्षिण-पश्चिम एशिया पश्चिम के विकसित औद्योगिक राज्यों और दक्षिण तथा द0प0 एशिया के विस्तृत बाजार क्षेत्रों के बीच में स्थित है। एक तरह से यदि देखा जाय तो वैश्विक व्यापारिक जीवन रेखा इसी क्षेत्र से होकर गुजरती है।

यदि एच०जे० मैकिन्डर, एन०जे० स्पाइक मैन एवं एस०बी० कोहेन की भू-राजनीतिक दृष्टि से द०-प० एशिया के महत्व का आकलन करें तो मैकिन्डर ने इसे आन्तरिक अर्धचन्द्राकार (Inner Crescent) और स्पाइक मैन ने इसे परिधीय क्षेत्र (Rimland) का भू-भाग बताया है जबकि कोहेन ने इसे विखराव मेखला (Shatter Belt) के तौर पर चिन्हित किया है। संभवतः यही कारण है कि यह क्षेत्र शुरू से ही वैश्विक महाशक्तियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है।

4.4.1.1 दक्षिण- पश्चिम एशिया के खनिज तेल भंडार अरब जगत की खनिज तेल राजनीति और सं0रा0 अमेरिका –

द0प0 एशिया को अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र और समस्या ग्रस्त क्षेत्र बनाने का क्षेत्र खनिज तेल को जाता है। वैश्विक महाशक्ति सं0रा0 अमेरिका की धड़कन जिस तेल से संचालित होती है, उसका 57% विदेशों से आता है। इसमें अरब क्षेत्र का अंशदान 24 प्रतिशत है। इसलिए अमेरिकी कूटनीति का मूल स्रोत तेल की धार में ढूँढा जाना स्वाभाविक है। द0प0 एशियाई देश विश्व के कुल तेल निर्यात का 25 प्रतिशत ही उत्पादन करते हैं। लेकिन वहाँ धरती के नीचे पूरे तेल भंडार का दो तिहाई से तीन चौथाई तक होने का अनुमान है। इसलिए भविष्य के ऊर्जा स्रोत की दृष्टि से भी द0प0 एशिया महत्वपूर्ण है। परम्परागत मान्यता यही है कि अमेरिका की अरबनीति पश्चिम को उचित मूल्य पर निर्वाह तेल आपूर्ति सुनिश्चित करने पर केन्द्रित है। सउदी अरब इसलिए अहम है कि पूरे तेल भंडार का एक चौथाई उसके पास है एवं वह तेल मूल्यों को एक सीमा के भीतर रखने की संतुलनकारी भूमिका निभाता है। तेल की वैश्विक माँग सीमा के भीतर रखने की संतुलनकारी भूमिका निभाता है। तेल की वैश्विक माँग 1.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। भारत और चीन में यह वृद्धि क्रमशः 2.5 तथा 6.2 प्रतिशत है जब कि मध्य-पूर्व में 5 प्रतिशत वस्तुतः पश्चिमी देशों की कूटनीति से यह पुरानी शिकायत रही है कि वह उनके बहुत संकीर्ण स्वार्थों से जुड़ी रहती है। उनका एक प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि मध्य-पूर्व के विशाल तेल व गैस संसाधनों पर अपना नियंत्रण जितना हो सके उतना बढ़ाया जाय/ईराक, ईरान, सीरिया, कुवैत, लेबनान, बहरीन के प्रति अपनाई जाने वाली पश्चिमी देशों की नीतियाँ कहीं इस सोच से प्रभावित रही हैं।

ध्यान से देखे तो मध्य-पूर्व के शासकों के अन्दर एक ऐसी प्रवृत्ति मौजूद है जो कुछ हद तक तेल कीमतों को प्रभावित करती है। अरब-इजरायल संघर्ष के दौरान जब तेल संकट उत्पन्न हुआ तो यह बात रखी गई, कि पश्चिम को कम से कम कीमतें देकर प्रतिवर्ष पाँच प्रतिशत ऊर्जा की माँग को नहीं बढ़ाना चाहिए। उन्होंने कहा था कि यह कैसे संभव हो सकता है कि आप हमें गेहूँ, चावल और खाद्यान्न संबंधी अन्य चीजें 300 प्रतिशत अधिक मूल्य पर बेंचे और हमारा सस्ता तेल खरीद कर पुनः इसे शोधित कर हमें ही 100 गुना अधिक मूल्य पर बेंच दें। यह तभी संभव है जब आप तेल को भी अधिक मूल्य पर खरीदें, कम से कम 10 गुने मूल्य पर। इसी मानसिकता के चलते ओपेक (OPEC) देशों ने तेल उत्पादन पर एकाधिकारवाद कायम कर क्षमता से कम उत्पादन करने और निर्यात करने को ओपेक देशों को निर्देश दे रखा है ताकि लगातार बढ़ रही माँग कम और कम आपूर्ति के आधार पर मूल्यों को अपने पक्ष में तो किया ही जा सके, साथ ही वैश्विक कूटनीति को भी अपने पक्ष में खड़ा करने में सफलता पाई जाए इस प्रकार से ओपेक देशों ने अपनी उत्पादन क्षमता से कम कोटा निर्धारित कर तेल आपूर्ति में कमी लाकर मूल्य वृद्धि का प्रयास किया जो अभी तक जारी है।

4.4.1.2 अरब जगत के खनिज तेल पर अमेरिकी वर्चस्व का मूल कारण –

यह एक बात और ध्यान देने योग्य है कि द0प0 एशिया के अरब देशों में 'मस्जिद, मदरसा और हज' ये तीन व्यवस्थाएँ तानाशाही और शरीयत वाली सत्ता की ढाल रही हैं। तानाशाही और शरीयत वाली सत्ता चाहती है कि अपनी आबादी के लिए 'मस्जिद, मदरसा और हज' की चाक-चौबंद व्यवस्था कर देने मात्र से उनके खिलाफ आम व्यक्ति की आवाज नहीं उठेगी। जब जनता में आक्रोश नहीं होगा तो फिर सत्ता को कहीं से चुनौती भी नहीं मिलेगी अरब लीग पर ध्यान दे तो वहाँ कहीं पर तानाशाही जो कहीं जन्मजात राजशाही व्यवस्था है। तानाशाही व राजशाही दोनों प्रकार की सत्ता व्यवस्थाओं ने मस्जिद-मदरसा और हज- की मानसिकता को तुष्ट करने के लिए अपनी सत्ता और आर्थिक शक्ति झोकी। जहाँ पर शरीयत की अराजकता की माँग नहीं थी, वहाँ पर भी पूर्ण शरीयत की व्यवस्था लागू की गई और लोक तांत्रिक व्यवस्था के वृक्ष को पनपने ही नहीं दिया गया। यहाँ तक कि वहाँ आधुनिक समाज की सोच और जरूरत तक को प्रतिबंधित किया गया। की अराजक और खतरनाक व्याख्या को भी रोकने की कोशिश नहीं हुई। तानाशाही और जन्मजात राजशाही सत्ता को यह मालूम है कि अगर शरीयत की अराजक या खतरनाक व्यवस्था को रोकने की कोशिश हुई तो कट्टरवादी ताकतें तूफान खड़ा कर सकती हैं। वस्तुतः अमेरिका यूरोप की मध्य-पूर्व के तेल बाजार पर लूटवादी व्यवस्था इसीलिए कायम हो सकी क्योंकि अरबलीग तानाशाही-राजशाही और व्यवस्था में इतने अंदर तक धँसे हुए हैं कि उन्हें विज्ञान या आधुनिक बाजार व्यवस्थायी दक्षता हासिल ही नहीं हो सकती उदाहरण के लिए अरब लीग में खनिज तेल और गैस उत्खनन ही नहीं, पूरी व्यवस्था अमेरिका-यूरोप की बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में है। अगर अरब जगत ने विज्ञान और आधुनिक बाजार व्यवस्था पर ध्यान देते हुए विशेष दक्षता हासिल की होती, तो आज अरब लीग

यूरोप-अमेरिका से कही अधिक विकसित और शक्ति सम्पन्न होता।

14.4.1.3 सं० रा० अमेरिका की तेल अधिकार पर हवस और अरब जगत के युद्ध —

यदि २०५० एशिया के अन्य देशों में सम्पन्न हुए युद्धों एवं संघर्षों को देखें तो उसके भी पीछे तेल की अन्य देशों में सम्पन्न हुए युद्धों एवं संघर्षों को देखें तो उसके भी पीछे तेल की ही राजनीति है। ईरान की गलती यही है कि उसके पास तेल व प्राकृतिक गैस के भंडार हैं। ईरान के साथ अमेरिका का बैर वर्ष १९५२-५३ में ही हो गया था। ईरान के तेल के कुओं पर ब्रिटेन की बड़ी तेल कम्पनियों का अधिकार था और अमेरिका ने सउदी अरब के बादशाह से संधि कर ली थी कि उस देश के तेल पर अमेरिकी कंपनियों का प्रभाव रहेगा। उस समय शीत युद्ध के पश्चिमी ब्लाक का नेता वे संरक्षक अमेरिका ही था। जब ईरान के प्रगतिशील प्रधानमंत्री मुहम्मद मसादिक ने तेल पर ब्रिटिश कम्पनियों का कब्जा हटाकर उसका राष्ट्रीय करण किया तब अमेरिका खुफिया एजेंसी सीआईए ने उनका तख्ता पलट और हत्या करा दी। जनता के असंतोष को शांत करने के लिए अमेरिका ने वहाँ के राजा रजाशाह पहलवी को बहुत महत्व और धन दिया। वर्ष १९७९-८० में रजाशाह पहलवी— के विरोध में क्रांति हो गई। पहलवी जैसा वफादार सत्ता से हटा दिया जाय, इसे अमेरिका कैसे सहता। उसने सद्दाम हुसैन को मदद देकर ईराक का शासक बनवाया और यह शर्त रखी कि वह ईरान से युद्ध करें। ईराक-ईरान युद्ध आठ वर्ष तक चला, जिसमें ईराक को अमेरिका व उसके सहयोगी फ्रांस आदि देशों ने हथियारों व धन की पूरी सहायता दी। ईराक के शासक सद्दाम हुसैन ने भी अमेरिका से इस बात की सजा पाई कि उसने तेल को डालर की मुद्रा में न बेचकर यूरो में बेचना शुरू कर दिया था। उसे ज्यादा दाम मिलने लगे। लेकिन सद्दाम हुसैन ने इस पूँजी को पेट्रो डालर नहीं बनवाया। इससे डालर के दाम यूरो की तुलना में घटने लगे। इस प्रकार ईरान, ईराक से अमेरिका की शत्रुता के कई कारण हैं। अलबत्ता उन सबकी जड़ में तेल और प्राकृतिक गैस है। अफगानिस्तान में तालिबान को कुचलना भी इसी मूल कारण से जुड़ा हुआ है। आज इसी तेल कूटनीति की वजह से अमेरिका के भीतर पेट्रो डालर इतनी मात्रा में आ रहा है कि इसका प्रभाव अमेरिकी समाज में साफ देखा जा सकता है।

वस्तुतः यूरोपीय संघ और जापान के पास खनिज तेल और ऊर्जा के भंडार नहीं हैं, लेकिन वे अमेरिकी उद्योगों व अर्थव्यवस्था को चुनौती देने में सक्षम हैं। जापान को ईरान से तेल मिलता है और इसका भुगतान जापानी मुद्रा येन में होता है, तब ईरान को अमेरिका से दण्ड क्यों नहीं मिलना चाहिए। यूरोपीय संघ को तोड़ने के लिए अमेरिका द्वारा ईराक और अफगानिस्तान में विनाश की लीला रची गई और जापान का ईलाज ईरान को दबा-मिटाकर किए जाने के प्रयत्न आज भी जारी है। वास्तव में मुनाफे की दौड़ में अमेरिका इस कदर अंधा हो चुका है कि उसने २०५० एशिया के अरब जगत को लगभग स्थाई रूप से एक अशांत और समस्याग्रस्त क्षेत्र बना दिया है। पर्यावरण को बरबादी से बचाने के उद्देश्य से स्वीकार की गई क्योटो संधि को भी मानने से उसने इंकार कर दिया है। धरती की जलवायु में हो रहा बदलाव दुनिया भर के लिए भारी संकट का विषय है, लेकिन पूँजीवादी साम्राज्य का संरक्षक अमेरिका इसे मानने के लिए तैयार ही नहीं है। आज अमेरिका की सैनिक उपस्थिति कतर से लेकर कुवैत और बहरीन तक पूरे खाड़ी क्षेत्र में है। भले ही अरब जगत का तेल बाजार व अर्थशास्त्र का विषय है, लेकिन अमेरिकी वर्चस्व इस पर कायम रहे, इस उद्देश्य से वह राजनीति एवं सैनिक शास्त्र का भी विषय बन गया है। यह एक अपरिहार्य सत्य है और भविष्य में अमेरिका को तेल अपूर्ति की दृष्टि से इसका कोई विकल्प नहीं है। बहुत हद तक अरब देशों के तेल पर निर्भर जापान और यूरोप की नीति राजनीतिक एवं सैनिक हस्तक्षेप भी नहीं, बल्कि माँग और अपूर्ति पर निर्भर है। लेकिन उसकी सोच भी वही है कि अमेरिका सभी तेल खरीदारों के हित में २०५० एशिया के अरब जगत में काम करता रहेगा और इस तरह अरब जगत का तेल क्षेत्र विश्व का प्रमुख समस्याग्रस्त क्षेत्र बना रहेगा।

14.4.2 इजरायल — फिलिस्तीन समस्या एवं समस्याग्रस्त क्षेत्र —

इजरायल देश रूम सागर के तट पर स्थित है। इसके उत्तर तथा उत्तर पूर्व में लेबनान एवं सीरिया, पूर्व में जार्डन, दक्षिण में अकाबा की खाड़ी तथा २०५० में मिस्र है। चारों तरफ से मुस्लिम (अरब) राज्यों से घिरा हुआ है। यह एक यहूदी देश है। जिसका क्षेत्रफल २०७७० वर्ग किलोमीटर है। यहाँ ७३.६ प्रतिशत यहूदी, २१.६ प्रतिशत मुस्लिम एवं ५.३ प्रतिशत अल्प संख्यक जनसंख्या निवास करती है।

समस्या और संघर्ष की पृष्ठभूमि — इजरायल के जन्म, फिलिस्तीनी समस्या और अरब-इजरायल संघर्ष के पीछे यहूदियों का अपने वास्तविक उद्भव स्थल पर पुनः लौटकर आने का एक लम्बा इतिहास है। प्राचीन इजरायली राज्य वर्तमान इजरायल के उत्तरी भागों, जार्डन तथा वर्तमान सीरिया के दक्षिणी भागों में विस्तृत था। इतिहास एवं

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार यहूदियों का मूलनिवास रहे इस क्षेत्र का नाम ईसाइयत, इस्लाम और यहूदी धर्मों में प्रमुखता से लिया जाना है। ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी में राजा डेविड एवं उसके पुत्र सोलोमन का इस क्षेत्र पर अधिकार था, जो यहूदी थे। अरब विजेताओं ने यहूदियों को इस क्षेत्र से निर्वासित कर दिया। यहाँ से निर्वासित होकर यहूदी विश्व के अनेक भागों में फैल गए, जहाँ उन्हें उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा। यहूदियों के निर्वासन के बाद इस क्षेत्र में मुस्लिम जनसंख्या की प्रधानता हो गयी।

यहूदियों ने अपनी मातृभूमि को प्राप्त करने के उद्देश्य से 1896 में प्रथम अधिवेशन किया। निर्वासित होने के बाद जो यहूदी मध्यपूर्व और यूरोप के कई क्षेत्रों में फैल गए थे, इस अधिवेशन के बाद (उन्नीसवीं सदी के अन्त में और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में) यूरोपीय अत्याचारों से पीड़ित होकर अपने क्षेत्रों से भागकर धीरे-धीरे यरुशलम और इसके आस-पास के क्षेत्रों में आकर बसने लगे।

प्रथम महायुद्ध के समय यहूदियों ने ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों का सहयोग दिया जिसके फलस्वरूप बेल फोर घोषणा द्वारा इनको अपने प्राचीन स्थल पर बसने की सुविधा दी गई। सितम्बर 1 में राष्ट्र संघ ने इसे ब्रिटिश अधिकृत पैलेस्टाइन क्षेत्र बना दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में अरब तटस्थ रहे जबकि यहूदियों ने मित्र राष्ट्रों की सहायता की क्योंकि ये नाजी जर्मनी की यातनाओं से त्रस्त थे। इससे इनको अपने उद्देश्य भी प्राप्ति में अधिक सफलता मिली। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य ने स्वयं को एक विकट परिस्थिति में पाया। अपने किए गए वादे के अनुसार सन् 1947 में ब्रिटिश साम्राज्य ने एक ऐसा उपाय निकालने की घोषणा की जिससे अरब और यहूदी दोनों को (संयुक्त राष्ट्रसंघ के 181 घोषणा पत्र) 29 नवंबर 1947 को मान्यता दे दी गई जिसके अन्तर्गत राज्य का विभाजन दो राज्यों में होना था एक अरब (फिलिस्तीन) और दूसरा यहूदी। जबकि यरुशलम को संयुक्त राष्ट्र द्वारा राज्य करने की बात कही गई। उस व्यवस्था में यरुशलम को “Carpus Spectrum” कहा गया। संयुक्त राष्ट्र संघ भी साधारण सभा के अनुमोदन के बाद यहाँ से ब्रिटिश शासनाधिकार उठा लिया गया और 14 मई 1948 को इजराइल को एक गणतंत्र के रूप मान्यता दे दी गई। इस तरह 1948 में इजरायल के अस्तित्व में आने के बाद वास्तविक अरब-इजराइल संघर्ष और फिलिस्तीन विवाद की शुरुवात हुई।

फिलिस्तीन (Palestine) – यह आंशिक रूप से मान्यता प्राप्त राष्ट्र है। फिलिस्तीन लिबरेशन संगठन ने 15 नवम्बर 1988 को अलजीरिया की नेशनल असेंबली की परिषद में फिलिस्तीनी राज्य की स्वतंत्रता की घोषणा की थी। यह अरब राज्यों के लीग का सदस्य है और कुछ राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त है। फिलिस्तीन वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी पर अपना दावा करता है। आंशिक प्रशासनिक नियंत्रण केवल वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी के आंतरिक भाग पर होता है और इसका प्रशासनिक केन्द्र तथा राजधानी रमल्ला में स्थित है। 23 नवंबर 1911 से फिलिस्तीन यूनेस्को का सदस्य है। 29 नवंबर 2012 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव अपनाया। जिस पर फिलिस्तीन ने संयुक्त राष्ट्र और गैर सदस्यीय राज्य का दर्जा हासिल कर लिया।

14.4.2.1 अरब-इजरायल संघर्ष एवं युद्ध के प्रमुख बिन्दु –

- अरब इजराइल के मध्य प्रथम संघर्ष 1948 में ही हुआ जब इजराइल को एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दी गई। 1948 में ही सीरिया, लीबिया तथा इराक ने इजराइल पर हमला कर दिया। सउदी अरब ने भी तब अपनी सेना भेजकर और मिस्र की सहायता से आक्रमण किया और यमन भी युद्ध में शामिल हुआ। लगभग एक वर्ष के बाद युद्ध विराम की घोषणा हुई और जार्डन तथा इजराइल के बीच सीमा रेखा अवतरित हुई जिसे ‘Green Line’ (हरी रेखा) कहा गया। इजरायल में 11 मई 1949 में संयुक्त राष्ट्र की मान्यता हासिल की।
- 1966 में अरब-इजराइल युद्ध हुआ और मिस्र ने लाल सागर में इजराइल का आवागमन बन्द कर दिया। परिणामतः 5 जून 1967 को इजराइल ने मिस्र, जार्डन, सीरिया तथा ईराक के विरुद्ध युद्ध घोषित किया और महज छः दिनों में अपने दुश्मनों को पराजित कर क्षेत्र में अपनी सैनिक प्रभुसत्ता कायम की। इस युद्ध के दौरान इजराइल को अपने ही राज्य में उपस्थित ‘फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन’ (Palestine Liberation Organisation जो 1964 में यासिर अराफात के नेतृत्व में गठित किया गया था) का विरोध झेलना पड़ा।
- 1972 में म्यूनिख ओलंपिक में इजराइली प्रतिभागियों पर अचानक हमला हुआ।
- 6 अक्टूबर 1973 को सीरिया तथा मिस्र द्वारा इजराइल पर अचानक हमला किया गया, जब इजरायली

योम नामक त्योहार मना रहे थे। इजराइली जवाब में सीरिया तथा मिस्र को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

- 1976 के दौरान इजराइल के सैनिकों ने बड़ी बहादुरी से 95 बंधकों को छुड़ाया।
- 11 मार्च 1978 में लेबनान से आये आतंकियों ने 35 इजराइली नागरिकों की हत्या कर दी, जवाब में इजराइल ने लेबनान पर हमला कर दिया।

कैम्प डेविड समझौता – 26 मार्च 1979 को कैम्प डेविड समझौता के तहत इजराइल और मिस्र के मध्य एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। जिसके अन्तर्गत इजराइल ने सिनाई प्रायद्वीप से अपनी सेनाएं हटा ली तथा मिस्र ने इजराइली जहाजों को स्वतंत्र रूप से स्वेज नहर से गुजरने की अनुमति दी एवं तिरान जल संधि और अकाबा की खड़ी को अन्तर्राष्ट्रीय जल क्षेत्र के तौर पर मान्यता दी।

आरंभिक सम्बन्ध और 'हमास' का अभ्युदय – इजरायल-हमास संघर्ष के वर्तमान स्वरूप के बीज 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में देखे जा सकते हैं। जब पहला फिलिस्तीनी विद्रोह (इतिफादा) भड़क उठा था। इसी अवधि में एक इस्लामी संगठन 'हमास' का अभ्युदय हुआ। इसने जल्द ही इजरायली कब्जे और फिलिस्तीनी राजनीतिक गुट 'फतह' के विरुद्ध एक प्रतिरोधक आन्दोलन के रूप में लोकप्रियता हासिल करली। इजराइल ने आरम्भ में तो 'फतह' के लिए एक प्रति संतुलनकारी शक्ति के रूप में 'हमास' के अस्तित्व को बर्दाश्त किया, लेकिन जैसे-जैसे हमास का प्रभाव बढ़ता गया, इजराइल के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया।

ओस्लो समझौता और दूसरा इतिफादा (फिलिस्तीनी विद्रोह) – 1990 के दशक के आरंभ में ओस्लो समझौते (Oslo Accords) से फिलिस्तीनी प्राधिकरण (Palestinian Authority) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ और वेस्ट बैंक तथा गाजा पट्टी के कुछ क्षेत्रों से इजराइल की आंशिक वापसी देखने को मिली। हालांकि आगे यह शान्ति प्रक्रिया रुक गयी जिससे निराशा व हिंसा का प्रसार हुआ तथा इसकी परिणति दूसरे इतिफादा (फिलिस्तीनी विद्रोह) 2000-2005 के रूप में हुयी। इस अवधि के दौरान हमास ने इजराइली नागरिकों के विरुद्ध आत्मघाती बमबारी और राकेट हमले तेज कर दिए।

गाजा पर कब्जा और नाकेबन्दी – वर्ष 2006 में फिलिस्तीनी विधायी चुनाव में हमास की जीत हुई, जिससे 'फतह' के प्रभुत्व वाले फिलिस्तीनी प्राधिकरण (Palestinian Authority) के साथ तनाव बढ़ गया। वर्ष 2007 में हमास ने गाजा पट्टी पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया। जबकि वेस्ट बैंक पर फतह का नियंत्रण बना रहा। इजराइल ने हथियारों की तस्करी और हमलों को रोकने के लिए गाजा की भी नाकेबन्दी कर रखी है। जिसने गाजा के निवासियों के लिए मानवीय चिंताओं और आर्थिक कठिनाइयों को जन्म दिया है।

बार-बार संघर्ष एवं युद्ध विराम – इजरायल और हमास के बीच बार-बार गंभीर झड़पों की स्थिति बनी है। जिनमें 'आपरेशन कास्ट लीड' (2008-2009) 'आपरेशन पिलर आफ डिफेंस' (2012) और 'आपरेशन प्रोटेक्टिव एज' (2014) शामिल है। इन संघर्षों के परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों को भारी क्षति उठानी पड़ी है।

येरुशलेम में इजरायली नीतियों (जिसमें शेख जर्हाह से फिलिस्तीनी परिवारों की योजनाबद्ध बेदरबली और अल अक्सा मस्जिद परिसर तक पहुँच को प्रतिबन्धित करना शामिल था) ने वर्ष 2021 में तनावों को बढ़ाया। परिणामतः हमास ने येरुशलेम अन्य इजरायली शहरों पर राकेट दागे जबकि इजरायल ने गाजा पर हवाई हमले किये। अमेरिका व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय अभिकर्ताओं के समर्थन से मिस्र द्वारा दोनों पक्षों के बीच युद्ध विराम कराया गया।

14.4.2.2 वर्तमान में जारी इजरायल – हमास संघर्ष –

वर्तमान में जारी इजरायल – हमास संघर्ष भूमि, सम्प्रभुता और सुरक्षा को लेकर दोनों पक्षों के बीच लम्बे समय से जारी और जटिल विवाद का ही एक अंग है। इस संघर्ष का आरम्भ 7 अक्टूबर, 1923 को हुआ, जब हमास ने इजरायल पर हमला कर दिया। हमास द्वारा इजरायली क्षेत्रों पर हजारों राकेट दागे गये और सशस्त्र उग्रवादी इजरायल की सीमा में घुस आए। उन्होंने सीमा के निकट बसे इजरायली नागरिकों पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसाई और 100 से अधिक लोगों को बन्धक बना लिया। राकेटों की बौछार इतनी तीव्र थी कि उनमें से कुछ राकेट प्रसिद्ध 'आयरन डोम' को भेदने में सफल रहे और येरुशलेम जैसे अन्दरूनी हिस्से तक इसके दायरे में आ गए। इजरायल ने गाजा पर भारी हमलों के साथ जवाब दिया और गाजा में घुस कर जमीनी आक्रमण भी किया। इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों के हजारों लोग हताहत हुए हैं और गाजा में व्यापक तबाही देखी जा

रही है। ईरान ने भी 14 अप्रैल 2024 इजरायल पर राकेटों से हमला करके संघर्ष को तेज करने की कोशिश की है।

संघर्ष का परिणाम कुछ भी हो, ऐतिहासिक दृष्टि से 7 अक्टूबर 2023 की सुबह को हर दृष्टि से 'विफलता' के रूप में दर्ज किया जाएगा। इससे सुरक्षा की यह इजरायली अवधारणा ध्वस्त हो गई कि फिलिस्तीनी समूह ऐसा युद्ध नहीं छेड़ेगे जिसे वे जीत न सकें।

14.4.2.3 इजरायल – हमास संघर्ष से जुड़े प्रमुख स्थल –

अल अक्सा मस्जिद – यह इजरायली आस्था के सबसे बड़े पवित्र स्थलों में से एक है जिसे मुस्लिम हरम अल-शरीफ (Noble Sanctuary) एवं यहूदी 'टेम्पल माउण्ट' के रूप में चिन्हित करते हैं। यह स्थल येरुशलम के पुराने शहर का अंग है जो इसाइयों, यहूदियों और मुसलमानों तीनों के लिए पवित्र है।

शेख जर्ज – शेख जर्जह पूर्वी येरुशलम के पुराने शहर के उत्तरी पड़ोस में स्थित है। वर्ष 1948 में जब ऐतिहासिक फिलिस्तीनी भू-भाग में इजरायल राज्य की स्थापना की गई तो लाखों फिलिस्तीनियों को उनके घरों से बेदखल कर दिया गया। उन फिलिस्तीनी परिवारों में से 28 परिवार पूर्वी येरुशलम के शेख जर्जह में जाकर बस गए थे।

वेस्ट बैंक – वेस्ट बैंक एक स्थल रुद्ध क्षेत्र है। इसमें पश्चिमी मृत सागर का एक बड़ा भाग भी शामिल है। अरब-इजरायल युद्ध(1948) के बाद इस पर जॉर्डन ने कब्जा कर लिया था, लेकिन वर्ष 1967 के छः दिवसीय युद्ध के दौरान इजरायल ने इसे वापस छीन लिया और तब से इस पर उसका नियंत्रण है। वेस्ट बैंक जॉर्डन और इजरायल के बीच स्थित है।

गाजा पट्टी – गाजा पट्टी इजरायल और मिस्र के बीच स्थित है। इजरायल ने वर्ष 1967 के बाद इस पट्टी पर कब्जा कर लिया था, लेकिन ओस्लो शांति प्रक्रिया के दौरान गाजा शहर और इसके अधिकांश भू-भाग के दिन प्रतिदिन के प्रशासन पर नियंत्रण छोड़ दिया था। वर्ष 2005 में इजरायल ने एक तरफा तरीके से इस भू-भाग से यहूदी बस्तियों को हटा लिया, यद्यपि कि इसने यहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय पहुँच को नियंत्रित करना जारी रखा है।

गोलन हाइट्स – यह एक रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण पठार है। जिसे इजरायल ने वर्ष 1967 के युद्ध में सीरिया से जीत लिया था। वर्ष 1981 में इजरायल ने इस क्षेत्र पर प्रभावी रूप से कब्जा कर लिया। वर्ष 2017 में सं०रा० अमेरिका ने आधिकारिक तौर पर येरुशलम और गोलन हाइट्स को इजरायल के अंग के रूप में मान्यता प्रदान कर दी।

14.4.2.4 इजरायल और फिलिस्तीन की माँगे –

इजरायली पक्ष	फिलिस्तीनी पक्ष
1. इजरायल एक राज्य के रूप में अपनी यहूदी पहचान और सुरक्षा को बनाए रखना चाहता है। साथ ही अधिकृत क्षेत्रों पर अपनी बसावट और नियंत्रण का विस्तार भी करना चाहता है।	1. फिलिस्तीन वेस्ट बैंक, गाजा पट्टी और पूर्वी येरुशलम में एक स्वतंत्र और संप्रभुराज्य स्थापित करना चाहता है, जिस पर 1967 से इजरायल का कब्जा है।
2. इजरायल चाहता है कि फिलिस्तीनी उसके अस्तित्व के अधिकार को चिन्हित करें और हिंसा का त्याग करें।	2. फिलिस्तीनी चाहता है कि इजरायली अपना सैन्य कब्जा एवं नाकाबंदी खत्म करें और बस्तियाँ खाली कर दें।
3. इजरायल येरुशलम को अपनी अविभाजित राजधानी और उसके पवित्र स्थलों तक अपनी पहुँच बनाए रखना चाहता है।	3. फिलिस्तीनी भी चाहता है कि येरुशलम उसकी राजधानी बने और उसके पवित्र स्थलों तक उसकी पहुँच हो।

14.4.2.5 इजरायल – फिलिस्तीन संघर्ष के समाधान के मार्ग –

टू स्टेट सॉल्यूशन – टू स्टेट सॉल्यूशन (Two State Solution) सबसे व्यापक रूप से समर्थित प्रस्तावों में से एक है, जो पारस्परिक रूप से सहमत और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त सीमाओं के भीतर इजरायल के

साथ ही एक स्वतंत्र एवं संप्रभु फिलिस्तीनी राज्य के निर्माण की परिकल्पना करता है। टू स्टेट सॉल्यूशन का उद्देश्य संघर्ष के मुख्य मुद्दों—जैसे यरूशलम, शरणार्थी, बसावट, सुरक्षा और जल बटवारा आदि को भी ध्यान में रखना है। इस प्रस्ताव का भारत, अमेरिका, चीन सहित विभिन्न प्रमुख देशों ने समर्थन किया है।

यद्यपि कि टू स्टेट सॉल्यूशन के समक्ष कई चुनौतियां एवं बाधाएं मौजूद हैं, जैसे—

- शांति के लिए आवश्यक सुलभ उपायों एवं रियायतों के प्रति इजरायल एवं फिलिस्तीन के बीच (और उनके घरेलू जनमत के बीच) राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं भरोसे की कमी।
- वेस्ट बैंक एवं गाजा पट्टी के बीच और 'फतह' एवं 'हमास' के बीच फिलिस्तीनी नेतृत्व और क्षेत्र में अपने हित एवं एजेन्डे हैं।
- दोनों ओर से हिंसा एवं अतिवाद की वृद्धि, जो आबादी के बीच घृणा एवं असंतोष को बढ़ाती है और संवाद तथा सह अस्तित्व की संभावनाओं को नष्ट कर देती है।

अन्य समाधान — टू स्टेट सॉल्यूशन इजरायल-फिलिस्तीन संघर्ष का एक मात्र समाधान नहीं है। ऐसे अन्य विकल्प भी हैं। जिन्हें विभिन्न समूहों या व्यक्तियों द्वारा प्रस्तावित या समर्थित किया गया है।

वन स्टेट सॉल्यूशन — यह दृष्टिकोण एक एकल, द्विराष्ट्रीय राज्य की कल्पना करता है जहाँ इजरायलियों और फिलिस्तीनियों दोनों को समान अधिकार एवं प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है।

इस समाधान में यह चुनौती मौजूद है कि दोनों समुदायों की चिंताओं को दूर किया जाय और कोई भी पक्ष स्वयं को अधिकारहीन न महसूस करे।

कॉन्फेडरेशन मॉडल — कुछ लोग सुरक्षा, अर्थव्यवस्था और संसाधनों जैसे क्षेत्रों में साझा संस्थानों एवं सहयोग के साथ दो अलग-अलग राज्यों के एक परिसंघ (Confederation) का प्रस्ताव करते हैं। यह मॉडल सहयोग बनाए रखते हुए एक हद तक स्वायत्तता प्रदान कर सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टीशिप — इस विकल्प के तहत एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय या गठबंधन का प्रस्ताव किया जाता है, जो उस अवधि तक इस क्षेत्र की देख-रेख एवं शासन कर सकता है। जब तक कि अधिक स्थिर एवं पारस्परिक रूप से सहमत समाधान तक नहीं पहुँचा जा सके। इस दृष्टिकोण की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सहयोग की आवश्यकता होगी।

इन सबके बावजूद भी यहाँ इजरायल-फिलिस्तीन संघर्ष के सन्दर्भ में दो कथन उल्लेखनीय एवं प्रासंगिक लगते हैं:—

- बिल क्लिंटन ने 2001 में कैम्प डेविड समझौते की विफलता और फिलिस्तीन व इजरायल में दुबारा झड़पे प्रारम्भ होने पर कहा था— 'चाहे वे आज आए या कई सालों के रक्तपात के बाद, दोनों पक्षों को उसी अतीत का सामना करना पड़ेगा; भूगोल भी वहीं रहेगा, वही पड़ोस होगा एवं वही भावनाएं एवं घृणा रहेगी। यह समस्या वक्त के भरोसे छोड़ने पर नहीं सुलझ सकती।
- 'यदि अरब मुस्लिम अपने हथियार डाल दें तो इस क्षेत्र में हिंसा समाप्त हो जाएगी, परन्तु यदि इजरायल अपने हथियार डाल दे तो उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।'

14.4.3 रूस-यूक्रेन युद्ध और समस्या ग्रस्त क्षेत्र —

सोवियत संघ के विघटन (1991) के बाद यूक्रेन स्वतंत्र देश के रूप अस्तित्व में आया था। वहाँ की 5 करोड़ की आबादी में 18 प्रतिशत लोग रूसी मूल के हैं, जो देश के पूर्वी हिस्से और क्रीमिया प्रायद्वीप में रहते हैं। पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्र में यूक्रेन भाषियों का बाहुल्य है। यूक्रेन मूल के लोग यूरोप समर्थक हैं जबकि रूसी भाषी रूस के साथ सांस्कृतिक, आर्थिक और भावनात्मक रूप से जुड़े हैं। दोनों जातीय समूहों की सोच और हितों में इतना अंतर है कि राजनीतिक विश्लेषण करते हैं कि यूक्रेन में एक देश के नक्शे में दो देशों का अस्तित्व है। यह कथन अब यथार्थ में बदल चुका है और इसी के मद्देनजर क्षेत्रीय शक्ति संतुलन में परिवर्तन आ गया है। वस्तुतः यूक्रेन को लेकर अमेरिका तथा पश्चिमी देशों और रूस के तात्कालिक और दूरगामी हित दाँव पर हैं। कोई भी पक्ष पीछे हटने को तैयार नहीं है।

14.4.3.1 रूस-यूक्रेन संघर्ष के कारण –

सोवियत संघ के हिस्से के रूप में यूक्रेन रूस के बाद दूसरा सबसे शक्तिशाली गणराज्य था और रणनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से काफी महत्वपूर्ण था। इन दोनों राज्यों के बीच संघर्ष के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:-

शक्ति संतुलन – जब यूक्रेन सोवियत संघ से अलग हुआ है, रूस और पश्चिम दोनों ने इस क्षेत्र में सत्ता संतुलन को अपने पक्ष में रखने के लिए लगातार संघर्ष किया है।

पश्चिमी देशों के लिए बफर जोन – अमेरिका और यूरोपीय संघ के लिए यूक्रेन रूस और पश्चिम के बीच एक महत्वपूर्ण बफर जोन है। रूस के साथ तनाव बढ़ने से अमेरिका और यूरोपीय संघ यूक्रेन को रूसी नियंत्रण से दूर रखने के लिए दृढ़ संकल्पित है।

काला सागर में रूस की रुचि – पूर्वी यूरोप और प0 एशिया के बीच स्थित कालासागर दक्षिण, पूर्व और उत्तर में क्रमशः पोंटिक, काकेशस और क्रीमियन की पहाड़ियों से घिरा हुआ है। कर्च जलडमरू मध्य द्वारा आज़ोव सागर से जुड़ने वाले कालासागर के सीमावर्ती देशों में रूस, यूक्रेन, जार्जिया, तुर्की, बुल्गारिया एवं रोमानिया शामिल है। तुर्की जलडमरू मध्य प्रणाली (डारडेनेल्स, बोल्फोरस और मरमारा सागर) भूमध्य सागर और कालासागर के बीच एक ट्रांजीशन जोन के रूप में कार्य करती है। वस्तुतः कालासागर का यह अद्वितीय भूगोल रूस को कई भू-राजनीतिक लाभ प्रदान करता है। सबसे पहले यह पूरे क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण है। कालासागर तक पहुँच सभी तटीय एवं पड़ोसी राज्यों के लिए बेहद हितकर है। माल एवं ऊर्जा के लिए कालासागर क्षेत्र एक महत्वपूर्ण पारगमन गलियारा है।

अलगाववादी आन्दोलन – पूर्वी यूक्रेन का डोन बास क्षेत्र (डोनेट्रस्क और लुहान्स्क) वर्ष 2014 से रूसी समर्थक अलगाववादी आन्दोलन का सामना कर रहा है। यूक्रेन सरकार के अनुसार आन्दोलन को रूसी सरकार द्वारा सक्रिय रूप से समर्थन दिया जाता है।

क्रीमिया पर आक्रमण – वर्ष 2014 में रूस ने जल्दबाजी में जनमत संग्रह के बाद क्रीमिया को यूक्रेन से अलग कर दिया। यह एक ऐसा कदम था। जिसने पूर्वी यूक्रेन से रूस समर्थित अलगाववादियों और सरकारी बलों के बीच लड़ाई शुरू हो गई।

यूक्रेन की नाटो सदस्यता – हाल ही में यूक्रेन द्वारा उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (NATO) से संगठन की सदस्यता ग्रहण करने की प्रक्रिया में तेजी लाने का आग्रह किया गया। यूक्रेन के इस तरह के कदम को रूस द्वारा 'रेड लाइन' घोषित किया गया और अमेरिका के नेतृत्व वाले इस सैन्य संगठन का अपनी देश की सीमा के करीब विस्तार के परिणामों को लेकर चिंता व्यक्त की गई। काला सागर बुल्गारिया, जार्जिया, रोमानिया, रूस, तुर्की और यूक्रेन से घिरा है। रूस और यूक्रेन को छोड़कर ये सभी नाटो देश हैं। नाटो देशों और रूस के बीच इस टकराव के कारण कालासागर का सामरिक महत्व बढ़ गया है और वह एक संभावित समुद्री फ्लैश प्वाइंट है। रूस में फ्रेमलिन के राष्ट्रवादी रणनीतिकारों का मानना है कि अमेरिका और यूरोप के देश अब भी शीतकाल की विरासत को आगे बढ़ाने में लगे हैं और 'नाटो' अपनी पहुँच बढ़ाते-बढ़ाते रूस के दरवाजे तक पहुँच गया है। रूस यूक्रेन में नाटो की मौजूदगी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। रूस यह भलीभाँति जानता है कि यदि यूक्रेन में नाटो को नहीं रोका गया, तो उसकी अगली घरेबन्दी क्रेमलिन तक पहुँच जाएगी।

संघर्ष का सारतत्व – 24 फरवरी, 2022 को यूक्रेन पर रूस का आक्रमण एक जटिल और बहुआयामी भू-राजनीतिक घटना है, जो अभी तक जारी है। इस आक्रामक युद्ध के प्रमुख सूत्रधार रूसी राष्ट्रपति व्लादीमीर पुतिन हैं। उनकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षाएं आक्रमण के पीछे प्रेरक शक्ति रही हैं, इसे रूसी प्रभाव का दावा करने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है।

14.4.3.2 मानवीय प्रभाव –

संयुक्त राष्ट्र के आँकड़ों के मुताबिक 50 लाख से ज्यादा लोग यूक्रेन छोड़ चुके हैं और लगभग 60 लाख से अधिक लोग अपने घरों से विस्थापित हो गए हैं। यूक्रेन के लगभग दो-तिहाई बच्चे या तो देश छोड़ चुके हैं या यूक्रेन के सुरक्षित क्षेत्रों में चले गए हैं। यूक्रेन की आधी से अधिक आबादी ने अपनी नौकरियाँ छोड़ दी हैं और उनमें से केवल दो प्रतिशत को ही दोबारा रोजगार मिल सका। वर्तमान में रूसी आक्रमण के कारण यूक्रेन में 30

प्रतिशत तक खेती योग्य क्षेत्र का उपयोग किसानों द्वारा नहीं किया जा सकता। इसके अलावा काला सागर बन्दरगाहों से यूक्रेन की आपूर्ति श्रृंखला और पश्चिमी सीमा के पार माल परिवहन की क्षमता बाधित हो गई है। रूस द्वारा यूक्रेन पर आक्रमण के बाद राष्ट्रीय संप्रभुता, मानवाधिकार और लोकतंत्र के बारे में प्रश्न अत्यंत तीव्र हो गए हैं। ये भारी परिवर्तन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बने वैश्विक सुरक्षा ढाँचे को प्रभावित करते हैं और इसकी अक्षमता को दर्शाते हैं।

वस्तुतः यूक्रेन के खिलाफ जारी रूस का युद्ध विश्व अर्थव्यवस्था पर अमिट घाव छोड़ रहा है। खाद्य आपूर्ति की श्रृंखलाओं की समस्याओं, बड़े पैमाने पर प्रवासन और बेरोजगारी के कारण दुनिया भर के कई देशों में कमोडिटी की कीमतें बढ़ रही हैं और मुद्रास्फीति में वृद्धि हुई है। यूक्रेन पश्चिमी प्रभाव वाले यूरोपीय संघ में शामिल हो या नाटो का सदस्य बने अथवा रूस के प्रभाव वाले यूरेशियाई संघ में शामिल हो या नाटो का सदस्य बने अथवा रूस के प्रभाव वाले यूरेशियाई संघ में शिरकत करें, इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि साझा अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों से इस संघर्षरत क्षेत्र को समस्या से मुक्त किया जाय। संकट से गुजर रही विश्व अर्थव्यवस्था के लिए शीत युद्ध की फिर से शुरुवात होना कोई अच्छी खबर नहीं है।

14.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि द0पू0 एशिया को अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र बनाने और उसे समस्या ग्रस्त क्षेत्र के रूप में परिवर्तित करने का मूल श्रेय खनिज तेल को जाता है। इसी खनिज तेल पर अपना वर्चस्व बनाये रखने के उद्देश्य से पश्चिमी जगत यहाँ कूटनीतिक चालें एवं युद्धों की भूमिका की रचना करता है। इजरायल फिलिस्तीन विवाद के पीछे भी किसी न किसी रूप में पश्चिमी वैश्विक शक्तियों का ही हाथ है। यूक्रेन के साथ रूस का युद्ध भी नाटो शक्तियों की ही देन है, जो शीतयुद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के विखण्डन के बाद भी रूस को घेरने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

14.6 शब्दसूची

प्रथम विश्व	First World	आंतरिक अर्धचंद्राकार	Inner Crescent
द्वितीय विश्व	Second World	परिधीय क्षेत्र	Rim Land
तृतीय विश्व	Third World	विखराव मेखला	Shatter Belt
कल्याण परक राज्य	Welfare State	परिसंघ	Confederation

14.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

- किस समूह को तृतीय विश्व कहा जाता है?
(अ) अमेरिकी समूह (ब) यूरोपीय समूह (स) यूरेशियाई समूह (द) गुट निरपेक्ष समूह
- शीत युद्ध का समापन कब हुआ?
(अ) 1970 के बाद (ब) 1980 के बाद (स) 1990 के बाद (द) 2001 के बाद
- सोवियत संघ का विघटन किस वर्ष हुआ?
(अ) 1991 (ब) 1992 (स) 1993 (द) 1994
- इजरायल देश का अभ्युदय किस वर्ष हुआ?
(अ) 1946 (ब) 1947 (स) 1948 (द) 1949

5. एक महत्वपूर्ण राजनीतिक हथियार के रूप में खनिज तेल एशिया के किस भू-भाग में प्रसिद्ध है?

(अ) दक्षिण एशिया (ब) दक्षिण-पश्चिम एशिया (स) दक्षिण एशिया (द) सुदूर पूर्व एशिया

आदर्श उत्तर :-

1. (द) ; 2. (स) ; 3. (अ) ; 4. (स) ; 5. (ब)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

अधिकारी, सुदीप्ता एवं रतन कुमार, (2011): 'राजनीतिक भूगोल', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 392 पृष्ठ।

दीक्षित, रमेशदत्त, (2019): 'राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि', पी.एच.आई. लर्निंग, प्रा०लि०, दिल्ली, 280 पृष्ठ।

Gurr, T.R., (1994): 'People Against states: Ethnopolitical conflict and the changing world system, International Studies Quarterly, Vol.38, pp.347-377.

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. समस्याग्रस्त क्षेत्रों के अभ्युदय के आधारभूत कारक बताइए।
2. दक्षिण-पश्चिम एशिया के भू-राजनीतिक महत्व को रेखांकित कीजिए।
3. अरब जगत की खनिज तेल राजनीति पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. इजरायल-फिलिस्तीन संघर्ष से जुड़े प्रमुख स्थल कौन से हैं?
5. रूस-यूक्रेन संघर्ष के कारण बताइए।

इकाई-15 हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व

इकाई की रूपरेखा

- 15.0 प्रस्तावना
- 15.1 उद्देश्य
- 15.2 भू-राजनीति की प्रकृति और हिन्द महासागर
- 15.3 हिन्द महासागर: स्थिति एवं विस्तार
- 15.4 हिन्द महासागर: भूगर्भिक संरचना
- 15.5 हिन्द महासागर: भौतिक परिवेश
- 15.6 हिन्द महासागर: आर्थिक संसाधन
- 15.7 हिन्द महासागर: भू-राजनीतिक एवं सामरिक विशेषताएं
- 15.8 भू-राजनीतिक भूसामरिक महत्व की दृष्टि से हिन्द महासागर में विदेशी शक्तियों की उपस्थिति
 - 15.8.1 हिन्द महासागर और ग्रेट ब्रिटेन
 - 15.8.2 हिन्द महासागर और संयुक्त राज्य अमेरिका
 - 15.8.3 हिन्द महासागर और रूस तथा चीन
- 15.9 भारत के लिए हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व
 - 15.9.1 भारत की ग्लोबीय एवं सामरिक स्थिति
 - 15.9.2 हिन्द महासागर के सन्दर्भ में भारत की केन्द्रीय स्थिति
- 15.10 वर्तमान सन्दर्भों में हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में भारत के भू-राजनीतिक महत्व का आकलन
- 15.11 हिन्द महासागर और शांति क्षेत्र प्रस्ताव
- 15.12 दि इंडियन ओसियन रिम एशोसिएशन फार रीजनल को आपरेशन (IORARC)
- 15.13 सारांश
- 15.14 शब्द सूची
- 15.15 स्व मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 15.16 सन्दर्भग्रन्थ सूची एवं उपयोग पुस्तकें
- 15.17 अभ्यासार्थ प्रश्न: सत्रान्त परिक्षा की तैयारी हेतु

15.0 प्रस्तावना

राजनीतिक भूगोल के पाठ्यक्रम की यह पन्द्रवीं इकाई है। इस इकाई में आप हिन्द महासागर के भू-राजनीतिक महत्व का अध्ययन करेंगे वस्तुतः भू-राजनीतिक एक ऐसा गतिशील विज्ञान है जो यह बताता है कि 'स्थान' की शक्ति का एक महत्वपूर्ण भाग होता है, वह स्थान स्थलीय भू-राजनीतिक स्थिति के कारण विगत कई शताब्दियों से वैश्विक महान-शक्तियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस तथा चीन जैसे शक्तिशाली देश वर्तमान में भी इस महासागर की व्यापारिक आवश्यकता है। भारत की ग्लोबलीय स्थिति हिन्द महासागर में केन्द्रीय है, इसलिए भारत के लिए भी हिन्द महासागर का आर्थिक, सामरिक एवं

भूसामरिक महत्व है। भारत और शेष हिन्द महासागरीय देश इस महासागर को एक 'शांति क्षेत्र' बन जाने के लिए प्रयत्नशील हैं, लेकिन महा-शक्तियों के दबाव में संयुक्त राष्ट्र महासभा में उनका प्रस्ताव दब कर रह गया है। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं सारे बिन्दुओं का अध्ययन आप विस्तार से करेंगे।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. भू-राजनीति की प्रकृति से विधार्थियों को अवगत कराना।
2. हिन्द महासागर की भू-राजनीतिक स्थिति, भूगर्भिक संरचना, भौतिक परिवेश एवं आर्थिक संसाधनों की जानकारी प्रदान करना।
3. हिन्द महासागर की भू-राजनीतिक एवं सामरिक विशेषताएं स्पष्ट करना।
4. हिन्द महासागर में विदेशी महाशक्तियों की उपस्थिति के कारणों का विश्लेषण करना।
5. भारत के लिए हिन्द महासागर के भू-राजनीतिक महत्व का मूल्यांकन करना।

15.2 भू-राजनीति की प्रकृति और हिन्द महासागर

'हिन्द महासागर' के 'भू-राजनीतिक महत्व' का आंकलन करने के पूर्व 'भू-राजनीति की प्रकृति' को समझना आवश्यक है। कार्ल हाउशोफर (1924) के अनुसार 'भू-राजनीति वह विज्ञान है जिसमें प्राकृतिक वातावरण एवं राजनीतिक जीवन का अध्ययन किया जाता है तथा राजनीतिक जीवन के उसके पृथ्वी से सम्बन्धों और ऐतिहासिक गतियों की दशाओं के सन्दर्भ में समझा जाता है।' भू-राजनीति एक ऐसा गतिशील विज्ञान है जो वह बताना है कि स्थान (space) की शक्ति का एक महत्वपूर्ण कारक होता है और किसी भी स्थान की राजनीतिक दशाएं लम्बी अवधि तक स्थाई नहीं रह सकतीं। उनमें परिवर्तन अवश्यमभावी है। भूराजनीति के पास ऐसी शक्ति होती है जो बड़ी शक्तियों को कमजोर क्षेत्रों के ऊपर विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में भू-राजनीति एक विधा है जो अपने निष्कर्षों के आधार पर व्यावहारिक राजनीति को निर्देशित करती है नीति के उद्देश्यों को सूत्रबद्ध करने में सहायता करती है और साथ ही साथ उन उद्देश्यों तक पहुँचने का साधन भी बतलाती है जिसके लिए कोई राज्यशक्ति प्रयत्नशील है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भू-राजनीति की यह मूल प्रकृति है और उस मूल प्रकृति को समझने के साथ-साथ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'आधुनिक अर्थ में भू-राजनीति बड़ी शक्तियों के मध्य प्रति द्वन्द्विता से सम्बन्धित है जो शक्ति-सम्बन्ध परिप्रेक्ष्य के साथ राजनीतिक अर्थव्यवस्था उपागम पर भी ध्यान केन्द्रित करती है भू-राजनीतिक आयाम माननीय विषयों के प्रबंधन में भौगोलिक कारकों के महत्व की सार्थकता पर जोर तो देता ही है साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि किसी क्षेत्र का भू-राजनीतिक परिदृश्य अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के सम्बन्धों पर निर्भर करता है और तदनुसार परिवर्तन भी प्रकृति भी व्याख्या के अनुसार परिवर्तन होना रहता है।

उक्त भू-राजनीतिक सन्दर्भों में हमारी चर्चा का केन्द्र उस इकाई में 'हिन्द महासागर' और उसका 'भू-राजनीतिक आचरण' है। उस महासागर के भू-राजनीतिक आचरण के पीछे निहित कारकों को ठीक तरह से समझने के लिए इस महासागर के इतिहास और भूगोल भी सम्यक समीक्षा आवश्यक है। इतिहास जहाँ उसके अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों और उसके प्रति वैश्विक नुकसान में निर्णायक भूमिका निभाता है, वहीं उसकी भौगोलिक स्थिति विश्व के अन्य महासागरों तथा प्रमुख शक्ति पुंजों के परिप्रेक्ष्य में इसकी भूमंडलीय स्थिति निर्धारित करना है। भारत तथा उसको घेरे हुए अन्य देशों के सन्दर्भ में इसके सामरिक एवं भू-राजनीतिक महत्व का आंकलन इसी आधार पर संभव है। मोटे तौर पर इतिहास उस महासागर के राजनीतिक आदर्शों का कारक है तथा भूगोल इसकी अन्तर्राष्ट्रीय भू-राजनीति का स्वरूप निर्धारित करना है। परन्तु इस सन्दर्भ में यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'भौगोलिक स्थिति एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो ज्ञान-विज्ञान के विराम के साथ-साथ निरंतर बदलती रहती है। भौगोलिक स्थिति भी परिवर्तनशीलता का तात्पर्य है कि तकनीकी विकास के परिप्रेक्ष्य में किसी स्थान विशेष की प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति का अर्थ और उसका राजनीतिक और आर्थिक समुदायों को अपनी नीतियों और राजनीतिक कार्य प्रणाली में परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है।

15.3 हिन्द महासागर : स्थिति एवं विस्तार

भूमंडलीय सन्दर्भ में महासागर और अटलांटिक महासागर के मध्य में स्थित हिन्द महासागर वास्तव में एक खाड़ी महासागर है जो चारों ओर से महाद्वीपीय भू-भागों अर्थात् अन्तर में एशिया, पश्चिम में अफ्रीका, पूर्व में एशिया, दक्षिण में आण्टार्क्टिका से घिरा हुआ है। दक्षिण में आण्टार्क्टिक के पास उसका सम्बन्ध अटलांटिक महासागर और प्रशान्तमहासागर से हो जाता है। क्षेत्रीय विस्तार के आधार पर पूर्वी गोलार्ध में स्थित विश्व का यह तीसरा सबसे बड़ा महासागर 18°22' पूर्वी देशान्तर से लेकर 147° पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। अर्थात् केपटाउन के समीप से गुजरने वाली 18°22' पूर्वी देशान्तर रेखा हिन्द महासागर को विश्व के दूसरे सबसे बड़े महासागर अटलांटिक महा० से अलग करती है जबकि तस्मानिया अंतरीय के पास स्थित 147° पूर्वी देशान्तर रेखा इसे विश्व के सबसे बड़े महासागर प्रशान्त महा० से पृथक् करती है। अन्तर्राष्ट्रीय जल सर्वेक्षकीय संगठन (**International Hydrographic Organization**) ने अन्टार्क्टिका के तट को हिन्द महासागर की दक्षिणी सीमा के रूप में मान्यता है। उसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7,34,27,000 वर्ग किमी० है, जो जल मंडल के कुल क्षेत्रफल का 21.87 प्रतिशत है।

15.4 हिन्द महासागर : भूगर्भिक संरचना

हिन्द महासागर के तट का अधिकांश भाग गोंडवानालैण्ड के ब्लाक पर्वतों से निर्मित होने के कारण ठोस तथा सघन हो गया है। हिन्द महासागर के मग्न तटों में चौड़ाई की दृष्टि से पर्याप्त विविधता मिलती है। बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर से सहारे एवं अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी भाग में चौड़े मग्न तट पाये जाते हैं। मग्नतट का अधिकतम विस्तार मालागासी (मेडागास्कर) के पास है। पूर्व में मग्न तट संकरे में एक मध्यवर्ती कटक है जो प्रायद्वीपीय भारत में दक्षिण से प्रारंभ होकर दक्षिण में अण्टार्क्टिका महाद्वीप तक एक क्रमबद्ध श्रृंखला के रूप में उत्तर से दक्षिण दिशा में फैला है। इस मध्यवर्ती कटक की नौ मुख्य शाखाएं हैं— (A) सोकोत्रा चौगोस कटक (B) चौगोस कटक (C) सेटलीस कटक (D) चौगोस सेण्टपाल कटक (E) अमस्टाइम सेण्टपाल कटक (F) भारत-अण्टार्क्टिका कटक (G) करगुलेन गासबर्ग कटक (H) मालागासी कटक एवं (I) अटलांटिक – अण्टार्क्टिका कटक। हिन्द सागर का मध्यवर्ती कटक महासागर को पूर्वी और पश्चिमी से विशाल द्रोणियों में विभक्त करता है। मध्यवर्ती कटक की शाखाएं उन दो द्रोणियों को पुनः कई छोटी-छोटी द्रोणियों में विभक्त करती हैं। ऐसी कुल छोट-छोटी द्रोणियाँ संख्या में नौ हैं— (1) ओमान द्रोणी (2) अरेबियन द्रोणी (3) सोमाली द्रोणी (4) मारीशस द्रोणी (5) नैटाल द्रोणी (6) अटलांटिक भारतीय अण्टार्क्टिक द्रोणी (7) अण्डमान द्रोणी (8) भारत आस्ट्रेलिया द्रोणी, तथा (9) पूर्वी भारत- अण्टार्क्टिका द्रोणी (चित्र संख्या 15.1)। हिन्द महासागर की तली के क्षेत्रफल का लगभग 60% भाग अगाध सागरीय मैदान के रूप में है परिषायतः शर्तों की संख्या कम ही पाई जाती है। जावाद्वीप के सहारों स्थित सुण्डागर्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सारांशतः हिन्द महासागर की औसत गहराई 4000 मीटर के आस-पास है।

15.5 हिन्द महासागर : भौतिक परिवेश

हिन्द महासागर की स्थिति भूमध्य के दोनों ओर लगभग उष्ण कटिबन्ध में है। सुदूर दक्षिणी भाग को छोड़कर इस का जल अपेक्षतया उष्ण एवं शान्त रहता है। हिन्द महासागर परिमंडल में स्थित देशों कुल संख्या 46 है। उनमें उल्लेखनीय देश उत्तर में भारत, पाकिस्तान, ईरान, म्यांमार, बांग्लादेश और थाईलैण्ड हैं। पश्चिम में ईराक, सउदीअरब, सोमालिया, तंजानिया और द० अफ्रीका संघ है। पूर्व में मलेशिया, इंडोनेशिया, द०पू० में आस्ट्रेलिया तथा द० में अण्टार्क्टिका स्थित हैं। इन्हीं में से 7 द्वीपीय देश (मालागासी, कोमोरोस, सिचेलीस, मालदीव, मारीशस, सिंगापुर और श्रीलंका) भी हैं, जिनकी स्थिति अत्यंत महत्व भी है। श्रीलंका और मालागासी सबसे बड़े द्वीपीय देश हैं। पूर्वी द्वीप समूह के तट के सहारे वलित पर्वतों की श्रंखलाएं भी पाई जाती हैं।

हिन्द महासागर में सीमान्त सागरों, खाड़ियों एवं जल संधियों की संख्या भी पर्याप्त है। प्रमुख सीमान्त सागरों खाड़ियों एवं जल संधियों में बास जल संधि, स्पेंसर खाड़ी, ग्रेटआस्ट्रेलियन बाउट, एक्समाउध खाड़ी टोर जल संधि, कारपेण्टेरिया की खाड़ी, अराकुरा सागर, तिमोर सागर, सुवासागर, सिंगापुर जलसंधि, अण्डमान सागर, बंगाल की खाड़ी, पाक जल संधि, लक्षद्वीप सागर, अरब सागर, ओमान की खाड़ी, फारस की खाड़ी, अण्डमान की खाड़ी, लाल सागर और मोजम्बिक चौनल प्रमुख हैं।

हिन्द महासागर मकर रेखा के उत्तर में लगभग एक बन्द महासागर (**Close Ocean**) के रूप में है। लेकिन पश्चिम में दक्षिणी अफ्रीका संघ के उत्तम आशा अंतरीय (**Cape of Good Hope**) से लेकर पूर्व द०प० आस्ट्रेलिया के लीविन अंतरीय के दक्षिण में अण्टार्कटिक तक यह महासागर एकदम खुला है। पछुआ हवाओं का क्षेत्र होने के कारण यहाँ 40° दक्षिणी अक्षांश के पास पछुआ हवा को 'गरजती चालीसा' (**Roaring Forties**) और 50° दक्षिणी अक्षांश के पास पछुआ हवा को 'भयंकर पचासा' (**Furious Fifties**) कहा जाता है।

15.6 हिन्द महासागर: आर्थिक संसाधन

आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से भी हिन्द महासागर का पर्याप्त महत्व है। हिन्द महासागर में अब तक किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर महासागरीय नितल में जिन खनिजों की उपलब्धता की पुष्टि हुई है, उनमें लौह खनिज, मैगनीज निकिल, कोबाल्ट, इल्मेनाइट, टिटोनियम, सोना, टिन, ऐन्टिमनी, बाक्साइट, सीसा, एवं गारनेट आदि के जमाव मुख्य हैं। उपरोक्त सभी प्रकार के खनिज महासागरीय बेसिन पर पिण्डिकाओं के रूप में पाये जाते हैं, इसलिए इनका दोहन बेहद खर्चीला है। हिन्द महासागर के तटीय देशों में भारत के पास ऐसी तकनीक उपलब्ध है जिसके माध्यम से उसने अब तक अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और अण्डमान निकोबार के आस-पास विभिन्न खनिजों का पता लगाया है। समुद्री अनुसंधान में अग्रणी होने के कारण भारत को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (**Special Economic Zone: SEZ**) प्रदान किया गया है।

ऊर्जा संसाधनों की दृष्टि से भी हिन्द महासागर सम्पन्न है। इसका महाद्वीपीय मग्न तटीय क्षेत्र खनिज तेल और प्राकृतिक गैस में समृद्ध है। अन्वेषण से आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के सहारे, फारस की खाड़ी, अरबसागर एवं बंगाल की खाड़ी में खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस के विशाल भण्डारों का पता चला है। हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में ज्वारिय एवं लहर ऊर्जा के विकास की भी काफी संभावनाएं मौजूद हैं। भारत के दक्षिणी तट पर स्थित तूतीकोरन बन्दरगाह के निकट कुलशेखरपट्टनम के पास 'ओटेक' ऊर्जा (**Ocean Thermal Energy Conversion: OTEC**) के भी विकास भी पर्याप्त संभावनाएं हैं। सागरीय जल में तापक्रम के अनुसार मिलने वाले अन्तर के आधार पर ओटेक ऊर्जा उत्पन्न की जाती है।

सागरीय जैविक संसाधनों की दृष्टि से भी हिन्द महासागर बेहद सम्पन्न है। उष्ण और शीतोष्ण कटिबंध में स्थित होने के कारण यहाँ खाद्य संसाधन (जन्तु संसाधन—मछली, झींगा, केंकड़ा, जन्तु प्लैंकटन या पादप संसाधन—सागरीय घास, पादप प्लैंकटन) एवं अरवाघ संसाधन (प्रवाल, सीप) दोनों का ही भारी मात्रा में प्रसार है। वैज्ञानिक नियोजन एवं प्रबंधन के साथ भविष्य में इन संसाधनों के दोहन की अपार संभावनाएं हिन्द महासागर में मौजूद हैं। भारत के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में ही मत्स्य उत्पादन की पर्याप्त संभावनाएं हैं, लेकिन विभिन्न कारणों (उष्ण कटिबंधीय जलवायु, तट के सहारे पर्याप्त संख्या में खाड़ियों, एस्चुअरी, बैकवाटर आदि का अभाव, मत्स्यन की मौसमी प्रवृत्ति, अधिकांश भारतीयों का शाकाहारी होना, मछली पकड़ने की पुरानी तकनीक एवं उपकरण, मछलियों के रख-रखाव की आधुनिक तकनीक एवं संसाधनों का अभाव आदि) से मत्स्य उत्पादन बहुत कम है। सागर कृषि की भी अपार संभावनाएं हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्रों में मौजूद हैं। दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या के कारण भविष्य में केवल स्थलीय भागों से खाद्य सामग्री की पूर्ण रूपेण आपूर्ति होना संभव नहीं है। इसलिए तटीय देशों का ध्यान इस सन्दर्भ में हिन्द महासागर की ओर आकर्षित हो रहा है।

15.7 हिन्द महासागर : भूराजनीतिक एवं सामारिक विशेषताएं

1. पुरानी दुनिया में हिन्द महासागर भी भौगोलिक स्थिति केन्द्रीय है (चि०सं० – 15.2)
2. हिन्द महासागर का अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्द्ध में है तथा उष्ण और शीतोष्ण कटिबंधीय स्थिति होने के कारण यह महासागर वर्ष पर्यन्त आवागमन हेतु उपयुक्त रहता है।
3. ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन मानसून के दौरान वायु दिशाओं में होने वाले परिवर्तन से यहाँ सागरीय नौ परिवहन में सुविधा रहती है। जोखिम भरी समुद्री धाराओं का अभाव होने के कारण यहाँ नाविकों के लिए कम खतरे पाये जाते हैं।
4. हिन्द महासागर से निकास के मार्ग सीमित हैं। चार ही प्रमुख ऐसे जलमार्ग (उत्तम आशा अन्तरीय जलमार्ग, स्वेज नहर मार्ग, सिंगापुर जलमार्ग एवं भारत—आस्ट्रेलिया जलमार्ग) हैं जिनसे समुद्री यातायात संभव है।

उत्तम आशा अन्तरीय जलमार्ग का 18वीं शताब्दी के मध्यकाल के पूर्व विशेष महत्व रहा है, लेकिन 1869 में स्वेज नहर के निर्माण ने इस जलमार्ग का महत्व कम कर दिया है। फिर भी द० अमेरिका और अफ्रीका के अधिकांश देशों को जोड़ने के लिए इसी जलमार्ग का उपयोग किया जाता है। एशिया और यूरोप के विभिन्न देशों को जोड़ने वाला स्वेज नहर जलमार्ग वस्तुतः संसार के हृदय स्थल से गुजरता है। सिंगापुर जलमार्ग भी द० पू० एशियाई एवं पूर्वी एशियाई देशों के मध्य व्यापार के लिए काफी महत्वपूर्ण है। भारत – आस्ट्रेलिया जलमार्ग भारत और आस्ट्रेलिया को जोड़ता है।

5. हिन्दमहासागरीय देशों की अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा, सांस्कृतिक अन्तर्सम्बन्धों के विकास आदि विविध पक्षों की दृष्टि से हिन्दमहासागर स्थित दो जलडमरू मध्य (पूर्व में दक्षिण पूर्वी एशिया का मलक्का जलडमरू मध्य और पश्चिम में लाला सागर का बाब एल मण्डेब) बेहद भू-राजनीतिक महत्व के हैं कारण कि इन दो निकास मार्गों पर नियंत्रण कर हिन्द महासागर को आसानी से अवरुद्ध किया जा सकता है।
6. हिन्द महासागर के तटीय भू-भागों में विश्व की एक तिहाई जनसंख्या निवास करती हैं। उसके तटीय देशों में अनेक राष्ट्र मण्डलीय सदस्य हैं जो आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से एक दूसरे से नितान्त भिन्नता रखते हैं तथा ये एक-दूसरे से पृथक्ता लिए हुए हैं जिसकी वजह से वैश्विक शक्तियों के प्रभाव में सहज ही आ जाते हैं।
7. भारत, चीन जैसे विशाल जनसंख्या वाले देशों का विस्तृत बाजार, समीपवर्ती क्षेत्रों का पेट्रोलियम संसाधन और उष्णकटिबंधीय उत्पादन और पूर्वी एशिया से यूरोप को जाने वाले महत्वपूर्ण व्यापारिक सागरीय मार्गों के कारण हिन्दमहासागर का सदैव से सामाजिक, आर्थिक एवं भू-राजनीतिक महत्व रहा है। संभवतः यही कारण था कि अल्फ्रेड थेयर महान ने 19वीं शताब्दी में ही कह दिया था कि जो हिन्दमहासागर पर नियंत्रण करेगा, वही एशिया पर नियंत्रण करेगा। इक्कीसवीं सदी की नियति उसी महासागर के जल पर निर्भर करेगी।
8. हिन्द महासागर में फैले विभिन्न द्वीप हिन्द महासागर के सामरिक एवं भूराजनीतिक महत्व में अधिक वृद्धि करते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तक इन्हीं द्वीपों पर नौसैनिक केन्द्र स्थापित करके ग्रेट ब्रिटेन ने उसे एक महासागरीय झील का रूप दे दिया था। हिन्द महासागर के मध्यवर्ती भाग में स्थित द्वीप जैसे डिएगो-गार्मियां, चौगोस, रोट्रिगुज सेशेल्स, मारीशस सेन्टपाल मेडागास्कर, जिबूती, सुआरेज, रियूनियन डिएगो आदि आज भी भूसामरिक व भू-राजनीतिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कई द्वीपों का उपयोग आज भी सं०रा० अमेरिका और उसके सहयोगी ब्रिटेन एवं फ्रांस जैसे देश सैनिक अड्डों के रूप में कर रहे हैं। सामरिक महत्व के अधिकांश द्वीपीय अड्डे हिन्द महासागर के पश्चिमी भाग में स्थित हैं जबकि पूर्वी भाग में इनकी संख्या सीमित है।
9. हिन्द महासागर तटीय देशों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता एवं स्वार्थों का पारस्परिक टकराव बहुत अधिक है। इसी प्रतिद्वन्द्विता एवं टकराव के चलते उन देशों की सुरक्षा चीन, रूस, अमेरिका जैसी बड़ी शक्तियों पर आधारित है। इजरायल- फिलिस्तीन, वियननाम- कम्पूचिया संघर्ष एवं इन्डो चीन संघर्ष उस तथ्य के प्रमाण हैं। इन्ही संघर्षों ने वैश्विक शक्तियों को हिन्द महासागरीय क्षेत्र में प्रवेश का आधार प्रदान किया है, परिणामतः हिन्दमहासागर एक शान्ति क्षेत्र न रहकर एक संघर्ष और व्यथा का सागर (**Sea of Agony**) बन गया है।
10. अफ्रीका एवं एशिया के स्थल आवृत जैसे जाम्बिया, यूगान्डा, नेपाल, भूटान एवं आफगानिस्तान आदि को भी हिन्द महासागर से ही मार्ग मिलता है। खाड़ी युद्ध के बाद मुस्लिम दुनिया के बढ़ते हुए आतंकवाद हिन्द महासागरीय परिधि (**Indian Ocean Rim % IOR**) को विश्व भू-राजनीतिक का महत्वपूर्ण क्षेत्र बना दिया है। उस दृष्टि से '**Indian Ocean Rim Association**' की महत्ता वैश्विक सन्दर्भों में बढ़ गई है।

सारांशतः विश्व की दो तिहाई से अधिक खनिज तेल सम्पदा, भू-सामरिक महत्व के खनिज आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता, विकसित एवं विकासशील देशों के बाजार, हिन्द महासागरीय द्वीपों पर विकसित देशों के

सामरिक अड्डे, व्यापार कि मार्गों की दृष्टि से स्वेज-मलक्का एवं केप रूट इस महासागर में भू राजनीतिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण हैं।

15.8 भू-राजनीतिक-भूसामरिक महत्व की दृष्टि से हिन्द महासागर में विदेशी शक्तियों की उपस्थिति

वैश्विक सन्दर्भ में हिन्द महासागर की भौगोलिक स्थिति भू-राजनीतिक दृष्टि से सदैव ऐसी महत्व पूर्ण रही है। पुरानी दुनिया के केन्द्र में रहकर हिन्द महासागर ने तटवर्ती राज्यों की राजनीति को हमेशा प्रभावित किया है। यदि हम ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हिन्द महासागर के भू राजनीतिक महत्व का आकलन करें तो यह स्पष्ट होता है कि—

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से लेकर 12 वीं शताब्दी तक भारतीय शासकों का हिन्द महासागर पर एकाधिकार था। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में मौर्य वंशी शासकों ने बंगाल की खाड़ी के तट के सहारे बन्दरगाहों का निर्माण किया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वैदशिक सामुद्रीक क्रियाओं के लिए पृथक प्रशासनिक मंडल का उल्लेख मिलता है। इतिहास में इस बात का भी उल्लेख है कि दक्षिण भारत में चोलों और चालुक्यों ने विशाल समुद्री साम्राज्य की स्थापना की थी। उनका साम्राज्य एक लम्बे काल तक एक नौसैनिक शक्ति के रूप में बना रहा इतिहास में इस बात का भी उल्लेख है कि 8वीं से ग्यारहवीं शताब्दी ने मध्य दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय शासकों द्वारा स्थापित श्री विजय साम्राज्य था।

13 वीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक हिन्द महासागर अरबी व्यापारियों की गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। ये अरब व्यापारी अपने व्यापारी के सिलसिले में तटीय समुद्रों से हिन्द महासागर के तटीय देशों की यात्राएं करते थे।

15 वीं शताब्दी का अन्त होते-होते ब्रिटेन, फ्रांस, नीदरलैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल, यूनान, इटली आदि पश्चिमी यूरोपीय देश समुद्री परिवहन में विकसित हो चुके थे। इन देशों के अनेक साहसी नाविक भूमंडल के अज्ञात भूखण्डों की खोज में साहसिक समुद्री यात्राओं हेतु निकलने लगे। उन्हीं में से वास्को डी गामा भी एक था जिसने 1498 ई० में पहली बार उत्तमाशा अन्तरीय सागरीय मार्ग से हिन्द महासागर में प्रवेश किया और भारत के पश्चिमी तट पर कालीकट पहुँचा। इन पुर्तगालियों के पास हथियों से युक्त जहाज थे। इन्होंने कालीकट, कोचीन, गोवा आदि पर अधिकार कर लिया। हिन्द महासागर में व्यापार एवं अधिकार हेतु अलबुकर्क (Albuquerque) नामक विद्वान ने पुर्तगाल के लिए एक योजना प्रस्तुत की थी जिसके द्वारा हिन्द महासागर के द्वारा मलक्का, गया था। पुर्तगालियों के बाद ही पश्चिमी यूरोपीय देशों भी हिन्द महासागर क्षेत्र में गतिविधियाँ बढ़ने लगीं और महासागरीय क्षेत्र पर अपना वर्चस्व बनाए रखने हेतु उनमें पारस्परिक संघर्ष भी होता रहा।

15.8.1 हिन्द महासागर और ग्रेट ब्रिटेन –

आकार और संसाधन सभ्यता में अत्यंत लघु होने के बावजूद भी ब्रिटेन सामुद्रिक परिवहन में एक अति विकसित राष्ट्र था। अपनी इसी समुद्रिक शक्ति के बल पर 200 वर्षों तक विश्व के अनेक देशों को उसने अपना उपनिवेश बनाए रखा। वस्तुतः 1805 ई० तक ग्रेट ब्रिटेन विश्व में सबसे बड़ी नौसैनिक शक्ति के रूप में आ चुका था। अपनी इसी नौसैनिक शक्ति के कारण ब्रिटेन ने हिन्द महासागर के अधिकांश क्षेत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। भारत भी उसका एक बड़ा उपनिवेश था जहाँ समुद्री व्यापार एवं समुद्री गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए तत्कालीन कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई) एवं मद्रास (चेन्नई) के बन्दरगाह नगरों उसके द्वारा किया गया। अपनी नौसैनिक श्रेष्ठता और हिन्द महासागर के सामरिक महत्व के नौसैनिक सैनिक अड्डों एवं व्यापारिक मार्गों पर एकाधिकार के कारण ब्रिटेन हिन्द महासागर की ही नहीं, बल्कि विश्व की महाशक्ति बन गया। यही कारण है कि सन् 1784 ई० से 1945 ई० तक हिन्द महासागर एक 'ब्रिटिश झील' (British Lake) बनकर रह गया। ब्रिटेन भी उसी वैश्विक स्थिति का मूल्यांकन करके स०रा० अमेरिका के नौसैनिक अधिकारी अल्फ्रेड थेयर महान ने कहा था कि 'विश्व में कोई स्थल शक्ति विकसित होकर नष्ट हो सकती है, लेकिन जो शक्ति समुद्रों पर नियंत्रण स्थापित कर लेती है, वह हमेशा के लिए अपना आस्तित्व बनाए रखती है'। महान के विचारों से ही प्रभावित होकर एन०जे० स्पाइक मैन ने अपना रिमलैण्ड सिद्धान्त प्रतिपादित किया और हिन्द महासागर को ही आधार मानकर उन्होंने युरोशिया के अनुसमुद्रीय देशों को आन्तरिक शक्ति की अपेक्षा अपराजेय सिद्ध किया के०एम०

पणिक्कर के अनुसार भी भारत पर ब्रिटिश नियंत्रण का इतिहास भू-राजनीति के उस आधारभूत सिद्धान्त की पुष्टि करता है ' जो शक्ति समुद्र पर राज करती है वही अंततः निकटवर्ती स्थल पर भी शासन करती है।'

वस्तुतः हिन्द महासागर भी भू-राजनीतिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर ब्रिटेन ने अपने आर्थिक एवं सामरिक हितों की सुरक्षा के लिए इसके पूर्वी प्रवेश द्वार पर सिंगापुर एवं मलेशिया और पश्चिमी प्रवेश द्वार पर सोचेलिज तथा फारस की खाड़ी के समीपवर्ती द्वीपो और लाल सागरीय द्वीपो पर अपना अधिकार स्थापित किया था। उसी के परिणाम स्वरूप पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी एवं द०पू० एशिया में ब्रिटेन का औपनिवेशिक साम्राज्य दीर्घ काल तक सुरक्षित रहा। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन के हिन्द महासागर तटीय उपनिवेशों में स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रतिजागृति पैदा होने लगी और 1960 के दशक के मध्य तक इसके अधिकांश उपनिवेश स्वतंत्र हो गए। इसी बीच ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने लगी परिणामतः उसने हिन्द महासागर क्षेत्र में उपस्थित अपने नौसैनिक अड्डों में कटौती करने का निश्चय किया। 16 जनवरी 1968 को ब्रिटेन ने स्वेज नहर के पूर्व से हटने की घोषणा की और 1971 के बाद तक ब्रिटेन धीरे-धीरे हिन्दमहासागर क्षेत्र से हटने लगा। इस तरह हिन्द महासागर में 1971 के बाद शक्ति शून्यता (Power Vacuum) की स्थिति पैदा हो गई।

15.8.2 हिन्द महासागर और संयुक्त राज्य अमेरिका –

हिन्द महासागर से ब्रिटेन के हारने के बाद उस महासागरीय क्षेत्र में शक्ति शून्यता की स्थिति पैदा हुई जिसने विश्व की बड़ी शक्तियों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता को जन्म दिया। ऐतिहासिक भू-राजनीतिक घटनाओं का यदि हम आकलन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश औपनिवेशीकरण के समय से ही हिन्द महासागर स०रा० अमेरिका भी सामरिक नीति का केन्द्र बिन्दु रहा है और संभवतः उसी नीति के तहत हिन्द महासागर में अपने दीर्घकालीन सामरिक, राजनीतिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा के लिए शक्ति शून्यता के अवसर का लाभ उठाते हुए अमेरिका ने हिन्द महासागर में स्थित डिएगो-गार्सिया द्वीप मारीशस के स्वतंत्र होने के पूर्व ही ब्रिटेन से 30 लाख पौण्ड में खरीद लिया। सर्वप्रथम उसने 1966 में ब्रिटेन से समझौता कर उस द्वीप पर प्रारम्भिक सुविधाएं प्राप्त की। तथा 1968 में ब्रिटेन से एक दूसरा समझौता कर इसने द्वीप के पूर्ण उपयोग की सुविधा प्राप्त की। शीघ्र ही अमेरिका ने उसे नौसैनिक अड्डे के रूप में विकसित करने के लिए करोड़ों डालर खर्च किए।

वास्तव में डिएगो-गार्सिया द्वीप घोड़े की नाल के आकार का 64 किमी० परिधि वाला एक उतला प्रवाल द्वीप है जिसका क्षेत्रीय विस्तार मात्र 83.2 वर्ग किमी० है। यह चौगोस द्वीप समूह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण द्वीप है। इसकी स्थिति हिन्द महासागर में मध्यवर्ती है। भारत से लगभग 2225 किमी० दूर दक्षिण में स्थित यह द्वीप मालदीव से लगभग 730 किमी० दूर है। इस द्वीप को अमेरिका ने एक अतिविकसित नौसैनिक अड्डे के रूप में परिवर्तित कर दिया है जहाँ परमाणु हथियार सहित सभी प्रकार के घातक हथियार, पनडुब्बियाँ, हवाईपट्टियाँ और नौसैनिक बेड़े मौजूद हैं और किसी भी नौसैनिक कार्यवाही के लिए हर समय तैयार रहते हैं। हिन्द महासागर को अशान्त बनाने की दिशा में स०रा० अमेरिका का यह पहला कदम था। जिस समय यह नौसैनिक अड्डा विकसित किया जा रहा था, उस समय हिन्द महासागर के तटीय देश मात्र मूकदर्शक बने रहे और यदि किसी ने उसका विरोध भी किया तो विश्वशक्तियों के शोर में उसका विरोध दब कर रह गया। वस्तुतः इस द्वीप का सामरिक एवं भू-राजनीतिक महत्व अमेरिका के लिए बहुत अधिक है, कारण कि नवोदित पूर्वी अफ्रीका के देश इस द्वीप के निकट हैं मध्यपूर्व के तेल उत्पादक देश उस नौसैनिक अड्डे की परिधि में हैं भारतीय उप-महाद्वीप के देशों की समीपता उस द्वीप की सामरिक स्थिति के लिए लाभकर है सोवियत हार्टलैण्ड के सन्दर्भ में उस द्वीप की स्थिति उपयुक्त है और संयुक्त राज्य अमेरिका उस नौसैनिक अड्डे से पूर्वी अफ्रीका, मध्यपूर्व, दक्षिण एशिया, द०पू० एशिया तथा रूस एवं चीन जैसी महाशक्तियों पर पैनी नजर रख सकता है। डिएगो-गार्सिया के अलावा अमेरिका के अन्य नौसैनिक अड्डे तथा— बहरीन एवं माहे (सेशेल्स), असमारा (इथियोपियन) वूमेरा, हरसल्ल ई० होल्ड (आस्ट्रेलिया) हैं जो हिन्द महासागर के अन्य सामरिक क्षेत्रों की निगरानी करते हैं। सरांशतः राजनीतिक-भौगोलिक एवं सामरिक रूप से हिन्द महासागर में संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए भू-राजनीतिक आकर्षण के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. द०प० एशिया एवं द०पू० एशिया के पेट्रोलियम संसाधनों पर नियंत्रण।
2. हिन्द महासागर के उष्णकटिबंधीय तटीय देशों के प्राथमिक उत्पादों एवं जैव विविधता का सस्ता एवं

आसान दोहन।

3. विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से विभिन्न हिन्द महासागर तटीय देशों में अमेरिकी कम्पनियों की घुसपैठ एवं बृहद् पूँजी निवेश।
4. अमेरिकी आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए हिन्द महासागरीय परिवहन से मिलने वाली सुविधाओं का अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना।
5. एशियाई और हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में रूस-चीन-भारत की संभावित धुरी को विकसित होने से रोकना।
6. द०पू० एशिया, द० एशिया तथा मध्य पूर्व देशों में हिन्द महासागर के माध्यम से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करके भारत रूस और चीन के बढ़ते आर्थिक सामरिक प्रभाव को उन्हें उनके ही क्षेत्र तक सीमित रखना और अमेरिकी हितों को सुरक्षित रखना।
7. हिन्द महासागर में अपने सैनिक अड्डों एवं आधार केन्द्रों के माध्यम से तटीय कूटनीति (**Gunboat Diplomacy**) का आसान एवं सफल प्रयोग करना।
8. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को रोकने व कुचलने के नाम पर हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों पर अपना दबदबा बनाए रखना, आदि।

वस्तुतः शीतयुद्ध की समाप्ति और 1991 में सोवियत रूस के विखण्डन के बाद भी रूस और चीन (और किसी हद तक भारत को भी) दबाए रखने हेतु एशियाई परिधीय क्षेत्र में सं०रा० अमेरिका अपनी उपस्थिति बनाए रखना चाहता है। उसके उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्द महासागर एक उपयुक्त आधार की तरह है।

15.8.3 हिन्द महासागर और रूस तथा चीन –

ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद एशिया महाद्वीप के रूस और चीन दो ऐसे शक्तिशाली देश हैं जिन्हें वैश्विक स्तर पर महाशक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है और संयुक्त राष्ट्र संघ में जिनके पास किसी भी प्रस्ताव पर वीटो करने का अधिकार है। ये दोनों ही शक्तिशाली देश हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में अपने प्रभाव का विस्तार करने में गहरी रुचि रखते हैं।

यदि विगत इतिहास का आकलन करें तो यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश काल से ही। तत्कालीन सोवियत रूस की रुचि हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में रही है इसीलिए विश्व के दूसरे शक्तिशाली ध्रुव के रूप में उसने ब्रिटिश काल के हिन्दमहासागर के तटवर्ती देशों को आर्थिक और सैन्य सहायता देकर अपने पक्ष में करना प्रारंभ किया था। इस सन्दर्भ में भले ही उसे सं०रा० अमेरिका जैसी सफलता नहीं मिली, लेकिन हिन्द महासागरीय क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहा। सोवियत रूस द्वारा एक समय अफगानिस्तान में कम्युनिष्ट शासन की स्थापना अप्रत्यक्ष रूप से उसका हिन्द महासागर तक पहुँचने का प्रयास ही था। भारत को सैन्य सहायता और खनिज तेल की आपूर्ति, वियतनाम और चीन के प्रति प्रगाढ़ता भी एक तरह से यूरेशिया के परिधीय क्षेत्र में सोवियत प्रभुत्व के विस्तार की योजना माना जा सकता है। भूतपूर्व सोवियत राष्ट्रपति शोवचिव भी 'ग्लासनोस्त' एवं 'पेरेस्ट्रोइका' (खुलेपन तथा पुर्नरचना) की नीति के कारण 1991 में सोवियत रूस का भले ही विखण्डन हो चुका है और महाशक्ति के रूप में उसका दबदबा समाप्त हो चुका है, लेकिन हिन्द महासागर उसके प्रभावी उपस्थिति में बने रहने की छटपटाहट में कोई कभी नहीं आई है। संभवतः इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. मध्य एशियाई मुस्लिम देशों में सं० रा० अमेरिकी हस्तक्षेप के संभावित स्वरूप को रोकना।
2. पेट्रोलियम जैसे महत्वपूर्ण संसाधन और द० एशियाई बाजार पर सहरीनजर।
3. हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों की मजबूत धुरी बनाकर अमेरिकी हास्तक्षेप के सामने एक प्रतिरोधक शक्ति विकसित करना।
4. हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में रूसी आर्थिक— सामरिक हितों की सुरक्षा करना आदि।

अपने उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसने भी अदन, उमकरन, सोकोत्रो, दहालक, बरबेरा, मसीरा द्वीप

और कैम बीच खाड़ी में अपने सैन्य अड्डे विकसित किए हैं ताकि समय आनेपर हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में अमेरिकी हस्तक्षेप का जवाब दिया जा सके।

1991 में तत्काल सोवियत संघ के विघटन के बाद उत्पन्न अस्थिरता का लाभ उठाकर चीन ने भी हिन्द महासागर में अपना प्रभाव क्षेत्र विकसित करने की योजना प्रारंभ कर दी। ब्रिटेन स० रा० अमेरिका तथा रूस के समान ही चीन भी एक सुपर पावर के रूप में एवं पूर्वी अफ्रीकी जगत में अपनी साख बढ़ाना चाहता है। अपनी उस प्रक्रिया में उसने हिन्द महासागर स्थित म्यांमार के कोको द्वीप पर अपना नौसैनिक अड्डा विकसित किया है। हिन्द महासागर में सामरिक दृष्टि से मालदीव भी चीन के लिए काफी महत्वपूर्ण है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए चीन ने उसे अपनी 'ऋण कूटनीति' में उलझा रखा है। इसी ऋण जाल में उलझ कर वर्ष 2016 में मालदीव ने चीन की एक कम्पनी को अपना एक द्वीप 50 वर्षों की लीज पर दे दिया है। चीन की योजना यहाँ सैन्य अड्डा निर्माण की है। उस नौसैनिक अड्डे का उपयोग वह परमाणु पनडुब्बियों के संचालन के साथ-साथ हिन्द महासागर तट के द० एशियाई देशों की जासूसी के लिए भी कर सकता है। वस्तुतः मालदीव पिछले डेढ़ दशक से हिन्द महासागर भी प्रमुख शक्तियों भारत-चीन के बीच खींचतान का केन्द्र बना हुआ है। हिन्द महासागर पूर्व पश्चिम मार्ग पर स्थित है। मालदीव चीन की 'बेल्ट एण्ड रोड इनिशियेटिव (बी०आर०आई०)' पहल का भी सहयोगी बन गया है जिसके तहत सम्पूर्ण एशिया, युरोप व अफ्रीका में व्यापार व चीन के प्रभाव के विस्तार हेतु, बन्दरगाहों, रेलवेलाइन व सड़कों का निर्माण किया जाना प्रस्तावित है। चीन पाकिस्तान के खादा बंदरगाह का भी विकास कर रहा है। सारांशतः वह एक्रो-एशियाई देशों को अस्थिरता देकर हिन्द महासागर परिक्षेत्र में धीरे-धीरे अपने क्षेत्र का विस्तार कर रहा है।

15.9 भारत के लिए हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व

भारत के लिए हिन्द महासागर के भू-राजनीतिक महत्व का आंकलन करने से पूर्व भारत की ग्लोबीय और भौगोलिक स्थिति का आंकलन आवश्यक हो।

15.9.1 भारत की ग्लोबीय एवं सामरिक स्थिति –

हिन्द महासागर में पूर्व से पश्चिम विस्तार की दृष्टि से भारत की ग्लोबीय स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। अक्षांशीय स्थिति के अनुसार भारत पूर्णतः उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। कर्क रेखा भारत के लगभग मध्यवर्ती भाग से गुजरती है जिससे इसके उत्तर स्थित भाग उपोष्ण कटिबंध तथा दक्षिण स्थित भाग उष्ण कटिबंध के अन्तर्गत आते हैं। विशिष्ट स्थिति एवं उच्चावच्य विविधता के कारण यहाँ कई तरह की जलवायु दशाएँ पाई जाती हैं जिससे कृषि उत्पादन में पर्याप्त भिन्नता रहती है। पश्चिम में पाकिस्तान, उ०प० में 'अफगानिस्तान' उत्तर में चीनी तिब्बत, नेपाल, भूटान तथा पूर्व में म्यांमार व बांग्लादेश उसके सीमावर्ती राज्य हैं। इस तरह से भारत तीन ओर से स्थलीय राज्यों से घिरा हुआ है। भारत के दक्षिण में स्थित श्रीलंका भारत का पड़ोसी देश है जो पाक जलडमरू मध्य द्वारा भारत से अलग है। कर्क रेखा के दक्षिण में स्थित भारतीय भू-भाग पश्चिम में अरब सागर एवं पूर्व में बंगाल की खाड़ी के मध्य हिन्द महासागर में प्रविष्ट है। इस तरह से भारत की ग्लोबीय स्थिति हिन्द महासागर के शीर्ष पर पाई जाती है। भारतीय तटरेखा का समस्त भाग हिन्द महासागर द्वारा निर्मित है। देखा जाय तो हिन्द महासागर की कुल तट रेखा का 14 प्रतिशत हिस्सा भारतीय अधिकार में है जो भारत की ग्लोबीय स्थिति को निकोबार द्वीप समूह भारतीय क्षेत्र के अंग है। उस तरह भारत के लगभग 1250 छोटे-छोटे द्वीप हिन्द महासागर में स्थित हैं।

आर्थिक एवं वाणिज्यिक दृष्टि से भी भारत की ग्लोबीय स्थिति बेहद महत्व पूर्ण है। पाश्चात्य औद्योगिक राज्यों तथा द० पूर्व एवं पूर्व के कृषि प्रधान राज्यों के मध्य स्थित भारत का लगभग 90 प्रतिशत समुद्री व्यापार हिन्द महासागर के माध्यम से होता है। हिन्द महासागर से होने वाले वैश्विक समुद्री परिवहन में भी भारत की प्रभावी भूमिका है। अफ्रीका महाद्वीप के विकासशील व अविकसित देशों की समीपता की भारत भी आर्थिक-वाणिज्यिक स्थिति को बेहद महत्व पूर्ण बनाती है।

अपनी विशिष्ट ग्लोबीय स्थिति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी भारत का महत्व बढ़ा है। हिन्द महासागर के तटीय राज्यों पर वर्चस्व स्थापित करने के सन्दर्भ में सं० रा० अमेरिका तथा रूस के मध्य होने वाले शीत संघर्षों के बीच सामाजिक दृष्टि से भारत की भूमिका (उस द्विध्रुवीय संघर्ष में) निर्णायक महत्व की है। संभवतः

यही कारण है कि रूस और अमेरिका दोनों ही देश हिन्द महासागर स्थित भारत को अपने पक्ष में रखने तथा उसे अपने विरोधी पक्ष के दायरे में रोकने के इच्छुक रहते हैं। अपनी विशिष्ट ग्लोबीय स्थिति के कारण भारत दोनों ही शक्ति ध्रुवों के साथ अपने हितों के बारे में मोलतोल (**Bargain**) करने की स्थिति में रहता है। उसकी तटस्थ विदेश नीति उसे उस सन्दर्भ में यह सुविधा प्रदान करती है कि वह दोनों पक्षों के साथ मैत्री भाव बनाकर विश्व स्तरीय संघर्ष से स्वयं को बचाए और देश के विकास पर अधिक प्रभावी ढंग से अपना ध्यान केन्द्रित कर सके वर्ष 1923 से जारी रूस-युक्रेन संघर्ष एवं इजारायल हमास युद्ध भारत की उस सफल विदेशनीति के ताजे उदाहरण हैं। पियर्स (1957) ने भी भारत की स्थिति को सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बताया है, कारण कि यह राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बताया है, कारण कि यह राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विश्व के दो क्षेत्रों के मध्य स्थित है। पियर्स के अनुसार – **“The geographical location of India is strategic in as much as it lies midway between two areas of the great political and economic importance, west Asia and from there to Europe and South&East Asia and from to East- These importance areas are linked by sea and air through India and the ocean surrounding it.”**

15.9.2 हिन्द महासागर के सन्दर्भ में भारत की केन्द्रीय स्थिति –

भौगोलिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है हिन्द महासागर में उसकी केन्द्रीय स्थिति। अटलांटिक महासागर और प्रशान्त महासागर के विपरीत हिन्द महासागर एक बन्द महासागर है जो पश्चिम में अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वोत्तर, पूर्व में दक्षिण-पूर्व एशिया तथा आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट तथा उत्तर में दक्षिण एशियाई भूखण्ड से घिरा है। दक्षिण में यह महासागर दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश में खुलता है जहाँ अण्टार्कटिका महाद्वीप यातायात कुछ निश्चित मार्गों द्वारा ही संभव है। ये मार्ग इस प्रकार हैं (चित्र संख्या-15.3)

1. लाल सागर, स्वेज नहर और भूमध्य सागर के रास्ते उत्तर अटलांटिक महासागर को जाने वाला सागरीय मार्ग।
2. दजला और फरात (टिग्रिस तथा युफटीज) नदियों की घाटी के रास्ते मेसोपोटामिया तथा मध्य यूरोप को जाने वाला स्थल मार्ग।
3. सिंगापुर के रास्ते सुदूर पूर्व एशिया को जाने वाला सागरीय मार्ग।
4. अफ्रीका महाद्वीप के दक्षिण के उत्तम आशा अन्तरीय (**Cape of Good Hope**) के रास्ते दक्षिण अटलांटिक महासागर से होते हुए यूरोप को जाने वाला मार्ग, जिस रास्ते वास्को डा गामा मार्ग से आया था।
5. आस्ट्रेलिया महाद्वीप के दक्षिण तट से होते हुए द० प्रशान्त महासागर को जोड़ने वाला समुद्री मार्ग।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रशासन ने हिन्द महासागर के उन्हीं उपरोक्त पाँचों यातायात मार्गों पर नियंत्रण प्राप्त करके हिन्द महासागर को ‘ब्रिटिश जलाशय’ (**British Lake**) के रूप में बदल दिया था। ब्रिटेन को अपनी उस सामुद्रिक यातायात नियंत्रण योजना में भारतीय प्रायद्वीप के उत्तर-दक्षिण हिन्द महासागर के बीचों बीच स्थित होने के कारण बहुत सुविधा हुई कारण कि देश की स्थिति के परिणामस्वरूप ब्रिटिश कालीन भारत के लिए पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी समेत पूरे महासागर के यातायात संचार पर नियंत्रण बनाए रखना सरल हो गया।

वर्ष 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत से ब्रिटिश शासन की समाप्ति के साथ ही हिन्द महासागर स्थिति उस भारतीय क्षेत्र भी सामरिक और भू-राजनीतिक स्थिति में बहुत बड़ा गुणात्मक परिवर्तन आया, परन्तु भौगोलिक स्थिति जनित सामरिक तथा भू-राजनीतिक लाभ भारत भी प्राकृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान रहा। चित्र 15-4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि “हृदय स्थल को तीन तरह से घेरे हुए परिधि प्रदेश में भारत की स्थिति किसी मेहराब की चाबी (**Key Stone**) जैसी है जिसके ऊपर पूरे मेहराब का संतुलन निर्भर है” (दीक्षित, 2019, पृष्ठ 255)

मैकिन्डर के ‘हृदय स्थल सिद्धांत’ के परिप्रेक्ष्य में जब हम भारत की केन्द्रीय भू-राजनीतिक स्थिति और शक्ति सम्भावना का आकलन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि भारत मैकिन्डर द्वारा प्रतिपादित आन्तरिक अर्धचन्द्राकार (**Inner Crescent**) भाग में स्थित है और सम्पूर्ण क्षेत्र में इसकी स्थिति केन्द्रीय है। इसकी सीमाएं

प्राकृतिक बाधाओं (पश्चिमी क्षेत्र में थार का विशाल रेगिस्तान, उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय भी पर्वत श्रेणियाँ एवं पूर्वोत्तर में सघन जंगल युक्त पहाड़ियाँ) इस प्रकार सुरक्षित हैं इसे (भारत को) 'हृदय स्थल' की भाँति सुरक्षित किले (Citadel of Defence) की संज्ञा दी जा सकती है। समूचे हिन्द महासागर क्षेत्र की लगभग आधी जनसंख्या भारत में निवास करती है इसलिए यहाँ सैन्य शक्ति का विकास सुगम है। राजनीतिक प्रशासन के लिए 'भारत में संघवाद की स्थापना और उसपर सफल संचालन' भारत की शक्ति संभाव्यता का ओतक है। स्थल आधारित संसाधनों की दृष्टि से प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित होने के सारे गुण भारत में मौजूद हैं साथ ही ऊर्जा सुरक्षा एवं भविष्य में ऊर्जा जरूरतों तथा स्वच्छ ईंधन के लिए आवश्यक विकल्पों के रूप में तरंग ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, मीथेन क्लैथरेट्स ड्यूटीरियम एवं ट्रिटियम के भंडार उसे हिन्द महासागर के विशेष आर्थिक परिक्षेत्र (Special Economic Zone) से प्राप्त होने की पूरी संभावना है।

स्थाइक मैन की 'परिमास्थल' सामरिक संकल्पना की दृष्टि से भारत की केन्द्रीय भूराजनीतिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है, कारण कि स्पाइक मैन द्वारा प्रतिपादित परिमास्थल का प्रमुख अंग है। सामुद्रिक सभ्यता के आधारभूत तत्व के रूप में भारत के पास हिन्द महासागर में एक लम्बी तट रेखा है जो इसे स्थल शक्ति के विकास में अग्रणी राज्य बना सकती है। स्पाइक मैन के 'परिमास्थल' की सारी विशेषताएँ (जैसे—नदी घाटियों की उपस्थिति, फटी-फटी समुद्री तट रेखा, सामुद्रीक जलवायु, जलडमरू मध्य की समीपता आदि) भारत के पास उपलब्ध हैं। हिन्द महासागर की सीमा पर बसे आर्थिक दृष्टि से कमजोर व विकासशील राज्य स्थाइक मैन के परिमास्थल में भारत के समीप ही स्थित हैं जो भारत की केन्द्रीय स्थिति को मजबूत बनाते हैं। 'परिमास्थल' में अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण भारत को अपनी कारोबारी गतिविधियाँ बढ़ाने एवं राष्ट्रीय सुरक्षा मजबूत करने में भारत को हिन्द महासागर क्षेत्र में काफी सुविधा है। स्पाइक मैन के शक्ति के आधारों में कृषि उत्पादन, खनिज, शक्ति संसाधन एवं औद्योगिक उत्पादन को महत्व दिया गया था। उस दृष्टि से भी भारत की स्थिति मजबूत है। अपने सिद्धांत में स्पाइक मैन ने यह भी स्पष्ट किया था कि 'विश्व में कोई भूराजनीतिक क्षेत्र ऐसा नहीं है जो वायु शक्ति के विकास द्वारा उस परिमास्थल के तटीय सागरों की अपेक्षा अधिक प्रभावित हुआ है।' इस दृष्टि से भी भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है। उस सन्दर्भ में हिन्द महासागर में स्थित भारत के अण्डमान निकोबार एवं लक्षद्वीप समूह की स्थिति विशेष उपादेय है जहाँ नौ सेना आधारित वायु शक्ति का विकास एवं संचालन आसानी से किया जा सकता है।

15.10 वर्तमान सन्दर्भों में हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में भारत के भू-राजनीतिक महत्व का आकलन

वैश्विक परिदृश्य में हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि आज 21वीं शताब्दी के तृतीय दशक के पूर्वार्द्ध तक ब्रिटिश-अमेरिका, रूस एवं चीन का सैनिक नेटवर्क हिन्द महासागर की पूरी लम्बाई में योजना बद्ध तरीके से फैल चुका है। विस्तारित सैनिक नेटवर्क के पीछे भले ही हिन्द महासागर की भौगोलिक भू-राजनीतिक हो यहाँ मौजूद विपुल प्राकृतिक सम्पदा हो खनिज तेल के विशाल भंडारों की मौजूदगी ऊर्जा संसाधनों के महत्वपूर्ण स्रोतों की उपस्थिति हो या फिर महत्वपूर्ण व्यापारिक समुद्री मार्ग लेकिन इन सबसे कहीं अधिक यह दिखाई पड़ता है कि ब्रिटिश-अमेरिकी ताकतों और सोवियत रूस तथा चीन का हिन्द महासागर में सैनिक जमाव इस उद्देश्य से हुआ है कि नया शीत युद्ध जो 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद प्रारंभ हुआ है, वह हिन्द महासागर स्थित अफ्रीकी-एशियाई क्षेत्र में रहे। हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं है कि वे सशक्त समुद्री बेड़ों का विकास कर सकें और इन वैश्विक महाशक्तियों का प्रतिरोध कर सकें। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि हिन्द महासागरीय देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ, आर्थिक स्थिति और सामरिक आवश्यकताएँ इतनी भिन्न हैं कि इन वैश्विक महाशक्तियों का सभी से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना नहीं है। इस सन्दर्भ में भारत को एक विशेष स्थान प्राप्त है, क्योंकि हिन्द महासागर की स्थलीय सीमाओं में सबसे अधिक अंश भारत का है इसलिए केवल भारत को ही तटवर्ती देशों के सहयोग की आवश्यकता नहीं है, बल्कि देश भी भारत की अवहेलना नहीं कर सकते। यह बात अलग है कि अमेरिकी और चीन कूटनीति के चलते पाकिस्तान भारत का प्रबल विरोधी पड़ोसी तटवर्ती राज्य है और मालदीव जैसा छोटा द्वीपीय देश भी चीनी उकसाने में भारत को जब तब आँखें दिखाता रहता है। विश्व भी प्रमुख नौसैनिक शक्तियों में भारत का स्थान सं०रा० अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन, इटली, जापान, स्वीडन और जर्मनी के पश्चात् है। यद्यपि कि हिन्द-महासागर देशों में यह सर्वोच्च है। भारत के विशाल क्षेत्रीय आकार के अतिरिक्त दक्षिण एशिया में उसका केन्द्रीय महत्व,

उसकी विशाल जनसंख्या, उसको प्राप्त विकासशील देशों का नेतृत्व तथा विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में प्राप्त गौरव हिन्द महासागरीय क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता एवं भू-राजनीतिक महत्ता को रेखांकित करना है। संक्षेप में, “बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में भारत (हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में) अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में अवश्य था, परन्तु मई 1998 के आणविक परिक्षणों से प्राप्त हुई आत्म निर्भरता से भारत के सुरक्षा वातावरण में गुणात्मक सुधार आया है। देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है तथा भारत विश्व की गिनी चुनी महान शक्तियों की श्रेणी में आ गया है। उस परिवर्तित वातावरण ने भारत और रूस की पुरानी मैत्री को नई प्रासंगिकता प्रदान की है। परिणाम स्वरूप अब (हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र में ही नहीं बल्कि) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को अलग-थलग करने के प्रयासरत सफल नहीं हो सकते। (दीक्षित, 2019, पृष्ठ -264)

15.11 हिन्द महासागर और शांति क्षेत्र प्रस्ताव

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात विश्व द्विध्रुवीय शक्ति समूहों में बँट गया। एक ओर अमेरिकी शक्ति समूह था जो सोवियत शक्ति को घेरने के उद्देश्य से हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों को अपने पक्ष में करने की कोशिश करने लगा, और दूसरी ओर सोवियत शक्ति समूह था जो अमेरिकी घेरे को तोड़ने की कोशिश में हिन्द महासागर परिमंडल में स्थित देशों से मैत्री और आर्थिक संधियाँ स्थापित करने लगा इसी बीच 1947 में ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्त होकर द० एशिया में भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों का विश्व पटल पर अम्बुदय हुआ। हिन्द महासागर तट पर स्थित इन दोनों देशों पर भी दोनों महाशक्तियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। पाकिस्तान का झुकाव अमेरिकी गुट की तरफ था जबकि भारत ने अपने आर्थिक राजनीतिक परिदृश्य को मजबूत बनाने के उद्देश्य से सोवियत रूस से आर्थिक और सैन्य समझौता करना उचित समझा। अमेरिका ने रूस के प्रति भारत का झुकाव देखकर भारत पर दबाव डालना शुरू किया। ऐसी स्थिति में भारत ने गुट निरपेक्ष राष्ट्रों का समूह बनाकर दोनों महाशक्तियों से दूर रहना प्रारंभ किया। 1955 में वाण्डुंग सम्मेलन में इसकी शुरुआत हुई और तटवर्ती राष्ट्रों ने हिन्द महासागर के एक ‘शांति क्षेत्र’ (**Zone of Peace**) के रूप में रखने का समर्थन किया।

लुसाका में सितम्बर 1970 में सम्पन्न हुए गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन में पहली बार हिन्द महासागर को ‘शांति क्षेत्र’ बनाए जाने की माँग विधितत् उठाई गई। इसकी पहल श्रीलंका और भारत ने की। शिखर सम्मेलन में भारत ने अपनी माँग रखते हुए यह कि “हम चाहते हैं कि हिन्द महासागर क्षेत्र शांति एवं सहयोग का क्षेत्र बने। विदेशी शक्तियों के सैनिक जमाव से यहाँ तनाव बढ़ेगा और महाशक्तियों के बीच हथियारों की होड़ का प्रभाव भी यहीं पड़ेगा।” शिखर सम्मेलन के औपचारिक प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्र संघ से अनुरोध किया जाय कि वे हिन्द महासागर को शांति क्षेत्र मानें और इसी रूप में उसका सम्मान करें तथा यहाँ से महाशक्तियों की थल सेना, नौसेना और वायुसेना के ठिकाने समाप्त कर दिए जाएं। गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन के इस अनुरोध के बाद संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 16 दिसंबर 1971 को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि— ‘महासभा संकल्प पूर्वक घोषणा करती है कि हिन्द महासागर का सागर क्षेत्र और उसके ऊपर का वायु क्षेत्र हमेशा के लिए शांति क्षेत्र घोषित किया जाता है।’ महासभा ने कई बार बहस करके 15 दिसंबर, 1972 को संयुक्त राष्ट्र अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास किया और 27वें अधिवेशन में ‘शांति क्षेत्र’ प्रस्ताव लागू कराने के उद्देश्य से 15 सदस्य देशों की एक तदर्थ समिति की गठित की। जुलाई 1979 में हिन्द महासागर के तटीय और भीतरी प्रदेशों के 44 देशों द्वारा संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में एक बैठक करने महासभा के 16 दिसंबर 1971 के प्रस्ताव को त्वरित और प्रभावी ढंग से लागू करने का अनुरोध किया गया, लेकिन तब से लेकर अब तक इस सन्दर्भ में किए गए सारे प्रयास निरर्थक ही साबित हो रहे हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि 1971 में भारत-पाकिस्तान के मध्य हुए युद्ध और बांग्लादेश के अभ्युदय के बाद हिन्द महासागर के तटवर्ती देशों के बीच कई संघर्ष (जैसे— इथियोपिया— सोमालिया संघर्ष, वियतनाम— कम्बूचिया संघर्ष ईराक—ईरान युद्ध, खाड़ी युद्ध और इजरायल— हमास संघर्ष) हुए हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि हिन्द महासागरीय परिक्षेत्र आज भी अशांति का क्षेत्र है और इन संघर्षों के पीछे हिन्द महासागर के अफ्रीकी-एशियाई क्षेत्र में एक ‘सुपर पावर’ के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है जबकि जापान के अपने आर्थिक हित हैं। उसका 50 प्रतिशत से अधिक सागरीय व्यापार हिन्द महासागर के माध्यम से ही सम्पन्न होता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुस्लिम आतंकवाद ने इस समस्या को और जटिल बना दिया है। उस वैश्विक आतंकवाद ने संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके सहयोग-समर्थक देशों को यह बहाना और मौका दे दिया है कि वह हिन्द महासागर

में अपनी उपस्थिति को सही ठहरा सकें। हिन्द महासागर में ब्रिटेन— अमेरिका एवं रूसी— चीनी हस्तक्षेप को यद्यपि कि लगभग सभी हिन्द महासागरीय देश आलोचना करते हैं और चाहते हैं तथा प्रयत्नशील भी हैं कि हिन्द महासागर शांति का क्षेत्र बना लेकिन वे हिन्द महासागर को विश्व शक्तियों की राजनीतिक केन्द्र बनने से रोक नहीं पा रहे हैं जो वास्तव में विश्व शान्ति के लिए खतरा है। सारांशतः निकट भविष्य में इस क्षेत्र में शांति स्थापित होने की संभावना काफी क्षीण है।

15.12 दि इंडियन ओसियन रिम एशोसिएशन फार रीजनल को आपरेशन (IORARC)

हिन्द महासागर को 'शांति क्षेत्र' बनाये जाने के अपने प्रयासों के बीच हिन्द महासागरीय देशों ने यह महसूस किया कि उनमें परस्पर अधिक आर्थिक सहयोग कायम करने की जरूरत है ताकि उनके पूर्व के उपनिवेशी शासकों एवं विकसित देशों के द्वारा होने वाले शोषण पर अंकुश लगाया जा सके। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत, मलेशिया, हिन्देशिया, श्रीलंका, सिंगापुर, ओमान, यमन, तंजानिया, फीनिया, मोजंबिक, मेडागास्कर, दक्षिणी अफ्रीका, मारीशस एवं आस्ट्रेलिया (कुल 14 देश) देशों ने मिलकर 5 मार्च 1997 को पोर्टलुइस (मारीशस) में एक संगठन की स्थापना की और उसको नाम दिया — **The Indian Ocean Rim Association for Regional Cooperation (IORARC)** प्रादेशिक सहयोग एवं अन्तर्महाद्वीपीय व्यापार को बढ़ावा देना, सुरक्षा सहयोग एवं पूँजी विनियोजन को बढ़ावा देना, वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान का विनिमय मानव संसाधन एवं सेवाओं का विनिमय आदि उस संगठन के मुख्य उद्देश्य थे। इसके लिए एक अलग 'हिन्द महासागर समुदाय' (**Indian Ocean Community**) का भी गठन किया गया। हिन्द महासागर तटीय एवं द्वीपीय देशों को कुछ ऐसे ही और कारगर और मजबूत संगठन बनाने की जरूरत है। ऐसा होने पर ही हिन्द महासागर एक 'शांति क्षेत्र' स्वतंत्र एवं तटस्थ तथा परमाणु मुक्त महासागर बन सकेगा जो 'विश्व शान्ति' के लिए वरदान होगा।

15.13 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भलीभाँति समझ गए होंगे कि अपनी विशिष्ट राजनीतिक स्थिति एवं भौगोलिक स्वरूप के कारण हिन्द महासागर विश्व का एक अनोखा महासागर है। इसे भी भू-राजनीतिक महत्ता की वजह से ही युरोपवाही यहाँ के द्वीपीय और तटवर्ती देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे जिससे २०५० एशिया, पूर्वी अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया पर प्रभावी आधिपत्य स्थापित किया जा सके, लेकिन इसमें केवल ब्रिटेन को ही पूर्ण सफलता मिली। आपने इस इकाई के माध्यम से यह भी समझ लिया होगा कि संसाधनों की दृष्टि से हिन्द महासागर बड़ा धनी है और उस महासागर में भारत की स्थिति केन्द्रीय है जिसकी वजह से भारत के लिए हिन्द महासागर का आर्थिक, वाणिज्यिक, सामरिक एवं भूराजनीतिक महत्व बहुत अधिक है। वैश्विक महाशक्तियाँ इस महासागरीय परिक्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए आज भी सतत् प्रयत्नशील हैं, इसीलिए भारत तथा अन्य हिन्दमहासागरीय देश वैश्विक मंचों के सहयोग से हिन्द महासागर को शांति क्षेत्र बनाए जाने के लिए अनवरत कोशिश कर रहे हैं लेकिन सफलता उनसे अभी बहुत दूर है।

15.14 शब्दसूची

बन्द महासागर	Closed Ocean	सागरीय कृषि	Mariculture
उत्तम आशा अंतरीय	Cape of Good Hope	व्यथा का सागर	Sea of Agony
गरजती चालीसा	Roaring Forties	शक्ति शून्यता	Power Vacuum
भयंकर पचासा	Furious Fifties	तटीय कूटनीति	Gunboat Diplomacy
जल संधि	Strait	आंतरिक अर्धचन्द्राकारा	Inner Crescent
रक्षित किला	Citadel of defence	शांति क्षेत्र	Zone of Peace

15.15 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. हिन्द महासागर का कौन सा द्वीप इस समय पूरी तरह से सं०रा० अमेरिका के अधिकार में है?
(अ) मालदीव (ब) मारीशस (स) रियूनियन द्वीप (द) डिएगो-गार्सिया
2. 'भारत हिन्द महासागर रूपा महाराज का आधार प्रस्तर है'— यह कथन किसका है?
(अ) ओ०एच०के० स्पेट (ब) के०एम० पन्नीकर (स) जी०ई० पियर्सो (द) रमेश दत्त दीक्षित
3. हिन्द महासागर के पश्चिम में कौन-सा अन्तर्राष्ट्रीय संकरा जलमार्ग है?
(अ) स्वेज नहर (ब) मलक्का जल संधि (स) पाक जल संधि (द) सोकोत्रा
4. मलक्का जल संधि हिन्द महासागर के किस क्षेत्र में स्थित है?
(अ) पूर्वी हिन्द महासागर (ब) प० हिन्द महासागर (स) उत्तरी हिन्द महासागर (द) द० हिन्द महासागर
5. हिन्द महासागर के कितने द्वीपीय देश हैं?
(अ) पाँच (ब) सात (स) नौ (द) दस

आदर्श उत्तर :-

1. (द) ; 2. (अ) ; 3. (अ) ; 4. (अ) ; 5. (ब)

15.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

Bowman, I., (1948): 'The Geographical Situation of the United States in Relation to World Politics', Geos. Jour. Vol.112.

दीक्षित, रमेशदत्त, (2019): 'राजनीतिक भूगोल : समसामयिक परिदृष्टि', संशोधित संस्करण (छठवाँ), पी.एच.आई. लर्निंग, प्रा०लि०, दिल्ली, 280 पृष्ठ।

Pearcy, G.E. et.al., (1957): 'World Political Geography, 2nd Ed., Thomas v. Crowell Co., New York.

15.17 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

1. IORARC क्या है? इसकी स्थापना कहाँ और कब हुई?
2. हिन्द महासागर में भारत की भू-राजनीतिक स्थिति का महत्व स्पष्ट कीजिए।
3. हिन्द महासागर परिक्षेत्र की मुख्य खनिज सम्पदा बताइए।
4. हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व स्पष्ट कीजिए।
5. हिन्द महासागर की भू-राजनीतिक महत्व की प्रमुख जल संधियाँ बताइए।